श्रीराम चरित
खण्ड-१
श्री
ॐ

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

जन्म–१४-११-१९११ ई.

स्थान– ग्राम भेलहटा, चन्दौली, (वाराणसी)

शिक्षा– सामान्य हिन्दी शिक्षा । सामान्य संस्कृत, गुजराती तथा बंगला पढ़ लेना ।

कार्य—सन् १९३७ से १९४१ ई. तक मासिक पत्र 'संकीर्तन' मेरठका सम्पादन। १९४० से १९७२ तक 'मानसमणि' (मासिक), रामवन (सतना) का सम्पादन। १९६९ से १९७२ तक 'विवेक-रश्मि' (मासिक) परमार्थ आश्रम, हरिद्वारका संपादन अब १९७५ से 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मथुराका सम्पादन। 'कल्याण' गीता प्रेस, गोरखपुरके हिन्दू-संस्कृति-अङ्क, 'बालकाङ्क', 'सत्कथा अङ्क', 'तीर्थाङ्क' आदि कई विशेषाङ्कोंका सम्पादन-कार्य। कैलास-मानसरोवर सहित पूरे भारतकी तीर्थ-यात्रा।

ग्रन्थ—श्रीहनुमान-चरित, शत्रुघ्नकुमारकी आत्म-कथा, विशाल चार खण्डोंके श्रीकृष्ण-चरित, चार खण्डोंके श्रीरामचरित, प्रभु आवत, राक्षसराज जैसे ब ग्रन्थोंके अतिरिक्त सूरके पद-संग्रहोंका अनुवाद तथा मानससङ्घ, रामवन, गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित लगभग तीन दर्जन पुस्तकोंका लेखन। गीता प्रेस से बिना लेखक के नामके प्रकाशित बाल-साहित्यकी सब पुस्तकोंके लेखक।

अन्य—श्री 'चक्र' नामसे ढाई-तीन सौ कहानियों का लेखन। कई दर्जन गम्भीर निबन्ध 'कल्याण' तथा अन्य पत्रोंमें मुख्यतः भारतीय संस्कृति, साधना, कर्म-रहस्य तथा श्रीरामचरितमानस सम्बन्धी।

वर्तमान पता—**सम्पादक, 'श्रीकृष्ण-सन्देश'**
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा-२८१००१
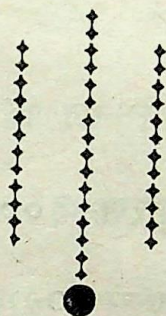
श्रीराम-चरित

[प्रथम खण्ड]

लेखक :
सुदर्शनसिंह 'चक्र'
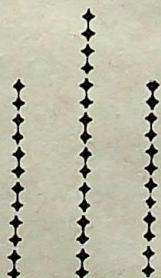
काशक :
ीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघ,
थुरा-२८१००१

प्रथमावृत्ति-सन् १९७७ ई०

संस्करण-३०००

मूल्य १०-००

मुद्रक :
हितसरन अग्रवाल.
सरस्वती प्रेस,
डीग गेट,
मथुरा

श्रीराम-चरित (प्रथम खण्ड)

अनुक्रमणिका

क्र०सं०		पृ०सं०
१.	मंगलाचरण	१
२.	अपनी बात	३
३.	उपक्रम	८
४.	साकेत धाम	१६
५.	अयोध्या	२४
६.	लंका	३१
७.	रावण	३५
८.	सूर्यवंश	४१
९.	महर्षि वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंशके कुलगुरु	५५
१०.	रावणकी अयोध्यासे शत्रुता	६१
११.	दशरथ विवाहमें रावणद्वारा बाधा	६६
१२.	अयोध्याके विरुद्ध रावणका व्यूह	७३
१३.	सुमित्रा और कैकेयीसे विवाह	७७
१४.	अन्धं तापस शाप	८४
१५.	जटायु मैत्री	९०
१६.	दशरथ कन्या शान्ता	९६
१७.	भूभारके उपचारका यत्न	१०२
१८.	परम पुरुष	१०८
१९.	पुत्रेष्टि याग	११४
२०.	मर्यादा पुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव	१२६
२१.	भरतादिका जन्म	१३८
२२.	षष्ठी पूजन	१४३
२३.	नाम करण	१४८
२४.	अन्नप्रासन	१५३
२५.	माता चकित	१५८
२६.	सहज स्वभाव	१६३
२७.	अद्भुत ज्योतिषी	१६८
२८.	विचित्र काक	१७३
२९.	शैशव	१७९
३०.	चूड़ाकरण	१८४
३१.	बालक्रीड़ा	१८९
३२.	कर्ण वेध	१९६
३३.	कुमार क्रीड़ा	२००
३४.	मकरोद्धार	२०५
३५.	स्वर्णिमकपि	२०९
३६.	उपनयन	२१४
३७.	गुरुकुल वास	२१८
३८.	समावर्तन	२२४
३९.	वैराग्य	२२७
४०.	आखेट क्रीड़ा निषाद मित्र	२३५
४१.	व्यवस्थामें योगदान	२४४
४२.	महर्षि विश्वामित्र आये	२४८

क्र०सं०		पृ०सं०
४३.	विश्वामित्रका परिचय	२५२
४४.	ब्रह्मर्षिके साथ	२५७
४५.	ताड़का त्राण	२६४
४६.	दिव्यास्त्र दान	२६८
४७.	मख-रक्षा	२७१
४८.	निमिवंश	२७९
४९.	पिनाक	२८३
५०.	भूमिजा कन्या	२८६
५१.	धनुषोत्तोलन	२९२
५२.	जनककी प्रतीक्षा	२९६
५३.	जनकपुरपर संकट	२९९
५४.	जनकपुरकी ओर	३०५
५५.	अहल्योद्धार	३०८
५६.	भोला केवट	३१२
५७.	नगर दर्शन	३१७
५८.	महाराज जनकसे साक्षात्	३२२
५९.	गुरु सेवा	३२६
६०.	शुकीका शाप	३२८
६१.	प्रथम दर्शन	३३२
६२.	नारदका निर्देश	३३६
६३.	सरल स्वभाव	३४०
६४.	लक्ष्मणका आवेश	३४२
६५.	धनुभंग	३४५
६६.	जयमाला	३४९
६७.	चर अयोध्या गये	३५२
६८.	बिना वरकी बारात	३५६
६९.	पितृ मिलन	३६०
७०.	विवाह	३६३
७१.	बारात विदा	३६८
७२.	परशुराम	३७२
७३.	अयोध्याका आनन्द	३७७
७४.	उपसंहार	३८१

———

श्रीराम-चरित

(प्रथम खण्ड)

मंगलाचरण

वन्दे हेरम्ब गजवदन दिव्य तुन्दिलतन,
विघ्न-हरण, सिद्धि-सदन, एक-रदन, अभिराम ।
वन्दे हंस–वाहिनी, विवेक-मूर्ति, वीणा-पाणि
विद्या-बुद्धि-दायिनी, सरस्वती शोभाधाम ।।
वन्दे वाल्मीकि आदि रामकथा काव्यकार,
वन्दे वेदव्यास पादपद्म परम पूर्णकाम ।
वन्दे हनुमान हरिभक्तगण मुकुटमणि,
वन्दे श्रीतुलसीदास अतुलनीय पुण्यनाम ।।

× × × ×

जिससे न कहना कुछ, करना जिसे ही सब,
जिसका यह पूर्व चरित, नन्द-तनय घनश्याम ।
जानता इसे है वही, करेगा प्रस्तार सही,
लेखनी पकड़ना मात्र मेरे कनूँ ! मेरा काम ।।

× × × ×

श्रीराम जयराम, राम राम राम राम ।
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम ।।
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।।

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेव नमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१॥
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनता कल्पयत् पुरा ।
अमृतं प्रार्थमानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥२॥
मङ्गलं कोसलेन्द्रस्य महनीय गुणालये ।
चक्रवर्ति तनूजाय' सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥३॥
अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥४॥
त्रीन् विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥५॥
ऋषयः सागराद्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा ॥६॥

× × × ×

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनूं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥

× × × ×

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यो ॥

———

अपनी बात—

मुझे प्रिय श्रीविष्णुहरि डालमियाने बहुत वर्ष पहिले कहा था—'आप एक रामचरित लिखिये।'

'हिन्दीमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका 'श्रीरामचरितमानस' जैसा ग्रन्थ है ही, फिर दूसरे रामचरितकी आवश्यकता क्या है ?' मैंने उन्हें तब कहा था और जब भी पीछे दूसरोंने यही सुझाव दिया, मेरा यही उत्तर था।

'श्रीरामचरित मानस अपने स्थानपर है और महत्ता, प्रचार-प्रसार सभी दृष्टियोंसे अद्वितीय है, किन्तु आप तो गद्यमें लिखेंगे।' उन्होंने तर्क दिया था।

उस समय वह तर्क गले नहीं उतरा था। जानता हूँ कि हिन्दीमें पद्यमें भी 'श्रीरामचरितमानसके' पश्चात् अनेक रामकथा काव्य लिखे गये। आगे भी लिखे जाते रहेंगे। लेकिन उस समय बात टल गयी, क्योंकि उसका टल जाना ही शुभ था। तब मैंने अस्वीकार किया था हिन्दीके पाठकोंको आवश्यकता नहीं है, यह देखकर। इसका अर्थ है कि तब मैं लिखता तो पाठकोंके लिए लिखता और इस प्रकार कर्तृत्वाभिमान लेकर कहीं भगवच्चरित लिखा जाता है। लिखा भी जाय तो उसमें लेखकका कला-कौशल विद्या-बुद्धि चाहे जितनी प्रकट हो, भगवान् कैसे आवेंगे और यदि भगवान् ही न हों—भगवच्चरित कैसा ? भगवल्लीला तो स्वयं ही श्रीभगवान् हैं। नाम, रूप, लीला, धाम ये चारों श्रीभगवान्के नित्य अभिन्न रूप हैं। अतः भगवल्लीला हृदयमें तब आती है, जब उसके अवतरणके उपयुक्त अन्तरमें प्यास हो—बुभुत्सा हो। मेरे हृदयमें यह प्यास अब भी जागी हो, ऐसा नहीं लगता, किन्तु अब मैं प्रतीक्षा कबतक करूँगा। प्रतीक्षाके लिए मेरे पास समय नहीं है, अतः लग रहा हूँ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने केवल श्रीरामचरितमानस ही तो नहीं निर्मित किया। यदि वे पाठकोंकी ओर देखते तो कदाचित् इतने विविध रूपों में श्रीराम-कथाका गान कर नहीं पाते। गीतावली, कवितावली छप्पय

रामायणआदि भी श्रीरामकथा ही तो हैं। बात यह है कि जब किसीके हृदयमें श्रीकौशलेन्द्र आ बिराजते हैं, उसकी वाणीको लेखनीको भी अपने उन्हीं हृदयेश्वरका गुणगान करना रहता है। वह 'स्वान्तः सुखाय' ही लिखता या गाता है। भगवल्लीलाकी अभिव्यक्ति कभी होती भी है तो ऐसे ही होती है।

मैंने अनेक रूपोंमें अपने गोविन्दका स्मरण किया। श्रीकृष्ण-चरित ही विस्तृत रूपसे सम्पूर्ण तीन बार लिखा। पहिली बार मेरठसे निकलनेवाले मासिक पत्र 'संकीर्तन'के सन् १९४०के विशेषांक 'श्रीकृष्णचरितांक'के रूपमें वह निकला। दूसरी बारके लिखे गये श्रीकृष्ण-चरितका पूर्वार्ध मोतीलाल बनारसीदासने प्रकाशित किया। तीसरी बार चार खण्डोंमें मैंने लिखा—१. भगवान् वासुदेव (मथुराचरित), २. श्रीद्वारिकाधीश, ३. पार्थ-सारथि, ४. नन्दनन्दन (व्रजचरित)। यह क्रमशः 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मासिक पत्र (मथुरा) में छप रहा है और श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ मथुरा इन्हें पुस्तकका रूप भी दे रहा है। इनके अतिरिक्त बालकोंके लिए अथवा छोटे रूपोंमें अनेक बार अनेक रूपोंमें श्रीकृष्णचरित लिखा गया।

एक ही चरितको पुनः लेखनका यह क्रम मेरे जीवनमें जैसे जीवनका अंग ही बन गया। 'संकीर्तन' कार्यालय मेरठने ही पहिले लिखा मेरा 'आञ्जनेय'सन् १९३८ में प्रकाशित किया था। उसीको मानस संघ,पो०–रामवन (सतना) ने 'श्रीहनुमानचरित'के नामसे दूसरे संस्करणके रूपमें प्रकाशित किया; किन्तु जब वह अप्राप्य हो गया मैंने अब 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' लिखकर पूरी करदी। इसी प्रकार मेरठमें ही मैंने शिवचरित लिखा जो बहुत दिनों अमुद्रित रहनेके पश्चात् मुमुक्षु आश्रम,शाहजहाँपुरसे निकलनेवाले मासिक पत्र 'परमार्थ'के विशेषाङ्क 'शिवचरिताङ्क'के रूपमें छपा, किन्तु अब 'शिव-चरित' भी मैंने दूसरा ही लिखकर पूरा कर दिया है।

'श्रीराम-चरित'के नामसे यद्यपि मैंने कुछ लिखा नहीं था, किन्तु 'शत्रुघ्नकुमारको आत्मकथा', 'प्रभु आवत'—ये दोनों रामकथा ही हैं और अब 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' जो लिखी गयी वह भी रामकथासे पृथक तो कुछ नहीं है।

'सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥'

जीवनमें लेख, कहानियाँ बहुत लिखता रहा हूँ—भले वे आध्यात्मिक विषयोंपर ही लिखे गये; किन्तु भगवल्लीला जब मनमें आती है, मानस जैसा पवित्र होता है, वैसी स्थिति और कोई चिन्तन कैसे दे सकता है। अतः अपने लिए ही—अपने हृदयमें भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तमकी लीलाओंका किञ्चित् आलोक आवे, इसलिए लेखनी पकड़कर बैठा हूँ।

प्रिय श्रीविष्णुहरि डालमियाने फिर आग्रह किया था दो वर्ष पूर्व। भाई श्रीजयदयाल डालमियाका आग्रह एवं व्यवस्था, सहयोग साथ न देता तो भी यह कुछ नहीं होता और सबसे अधिक अनुगृहीत हूँ मैं उनका जिनका स्नेह,सौहार्द्र,सहायता मुझे बचपनसे पालती,प्रोत्साहित करती,उठाती रही है। मेरी धृष्टता ही है कि मैं अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजको मित्र कहता हूँ; किन्तु दूसरा कुछ कह भी नहीं पाता। मेरे स्वभावमें,हृदयमें मैत्री एवं भ्रातृत्वसे बड़ा कोई सम्बन्ध ही नहीं। कन्हाईको ही भाई कहता हूँ तो..................

मैं स्वभावसे आलसी ही नहीं—प्रमादी भी हूँ। ग्रन्थोंके अध्ययन, अवलोकनका श्रम मुझसे कभी नहीं हुआ। कभी उठाया भी तो उलट-पलटकर सूंघलेने मात्रका कार्य बना है। इसलिए भी यह श्रम नहीं हुआ, क्योंकि मैं लिख सकूँगा, सोच सकूँगा, यह विश्वास मुझे कभी हुआ नहीं। जब मैया यशोदाके लाडलेको ही सब करना है तो वही करे। बीचमें अपनी टाँग मैं क्यों अड़ाऊँ। करता वह है और यश किसीको दे देता है—यह इस कन्हाईका सदाका स्वभाव है।

एक यह, और दूसरे श्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज—अब यह कौन करता कि अपने साथ रखे, व्ययकी, भोजनादिकी व्यवस्था भी करावे और कथा भी सुनावे। मैंने श्रीमहाराजजी जब राजगंगपुर (उड़ीसा) पधारे थे श्रीमद्भागवत प्रवचन करने, तब उनके श्रीमुखसे सुना कि वे कोयम्बतूरमें श्रीवाल्मीकीय रामायणका प्रवचन करनेवाले हैं। तभी मैंने उस कथाके श्रवणकी प्रार्थना की। दिल्लीमें श्रीराधाकृष्ण कानोडियाजीके यहाँ श्रीमहाराजजीका अध्यात्म-रामायण-प्रवचन सुननेका सुयोग अकस्मात् मिल गया और कोयम्बतूरमें वाल्मीकीय-रामायण प्रवचनमें मैं श्रोता रह सकूँ,यह व्यवस्था स्वयं उन्होंने करदी। इस प्रकार श्रीरामकथाके सम्बन्धमें कुछ परिचय मस्तिष्कमें आया—जितना मेरी अल्पस्मृति ग्रहण कर सकी।

गोस्वामीजीने कहा है—

'रामायन सत कोटि अपारा।'

किसीके लिए भी सम्पूर्ण श्रीरामचरित—कल्पमें होनेवाले अवतारोंके चरितोंका सूक्ष्मान्तर जानपाना सम्भव नहीं है। हिन्दी तथा संस्कृतकी ही बात नहीं है। भारतकी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंमें भी श्रीरामचरितकी बहुत अधिक पुस्तकें हैं। बंगला, असमिया, मराठी, गुजराती, उड़िया, तेलगू, तमिल, कन्नड़, मलयालम आदिमें-से प्रत्येक भाषामें कई-कई रामकथा-ग्रन्थ हैं। भारतसे बाहर इण्डोनेशियामें ही नहीं, मिश्र (अरब गणराज्यमें) भी श्रीरामकथा है। कहीं लोककथाके रूपमें, कहीं ग्रन्थ रूपमें। इन सबका अध्ययन भी एक मनुष्य अपने जीवनमें कर सके, सम्भव नहीं है।

मैं अल्पज्ञ हूँ और कह ही चुका हूँ कि आलसी भी हूँ। हिन्दी तथा यत्किञ्चित-संस्कृत, गुजराती, मराठी, बंगला जाननेमात्रसे अध्ययन पूरा नहीं हुआ करता। जो साहित्य उपलब्ध था अथवा हो सकता था, वह भी पढ़ा नहीं। पढ़नेका उत्साह मनमें नहीं था। मैं अध्ययन करके पाण्डित्यपूर्ण-खोजपूर्ण,सर्वाङ्गपूर्ण कोई ग्रन्थ कहाँ लिखने जा रहा हूँ कि यह सब मैं करूँ।

मुझे अपने लिए लिखना है। इसलिए लिखना है कि लिखनेका व्यसन अभी निवृत्त नहीं हुआ। सम्भवतः जिसने लेखनी दी है मेरे करोंमें, वह अभी लिखवाना चाहता है। लिखनी उसे है और लेखनीकी परम सार्थकता—वाणीकी चरम सफलता तो भगवद्गुण-लीलाके वर्णनमें ही है।

कन्हाई अपना है। नन्द-तनयको छोड़कर जीवनमें रहा नहीं जा सकता। इसने कुछ अद्भुत सुयोग दिये मुझे। जन्म हुआ वाराणसीके पार्श्वमें। अतः भगवान् विश्वनाथके घरका हूँ। अपने घरमें उत्पन्न कुत्ते-बिल्लीके बच्चोंको भी सहृदयजन अपनालेते हैं। उमा-महेश्वरको माता-पिता कहता हूँ तो इसकी लज्जा उनको ही होगी। 'शिव-चरित' लिखनेका उत्साह इस कारण भी उठा था। सूर्यवंशमें जन्म हुआ। श्रीरघुनाथजी चाहें तो भी कैसे अस्वीकार करदेंगे कि मैं उनका वंशज नहीं हूँ। अतः श्रीराम-चरित मेरे कन्हाईका पूर्व-चरित तो है ही, मेरे कुलपुरुषका भी चरित है—

भुवनपावन चरित। यह मेरे मानसमें आवे—जितना आसके उतना ही आवे, यह भी मेरे मनोमलके प्रक्षालनके लिए पर्याप्त है।

महत्तम हैं,लोकवन्द्य हैं वे जो पथोंपर ,चतुरष्कोंपर प्रदीप प्रज्वलित करते हैं—ज्योतिस्तम्भ निर्मित करते हैं,जिससे तमसाच्छन्न रजनीमें पथिक पथ प्राप्त करते रहें। मैं तो अपने अन्तरको आलोकित करनेके लिए एक नन्हा दीपक जलानेका उद्योग कर रहा हूँ। यह दूसरी बात है कि आलोकका स्वभाव ही है कि वह ऐकान्तिक नहीं बनता—एकका होकर ही नहीं रहता। जो भी उसके समीप पहुँचते हैं, सबका वह पथ प्रदर्शित करता है। आलोकके लिए अपना-पराया नहीं। अतः यह श्रीरामचरित आपके लिए भी यदि आलोक देता है, आपको भी इससे आनन्द, उल्लास, प्रेरणा प्राप्त होती है तो यह स्वयं चरितका गुण है। इसमें मेरा कुछ नहीं है।

लोग पथके दीप-स्तम्भ निर्माताओंकी प्रशंसा करते हैं। अश्वत्थ अथवा तुलसीके नीचे या चौराहेपर पड़े नन्हे दीपकपर कमकी दृष्टि जाती है और मैं उतना भी पुण्य-धन कहाँ पा सका हूँ। यह तो अत्यन्त एकान्तकी सूनी गलीमें पड़ा नन्हा प्रयत्न है—अपने लिए है, किन्तु आपकी अहेतुकी, अतिशय उदारता उमड़ सकती है—इसलिए भी उमड़ सकती है, क्योंकि अहेतुक कृपालु, उदार, चक्रचूड़ामणि आपके अन्तरमें आसीन हैं। अतः आपसे आशीर्वादकी आशा करता हूँ। ऐसे आशीर्वादकी आशा जिससे अन्तर बहिर्मुख न होकर अपने अन्तर्यामीकी ओर ही उन्मुख रहे। उसीके रूप,गुण, लीलाके चिन्तनमें लगा रहे।

तिरुपति
मार्गशीर्ष शुक्ल १४ सं० २०३२ वि० }

सुदर्शनसिंह

उपक्रम

अवतार शब्दका अर्थ होता है उतरना। मायातीत नित्यधामसे जब परमतत्व अपनी अचिन्त्य योगमायाका आश्रय लेकर हमारे पाञ्चभौतिक जगतमें किसी पाञ्चभौतिक जैसे लगते रूपमें ही उतर आते हैं, तब उन्हें अवतार कहते हैं।

हमारे सामने यह जड़ जगत है। लेकिन यह जगत ऐसा ही है जैसा दीख रहा है—यह बात केवल भ्रम है। स्थूल वैज्ञानिक दृटिसे भी देखें तो शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्र बतलाता है कि संसारकी सब आकृतियाँ पर-माणु प्रवाहमें वैसे ही बनती, बदलती, मिटती रहती हैं जैसे नदीके प्रवाहमें जलमें स्थान-स्थानपर आवर्तके घेरे। इन आकृतियोंका कोई महत्व नहीं है।

एक पाश्चात्य दार्शनिकने एक दिन स्वप्न देखा कि वह तितली होगया है और पुष्पोंपर उड़ता-बैठता घूम रहा है। उठनेके साथ उसके मनमें प्रश्न उठा—'क्या यह सम्भव नहीं है कि कोई तितली कहीं सो गयी हो और स्वप्न देख रही हो कि मैं मनुष्य हो गयी हूँ ?'

पता नहीं आपने अपनेको कभी स्वप्नमें अपने वर्तमानरूपसे भिन्न रूपमें देखा या नहीं और आपके मनमें यह प्रश्न उठा या नहीं, किन्तु योग-वाशिष्ठका विवेचन 'यह सच्चा या वह सच्चा' प्रसिद्ध है। स्वप्नका दृष्टान्त जागृतके संसारको समझने-समझानेके लिए हमारे शास्त्रोंमें बहुत महत्वका माना गया है।

सच बात यह है कि केवल परमात्मा अथवा माया ही अनिर्वचनीय नहीं है। यह जगत भी अनिर्वचनीय ही है। हम आप जो कुछ बोलते, लिखते, समझते हैं—यह सब कामचलाऊ बात है। हमारे पास आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा—रूप, गन्ध, शब्द, स्वाद और स्पर्शको जानते हैं। इन्हीं पाँच रूपोंमें हमें संसारका ज्ञान

होता है। इसमें भी एक इन्द्रिय केवल अपने विषयका ही ज्ञान करा सकती है। हम आप बोलकर कैसे बतला सकते हैं कि चीनी, मिश्री, पेड़ा, रसगुल्ला, चाशनी और शहदकी मिठासमें क्या अन्तर है? क्योंकि आपने चीनी और शहद दोनों चखे हैं, अतः मैं चीनीकी मिठास या शहदकी मिठास कहूँ तो बात समझ लेते हैं। लेकिन एक जन्मान्धको आप लाल और पीले रंगका अन्तर समझा सकते हैं?

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसारको देखने-जाननेके साधन हमारे पास कितने कम हैं और जो हैं, वे कितने अल्प सामर्थ्य रखते हैं। यदि कोई छठवीं ज्ञानेन्द्रिय होती तो संसार कैसा दीखता, यह अनुमान करना भी कठिन है। लेकिन आप यह अनुमान कर सकते हैं कि जन्मान्ध अथवा गूँगेको संसार कैसा दीखता होगा।

हमारी इन्द्रियाँ जो हमें दिखलाती-बतलाती हैं, हमारा सब तर्क, सब अनुमान उसीपर आधारित होता है। प्रत्यक्षका अनुगामी ही उपमान होता है, किन्तु आप जानते हैं कि इन्द्रियोंका अनुभव सदा यथार्थ नहीं होता। कभी रामका शब्द श्याम या मोहनका लगता है, कभी कोई आकृति दूसरेका भ्रम उत्पन्न करती है। यन्त्रकी सहायतासे देखनेपर पदार्थोंका और ही रूप ज्ञात होता है। यह सब कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि समस्त यान्त्रिक ज्ञानके रहते हुए भी मनुष्यका ज्ञान कितना अल्प है।

बाह्य जगतके सम्बन्धमें जहाँ हमारी यह स्थिति है कि विज्ञान अपनेको अब भी अबोध शिशु ही पाता है। आन्तरिक जगतके सम्बन्धमें स्थिति किञ्चित भिन्न है। किसीको भी कभी सन्देह नहीं होता कि मैं नहीं हूँ। आपको अपनी सत्ता-अस्तित्वमें कोई सन्देह नहीं है और यह अस्तित्व निर्विकार है। शरीर बच्चा, युवा, वृद्ध, रोगी, स्वस्थ कुछ भी होता रहे, आपका 'मैं' एकरस—अपरिवर्तनीय रहता है।

यह आपका 'मैं' क्या है? यह प्रश्न दर्शन-शास्त्रका मूल है और यह प्रश्न उठते ही अनन्त विवाद उठ खड़े होते हैं। आजका वैज्ञानिक कहता है कि शरीर अरबों जीवाणुओंकी राशि है। रक्तके एक बिन्दुमें लाखों जीवाणु हैं; किन्तु उनमें-से कोई एक जीवाणुको शरीरको 'मेरा' कहने वाला कहना सम्भव नहीं है और सामूहिक चेतना उनमें है, यह भी कह पाना सम्भव

नहीं है। जैसे भारतके सब मनुष्य भारतीय हैं; किन्तु हम सब भारतीयोंकी सामूहिक चेतना होते हुए भी भारत एक राष्ट्र ही रहता है, एक व्यक्ति नहीं बनता। इसी प्रकार असंख्य जीवाणु एक शरीर भले निर्माण करलें, उनमें शरीराभिमानी 'मैं' के व्यक्तित्वका उद्‌भव सम्भव नहीं है।

इस 'मैं'का पता क्यों लगाया जाय ?

इसलिए कि यह रोगी है—अशान्त है, दुःखी है। इसे शान्ति—सुख चाहिए। जब तक यही पता न लगे कि यह है कौन, इसके रोगकी चिकित्सा कैसे होगी ?

एक प्राध्यापकने कहा—'मैं साम्यवादी हूँ। ईश्वर नामकी कोई सत्ता है, यह मुझे स्वीकार नहीं है।'

मैंने उनसे कहा—'आप ईश्वरको चाहते हैं। चाहते हुए भी मानते नहीं, यह बुद्धिमानी तो नहीं है। मनुष्य कोई ऐसा नहीं जो ईश्वरको न चाहता हो। जिसे सब मनुष्य सर्वदा, सब कहीं चाहते हैं, चाहते रहेंगे, वह हो ही नहीं, यह क्या सम्भव है ? यदि प्राणियोंको प्यास लगती है तो भले वे जलके बिना मरुस्थलमें मर जायँ, किन्तु उनकी प्यास इसका प्रमाण है या नहीं कि पानीकी सत्ता है ?'

'मैं ईश्वरको नहीं चाहता', उन भाईने कहा।

मेरे अनुरोधपर वे तख्तेपर चाक मिट्टीसे कुछ लिखनेको उद्यत हो गये। मैंने उनसे कहा—'आपके वशमें हो तो आप कब कहाँ मरना चाहते हैं, लिख दें।'

उन्होंने लिखा—'मैं कभी कहीं मरना नहीं चाहूँगा, यदि यह मेरे वशमें हो।'

मैंने कहा—'इसका अर्थ है कि आप अखण्ड सत्ता—सत् चाहते हैं। सत् अर्थात् नित्य अस्तित्व।'

यह उनको स्वीकार था। आपको भी स्वीकार होगा। मैंने दूसरी बात लिखनेको कही—'आपके वशमें हो तो आप कब, किस विषयमें मूर्ख रहना पसन्द करेंगे ?'

'कभी किसी विषयमें थोड़ा भी नहीं।' उन्होंने लिखा।

'इसका अर्थ है कि आप अखण्ड ज्ञान जिसे संस्कृतमें चित् कहते हैं, चाहते हैं।' मेरा यह भाष्य भी उन्होंने स्वीकार कर लिया।

तीसरा प्रश्न था—'आप कब, किससे, कितना, कैसे दुःख पाना चाहते हैं।'

'कभी, किसीसे भी, कहीं भी नहीं।' यही उन्हें लिखना था।

मैंने कहा—'अर्थात् आप अखण्ड आनन्द चाहते हैं।'

'जी !' कहते हुए वे स्वयं संकुचित हो गये। मैंने कहा—'अब आप नीचे लिख दें—कि आप अखण्ड सत्+चित्+आनन्द—सच्चिदानन्द। इस सच्चिदानन्दको जो अखण्ड है, नित्य है, आप ईश्वर न कहकर कोई और नाम देना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु वह नामान्तर ही होगा।

हम हैं और हम सच्चिदानन्दको चाहते हैं। इस चाहकी पूर्तिके साधन ही देनेको संसारके सब धर्म प्रवृत्त हुए हैं। हम क्या हैं—इस विवेचन-के लिए ही सब दर्शन-शास्त्र हैं। इतना सब होनेपर भी धर्म एवं दर्शनने विवाद ही बढ़ाया है। सर्व-सामान्यके लिए समस्या जैसीकी वैसी है।

इस उलझनका कारण यह है कि हम समस्याको बुद्धिसे, ग्रन्थोंके सहारे समझना चाहते हैं। जबकि जीवनका अनुभव इसके सर्वथा विपरीत है। गन्ध, रस, रंग आदिके सम्बन्धमें दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन क्या कम हैं ? लेकिन सर्व-सामान्यमें कितने लोग इन विषयोंका शास्त्रीय ज्ञान जानना चाहते हैं ? कोई काम उन भारी भरकम पुस्तकोंको पढ़े बिना आप-का रुका है ? पुष्पोंकी सुरभि, विभिन्न भोज्य पदार्थ और रंग या संगीत हम सबको सुखी करते हैं। हमारा जीवन इनके विषयके सामान्य ज्ञानसे—भले शास्त्रीय विवेचकोंको वह अज्ञान ही लगे, भली प्रकार चलता है। इसी प्रकार हम व्यावहारिक रूपसे अपने सामान्य ज्ञानके अनुसार अन्तर्यामीके उन्मुख होना चाहें तो यह उलझन मिट जाय।

हमारे पास ईश्वरने शरीर, हृदय (भावना) और बुद्धि दी है। इन तीनोंको अथवा तीनोंमें-से किसी एकको भी आप ईमानदारीसे उस सच्चिदा-नन्दको पानेके लिए लगाना चाहोगे, तो वह मिल जायगा। तीनोंको लगाया जा सके तो सर्वोत्तम। एकको भी पूर्णतः लगाया जा सके तो सफलता असन्दिग्ध है।

शरीरको लगानेका अर्थ है—भगवत्पूजा, कीर्तन, नाम-जप, निष्काम-सेवा। मन लगानेका अर्थ है कि भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीलाका चिन्तन। भगवान्‌के सम्बन्धमें भावना करना। बुद्धि लगानेका अर्थ है भगवत्तत्वका विचार। भगवान् क्या हैं, कैसे हैं आदि सोचना।

इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं कि आप कितना ठीक करते हो, कितना ठीक चिन्तन करते हो अथवा कितना परिपूर्ण तत्वविवेक करते हो। यह तो पहिले ही कह आये हैं कि संसारका हमारा सब व्यवहार कामचलाऊ है। दूधमें, दहीमें, फलोंमें कौन-कौनसे तत्व हैं, यह बिना जाने भी हमारा काम जैसा चलता है, जानने वाले भी कुछ भिन्न ढंगसे नहीं उपयोग करते। जानकारोंकी जानकारी भी अधूरी ही है। अतः आप इस जानकारी-के विषयमें बहुत न उलझें तो भी कुछ बिगड़ेगा नहीं। बिगड़ता तब है जब आप स्वार्थ-राग-द्वेष आदिके वश होकर कुछ करते, भावना करते या विवेक करने लगते हो। शरीरका, नामका, स्वजनोंका मोह छोड़कर केवल भगवत्सेवाके लिए आपको जो उचित लगे करने लगो, भगवान्‌के सम्बन्धमें ही मनमें भावना उठे, भगवान्‌के सम्बन्धमें जो सोच सके, बुद्धि सोचे तो मार्ग स्वयं प्रकाशित होता जायगा और पूर्णता तक पहुँचा देगा।

एक बात व्यावहारिक सत्य है कि मनमें जो आता है—वह स्थूल जगतमें प्रत्यक्ष भी आ सकता है। दार्शनिक और मनोवैज्ञानिकमें दोनों दृष्टियोंसे यह तथ्य है। अतः डरिये मत कि भगवान्‌के सम्बन्धमें जो भावना-कल्पना आप करते हैं, भावना पुष्ट होनेपर वह प्रत्यक्ष हो गया तो भी वह मानसिक—काल्पनिक ही होगा। यह सब जगत दार्शनिक दृष्टिसे मानसिक-काल्पनिक ही है। इसके कर्म-बन्ध भी इसी कोटिके हैं। अतः भगवत्सम्बन्धी कल्पना इस कर्म-बन्धको समाप्त करनेमें पूर्ण समर्थ है।

जो मनो-जगतमें आता है, वह भावना पुष्ट होनेपर प्रत्यक्ष भी हो सकता है, यह बात समझमें आती है तो यह भी समझमें आनी चाहिए कि जो क्षण-दो-क्षणके लिए प्रत्यक्ष हो सकता है, वह कुछ घण्टों, दिनों या वर्षों-के लिए भी प्रत्यक्ष रह सकता है। जब अनेक भावुक भक्त समान भावना वाले एक साथ पृथ्वीपर कभी एकत्र हो जाते हैं, उनकी परिपक्व भावना उस सच्चिदानन्द परमतत्वको उनके मध्य कुछ अधिक कालतक मूर्तिमान रखती है। इसी परमतत्वके मूर्तिमान रहनेका नाम अवतार है।

'भगवान् वासुदेव'के प्रारम्भिक अध्यायोंमें मैंने विस्तारसे भगवान्के सगुणरूप एवं दिव्यधामोंके सम्बन्धमें लिखा है। यहाँ इतना विवेचन पर्याप्त है कि हम आप केवल यह मानते ही हैं कि हम स्वतन्त्र रूपसे भावनाएँ करते हैं। वस्तुत: मन एक रेडियोयन्त्रकी भाँति है। वह अनन्त भावस्तरोंसे तरंगें ग्रहण करता रहता है। हम जब भगवान्के सम्बन्धमें भावना करते हैं, तब हमारा मन सीधे भगवान्के किसी धामसे सम्बन्धित भावस्तरकी तरंगोंको ग्रहण कर रहा होता है। अत: जब भावना पुष्ट होती है, उस भगवद्धामका भगवद्रूप मूर्तिमान हो जाता है। यह व्यक्तिके लिए भगवान्का आविर्भाव है। जब एक समूहके लोगोंकी भावना अधिक समय तक भगवान्के किसी रूपको जगतमें प्रत्यक्ष रखनेमें समर्थ होती है तब भगवान्का अवतार होता है।

जो लोग ज्योतिषपर विश्वास करते हैं और ज्योतिषका कुछ ज्ञान रखते हैं, वे जानते हैं कि जगतमें घटनाएँ अकस्मात् नहीं हुआ करतीं। ग्रह, नक्षत्र, मुहूर्तके ठीक ज्ञानसे जैसे एक व्यक्तिका सम्पूर्ण जीवन ज्ञात किया जा सकता है वैसे ही जगतका जीवन भी व्यवस्थित है। उसका भी बहुत कुछ आभास पाया जा सकता है। भले अपने ज्ञानकी त्रुटिसे जगतका घटनाक्रम हम पूरा न जान सकें, किन्तु वह सुनिश्चित है, यह तथ्य तो है ही। अत: कब, कहाँ, किस स्वभावके लोग अधिक उत्पन्न होंगे, यह भी सुनिश्चित है। इसलिए यह भी निश्चित है कि धरापर कब, कहाँ भगवान्का कौन-सा अवतार होगा।

इतनी व्यवस्था जड़ जगतमें स्वत: सम्भव नहीं है। इस व्यवस्थाका निर्माता संचालक है। अब तो वैज्ञानिकोंका भी एक बड़ा वर्ग मानने लगा है कि पृथ्वीपर चेतनाका विकास जड़ द्रव्योंसे नहीं हुआ। चेतन बीज यहाँ किसी अन्य ग्रहसे आया, लेकिन अन्य ग्रहमें कहाँसे ? जगतका मूल चेतन है, अन्तत: इसे मानना ही पड़ेगा। वह चेतन सगुण है जगतके सञ्चालक, नियन्ताके रूपमें। वह निर्गुण है तब जब जगतकी सत्ता ही नहीं है। अत: वह सगुण-निर्गुण नियन्ता उभय रूप है।

जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका परम सञ्चालक, परात्पर प्रभु है, वह सृष्टिके नियमोंमें ही आबद्ध तो नहीं होगा। अत: उसका अवतार धरापर सदा सुनिश्चित कालमें ही हो, ऐसा सम्भव नहीं है। कालमें तथा कालके नियन्त्रणमें परमात्मा नहीं है। काल उसके भीतर, उसके नियन्त्रणमें है।

अत: जहाँ कलावतार, अंशावतार, आवेशावतार आदिके अवतारके समय निश्चित हैं, पूर्णावतारका समय निश्चित नहीं है। केवल यह कहा जाता है कि वे करुणावरुणालय प्रत्येक कल्पमें एक बार धरापर अवश्य अवतीर्ण होते हैं। यह इसलिए कि उनके रूप, गुण, लीलाका चिन्तन मनुष्यको प्राप्त हो, जो मनुष्यको उन तक पहुँचानेका सुगम साधन है।

पूर्णावतारोंमें मुख्य दो माने गये हैं, १—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, २—लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण। इनमें-से मर्यादापुरुषोत्तमका अवतार मानव-के आचार, धर्म, शक्ति, शीलकी मर्यादाको प्रकट करनेके लिए है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य—इन छ: की पूर्णताका नाम भग है, ये जिसमें परिपूर्ण हों, वह भगवान्। इन छ: की मानवमें कितनी पूर्णता शक्य है, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम इसकी मर्यादा—सीमाका जगतको साक्षात्कार करानेको अवतीर्ण हुए। उनके परम पावन चरितमें पद-पदपर इस मर्यादा-का प्रत्यक्ष होता है।

सद्‌गुणोंकी सीमा-पूर्णता परमात्मामें ही सम्भव है। मानव उस सीमाको लक्ष्य बनाकर, उसे आदर्श मानकर प्राप्त करने चलता है, तब जितना-जितना वह गुण उसमें आता है, उतनी ही दिव्यता आती है और उसकी पूर्णता उसे परमात्मा तक पहुँचा देती है। इस प्रकार प्रत्येक सद्‌गुण यदि निष्ठापूर्वक अपना लिया जाय, मनुष्यको परमात्मा तक पहुँचानेमें समर्थ है। इन सद्‌गुणोंकी सीमा-मर्यादा क्या? कहाँ तक ये मानव-जीवनमें आ सकते हैं, यह मर्यादा पुरुषोत्तमका जीवन व्यक्त करता है। इसीके लिए उनका अवतार है।

यहाँ एक अत्यावश्यक बात—श्रीरामके सद्‌गुण आप अपने जीवनमें किञ्चित् भी ला सकें तो धन्य हैं आप, किन्तु यह न भी कर सकें तो भी आपका कल्याण राम नामके जपसे, श्रीरामचरितके पठन, श्रवण, चिन्तनसे हो जायगा, इसमें सन्देहको स्थान नहीं है।

शुद्धान्त:करणको परमात्माकी प्राप्ति कराने वाले साधन हैं योग, ज्ञान आदि। स्वार्थहीन होकर सेवा—निष्काम कर्मयोग है। यम-नियम सम्पन्न-को योगके द्वारा निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा, समाधान) युक्त व्यक्ति विवेक, वैराग्य एवं मुमुक्षा होनेपर ज्ञानका अधिकारी होता है; किन्तु समल अन्त:करणको पवित्र करने वाली तो भगवती भक्ति ही हैं। पतित-पावन न निर्गुण निराकार ब्रह्म है,

न कोई अन्य। पतितपावन भगवान् हैं--सगुण, साकार भगवान्। अतः उनकी भक्तिके सब अधिकारी हैं। सब अर्थात् लिंगभेद, वर्णभेद ही नहीं आचारभेदके बिना सब। अतः मर्यादापुरुषोत्तमका नाम-जप, चरित-पठन, श्रवण, चिन्तन सबके लिए परम कल्याणका कारण है।

इसे थोड़ा और स्पष्ट करना आवश्यक है। परम सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र, परम दानी महाराज शिवि, परम दयालु महाराज रन्तिदेव—इनके स्मरण, चिन्तनसे हृदय पवित्र होता है, किन्तु यदि आपके हृदयमें सत्य, दान शीलता, परोपकारकी वृत्ति नहीं आती तो इनका नाम जप, इनके चरितको पढ़नेसे ही कुछ भला नहीं होने वाला है। लेकिन श्रीरामका नाम एवं चरित इसी प्रकारका नहीं है। राम-नाम, श्रीरामका रूप, गुण, लीला स्मरणमात्रसे पवित्र करके उनको प्राप्त कराने वाली है।

बात यह है कि मनुष्यका या पदार्थका नाम कल्पित होता है। उत्पन्न होनेके बाद बच्चेका नामकरण होता है। जिसको हम जल कहते हैं, कोई उसे आब या वाटर कहता है, किन्तु भगवान्के नाम, रूप, लीला, गुण ऐसे नहीं हैं। जैसे मिश्रीकी मिठास और मिश्री पदार्थ, दो नहीं हैं, वैसे ही भगवान्के नाम, रूप, लीलामें भेद नहीं है। अतः जिह्वापर भगवन्नाम आवे, भगवानका चरित सुनें-पढ़ें, मनमें आवे, उनके रूपका चिन्तन हो--इन प्रत्येक रूपोंमें श्रीभगवान् ही हमारे मुखमें, कानमें या हृदयमें आते हैं और भगवान् पतितपावन हैं। इसलिए उनके दिव्यगुण जीवनमें न भी आवें तो भी उनके नाम, चरित-पठन, श्रवण तथा उनके रूपका ध्यान मनुष्यके लिए परम कल्याणकारी है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीका चरित आदर्श मानव, आदर्श शासक आदि मानकर जो पढ़ते, सुनते, लिखते हैं, उनका भी कल्याण तो होता ही है; किन्तु उन सर्वश्वरेश्वर परात्पर परम ब्रह्ममें भगवद्बुद्धि रखकर निष्ठापूर्वक उनके नामका जप, उनका ध्यान, उनके चरितका श्रवण, पठन, चिन्तन हृदयमें उनके प्रति भक्तिको जागृत करता है। यह भक्ति परम दुर्लभ है। मानव-जीवनकी परम सार्थकता भक्तिकी उपलब्धिमें है। अतः भगवच्चरितका पठन, श्रवण इस दृष्टिसे किया जाना ही सर्वश्रेष्ठ है।

साकेत धाम

हमारे आपके सामने यह संसार है। इन्द्रियोंकी शक्तिके सहारे हम इसे जिस रूपमें देख रहे हैं, उसका विवेचन करने चलें तो दो मार्ग हैं—एक अन्तर्मुख होकर इन्द्रियाँ कैसे देखती हैं, उन्हें शक्ति कहाँसे कैसे मिलती है, यह मार्ग और दूसरा यन्त्रोंकी सहायता लेकर बाहरी तत्वोंका निरीक्षण, परीक्षण करनेका मार्ग।

बाहरी परीक्षणका मार्ग विज्ञानका है। इसमें साधन चाहे जितने निर्मित हों, सिद्धान्त रूपसे अन्तिम निष्कर्ष निकल चुका है। वह यह कि जगत शक्तिका पुञ्जीभाव है। वैज्ञानिक अब संसारका मूल द्रव्य शक्ति (मैटर एनर्जीको) जानते मानते हैं। परमाणु टूटनेपर यह शक्ति ही रहती है। यही शक्ति घनीभूत होकर पदार्थ बनी है।

शक्तिका यह घनीभाव—मूर्च्छित रूप तमोगुण है। शक्तिका क्रियाशीलरूप रजोगुण है। आप जानते हैं कि एक ही शक्ति गति, उष्णता, प्रकाश ही नहीं—रूप, रंग आदि भी बनती है। इसे टेलीविजनने सिद्ध कर दिया है और वैज्ञानिक रस, गन्ध, स्पर्शको भी उसी शक्तिका रूप मानने लगे हैं। भले अभी यन्त्र इन रूपोंमें शक्तिको परावर्तित न कर सकता हो। यह गतिका विलास है सब, जो हम देखते हैं। इसी शक्तिका शान्तरूप—वह रूप जो मूर्च्छाहीन है, किन्तु शान्त है। सत्त्वगुण है। सब सद्गुण तथा शान्तिजन्य सुख इसीके रूप हैं। इस प्रकार यह शक्ति तमोगुण, रजोगुण, सत्वगुणरूपा—त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। भले वैज्ञानिक इस सांख्यशास्त्रकी शब्दावलीका उपयोग न करें, उनका विवेचन यही कहता है।

जड़ यन्त्र और इन्द्रियाँ भी जड़का माध्यम बनाकर चेतनसे तो सम्पर्क कर नहीं सकतीं। जड़के द्वारा जड़को ही जाना जा सकता है। अतः यह जड़ाद्वैत ही वैज्ञानिक विवेचनकी सीमा है। लेकिन कठिनाई यह है कि विवेचन करने वाला स्वयं चेतन है। अतः यह सीमा उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकती। आज या आगे उसे कुछ प्रश्न अवश्य तंग करेंगे। वे ये—जड़

प्रकृति स्वयं सक्रिय नहीं हो सकती । जब कभी भी शक्ति निष्क्रिय—मूर्च्छित थी—प्रलयकाल था, वह सक्रिय कैसे हो गयी ? यह सम्भव नहीं है कि गति सदा चलती रहे । गतिशीलतामें शक्तिका व्यय होता है । उसकी समाप्ति श्रान्तिमें है । तब क्या सृष्टि कभी सदाको समाप्त हो जायगी ? शक्ति स्वयं अपना अधिष्ठान—आधार नहीं हो सकती । इसका अधिष्ठान क्या है ? यहाँ आकर विज्ञान दर्शन बन जाता है । यहाँ यन्त्रोंको छोड़कर चिन्तनका-अन्तर्मुख होनेका पथ पकड़ना पड़ता है ।

चिन्तनके—अन्तर्मुख चिन्तनके क्षेत्रकी भी सीमा है यदि हम केवल बुद्धिके द्वारा चिन्तनका पथ लें तो इसकी सीमाका ही नाम बौद्धदर्शन—शून्यवाद है । इसमें आप चाहे अन्तर्वादी हों कि पदार्थका रूप पहिले भीतर मनमें बनता है, तब वह बाहर दीखता है, चाहे बाह्यवादी हों कि पदार्थ बाहर होता है तब भीतर दीखता है,चाहे बाह्यभ्यन्तरवादी हों कि पदार्थकी बाह्यसत्ता और ज्ञानके आन्तरिक संस्कार दोनोंकी अपेक्षा है जानकारीके लिए, किन्तुं तीनोंका अन्तिम परिणाम है शून्यवाद । अर्थात् आपको अन्तिम तत्वके रूपमें क्षणिक वृत्तियोंका प्रवाह मिलेगा जो बराबर शून्यमें लीन होती जारही है । इस वृत्ति प्रवाहका बन्द होजाना—निर्वाण है ।

लेकिन जन्मसे अबतक आपका 'मैं' एक रस अपरिवर्तनीय है । इसे वृत्तिप्रवाह मानलेनेका तो कोई कारण नहीं है । यह सुषुप्तिमें बना रहता है । समाधिमें नहीं रहता तो समाधि प्राप्त किसे होती है ? अतः इस एकरस निर्विकारको शून्य कहकर अस्वीकार भी नहीं किया जासकता ।

इस बाह्य तथा आन्तरिक दोनों अन्वेषणोंके मूलमें ही मूल है । यह बात एक ओरसे विस्मृत करदी गयी कि सब विवेचन बुद्धिके द्वारा होंगे और नियम यह है कि कोई कार्य अपने कारणको जान नहीं सकता । पिता कौन ? पुत्र इसपर श्रद्धा कर सकता है,इसे जान नहीं सकता । बुद्धिके द्वारा बुद्धिके कारण तत्वका ज्ञान तब कैसे सम्भव है । पुत्र है, अतः उसका पिता भी कोई होगा—यह अनुमान ही किया जा सकता है । बुद्धि है, उसमें इतनी चेतना—प्रकाश है तो उसका कारण चेतन—अनन्त प्रकाश भी होना ही चाहिए ।

उस कारण चेतनको जाननेके लिए शास्त्रका आश्रय लेनेको हम विवश हैं । आस्तिक भारतीय मतोंका परम प्रमाण शब्द है । शब्द अर्थात्

श्रुति और हम देखते हैं कि हम गर्व चाहे जितना करलें, हमारे समस्त ज्ञानका—लौकिक जानकारीका भी आधार शब्द ही है। किसी-न-किसीसे सुनकर ही हमें जानकारी हुई अथवा जानकारीका मूल सूत्र मिला।

शब्द—श्रुतिका कहना है कि मूलतत्व अनिर्वचनीय है। इतना ही नहीं, वह अवाङ्मनसगोचर है। उसे बोलकर ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। मनसे सोचा भी नहीं जासकता, किन्तु उसका अनुभव होता है। वह अनुभव स्वरूप है। यहीं आकर उसके अनुभव करनेके मार्गोंका प्रश्न उठता है। अनुभवका माध्यम है हृदय और हृदयकी स्थिति सबकी समान नहीं। फलत: अधिकारभेदसे साधनभेद और साधनभेदसे दर्शनोंका भेद उत्पन्न हुआ। दर्शनका तात्पर्य किसी-न-किसी साधनमें निष्ठाका समर्थन ही है।

एक बात यहाँ स्पष्ट करदें कि चेतनकी परिभाषा विज्ञानकी और भारतीय दर्शनकी एक नहीं है। विज्ञान सेन्द्रियवानको चेतन कहता है। अर्थात् जो छू सके, देख सके, सूंघ सके, सुन सके, सोच सके वह चेतन। लेकिन भारतीय दर्शन इस इन्द्रियज अथवा मानसिक अनुभूतिको चेतना कहता है। गीताने इस चेतनको क्षेत्रके भीतर ही माना है। भारतीय दर्शन चेतनको निर्विकार—एकरस मानता है। जो परिवर्तित हो—विकारी हो, वह जड़।

अब अपरिवर्तनशील निर्विकार चेतनको लें तो आस्तिक शास्त्र उसे सर्वव्यापक कहते हैं। जो सर्वव्यापक होगा, उसमें देश, काल कल्पित होंगे या वह देश, कालमें होगा? सीधे शब्दोंमें ईश्वरमें पूर्व-पश्चिमादि कल्पित होंगे या ईश्वरको पूर्व-पश्चिमका पता लगेगा? सर्वव्यापकका अर्थ ही है कि सर्व केवल प्रतीति है। जैसे आकाशकी दृष्टिसे पृथ्वी पर्वतादिकी सत्ता ही नहीं, वैसे ही सर्वव्यापक चेतन अर्थात् अद्वितीय एकरस चेतन। ठसाठस भरा एक अनिर्वचनीय तत्व और तब उसे केवल 'अहं' कहा जा सकता है। वह 'मैंसे' भिन्न हो नहीं सकता, क्योंकि अपनी सत्ताको तो स्वीकार करना ही पड़ेगा।

यह शास्त्रके आधारपर चिन्तनका एक मार्ग है। यह है ज्ञान-योग। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि ज्ञानका मार्ग अत्यन्त अनासक्त—सर्वथा वीतराग एवं व्यवहारमें भी विरक्तको लिये—निवृत्ति-निरतका मार्ग है। क्योंकि बुद्धिका स्वभाव है अपनी मानसिक त्रुटियों—दुर्बलताओंका समर्थन

करना। अतएव यदि व्यक्ति व्यवहारमें, प्रवृत्तिमें लगा है तो चाहे जितना ईमानदार हो, बुद्धिका मार्ग उसे पथभ्रष्ट कर दे सकता हैं। वह भ्रान्त हो सकता है।

शास्त्रने एक सत्य प्रतिपादित किया है। वह यह कि 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। जो हमारे देहमें है, वही समष्टि ब्रह्माण्डमें है। हमारे शरीरमें जैसे मस्तिष्क है, बुद्धि है, विचार शक्ति है, वैसे ही भावना शक्ति भी है और वह बुद्धिसे दुर्बल नहीं है। माता, पत्नी, बहिन, पुत्रीका व्यवहार भावना ही तो है। यह भावना ही है जो जब प्रबल होकर सिद्धि बनती है तो जगतके स्थूल पदार्थोंको भी परिवर्तित कर देती है! प्रबल संकल्प—दृढ़ मनोबल संसारमें परिवर्तन करनेमें समर्थ है। इस शक्तिकी उपेक्षा करके जगतके मूलतत्वको समझनेकी आशा कैसे की जासकती है?

सूक्ष्मदर्शिनी सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा जैसे अद्वितीय चेतन तत्वका निश्चय होता है, भावप्रवण हृदयके द्वारा वैसे ही सर्वेश्वरेश्वरका ग्रहण भी होता है। राग, द्वेष रहित, पूर्वाग्रह शून्य बुद्धि देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, आत्मतत्वका निश्चय करती है। यह ब्रह्माकार वृत्ति अर्थात् आत्माके ब्रह्मसे एकत्वका निश्चय आत्मज्ञान है। जब एकही तत्व है तो उसमें राग, द्वेष, काम, क्रोधादिको अवकाश ही कहाँ।

यदि अन्तःकरण शुद्ध न हो, वासनावान हो तो यही तत्वबोध विकृत होकर सुझाता है—'कामादि अन्तःकरणके धर्म हैं। अन्तःकरण एवं इन्द्रियाँ बाधित हैं—प्रतीतिमात्र हैं। इनके कैसे भी रहने एवं व्यवहार करनेसे आत्माका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।'

यहाँ यह बात भूल गयी है कि जन्म-मरण अन्तःकरणका ही होता है। सुख-दुःख अन्तःकरणको ही होते हैं। जन्म-मरणकी निवृत्ति, दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति अन्तःकरणसे ही होती है। साधनमात्र, आध्यात्मिक शास्त्रमात्र व्यर्थ हो जायगा, यदि अंतःकरणकी स्थितिकी सर्वथा उपेक्षा करदी जाय,

यह बात भी भूल गयी है कि दृढ़बोध मन-इन्द्रियोंको प्रभावित किये बिना रह नहीं सकता। किसी आहारमें विष पड़ा है, यह ज्ञान उस आहारके स्वाद, गन्धके आकर्षक होनेपर भी उससे अरुचि उत्पन्न करेगा ही।

यह ठीक है कि निर्विशेषज्ञान प्रवृत्तिका हेतु नहीं होता, किन्तु प्रवृत्तिमें राग-द्वेषसे तटस्थ तो वह करेगा ही, और प्रवृत्ति ही राग-द्वेष मूलक है। अतः आदि-शंकराचार्यजीने अपने ग्रन्थोंमें जीवन-निर्वाहके लिए भिक्षाटनमात्रकी प्रवृत्तिको भी विक्षेप ही माना है।

जीवनमें और जगतमें वैविध्य है। यह वैविध्य अनादि अविद्यासे है, यह ठीक है, किन्तु अविद्यासे—अज्ञानसे भेदकी तो उत्पत्ति कहीं देखी नहीं जाती।

दूसरी बात—जैसे 'मैं' की अनुभूति निर्बाध है, इसे अस्वीकार नहीं किया जासकता ऐसे ही जगतके सञ्चालनके मूलमें कोई शक्ति है—सगुण, सक्रिय शक्ति, इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रायः प्रत्येक मनुष्यको विपत्तिके समय अनेक बार उस अदृश्य शक्तिकी आकस्मिक सहायताका अनुभव होता है। अनन्तकालमें असंख्य लोगोंको जो सहायता देता आरहा है, उसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है। भले वह बुद्धिग्राह्य न हो।

हमारा भाषा-शास्त्र—व्याकरणका दर्शन मानता है और यह प्रत्यक्ष सत्य है कि शब्द-ज्ञान आनुपूर्वी ही होता है। दूसरेसे सुनकर ही हमें शब्द-ज्ञान होता है। सृष्टिकी आदिमें आदिपुरुषके हृदयमें जो भाषा—शब्द एवं उसके अर्थका आविर्भाव एक साथ करता है, वह निर्गुण तो नहीं हो सकता।

निर्गुणतत्वको मानने वाले दार्शनिकोंने भी जिस स्तरपर जगतको माना है, उस स्तरपर जगतके सञ्चालक ईश्वरको भी माना है। जहाँ जगत ही नहीं है, वहाँ जगतके सञ्चालकका भी बाध वे मानें तो इससे किसीको क्यों बाधा पड़े।

बात यह है कि सगुणतत्व बुद्धिगम्य नहीं है। वह केवल भावगम्य है। अधिदेवका साक्षात्कार भावके द्वारा ही सम्भव है। अतः सगुणके साक्षात्कारका साधन केवल भाव अर्थात् भक्ति है और इसका मूल है श्रद्धा। सगुण श्रद्धैकगम्य है।

अध्यात्म और अधिदेव दो तत्व नहीं हैं। अतः परमतत्वको सगुण,

निर्गुण उभयरूप मानना ही पड़ेगा। उसके ये दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं—अचिन्त्य हैं। इनमें भेदकी प्रतीति इसलिए होती है, क्योंकि यह अधिभूत—प्रत्यक्ष जगत बीचमें आगया है। जगतमें हमारी आसक्ति, देहमें ममत्व ही हमें परमतत्वसे पृथक किये है। देहासक्तिका समूलोन्मूलन होनेपर परमतत्वका जब अनुभव हो जाता है, सगुण, निर्गुणकी समस्या रह नहीं जाती। यह अधिभूत अर्थात् जगत जहाँ हमको अपनी ओर आकृष्ट करके परमतत्वसे पृथक किये है, यही परमतत्वको समझाने वाला भी है। बालक यदि जल या दर्पणमें पड़ी छायामें ही आसक्त न हो जाय तो उस छायासे ही जिसकी छाया है, उसकी खोज भी तो सम्भव है।

सभी दर्शन जगतकी विवेचनासे ही चलते हैं। जगतका यह द्वैविध्य—यह नहीं कहता कि यह किसीका प्रतिविम्ब है ? यदि परमतत्व सच्चिदानन्द न हो—जड़प्रकृतिमें सत्ता, प्रकाश, सुख कहाँसे आवेगा। वही सत् यहाँ सत्ता बनकर तमोगुणके रूपमें, चित्क्रिया बनकर रजोगुणके रूपमें और आनन्द सत्वगुण बनकर विषय सुखके रूपमें यहाँ प्रतिभासित है।

तब ये विविध नाम-रूप ? यह भेद भी अकारण एवं निर्मूल नहीं हैं। भेदका भी आधार है—कारण है। अवश्य यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि छायामें बहुत अधिक विकृति होती है। प्रतिबिम्बमें बिम्बसे बहुत भिन्नता हो सकती है। जलकी चंचलता, रंग प्रतिबिम्बको रंगीन, खण्डित, चञ्चल, अनेक रूप दिखा सकती है।

सगुणतत्व श्रद्धैकगम्य है। अतः तर्कसे इसे समझनेका प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। शास्त्रोंमें जो कुछ आया है, उसपर श्रद्धा ही करना एकमात्र उपाय है।

भगवान्‌ने अनेक स्थानोंपर कहा है और सभी उपासना सम्प्रदाय मानते हैं कि भगवानके सभी रूप नित्य हैं। इसका अर्थ है कि उनके धाम हैं। किसी भी श्रद्धा समन्वित भावकी परिपुष्टतासे भगवद्दर्शन हो सकता है, साथ ही भावनाके अनुरूप भगवद्दर्शन होता है। इसका अर्थ है कि भावना ही मनमें उतनी आ सकती हैं, जितने भगवद्रूप पहिलेसे हैं। पहिले भी कह आये हैं कि भावनाके स्तर हैं। मन केवल उन स्तरोंसे भाव तरंगें ग्रहण करता है। ये भाव स्तर भगवद्धामोंके आश्रित हैं।

यहीं हमारी आपकी कठिनाई है, कितने भगवद्धाम ? वे कहाँ हैं ? कैसे हैं ? इन प्रश्नोंका कारण यह है कि हम देश, काल, संख्या परिणामके पुत्र इनसे बाहर सोच ही नहीं पाते; किन्तु देश, काल, संख्या, परिणामसे जो सीमित नहीं होते, जिनमें देश, कालादि स्वयं कल्पित हैं, उनको कहाँ, कितने आदि कैसे बताया जा सकता है ?

मुझे उस अनिर्वचनीयका वर्णन करना ही हो तो कहना पड़ेगा कि भगवान्‌का प्रत्येक सगुण, साकार स्वरूप और उनका धाम हमारे इस सम्पूर्ण जगतमें—अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंमें, इसके अणु-अणुमें सर्वत्र, सब समय व्यापक है। इसीलिए कभी—किसी कालमें, कहीं—किसी स्थानपर किसी भी अधिकारी भक्तके सम्मुख भगवान्‌का कोई रूप या उसका पूरा धाम प्रकट हो सकता है। वही उसी समय उपस्थित दूसरे समस्त लोगोंके लिए वह अदृश्य भी रह सकता है।

उदाहरणके लिए एक बहुत बड़ी भीड़में किसी भक्तको—केवल उसीको भगवान् तथा उनका पूरा धाम, उनके पार्षदादिका दर्शन सम्भव है। अब उस भक्तको तो भगवान्, भगवद्धाम, तथा संसारके वहाँ उपस्थित लोग भी दीख रहे हैं। वह भगवान्‌के श्रीअंगको स्पर्श कर सकता है। उसकी दृष्टि उस अंगके पीछेके लोगोंको नहीं देखती, किन्तु जो दूसरे लोग हैं, उन्हें कुछ नहीं दीखता। वे चाहें तो भी कुछ स्पर्श नहीं कर सकते। उनके लिए वे पुष्पादि पदार्थ अदृश्य होते दीखेंगे जो वह भक्त भगवान् या उनके पार्षदोंको अर्पित कर देगा। साथ ही श्री भगवान् या उनके सेवक जो पुष्पादि उस भक्तको देंगे, वे पदार्थ दूसरे देख सकेंगे। यह सब कैसे हो रहा है—इस अनिर्वचनीय तथ्य में आपको बुद्धि खपानी हो तो आप प्रयत्न कर देखें।

हमारे आपके मनमें कितनी भावनाएँ आती हैं ? कितनी आ सकती हैं ? उनकी विकृतियोंको दूर कर दिया जाय तो कितनी रहेंगी ? यह गणना मैं समर्थ मनीषियोंपर छोड़ता हूँ। मेरे वशका यह काम नहीं। मैं इतना जानता हूँ कि मूल-अविकृत भावनामें जितनी, परमतत्वके उतने सगुण-साकार शाश्वत रूप। उतने नित्यधाम।

ये सब रूप, सब धाम एकके ही—अतः परस्पर अभिन्न सर्वथा समान ही नहीं—एक ही। यही सगुण ही निर्गुण भी। इनमें-से प्रत्येक अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक—परात्पर पूर्णतत्व।

ब्रह्माण्ड अनन्त हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डके ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता, विष्णु—पालनकर्ता, रुद्र—संहारकर्ता हैं। अत: किसी भी आराधकके जो आराध्य हैं, वे भले नारायण या शिव हों, अनन्तकोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके उद्‌भव उनके सञ्चालक हैं।

साकेत अर्थात् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका नित्यधाम। मानवके मनको धर्मकी, ज्ञानकी, ऐश्वर्यकी, सदाचारकी मर्यादा प्रदान करने वाली भावनाओंका परमोद्‌गम—वह नित्य दिव्यधाम अचिन्त्य है, अतर्क्य है। चिन्मय कहकर भी कुछ समझाया नहीं जा सकता। चिन्मय कहनेका तात्पर्य केवल यह कि वहाँ कुछ पाञ्चभौतिक नहीं है। जो कुछ है—वह सब नित्य, ज्ञान एवं आनन्दका घनीभाव है।

वह धाम जो मर्यादाका मूलोद्‌गम है—जिसका प्रतिबिम्ब प्रकृतिमें आकर विकृत होकर भी धर्मके, मर्यादाके रूपमें अपार प्रतिष्ठा पाता है, उसका वर्णन करना कैसे सम्भव है।

अयोध्या

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तेते मोक्षदायिकाः ॥

अयोध्याका प्रथम नाम आता है सात मोक्षदायिनी पुरियोंमें। गोस्वामी तुलसीदाजीका 'रामचरितमानस' घोषणा करता है—

कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई।
राम परायन सो परि होई॥ रा०च०मा० ७.६९.६

इसका अर्थ है कि जिसे अयोध्याका निवास कुछ कालके लिए भी कभी किसी जन्ममें प्राप्त हुआ है, उसे श्रीरामकी भक्ति अवश्य मिल जाती है और जब भक्ति मिल गयी तो मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जायगी।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंका—विराटपुरुषका हृदय है भारत-भूमि और भारतका भी हृदयस्थल है मथुरा-मण्डल तथा अयोध्या। इनमें भी आप भेद करना चाहो तो ऊर्ध्वभाग या दक्षिणभाग अयोध्या और अधोमाग या वामभाग मथुरा मण्डल। क्योंकि व्यक्तिके शरीरमें आज्ञाचक्रको संतों—शास्त्रोंने काशी माना है। अतः हृदयका ऊपरकी ओरका भाग जो उसके समीप पड़े, अयोध्या होगा।

अन्तर्यामी परमातमा हृषीकेशका स्थान हृदय है और वही नारायण जब प्रत्यक्षरूपसे जगतमें अवतार धारण करते हैं तो भारतवर्षमें अवतार लेते हैं। भारतवर्षमें भी उनके दोनों मुख्यावतार जिनमें वे सम्पूर्ण मानवलीला करते हैं, अयोध्या तथा मथुरा मण्डलमें ही होते हैं।

अयोध्याका अर्थ है जो युद्धके योग्य न हो। अर्थात् जहाँ संघर्ष न

हो। मथुराका अर्थ है—जिसे थुरा—रौंदा जाना योग्य न हो। इस प्रकार दोनों नाम लगभग पर्यायवाची हैं।[1]

'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।' (अथर्ववेद १०.२.३१)

जिसमें आठ चक्र और नवद्वार हैं-(दो नेत्र, दो कान, दो नासाछिद्र, मुख, मलद्वार एवं मूत्र द्वार) यह देवताओंकी नगरी—मानव शरीर ही अयोध्या है।

नेत्रोंके देवता सूर्य, कर्णोंके देवता दिक्, नासिकाके देवता अश्विनी-कुमार, वाणीके देवता अग्नि, रसनाके देवता वरुण, त्वचाके देवता वायु, हाथके देवता इन्द्र, पैरके देवता विष्णु, मलद्वारके देवता निऋति, शिश्नके देवता काम, मनके देवता चन्द्र, बुद्धिके देवता ब्रह्मा, इस प्रकार सभी देवता मानव शरीरमें ही रहते हैं। यह देह अयोध्या है। इसे संघर्षमें—राग-द्वेषमें लगाकर मानव जीवन व्यर्थ कर देना योग्य नहीं है।

आप जानते ही हैं कि व्यक्त जगतमें भारतवर्षके फैजाबाद जिलेमें सरयू-किनारे अयोध्या नगर उतना ही बड़ा नहीं है, जितना आज है! इसका विस्तार बहुत बड़ा है और आज भी इसकी बहिर्वेदी परिक्रमा चौरासीकोस की लुप्त नहीं हुई है।

व्यक्त जगतमें अयोध्या-मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमें-से प्रथम वैष्णवपुरी अयोध्या सदासे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीके भक्तों, संत-महापुरुषोंकी परमप्रिय रही है।

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला एवं धाममें अभेद होता है। अतः अयोध्या सामान्य नगर दीखनेपर भी वैसे ही भगवत्स्वरूप दिव्य भूमि है, जैसे देवमूर्ति धातु, पाषाण अथवा काष्ठकी दीखनेपर भी आराध्य स्वरूप एवं दिव्य प्रभाव वाली होती है।

वैसे तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बिराट् पुरुषके अंगोंमें ही हैं। सर्वव्यापक भगवद्धामसे बाहर जैसी कोई स्थिति है ही नहीं, किन्तु हमारे इस जगतमें—विशेषतः इसके हृदयभूत भारतभूमिमें दिव्य क्षेत्र हैं। यह ऐसा ही है, जैसे

---

१. भगवानके अवतार, सगुणतत्व तथा धामके सम्बन्धमें विस्तारसे चर्चा 'भगवान वासुदेव' के प्रारम्भिक अध्यायोंमें की गयी है।

स्वप्नमें आप विशाल विश्व देखते हो तो उसमें आप स्वयं भी होते हो और आपका नगर, भवन आदि भी होता है। यद्यपि स्वप्नका समूचा संसार आपके मनमें ही है—आप स्वयं हो, किन्तु उसमें भी जो आपका भवन है, आपके स्वजन हैं,आपका शरीर है, उसके प्रति आपका विशेष ममत्व,विशेष आकर्षण रहता ही है।

सम्पूर्ण सृष्टि हिरण्यगर्भ प्रजापतिके मनमें है, यह ठीक होनेपर भी इसमें भगवद्धामोंका सान्निध्य, तादात्म्य विशेष स्थानों पर है। वहाँ इस मायिक जगतमें भगवत्ताका विशेष आविर्भाव है। वे चिन्मय क्षेत्र हैं। अनादि, अनन्त भव-प्रवाहमें बार-बार वहाँ भगवल्लीलाका आविर्भाव होता है।

हमारे आपके चिन्तन, आचरणका सूक्ष्म प्रभाव उन सब पदार्थोंपर पड़ता है, जिनके सम्पर्कमें हम आते हैं—रहते हैं। यह सत्य अब विज्ञानने भी स्वीकार कर लिया है कि जिन स्थानोंपर कोई बहुत शुभ या उग्र कर्म हुआ है, उस कर्मके परमाणु उन स्थानोंमें दीर्घकालतक रहते हैं और वहाँ जाने-रहनेवालेके मनपर उन परमाणुओंका प्रभाव पड़ता है। इसलिए जहाँ कोई संत-सत्पुरुषका निवास रहा है, वह स्थान तीर्थ माना जाता है। तीर्थका अर्थ है पवित्र करने वाला।

जहाँ संत, तपस्वी रहे हों, वह स्थान तीर्थ हो जाता है तो जहाँ स्वयं परमात्माने अवतार लेकर कोई लीला की हो, जहाँ उनके श्रीचरण पड़े हों, ऐसे स्थानका तीर्थत्व तो सदा बना ही रहेगा। इस प्रकारके तीर्थ भारतमें बहुत हैं। इतने अधिक हैं कि सम्पूर्ण भारतभूमि ही तीर्थ है, यह बात शास्त्रोंने कही है। भारतका कण-कण, चप्पा-चप्पा भगवल्लीलासे अथवा भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके स्पर्शसे परिपूत है।

इस तीर्थीभूत भारतभूमिमें सप्तपुरियाँ सामान्य तीर्थ नहीं हैं। ये भगवानके श्रीअंगके समान नित्य, दिव्यधाम हैं। ये पृथ्वीके भाग होकर भी नित्य दिव्यधामोंके साक्षात् अवतरण हैं धरापर। जैसे आकाश मेघाच्छन्न हो और उसमें कहीं थोड़ा स्थान मेघ न होनेसे सूर्यका प्रकाश वहाँसे पृथ्वीपर पड़े, इस प्रकार मायिक जगतमें ये स्थान दिव्यलोकोंका प्रकाशमय प्रभाव रखनेवाले हैं।

सम्पूर्ण जीव माया मोहित होकर अनन्तकालसे स्वप्न देख रहे हैं। जन्म-मृत्युके चक्रमें भटक रहे हैं, किन्तु सृष्टिका परम सञ्चालक निष्ठुर नहीं, अनन्त करुणावरुणालय है। इन अपने ही अंश जीवोंको जमानेके लिए, इन्हें इस जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त करके अपनी गोदमें उठा लेनेके लिए स्वयं बार-बार इसी जगतमें अवतीर्ण होता है। अपना नाम, अपनी लीला और अपना धाम भी यहाँ उसने रख छोड़ा है, जिनमें-से किसीका नैष्ठिक आश्रय लेकर जीव मायासे छूट सकता है।

ज्ञान, भोग तथा भक्ति ये तीन तो मोक्षके साधन हैं ही। इनके अतिरिक्त आठ और साधन हैं मोक्षके। इनमेंसे नामका आश्रय, लीला चिन्तन तथा किसी संत-सच्चे महापुरुषमें आसक्तिको छोड़ दें और परेच्छा मुक्ति अर्थात् महापुरुषके अनुग्रहसे मोक्षको भी छोड़ दें तो भी देश विशेषमें देहावसानसे मुक्तिकी बात भी शास्त्रोंमें है, इसीलिए मोक्षदायिनी पुरियाँ हैं। केवल शरीर अन्ततक वहाँ रहे तो भी उस स्थलका प्रभाव ऐसा है कि आगामी जन्मोंमें वह जीव स्थल प्रभावसे मोक्षदायक साधनोंमें प्रवृत्ति कर लेता है। इस प्रकार वह साधन-भजन करके मुक्त हो जाता है।

अयोध्याका प्रभाव तो पहिले ही वर्णन कर आये हैं कि किसी भी जन्ममें जो अयोध्यावास प्राप्त करलेता है, उसे अवश्य रामभक्तिकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति मुक्ति की अपेक्षा भी दुर्लभ है।

सम्पूर्ण जगत ही मायामें नित्य दिव्य भगवद्धामका प्रतिविम्ब है—यह बात पहिले कही जाचुकी है। यह प्रतिविम्बभूत जगत भी दो प्रकारका है—कहीं मायाकी विकृति बहुत अधिक है और कहीं कम। क्योंकि माया भगवान्‌का स्पर्श नहीं कर सकती, वे अनन्त दयाधाम जब अवतार धारण करते हैं, तब उनका श्रीअंग पाञ्चभौतिक, प्राकृतिक प्रतीत होनेपर भी चिद्घन ही होता है। उनका आविर्भाव मायिक क्षेत्रमें वस्तुतः होता ही नहीं वे पधारते ही अपने चिन्मयधाममें ही हैं और वहीं लीला करते हैं। इसलिए सृष्टिके प्रारम्भमें ही भगवद्धामोंका भी धरापर आविर्भाव होता है। यह धामोंका अवतरण भगवान्‌के अवतारसे केवल इतना ही भिन्न है, कि यह पृथ्वीके साथ तादात्म्य करके प्रायः पृथ्वीकी आयु पर्यन्त स्थित रहते हैं। इन्हीं धामोंमें यथावसर उन धामोंके लीलाविहारी अवतरण करते हैं। अवतार लीलाका आविर्भाव-तिरोभाव होता है, किन्तु भगवद्धामोंमें-से

अधिकांशका तिरोभाव प्रलयके समय ही होता है। केवल कुछका आंशिक तिरोभाव आराध्य-लीलाके तिरोभावके साथ होता है। जैसे द्वारिकाका अधिकांश भाग भगवान् श्रीकृष्णके स्वधाम-गमनके पश्चात् ही जलमग्न हो गया।

इस विवेचनका तात्पर्य यह सूचित करता है कि अयोध्या दिव्य साकेतधामका धरापर मूर्तरूप है। साथ ही यह वर्तमान मन्वन्तरके वैवस्वतमनुकी राजधानी है। इसका अर्थ है कि इस कल्पमें, पिछली प्रलयके पश्चात् सृष्टि होनेपर आदि मानवका निवास अयोध्यामें हुआ और वर्तमान पृथ्वीमें मनुष्य जाति अयोध्याके वंशधरोंकी ही सन्तान है। विभिन्न समयोंपर लोग अयोध्यासे ही जाकर अन्य स्थानोंपर बसे।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जब अवतार लीलाका उपसंहार करने लगे तो अपने साथ अयोध्याके समस्त मानवोंको ही स्वधाम नहीं ले गये। जिन पशु-पक्षी, कीट-पतंगादिने भी श्रीरघुनाथका दर्शन, स्पर्श,सम्पर्क प्राप्त किया था अथवा जिनपर श्रीरामकी दृष्टि पड़ गयी थी, वे तरु,लताएँ, तृण भी इस मायिक जगतको त्यागकर दिव्यधाम चले गये।

सृष्टिके प्रारम्भमें धरापर जो दिव्य साकेत धामका अवतरण हुआ था, उसके तृण, तरु, लताएँ तक श्रीरघुनाथके स्वधाम जानेपर नहीं रहे। यहाँ कोई पशु-पक्षी, छुद्र कीट तक नहीं रहा। रह गयी केवल भूमि, भवन और जल—सरयू तथा सरोवर, कूपादि।

समय पाकर वायुवेगसे उड़कर आये बीज इस धरामें उगे—बढ़े। पुनः यह हरा-भरा हुआ, किन्तु कालक्रमसे पुनः उजड़ गया। अब यह इतिहास नहीं प्राप्त होता कि मर्यादा-पुरुषोत्तमके ज्येष्ठ तनय कुशके वंशधर और उनकी प्रजा कब,किस कारण अयोध्या छोड़कर चली गयी। लेकिन यह तथ्य है कि अयोध्या समृद्धतम पुरी थी। फलतः वह आततायी आक्रमण-कारियोंका लक्ष्य सदा रही।

मायिक जगतमें आकर परमपुरुष भी लीला-संवरण करते हैं तो यहाँ किसी पदार्थके स्थायित्वकी चर्चा व्यर्थ है। भगवान् श्रीरामको अवतीर्ण हुए कितना काल हुआ ? आप इसकी कोई कल्पना कर पाते होंगे तो जानते होंगे कि इतनी आयुका कोई पाषाण तो दूर,कोई धातुखण्ड भी इस समय पृथ्वीपर उपलब्ध नहीं है।

मैं श्रीजीव गोस्वामीके 'लघु भागवतामृत' में सूचित कालकी बात नहीं करता, जिसके अनुसार इस मन्वन्तरमें ही रामावतार नहीं माना गया है। वे तामस मन्वन्तरके तृतीय त्रेतामें रामावतार मानते हैं। जो विद्वान भारतीय परम्परामें आस्था रखकर अन्वेषण करते हैं, वे भी महाभारतके अनुसार रामावतारका काल आजसे कम-से-कम पचास करोड़ वर्ष पूर्व कहते हैं। इस समय संसारमें इतना प्राचीन कोई नगर नहीं है।

वर्तमान अयोध्या शकारि विक्रमादित्यने बसायी है, यह बात प्रायः सभीको स्वीकार है। शकारि महाराज बिक्रमादित्यका चलाया वर्तमान सम्वत्सर उन्होंने शक-विजय करके अपने अभिषेकके उपलक्ष्यमें चलाया, यह किम्वदन्ती है। ऐसा मानें तो यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान अयोध्या उन्होंने इस सम्वत्सर को चलानेसे वर्ष-दो-वर्ष पूर्व बसायी होगी।

कथा ऐसी है कि भारतपर जब शकोंने मिहिरकुलके नेतृत्वमें आक्रमण किया और कश्मीर पर अधिकार कर लिया, तब मालवामें गणराज्य था। वहाँके गणनायक विक्रमादित्यने सैन्य-संगठन किया और बढ़ते हुए शकोंको पराजित करके पीछे ही नहीं हटाया,कश्मीर तथा गान्धार(वर्तमान कन्धार-अफगानिस्तान) से भी खदेड़ दिया। मिहिरकुल पराजित होकर अकेला भागा और कहीं हिमालयकी घाटियोंमें सदाके लिए लुप्त हो गया।

क्योंकि शैव थे[1], क्रूर थे, दूसरे सब देवालयोंको ध्वस्त करते थे, घोर अत्याचार एंव विनाश करते थे, नगरोंको लूटकर जला डालते थे, जनताने विक्रमादित्यका सर्वत्र साथ दिया और उन्हें अपना उद्धारक-सम्राट मान लिया। इस विजयसे लौटकर विक्रमादित्यका विधिवत् सम्राटके रूपमें अभिषेक हुआ। वही तिथि विक्रम संवत्की आदि तिथि बनी।

महाराज विक्रमादित्य विजय करके लौट रहे थे। काश्मीरसे लौटते समय सरयू-किनारे उनकी सेना चल रही थी, क्योंकि कोई भी सैनिक-अभियान उस कालमें नदियोंके किनारे-किनारे न हो तो जल ढोनेकी समस्या बहुत बड़ी होती थी। सरयू-किनारे लगभग वनमें सेनाका शिविर पड़ा था। सांयकाल महाराज शिविरसे वनमें घूमने निकल गये। अचानक उनकी दृष्टि एक गाय पर पड़ी। वह पैर फैलाये खड़ी थी। उसके थनोंसे दूध झर

१. तबतक विश्वमें किसी धर्मका जन्म हुआ भी हो तो वह भारतीय धर्मकी शाखाप्राय था।

रहा था। स्वभावतः महाराजको कुतूहल हुआ। गाय जब वहाँसे चली तो वे उसके पीछे यह देखने चल पड़े कि गौ किसकी है? कहाँ जाती है?[१]

गौ अनेक स्थानोंपर रुकती थी और वहाँ उसके थनोंसे थोड़ा दूध गिरता था। महाराज यह देखकर लौट आये। उन्होंने मन्त्रीको पता लगानेका आदेश दिया कि आसपास कोई तपस्वी, दीर्घायु मुनि हों तो उनको बुलाया जाय। तबतक भारत तपोधन सिद्धपुरुषोंसे सूना नहीं हुआ था और उस दिव्य भूमिमें तो अनेक रहते थे। उनमें जो प्रमुख थे, उन्हें प्रार्थना करके बुलाया गया। उनके द्वारा ही महाराज विक्रमादित्यको पता लगा कि जहाँ सेनाका शिविर है, उसके आसपासकी भूमि मर्यादापुरुषोत्तमकी लीला-स्थली अयोध्या है।

उन महानपुरुषने ही विक्रमादित्यको श्रीरघुनाथके विशेष लीला स्थानोंका निर्देश किया। उसके अनुसार ही विक्रमादित्यने वहाँ देव मन्दिर, सरोवर, कूप आदिका निर्माण करवाया। इस प्रकार लुप्तप्राय मोक्षदायिनी अयोध्यापुरीका पुनरुद्धार हुआ। आज जो अयोध्या प्राप्त है, उसके कुण्ड, कूप, सरोवरोंका—जो तीर्थ माने जाते हैं,अनेक बार जीर्णोद्धार हुआ है, किन्तु उनका मूलरूप विक्रमादित्यके द्वारा ही उद्घाटित है।

विधर्मियोंके द्वारा अयोध्यापर बार-बार आक्रमण हुए। कई बार मन्दिर ध्वस्त हुए। अनेक मन्दिरोंको तोड़कर वहाँ मस्जिदें बनादी गयीं। इस प्रकार जो मन्दिर अब प्राप्त हैं, उनका वर्तमान रूप बहुत प्राचीन नहीं है। कहा जाता है कि कनक-भवन मन्दिरमें जो चल-मूर्तियाँ हैं, वे महाराज विक्रमादित्यके द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

वर्तमान अयोध्या भी शतशः सिद्ध, विरक्त महापुरुषोंकी साधन-भूमि है। उसके मन्दिरोंके साथ,मठोंके साथ परम भक्तिमान महापुरुषोंके इतिहास हैं। उसका कण-कण श्रीरघुनाथ एवं उनके परमप्रिय भक्तोंका स्मारक है।

जहाँ तक श्रीरघुनाथजीके अवतारकालके स्मारक की बात है,सरयूकी धारा एवं भूमि वही है। वह दिव्य भूमि जिससे श्रीरघुनाथका नित्य सान्निध्य है।

---

१. यह कथा अनेक मन्दिरों, तीर्थोंके सम्बन्धमें प्रचलित है, किन्तु सबका उद्गम यही होना चाहिए, क्योंकि कालक्रमको ध्यानमें रखें तो यह सबसे प्राचीन लगती है।

लंका

विश्वमें युग परिवर्तन होता है, सत्ययुग और कलियुगमें कितना अन्तर है, यह सर्वसामान्य भी अनुमान कर सकते हैं, किन्तु सम्पूर्ण प्रकृतिमें एक कण भी घटता या बढ़ता नहीं है। जैसे आँधी चले या पत्ता तक न हिले, किन्तु वायुमें कुछ घटा या बढ़ा नहीं है, विश्वमें वायुका परिमाण उतना ही है, वैसे ही प्रकृतिमें सत्व, रज एवं तम इन गुणोंका परिमाण भी एक समान ही रहा करता है। ऐसा नहीं है कि सतयुगमें सत्वगुण बढ़ जाता हो। होता यही है कि इन गुणोंका तारतम्य परिवर्तित होता रहता है। एक स्थानपर आँधी चल रही है तो कहीं वायु वेग सर्वथा शान्त है। जब वायु मंद वेग है तो आँधी आसपास कहीं नहीं है। ऐसे ही सतयुगमें भारतीय मानव समूहमें सत्वगुण प्रबल होता है तो कहीं रजोगुण, रजोगुण व्यापक हो रहे हैं तो सत्वगुण भी सर्वत्र कम गहन हो रहा है। आज यदि अकारण सदाचारी, संयमी व्यक्तिको सचमुच आहार बना लेनेवाले राक्षसोंका कहीं समाज नहीं है तो सतयुगके समान तपस्वी ऋषि-मुनियोंका समूह भी नहीं है।

सृष्टिमें क्रिया-प्रतिक्रियाका एक समन्वय बना रहता है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही यदि दिव्य भगवद्धामोंका धरापर आविर्भाव होता है तो आसुरधाम भी प्रकट होते हैं। देवता स्वर्ग और दैत्य-दानवादि अधोलोकोंमें। यह मर्यादा तो तब बनी जब महाराज दिवोदास नरेश हुए और वाराणसीको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया।[१] कलिके प्रारम्भ होनेसे भी पूर्व जब मानव अल्पकाय, अल्पसत्व होने लगा, तब वह इस योग्य नहीं रहा कि देवता उसके साक्षात् सम्पर्कमें सामान्य रूपसे आया करें, उपदेवता मानवोंके मध्य रहें और उससे सामाजिक सम्बन्ध रखें। अतः देव-उपदेव सबने पृथ्वीका त्याग कर दिया। धराका वातावरण उनके उपयुक्त नहीं रहा।

सतयुगमें देवताओंका धरापर आना या बस जाना सामान्य बात थी। मानव भी सामान्य रूपसे देवलोक सशरीर पहुँचते रहते थे। ऊपरके

---

१. यह पूरी कथा 'शिव-चरित' में आचुकी है।

तपोलोक, महर्लोक, जनलोक, सत्यलोक तकके ऋषि-मुनिगण धराके ब्राह्मणोंके साथ सामान्य सामाजिक सम्बन्ध रखते थे। तब अधोलोकोंके दैत्य, दानव,राक्षस भी धरापर आकर अपने नगर बसा लेते थे। उप-देवता वानर, रीछ, नाग, प्रभृतिने तो धरापर ही रहना पसन्द किया था।

त्रेतायुगमें धरापर देवता निवास नहीं बनाते थे। दैत्य-दानव भी अपने नगर धरापर बनाकर नहीं रहते थे। ये धरापर आते-जाते रहने लगे। मानवोंमें भी बहुत समर्थ ही स्वर्गादि लोकोंमें सशरीर जाने-आनेमें समर्थ रह गये। केवल उपदेवता वानर, रीछ, नाग, राक्षसोंका निवास धरापर रह गया। दैत्य, दानव या देवता भी इन उपदेवताओंमें मिलकर पृथ्वीपर रह लेते थे।

द्वापरके अन्ततक स्थिति ऐसी होगयी—धराका वातावरण ऐसा बन चुका था कि पृथ्वीको उपदेवताओंने भी लगभग त्याग दिया था। महाभारतमें केवल दानवेन्द्र मयके पृथ्वीपर होनेका उल्लेख है, वह भी सपरिवार नहीं, अकेले रहते थे। इसी प्रकार बहुत थोड़े नाग. वानर, रीछ एवं राक्षस रहे थे धरापर। वानरोंमें द्विविद,[1] हनुमान मात्र—इनके भी कोई दूसरे वानर साथी नहीं। रीछोंमें केवल सपरिवार जाम्बवान। नाग भी गिने चुने। राक्षस अवश्य कुछ थे, किन्तु महाभारत युद्धमें जो थे, उनका भी उन्मूलन हो गया।

उत्पन्न होते ही युवाके समान आकारवाले, इच्छानुसार रूप धारणमें समर्थ, मनुष्योंके समान नगर, भवन बनाकर रहनेवाले, विद्वान, बलवान तथा विशिष्ट आकार, गुण, स्वभाववाले उपदेवता जिनकी नारियाँ गर्भ-धारण करके इच्छानुसार प्रसवमें समर्थ थीं,कलियुगके प्रारम्भमें ही पृथ्वीका त्याग कर गये। वानर, रीछ, नाग, राक्षसादि किसी उपदेव जातिका अब धरापर चिह्न नहीं है।

---

१. वर्तमान समयमें जो वन्दर, ऋक्ष, सर्प हैं—ये उस समय भी थे। लेकिन वे उपदेवता इनसे सर्वथा भिन्न थे। उनकी तो अब जाति ही पृथ्वीपर नहीं है। इस सम्बन्धमें विशेष निरूपण 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में किया गया है।

हमारा—भारतका इतिहास देवता, उपदेवता एवं मानव वर्गका मिलाजुला इतिहास है। हमारे पुराणोंकी कथाओंको समझनेमें यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही भगवद्धामोंके समान धरापर आसुर स्थानोंका भी प्राकट्य हुआ। सृष्टिकर्ताको गुणोंका तारतम्य बनाये रखना पड़ता है। तीनों गुण जब साम्यावस्थाको प्राप्त होते हैं, तब तो प्रलय हो जाती है। गुणोंकी वैषम्यावस्थामें ही सृष्टि है। सृष्टिमें जब सात्विकताका प्राधान्य पृथ्वीपर हो तो राजस-तामस भावोंकी भी सुरक्षाके लिए स्थान चाहिए। स्वभावतः सतयुग-त्रेतामें वहाँपर प्रगाढ़ राजसिक-तामसिक भाव होंगे। ऐसे ही एक स्थानका नाम लङ्का है। लङ्कामें प्रारम्भसे यक्ष अथवा राक्षसोंका ही निवास रहा।

भारत भूमिके दक्षिणी भागसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य लङ्का थी, यह वर्णन वाल्मीकीय रामायण तथा दूसरे ग्रन्थोंमें भी है। वर्तमान श्रीलङ्काका उस लङ्कासे कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्तमान श्रीलङ्काका उल्लेख स्पष्टरूपसे सिंहल द्वीप नामसे ग्रन्थोंमें आता है। एक ही साथ 'सिंहलो लङ्केति' (भागवत ५.१९.३०) का उल्लेख है। जम्बूद्वीपके उपद्वीपोंके वर्णनमें १. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रशुल्क, ३. आवर्तन, ४. रमणक, ५. मन्दरहरिण, ६. पञ्चजन्य, ७. सिंहल, ८. लङ्का ये नाम इसी क्रमसे कहे गये हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि सिंहल (श्रीलङ्का) से पृथक एवं उसके बाद लङ्काका स्थान है। यद्यपि इस वर्णनको पूर्वसे पश्चिमका मानें तो सिंहलके पश्चिम लङ्काका स्थान होना चाहिए।

मुझे पता है कि वर्तमान अन्वेषक—शोधकर्ता वर्ग किसी नये तथ्यके उद्घाटनमें अपना महान गौरव मानता है और इस लोभमें तथ्योंकी तोड़-मरोड़की स्पर्धा चल पड़ी है। 'कोई दूरकी कौड़ी लानी है' इस प्रयत्नमें लोगोंने रामायण-महाभारतको कल्पित कथानक कहा, 'श्रीकृष्णके पीछे श्रीराम हुए', यह कहा और भी ऐसी बातें आये दिन लिखी-कही जाती हैं। इसी प्रकारके लोभमें लङ्का किसीने इण्डोनेशिया अथवा मलायामें ढूंढ़ी और कुछने तर्क दिया कि लङ्का अमरकण्टक पर्वतके पास ही थी। वे योजनका भी दूसरा अर्थ करते हैं। गोदावरी भी अलग ढूँढ़ते हैं। समुद्र उन्हें कोई दलदल जान पड़ता है। ऐसे अन्वेषकोंके शोध-ग्रन्थोंकी चर्चा—विवेचनमें पड़ना अनावश्यक है।

वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् राम जब पुष्पक विमानसे लंकासे चले हैं तो यह वर्णन है कि वे श्रीजानकीको नीचे दीखनेवाले स्थानोंमें कुछका परिचय देते रहे थे। उसमें उन्होंने सिंहल द्वीपका भी उल्लेख किया है। इसका अर्थ है कि लङ्कासे विमान द्वारा अयोध्या आते समय ऊपरसे सिंहल दीख पड़ा था। इन सब बातोंको ध्यानमें रखें तो वर्तमान समयमें जहाँ लक्षद्वीप समूह है, वहीं लंका थी, ऐसा लगता है।[१]

चारों ओर समुद्रसे घिरा लङ्का द्वीप था। उससे निकटतम भूभाग भारतवर्ष ही था, जो लङ्कासे उत्तर सौ योजन दूर था। इस द्वीपमें एक पर्वत था जो तीन शिखरवाला होनेसे त्रिकूट कहा जाता था। लगभग पूरे द्वीपमें इस पर्वतका ही विस्तार था। पर्वतका मध्य शिखर समतल था और विस्तृत था। इसी शिखरपर स्वर्ण नगरी लङ्का बसी हुई थी।

सृष्टिकर्ताने सृष्टिके प्रारम्भमें ही इस आसुर नगरका निर्माण बिश्वकर्माके द्वारा कराया। असुरोंको यह नगर अपनी राजधानी बनानेके लिए बहुत उपयुक्त लगा। चारों ओर विस्तीर्ण सागर जैसी सुरक्षा थी। जन्मसिद्ध, आकाश-मार्गसे जानेमें समर्थ असुरों—राक्षसोंके लिए समुद्र कोई समस्या नहीं उत्पन्न करता था। वह मनुष्योंसे सुरक्षा ही देता था। मनुष्य—विशेषतः भारतके दिव्यास्त्र ज्ञाता क्षत्रियोंसे सुर-असुर सभी आतङ्क मानते थे। अतः विस्तृत समुद्रके द्वारा मनुष्योंसे सुरक्षा महत्वपूर्ण थी।

आसुर प्रकृति भोग प्रधान है। स्वर्ण-मणि अत्यन्त आकर्षक हैं, प्रिय हैं असुरोंको। बिश्वकर्माने लङ्काका निर्माण स्वर्णपुरीके रूपमें किया। जब असुरोंने इसे आवास बनाना चाहा तो दानव महाशिल्पी मयने इस पुरीको पुनः सज्जित कर दिया। इस प्रकार लङ्का देव एवं दानव दोनोंकी उत्कृष्टतम कलासे सज्जित नगरी होगयी।

जिसे सृष्टिकर्ताने ही आसुर नगरीके रूपमें निर्माण किया था, वह कल्प-कल्पमें धरापर आकर बस जानेवाले असुरोंकी राजधानी बनती रही, यह स्वाभाविक था। वर्तमान कल्पमें जब देवताओंने भगवान् विष्णुकी सहायतासे असुरोंको पराजित करके पाताल आदि अधोलोकोंमें जानेको

---

१. 'कल्याणाङ्क'के 'रामायण' में सप्रमाण इस विषयका प्रतिपादन है।

विवश कर दिया, तब लङ्का सूनी हो गयी। भगवान् ब्रह्माकी सम्मतिसे यक्षराज कुबेरने उसपर अधिकार कर लिया।

यक्ष और राक्षस दोनों ही उपदेवता हैं। दोनों राजस प्रकृतिके क्रूर वर्गके ही हैं। दोनों सृष्टिकर्ताके साक्षात पुत्र पुलस्त्यका आधिपत्य मानते हैं। इनमें-से यक्षोंके अधिपति हुए महर्षि पुलस्त्यके पुत्र विश्रवामुनिके ज्येष्ठ पुत्र कुबेर।

कुबेरने भगवान् शङ्करकी आराधना करके लोकपाल धनाध्यक्षका पद प्राप्त किया। भगवान् शङ्करने उन्हें अपना छोटा भाई, पार्षद मान लिया। कुबेर भी कैलासके समीप ही अलकापुरी बसाकर वहीं निवास करने लगे।[१] लङ्कामें उन्होंने अपने कुछ सेवक यक्ष नियुक्त कर दिये।

रावणके अधिकार करनेसे पूर्व तक लंका कुबेरके अधिकारमें थी और वहाँ कुबेरके अनुचर यक्ष ही रहते थे।

—:※:—

रावण

●

विश्व विराटस्वरूप परमात्मा ही है, यह स्मरण रखने योग्य है। उस सर्वमय, सर्वव्यापकसे भिन्न कुछ नहीं है। यहाँ जो कुछ हो रहा है, सब उसकी लीला है। जो कुछ यहाँ है, सब वह स्वयं है। किसी कर्मका कर्त्ता कोई जीव है, यह भ्रम है। कर्तृत्वका अहङ्कार ही जीवका बन्धन है। अन्यथा उस सर्वसञ्चालकके इङ्गितके बिना सृष्टिमें कुछ नहीं होता।

जैसे धर्म विराट् पुरुषका अङ्ग है, अधर्म उसका पृष्ठ भाग है। सृष्टि जैसे सत्वगुणके संयोगके बिना नहीं चलती, तमोगुणके संयोगके बिना भी नहीं चल सकती। सृष्टिमें वह लीलामय मायासे विमूढ़ जीवोंपर कृपा करके

---

१. यह कथा विस्तारसे 'शिवचरित' में आयी है।

बार-बार अवतार धारण करता है। इसलिए संसारमें आता है कि जीवोंको उसका नाम, उसका रूप, उसकी लीलाके चिन्तनका आश्रय मिल सके, जिससे वे मायाके महाजालसे मुक्त हो सकें। वह आता है तो उसके अवतारकी पृष्ठभूमि भी तो बननी ही चाहिए,अतः वह पृष्ठभूमि भी उसीकी इच्छासे, उसीकी लीलासे बनती है।

भगवान्‌का अवतार युग-युगमें होता है। अवतार होता है धर्मकी, सन्तोंकी, सुरोंकी, श्रुतिकी रक्षाके लिए। इसका अर्थ है कि युग-युगमें इन सबपर या इनमें-से किसीपर सङ्कट आता ही है। यह भी सृष्टिके दूसरे नियमोंके समान एक नियम है। सत्वगुण प्रबल होता है समयपर तो तमोगुण भी समयपर प्रबल होगा ही।

व्यष्टिके जीवनसे समष्टिके जीवनको समझना चाहिए, यह हमारी शास्त्रीय परिपाटी है। व्यक्तिके जीवनमें शान्ति, सुख आवश्यक है तो क्रियाशीलता एवं निद्रा भी आवश्यक है। इसी समष्टिमें सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण आवश्यक हैं।

अवतार कब होता है ? जब ऐसे प्रबल तत्व सृष्टिमें उत्पन्न हो जायँ कि देवता भी उनका नियन्त्रण न कर सकें और वे मनमानी करने लगें। ऐसे प्रबल सामान्य जीव नहीं हो सकते। वे अतिमानव,महाप्राण तथा तपकी श्रेष्ठतम शक्तिसे सम्पन्न ही होते हैं।

विज्ञानके आविष्कार हाइड्रोजन बम बनावें या और कुछ, किन्तु भूकम्प,ज्वालामुखीका विस्फोट,प्रबल अन्धड़,अतिवृष्टि,अनावृष्टि, उल्कापात अथवा पृथ्वीकी केन्द्रच्युति (पृथ्वीकी गतिमें थोड़ा परिवर्तन) या किसी ग्रह उपग्रहका हमारे ब्रह्माण्डमें आजाना क्या विज्ञान रोक सकता है ? किसी अकस्मात प्रकट महामारीको तत्काल निर्मूल कर सकता है ? ये सब आधिदैवत उपद्रव हैं। समुद्र चाहे जब कोई महादेश डुबा दे सकता है। इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, यम, पृथ्वी, तथा महामारियोंके देवता; सूर्य, चन्द्र, मङ्गल आदि ग्रहोंके देवता भी सब असमर्थ हो जाते हैं, जब कोई अत्यन्त प्रबल पुरुष अपने तपोबल एवं सिद्धिबलसे इन सबको अपनी इच्छानुसार चलनेको बाध्य कर देता है और स्वयं सृष्टिके लिए उत्पीड़क हो जाता है, तब सर्वेश्वरको अवतार लेना पड़ता है।

परमात्मा सर्वभावाश्रय है। सृष्टिमें ऐसा कोई भाव नहीं, जो मनमें

आ सकता हो और उसका निष्ठापूर्वक आश्रय लिया जाय तो उससे परमात्मा की प्राप्ति न हो। क्योंकि सभी भाव भगवान्के दिव्यधामोंसे आते भावस्तर ही हैं जो मनमें प्रतिफलित होते हैं। वृत्तमें केन्द्रसे जितनी सीधी रेखाएँ खींची जायँगी,वे वृत्त तक अवश्य पहुँचेंगी। जगतका वृत्त—इस ब्रह्माण्डको परिवेष्टित करनेवाला कौन है ? केन्द्र है हमारा आपका अन्त:करण, जहाँ वह अन्तर्यामी बैठा है। इस केन्द्रसे कोई भाव उठे, सीधे जाय, निष्ठा रहे उसमें तो उसकी परिसमाप्ति परमात्माकी प्राप्ति है।

मनमें राजस-तामस भाव हैं या नहीं ? लेकिन इनका नैष्ठिक आश्रय क्या सामान्य मानवके लिए सम्भव है ? आप सत्यको, अहिंसाको, प्रेमको, अपरिग्रहको जीवनका व्रत बनालें तो उसका निर्वाह सम्भव है, किन्तु हिंसा, काम, क्रोध, लोभ आदिको जीवन-व्रत बनाकर दो-चार दिन भी जीवन टिकेगा ? आप हिंसाको व्रत बना सकते हैं ? जो मिले या जो आपको पसन्द न हो उसे केवल एक थप्पड़ मारनेका व्रत बनावें आप, तो आपका क्या होगा ?

असत्य, हिंसा, चोरी, काम, क्रोध, लोभ आदि संघर्ष उत्पन्न करते हैं। अत: इनको निष्ठापूर्वक अपनाने वाला केवल वह हो सकता है जो संसारमें सबसे प्रबल हो—इतना प्रबल कि लोगोंकी सम्मिलित शक्ति भी उसके सम्मुख असमर्थ रहे। इतना प्रबल सामान्य मनुष्य हो नहीं सकता। कोई ऐसा महामानव कभी उत्पन्न ही हो जाता है तो उसकी निष्ठा असत कहे जानेवाले गुणकी उसकी निष्ठा ही उसे परमात्माको प्राप्त करा देती है। उसके उत्पीड़नसे विश्वको त्राण देनेके लिए परमात्माको अवतीर्ण होना पड़ता है।

युगावतारोंकी बात यहाँ नहीं है। मर्यादापुरुषोत्तम पूर्णपुरुषको अवतीर्ण होना पड़ा, जिसके उपशमके लिए, वह रावण कैसा रहा होगा, यह कल्पना कर पाना भी कठिन है।

रावणने लगभग ७१ चतुर्युगी राज्य किया, यह वर्णन मिलता है। रघुवंशमें श्रीरामसे बहुत पहिले महाराज अजरण्य हुए थे। उन्होंने रावणको शाप दिया था। इससे भी सिद्ध है कि रावण बहुत पहिले उत्पन्न हुआ था।

रावणने वेदभाष्य किया था। रावणके द्वारा निर्मित अनेक तन्त्रोंकी चर्चा मिलती है। लोकोत्तर विद्वान था रावण। वह लोकोत्तर बलवान तो

था ही। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवताओंको उसकी आज्ञा माननी पड़ती थी। आजके शब्दोंमें कहें तो वह इतना बड़ा वैज्ञानिक था कि पृथ्वी, समुद्र, अग्नि, वायु, अन्तरिक्षादि सबपर उसने नियन्त्रण कर लिया था। जन्म और मृत्यु उसके नियन्त्रणमें थे। वर्षा, गर्मी, शीत उसकी इच्छानुसार होते थे। रोग उसके राज्यमें नहीं आ सकते थे। अन्न, फल, शाक ही नहीं, रत्न —पर्वतीय एवं समुद्रीय भी उसकी इच्छानुसार उत्पन्न होते थे।

अकाल, अतिवृष्टि, महामारी, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी—कोई भी अनियन्त्रित नहीं था। उल्का, धूमकेतु, ग्रहोंकी गति, सबपर रावण अंकुश रखता था। वह महाप्राण-अतिमानव सामान्य प्राणियोंकी गणनामें नहीं आ सकता।

पुराणोंमें रावणके पूर्वजन्मकी कई कथाएँ हैं। किसी कल्पमें कोई अतिमानव व्यक्तित्व रावणके रूपमें अवतीर्ण हुआ और किसी कल्पमें कोई। इनमें-से चार कथाओंका उल्लेख 'श्रीरामचरित-मानस' में गोस्वामी तुलसीदासजीने किया है।

१. श्रीमद्भागवतमें कथा है कि जय-विजयने जो वैकुण्ठके द्वारपाल हैं, सदा पाँचवर्षके दिगम्बर बालक रहनेवाले ब्रह्माके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारको रोक दिया बलपूर्वक वैकुण्ठमें भगवान् नारायणके समीप जानेसे। इससे रुष्ट होकर उन कुमारोंने शाप दे दिया—'तुम दोनों असुर होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हो और तीन जन्म आसुरी योनिमें लो!'

इस शापके कारण जय-विजय पहिलीबार हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए। हिरण्याक्षको भगवान्ने वाराहरूप धारण करके मारा और हिरण्यकशिपुको नृसिंहरूप धारण करके। दूसरे जन्ममें ये रावण तथा कुम्भकर्ण हुए। इनका तीसरा जन्म द्वापरमें शिशुपाल, दन्तवक्त्रके रूपमें हुआ जहाँ श्रीकृष्णके चक्रसे मारे जानेपर इनकी मुक्ति हुई।[1]

इस कथामें भी यह विशिष्टता है कि जय-विजय भगवत्पार्षद थे। वे असुर भी हुए तो तीनों ही बार भगवान्ने ही अवतार लेकर उन्हें मारा।

---

१. शिशुपाल-दन्तवक्त्रको उद्धार-कथा 'श्रीद्वारकाधीश' में विस्तारसे आयी है।

कोई मनुष्य तो दूर–देवता भी उनका पराभव करनेमें समर्थ नहीं थे। अनन्त बल, पराक्रम, ऐश्वर्य उन्हें प्राप्त था। सनकादिने भगवत्पार्षदोंको शाप देकर अपने वर्ग अर्थात् ऋषि-मुनि तपस्वीजनों तथा सुरोंके लिए संकट ही बढ़ा लिया।

२. असुर जलन्धर जो तपःसिद्ध था, सुरोंको जीतकर संसारमें अत्याचार करता था। वह अपनी पत्नी वृन्दाके पातिव्रत्यके प्रभावसे अजेय था। सुरोंकी प्रार्थनासे द्रवित भगवान् शिवने जब जलन्धरका वध करना चाहा, भगवान् विष्णुको वृन्दाके साथ छल करना पड़ा।[1]

जलन्धर मरकर दूसरे जन्ममें रावण हुआ। वृन्दाके शापसे भगवान् विष्णुने श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया।

३. नारदजीको अहङ्कार हो गया कि उन्होंने काम जय कर लिया है। भगवान् विष्णुने कृपा करके उनका यह अहङ्कार दूर किया, मायासे नगर तथा विश्वमोहिनी प्रकट करके। उस समय नारदजीने अपने मर्कट रूपको देखकर हँसनेवाले शिवके दो गणोंको राक्षस होनेका शाप दे दिया। भगवान् विष्णुको भी नर रूप धारणका शाप दिया। भगबान्ने श्रीराम रूपमें अवतार लिया और शिवगण रावण तथा कुम्भकर्ण हुए। यह कथा 'श्रीरामचरित-मानस' में विस्तारपूर्वक है।

४. श्रीरामचरित-मानसमें बालकाण्डमें राजा प्रतापभानुका चरित भी विस्तारपूर्वक है। प्रतापभानुका मुख्य दोष था उनका लोभ। वे ब्राह्मणोंको वशमें करनेके प्रयत्नमें लगकर ठगे गये। पूज्योंको सेवासे प्रसन्न किया जाता है। तन्त्र-मन्त्र या अभिचारादि उपायोंसे उनको वशवर्ती करनेका प्रयत्न अपराध है। इस अपराधके कारण ब्राह्मणोंके शापसे प्रतापभानु भाईके साथ युद्धसे मारे जाकर रावण तथा कुम्भकर्ण हुए।

५. श्रीरामके अवतारका कारण 'श्रीरामचरित-मानस' में मनु-शतरूपाकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने उन्हें उनके पुत्र होकर अवतीर्ण होनेका वरदान दिया, यह वर्णन विस्तारसे है।

जब जय-विजयको सनकादिने शाप दिया, तब स्वयं भगवान् विष्णुने उन्हें अवतार धारण करके उद्धार करनेका आश्वासन दिया।

---

१. यह कथा विस्तारपूर्वक 'शिव-चरित' में आ चुकी है।

जब जलन्धर रावण हुआ, तब वृन्दाके शापसे विष्णु भगवान् श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए।

जब नारदजीके शापसे शिवगण रावण, कुम्भकर्ण हुए, तब देवर्षिके शापसे ही भगवान् विष्णु भी श्रीराम रूपमें अवतीर्ण हुए।

जब ब्राह्मणोंके शापसे प्रतापभानु राजा, भाईके शापसे रावण, कुम्भकर्ण हुए, तब मनु-शतरूपाकी तपस्यासे सन्तुष्ट परात्पर पुरुष श्रीरामने उन्हें उनके पुत्र रूपमें अवतीर्ण होनेका वरदान दिया था। 'श्रीरामचरित-मानस' में इसी कल्पके राम-चरितका वर्णन है।

एक और कारण भी रामावतारका एक कल्पका सूरदासजीने वर्णन किया है और वह पुराणोंमें भी है—

महाभागवत अम्बरीषको दुर्वासाजीने शाप दिया—'तू अपनेको भक्त मानता है! मुझे तिरस्कृत करके, मेरे भोजन किये बिना तूने जल ग्रहण किया है। अतः तुझे दस जन्म लेने पड़ेंगे।'

दुर्वासाने जटा उखाड़कर कृत्या प्रकट की। वह जब अम्बरीषको मारने झपटी तब श्रीहरिके चक्रने कृत्याको भस्म कर दिया। उसे जलाकर चक्र दुर्वासाके पीछे दौड़ा तो वे भागे। उन्हें न ब्रह्माने शरण दी, न शिवके यहाँ शरण मिली। शङ्करजीके कहनेसे वे बैकुण्ठ गये तो श्रीहरिने कह दिया—

'दुर्वासाजी! मैं भक्त पराधीन हूँ। भक्तापराधीको क्षमा करनेमें मैं समर्थ नहीं। आप अम्बरीषकी ही शरण जायँ।'

दुर्वासाको चक्रने तब छोड़ा जब उन्होंने अम्बरीषके चरण पकड़े और अम्बरीषने चक्रसे शान्त होनेकी प्रार्थना की। दुर्वासासे श्रीहरिने जब दुर्वासा बैकुण्ठसे निराश लौटने लगे, कहा था—'अम्बरीषका जन्म सम्भव नहीं है। मेरे भक्तका पराभव कोई कर नहीं सकता, किन्तु आपका शाप भी मिथ्या नहीं होना चाहिए। भक्त मेरा स्वरूप होता है, अतः आपका शाप स्वीकार करके मैं दस जन्म ग्रहण करूँगा।'

इस कारण श्रीहरिने दस अवतार लिये। इनमें रामावतार भी है। इस अवतारमें रावण-कुम्भकर्ण कौन हुए थे, यह उल्लेख नहीं मिलता।

रावणने देवताओंको भी वशमें कर लिया था और दैत्य-दानवों, राक्षसोंके सङ्गके कारण राक्षस बन गया था। उसने युगधर्मकी मर्यादा नष्ट करदी। यज्ञ, देवपूजन तथा वैदिक उपासनोंका उन्मूलक बन गया। उसके आश्रयसे उद्धत असुर तपस्वियोंका, सत्पुरुषोंका उत्पीड़न–संहार करने लगे। अतः उसके वधके लिए परमपुरुष श्रीरामका अवतार हुआ।[1]

सूर्यवंश

आदि पुरुष भगवान् नारायणकी नाभि-कमलसे सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी हुए। ब्रह्माके मानस पुत्रोंमें महर्षि मरीचिसे कश्यप हुए। देवता और दैत्य भी कश्यपजीकी ही सन्तान हैं। विराट् पुरुषके नेत्र हैं सूर्य एवं चन्द्र; किन्तु आधिदैवत रूपमें सूर्य प्रजापति महर्षि कश्यपकी अदितिकी सन्तान होनेसे आदित्य कहे जाते हैं।

भगवान् ब्रह्माके एक दिनको एक कल्प कहते हैं। इस एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। ब्रह्माजीके एक दिनमें सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी चतुर्युगी जिसे महायुग कहा जाता है, एक सहस्र बार बीतती है। एक चतुर्युगी (महायुग)में मानव वर्ष ४३२ करोड़ होते हैं।

इस समय ब्रह्माजीकी आयु पचास वर्षकी हो चुकी है। उनके इकावनवें वर्षके पहिले महीनेका पहिला दिन चल रहा है। इस दिनका भी कुछ कम आधा भाग बीत चुका है। इस दिनमें होनेवाले चौदह मनुओंमें-से ६ पहिले हो चुके। इस समय सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इसका अर्थ है कि ब्रह्माजीके इस दिनका यह मध्याह्न काल है।

---

१. रावणकी जन्म, तप, वरदान, दिग्विजयादि कथा 'राक्षसराज' में विस्तारपूर्वक दी गयी है।

भगवान् आदित्यका एक नाम विवस्वान् है। उनकी पत्नी संज्ञासे हुए ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव इस समय मनु हैं। विवस्वान्के पुत्र होनेसे उनका नाम वैवस्वत भी है। इसीलिए इस मन्वन्तरका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। एक मन्वन्तरमें लगभग ७२ महायुग (चतुर्युग) होते हैं। इस वैवस्वत मन्वन्तरकी यह अट्ठाइसवीं चतुर्युगीका अन्तिम युग कलियुग चल रहा है।

वैवस्वतमनु श्राद्धदेवके दस पुत्र हुए। इनमें-से बड़े पुत्रका नाम इक्ष्वाकु था। इन इक्ष्वाकुके कारण ही सूर्यवंशकी रघुवंशी शाखाका गोत्र इक्ष्वाकु हुआ। श्राद्धदेव मनुके दूसरे पुत्र निमि हुए। इन निमिके वंशमें आगे जाकर सीरध्वज जनक हुए, जिनकी पुत्री श्रीसीताजी हुईं। कहते हैं कि महाराज इक्ष्वाकुने ही पहिले-पहिले गन्नाको मनुष्योंके उपयोगके लिए ढूँढा। उनके द्वारा अन्वेषित होनेसे गन्नेका नाम इक्षु पड़ा।

सूर्यसे ६१ वीं पीढ़ीमें मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामका अवतार हुआ है। इस सम्पूर्ण बंशका विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं है। यहाँ केवल मुख्य पुरुषोंकी नामाबली और उनमें जो बहुत प्रसिद्ध हुए हैं उनका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ।

महाराज इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि हुए। इनका दूसरा नाम शशाद था। इनके पुत्र पुरञ्जयसे देवताओंने असुरोंके विरुद्ध युद्धमें सहायता माँगी। महाराज पुरञ्जयने इसे स्वीकार कर लिया। युद्धमें देवराज इन्द्र महावृषभ बने। उनके ककुदपर बैठकर पुरञ्जयने असुरोंसे युद्ध करके उन्हें पराजित किया। इसलिए पुरञ्जयका नाम इन्द्रवाह तथा काकुत्स्थ पड़ गया। इनके वंशमें अवतीर्ण होनेसे श्रीरामको काकुत्स्थ भी कहा जाता है।

इन महाराज पुरञ्जयके पुत्र हुए अनेना और उनके पुत्र पृथु। ये भगवान्के अवतार पृथ्वीका दोहन करनेवाले वेनके शरीरसे उत्पन्न पृथु नहीं हैं। वे आदिराज पृथु तो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें हुए थे। सृष्टिके प्रथम कल्पमें उन पृथुका अबतार हुआ था।

पृथुके पुत्र विश्वरन्धि, उनके पुत्र चन्द्र—ये चन्द्र चन्द्रबंशके आदि पुरुष नहीं हैं। चन्द्रबंशके आदिपुरुष तो महर्षि अत्रिकी सन्तान हैं। चन्द्रके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके पुत्र हुए शाबस्त। इन्होंने ही शाबस्तीपुरी बसायी।

शाबस्तके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र हुए कुवलयाश्व। उस समय एक धुन्धु नामक असुर योजन-विशाल अजगरके रूपमें रहता था। अपनी श्वाससे खींचकर वह सभी प्राणियोंको निगल जाता था। इस प्रकार उसने एक बड़ा भू-भाग प्राणिहीन कर दिया था। वह एक स्थानको प्राणि-हीन करके आगे सरकता रहता था। सम्पूर्ण देशके इस आतङ्कको नष्ट कर देना आवश्यक था। ऋषियोंने महाराज कुवलयाश्वसे प्रार्थना की कि 'वे इस दैत्य सर्प को मार दें।'

महाराज कुवलयाश्वके एक सहस्र इक्कीस पुत्र थे। अपने सब पुत्रोंके साथ उन्होंने अजगर धुन्धुपर आक्रमण किया। इस युद्धमें मृत्यु निश्चित जानकर महाराजने कोई सैनिक साथ नहीं लिया था। दैत्य सर्प मुखसे विषैली लपटें फेंकता था और पूँछसे भी प्रहार करता था। इस युद्धमें दैत्य मारा तो गया, किन्तु महाराज युबनाश्व तथा उनके अधिकांश पुत्र भी बीरगतिको प्राप्त हुए। केवल तीन पुत्र बचे। धुन्धुको मारनेसे महाराज कुवलयाश्वका नाम धुन्धुमार पड़ा।

महाराज धुन्धुमारके अवशिष्ट तीन पुत्रोंमें-से ज्येष्ठ थे दृढाश्व। उनके पुत्र हुए हर्यश्व और उनके निकुम्भ। इन निकुम्भके पुत्र वर्हणाश्व, उनके कृशाश्व तथा उनके सेनजित हुए।

महाराज सेनजितके पुत्र युवनाश्वके जब बड़ी आयु तक कोई सन्तान नहीं हुई, तब वे दुःखी होकर वनमें तपस्या करने चले गये। वहाँ आसपास रहनेवाले ऋषियोंने युवनाश्वको समझाया और उनके द्वारा पुत्र-प्राप्तिके लिए इन्द्रयाग कराने लगे।

यज्ञ पूरा हो गया। अन्तिम दिन यज्ञकी पूर्णाहुति रात्रिमें बहुत विलम्बसे हुई, अतः यज्ञशालामें ही ऋषिगण तथा दूसरे लोग सोगये। रात्रिमें महाराज युवनाश्वकी निद्रा टूटी। वे दिनभरसे व्रत थे—निर्जल व्रत। रात्रिमें प्याससे उनका कण्ठ सूख रहा था। सब निद्रामग्न थे। महाराजने किसीको जगाना उचित नहीं समझा। उठकर स्वयं जल ढूंढ़ने लगे। कहीं जल नहीं था, केवल यज्ञशालामें स्थापित कलशमें जल मिला। उसीको पीकर महाराज सो गये।

प्रातःकाल स्नान-पूजनके पश्चात् ऋषिगण यज्ञ-मण्डपमें आये। मुख्य आचार्य कलशके समीप पहुँचे तो कलशको रिक्त देखकर क्रोधसे बोले—'इस

कलशका जल क्या हुआ ? यह अभिमन्त्रित जल महारानीको देना था। इसे पीकर महारानी अवश्य गर्भवती होतीं।'

जब सबसे पूछताछ होने लगी तब महाराजने आचार्यके समीप पहुँचकर हाथजोड़कर निवेदन कर दिया कि कलशका जल उन्होंने पी लिया है। अब क्या हो सकता था। आचार्यकी समझमें भी नहीं आ रहा था कि क्या होने वाला है, क्योंकि वह जल व्यर्थ नहीं जानेवाला था।

'जो सर्वेश्वरकी इच्छा हो !' कहकर सबको सन्तोष करना पड़ा। महाराज युवनाश्व ऋषियोंके समीप ही रहने लगे। अद्भुत बात—महाराजका उदर बढ़ने लगा। उनके ही पेटमें गर्भ-स्थापन हो गया था। नौ महीने पीछे पेट फट गया और उससे एक दिव्य बालक उत्पन्न हुआ।

ऋषियोंने महाराजका पेट सीं दिया। उनकी चिकित्सा की। फलत: वे मरे नहीं। लेकिन सद्योजात बालक रो रहा था। वह भूखा था। ऋषियोंको चिन्ता हुई—'यह किसका दूध पियेगा ?'

देवराज इन्द्रका यज्ञ करनेसे, उनकी कृपासे बालक हुआ था। अत: शिशुकी रक्षाके लिए इन्द्र स्वयं प्रकट हुए और बोले—'मां धाता' अर्थात् यह मुझे पियेगा। यह कहकर बालकके मुखमें अपनी तर्जनी अंगुली डाल दी। देवेन्द्रके अमृतमय शरीरकी अंगुली चूसकर बालककी अक्षय तृप्ति हो गयी। क्योंकि इन्द्रने 'मां धाता' कहा था, इस बालकका नाम मान्धाता पड़ा। बड़ा होकर यह चक्रवर्ती सम्राट् हुआ।

दिग्विजयमें निकला रावण उस समय महाराज मान्धातासे युद्ध करने पहुँचा था, जब मान्धाता मष्णार प्रदेशमें (यह अफ्रिकाके पश्चिम भागमें कांगोंके निकट अब भी मस्तार नामसे है) यज्ञ कर रहे थे। महाराजने पहिले रावणको मना किया—'ये यज्ञदीक्षित हैं। युद्ध नहीं करेंगे, लेकिन जब रावण नहीं माना तो महाराजने पाशुपतास्त्र उठाया। इस अमोघास्त्रको देखते ही रावणने महाराजकी शरण ली और उन्हें वचन दिया—'मैं कभी अयोध्यापर आक्रमण नहीं करूँगा।'[1]

---

१. यह कथा रामवनसे प्रकाशित 'राक्षसराज' में विस्तारसे आगयी है।

मान्धाताके पुत्र हुए अम्बरीष। प्रसिद्ध भक्त राजा अम्बरीष चन्द्रवंशमें हुए हैं। इन मान्धाताके पुत्र अम्बरीषके पुत्र हुए यौवनाश्व,उनके पुत्र हारीत और हारीतके पुत्र हुए पुरुकुत्स।

असुरोंके उत्पातसे संत्रस्त नाग महाराज पुरुकुत्सको नागलोक ले गये। वहाँ जाकर पुरुकुत्सने युद्ध करके असुरोंको पराजित किया और नाग-लोकसे भगा दिया। इससे प्रसन्न होकर नागराजने अपनी कन्या नर्मदाका विवाह पुरुकुत्ससे कर दिया और उन्हें वरदान दिया—'जो आपका स्मरण करे उसे नागोंसे–सर्पोंसे भय नहीं होगा। किसीको सर्प काट भी ले तो आपका स्मरण करनेसे विष नष्ट हो जायगा।'

महाराज पुरुकुत्सके पुत्र हुए त्रसदस्यु। ये इतने प्रभावशाली थे कि सुरेन्द्र विजयी रावण भी इनसे डरता ही रहता था। रावणको सदा भय लगा रहता था कि देवराज इन्द्र की प्रार्थनासे कहीं त्रसदस्यु लङ्कापर आक्र-मण न करदें।

त्रसदस्युके पुत्र हुए अनरण्य। अपना राज्यकाल समाप्त करके वृद्धा-वस्थामें महाराज अनरण्य सशरीर ब्रह्मलोक जा रहे थे। मार्गमें ही रावणने उन्हें रोका और बलपूर्वक युद्ध करने लगा। युद्धमें बहुत आहत होकर महा-राज अनरण्यने शस्त्रास्त्रका त्याग करके योगके द्वारा प्राण त्याग किया। मरते समय रावणको उन्होंने शाप दिया–'मेरा वंशधर तेरा वध करेगा, क्योंकि तूने मुझे निरपराध, राज्य त्यागकर धरासे सदाको परलोक जाते वृद्धपर आघात किया है।'

अनरण्य अपने ज्येष्ठ पुत्र हर्यश्वको अयोध्याका राज्य दे गये थे। उनके पुत्र हुए अरुण, उनके त्रिबन्ध और उनके सत्यव्रत। अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज त्रिशङ्कु इन सत्यव्रतजीके पुत्र थे।

महाराज त्रिशङ्कुकी इच्छा सशरीर स्वर्ग जानेकी थी। उन्होंने अपने कुलगुरु वशिष्ठजीसे प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। तब महाराजने विश्वामित्रजीसे प्रार्थना की। विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे राजाको सशरीर स्वर्ग भेज दिया।

स्वर्गमें एक मनुष्यको सशरीर निवास करने आया देखकर देवता रुष्ट हुए। वे सीधे तो कुछ कर नहीं सकते थे, उन्होंने एक चाल चली।

त्रिशङ्कुसे पूछा—'आप अपने किन उत्तम कर्मोंके फलसे सदेह स्वर्ग आये हैं ?'

गर्वमें आकर त्रिशङ्कु अपने शुभ कर्मोंका वर्णन करनेलगे। स्वयं अपने पुण्योंका वर्णन करनेसे पुण्य-क्षय होता है। दूसरे त्रिशङ्कुने विश्वामित्रके तप-बलसे आना स्वीकार नहीं किया, यह कृतज्ञताका पाप हुआ। अतः क्षीण-पुण्य राजाको देवताओंने नीचे ढकेल दिया। गिरते समय त्रिशङ्कुने महर्षि विश्वामित्रको आर्त होकर स्मरण किया तो विश्वामित्रने उन्हें आकाशमें ही रोककर अमर कर दिया। त्रिशङ्कुकी स्थिति तबसे तीन तारोंके रूपसे है।

त्रिशङ्कुके पुत्र हरिश्चन्द्र ही सत्यहरिश्चन्द्रके नामसे विख्यात हैं। इनके पहिले कोई सन्तान नहीं थी। तब इन्होंने जलाधीश वरुणसे प्रार्थना की—'यदि मेरे पुत्र होगा तो उसकी बलि देकर मैं आपकी पूजा करूँगा।'

वरुणकी कृपासे हरिश्चन्द्रके पुत्र हुआ। उसका नाम रोहित रखा गया। हरिश्चन्द्र पुत्रके मोहमें पड़ गये। पुत्रकी स्वयं बलि देनेकी कल्पना भी कोई स्नेहशील पिता कैसे कर सकता है। जब वरुणने आकर हरिश्चन्द्रसे पुत्रबलि देनेको कहा तो हरिश्चन्द्रने बहाना किया—'जब दाँत निकल आवें तब यह सर्वाङ्गपूर्ण होगा।'

दाँत निकल आये तब बहाना बना—'ये तो गर्भके अपवित्र दाँत हैं। इन्हें गिर जाना चाहिए।'

दाँत गिर गये तो—'जब इसके पूरे दाँत पुनः आजायँ तब।'

वरुणदेव भी राजा हरिश्चन्द्रके धैर्यकी—सत्यकी परीक्षापर उतर आये थे। वे बार-बार आकर बलिका स्मरण कराते थे। हरिश्चन्द्रने अन्तिम बार बहाना किया-'राजकुमार तब पूर्ण एवं पवित्र होता है जब यज्ञोपवीत संस्कार होनेपर कवच धारण करले।'

इस समय तक राजकुमार रोहित बड़े हो गये थे। जब उन्हें पता लगा कि उनकी बलि दी जानेवाली है तो वे धनुषवाण लेकर वनमें चले गये। रोहितके भाग जानेसे वरुणके कोपसे हरिश्चन्द्रको जलोदर रोग हो गया।

कुमार रोहितको जब पता लगा कि मेरे पिता वरुणदेवके कोपसे रोगी हो गये हैं तो वे प्राणोंका मोह त्यागकर अयोध्याको लौटने लगे, किन्तु देवराज इन्द्र मार्गमें वृद्ध ब्राह्मण बनकर मिले और बोले-'मनुष्य शरीर मिला

तो बिना कुछ पुण्य किये मरजाना बुद्धिमानी नहीं है। कम-से-कम तीर्थ यात्रा तो कर लो।'

इस प्रकार इन्द्र बार-बार अयोध्या लौटते रोहितको तीर्थाटनके लिए भेज देते थे। नयी दिशाके नये तीर्थ बतला देते थे। इस कारण रोहित छः वर्ष वनमें रहकर लौटे तो मार्गमें अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उनके पितासे मूल्य देकर खरीदकर साथ लाये। हरिश्चन्द्रने पुरुषमेध यज्ञ करके वरुणको प्रसन्न किया और रोगमुक्त हुए। इस पुरुषमेध यज्ञमें शुनःशेपकी स्तुतिसे वरुण प्रसन्न हो गये। यज्ञके अन्तमें यज्ञके आचार्य विश्वामित्रने शुनःशेपको अपना पुत्र बना लिया।

इस घटनाके पश्चात् महाराज हरिश्चन्द्रने सत्य-पालनका दृढ़ व्रत ले लिया। उनके सत्यपालन, विश्वामित्र द्वारा उनकी परीक्षा, हरिश्चन्द्रका विश्वामित्रको दक्षिणा देनेके लिए काशी जाकर बिकना-यह सब कथा बहुत प्रसिद्ध है।

महाराज हरिश्चन्द्रके पुत्र इन्हीं रोहिताश्वके पुत्र हुए हरिय, उनके सुदेव और उनके विजय। विजयके पुत्र मरुक, उनके वृक और वृक्के पुत्र हुए बाहुक।

महाराज बाहुकने अनेक विवाह किये,किन्तु किसी भी रानीसे सन्तान नहीं हुई। जब बड़ी रानी गर्भवती हुई तो उनकी सौतोंने ईर्षाके कारण उन्हें विष दे दिया। इस विषसे न रानी मरीं न गर्भस्थ शिशु। किसी कारणसे विष शरीरमें एकत्र बना रहा और बालक उत्पन्न हुआ तो उसके साथ वह विष भी निकला। विष अर्थात् गरके साथ उत्पन्न होनेसे उस बालकका नाम सगर हुआ।

बड़े होकर सगर अत्यन्त प्रतापी हुए। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त की। पृथ्वीके उपद्रवी दस्युओंको वे निर्मूल कर देना चाहते थे किन्तु महर्षि वशिष्ठने रोक दिया। सगरने उनका वध तो नहीं किया,किन्तु उनके वेश निश्चित कर दिये। किसी देशके धर्महीन क्रूर लोगोंको तीन चोटी रखनेका आदेश दिया तो किसी जातिको शिखा रखनेसे मना कर दिया। किसीको पूरा सिर मुण्डित रखनेका विधान किया, किसीको आगेका आधा सिर मुण्डित रखनेका। किन्हीं जातियोंको आदेश किया कि वे मुक्तकच्छ रहें (लांग न लगाव, न लुंगीके नीचे लंगोटी पहिनें) किन्हीं जातियोंको

केवल लंगोटी पहिने, उसपर वस्त्र (लुंगी) न पहिननेका विधान कर दिया। दाढ़ी रखने या मूंछ मुण्डित करनेकी आज्ञा भी सगरने दी। इन म्लेच्छ जातियोंमें वैसे ही रहनेकी प्रथा पड़ गयी।

महाराज सगरकी बड़ी पत्नीके पुत्र असमञ्जस पूर्वजन्मके योगसिद्ध थे। घर-परिवारमें मोह न हो जाय, इसके लिए वे बहुत अटपटे काम करने लगे। प्रजाके बालकोंको पकड़कर सरयूकी धारामें डुबा देते थे। इससे संत्रस्त प्रजाके लोगोंने महाराज सगरसे पुकार की। दुःखी मनसे महाराजने पुत्रको राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा दी। असमञ्जस यही चाहते थे। वे वनमें तप करने चले गये। जाते समय अपनी योगसिद्धिसे सरयूमें डुबाये गये बालकोंको जीवित करते गये। उन बालकोंको बड़ा दुःख हुआ, किन्तु असमञ्जस तो अब जा चुके थे।

असमञ्जसके वनमें जानेसे पूर्व एक पुत्र हुए थे, उनका नाम अन्शुमान था। राजा सगरके दूसरी पत्नीसे साठ सहस्र पुत्र थे। सगरने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके यज्ञमें जो अश्व छोड़ा गया, देवराज इन्द्रने उसका हरण करके भारतके ईशानकोणमें भूगर्भमें तप करते महर्षि कपिलके समीप ले जाकर उस अश्वको बाँध दिया।

अश्वकी रक्षामें नियुक्त महाराज सगरके पुत्रोंने अश्वको बहुत ढूँढ़ा। जब पृथ्वीपर अश्व नहीं मिला तो वे भूमि खोदने लगे। कहा जाता है कि अरबसागर तथा बंगालकी खाड़ी उनके खोदे गड्ढेमें महासिन्धुके आजानेसे बने समुद्र हैं। सगर पुत्रोंके द्वारा खोदे जानेसे बने समुद्र हैं। सगर पुत्रोंके द्वारा खोदे जानेसे इन्हें सागर कहते हैं। ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं कि भूभागसे लगे उथले समुद्र सब सगर पुत्रोंके खोदनेसे बने हैं, क्योंकि पूरा भूमण्डल पहिले एक ही था। वर्तमान महाद्वीपोंको खोदकर सगर पुत्रोंने पृथक किया। पीछे प्राकृतिक कारणोंसे वे दूर हटते गये।

जो भी हो, सगर पुत्रोंने ऐसे स्थानसे भूमि-खनन प्रारम्भ किया था कि सबसे पीछे वे भारतके ईशानकोणमें कपिलाश्रम पहुँचे। वहाँ महर्षि कपिल ध्यानस्थ थे। समीपमें अपने पिताके यज्ञीय अश्वको बँधा देखकर सगर पुत्रोंको बड़ा क्रोध आया। वे चिल्लाये–'यही हमारे अश्वका चोर है। हम सबको इतना तंग करके यहाँ नेत्र बन्द किये बैठा है। इस दम्भीको मारदो ! मारदो !'

सगरके साठ सहस्र पुत्रोंके कोलाहलसे कपिलजीकी समाधि टूटी तो देखा कि वे आततायी राजकुमार शस्त्र लिये उन्हें मारने दौड़े आरहे हैं। यह देख भगवान् कपिल रुष्ट हुए। उनके रोषसे उनके नेत्रोंसे जो ज्वाला निकली उससे सगरके वे सब पुत्र भस्म हो गये।

जब बहुत दिनों तक न अश्व लौटा और न उसके अन्वेषणमें गये पुत्र, तो महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमानको उनका पता लगाने भेजा। अंशुमानको मार्गमें देवर्षि नारद मिल गये। उन्होंने अश्वका पता तथा सगर-पुत्रोंके भस्म होनेकी घटना बतला दी। अंशुमानको इससे भटकना नहीं पड़ा। उन्होंने जाकर जब भगवान् कपिलकी स्तुति की तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'वत्स ! अपने पितामहका यह यज्ञीय अश्व ले जाओ ! उनका यज्ञ पूरा करो। यहाँ जो तुम्हारे चाचा लोग भस्म हो गये हैं, उनका उद्धार तो तभी होगा, जब विष्णुपदी गङ्गा पृथ्वीपर आवें और उनके जलका स्पर्श इन सबकी देह-भस्मको प्राप्त हो।'

अंशुमान अश्व लेकर लौट आये। महाराज सगरने अश्व प्राप्त करके यज्ञ पूरा किया। वे अंशुमानको राज्य देकर तप करने वनमें चले गये।

जब अंशुमानके पुत्र दिलीप युवा हो गये तब उन्हें राज्य देकर अंशुमान गङ्गाजीको धरापर लानेके उद्देश्यसे तप करने गये। तप करते हुए ही उनका शरीर पूरा हुआ। यही दशा दिलीपकी भी हुई, किन्तु गङ्गाको धरापर लाना ही है, यह तो उस वंशकी प्रतिज्ञा थी। दिलीपके पुत्र भगीरथने भी पिताके पथका अनुसरण किया। अपने युवा पुत्र श्रुतको राज्य देकर वे तप करने गये। भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न गङ्गाने दर्शन देकर वरदान माँगनेको कहा।

भगीरथने गङ्गाजीसे पृथ्वीपर आनेकी प्रार्थना की। गङ्गाजीने दो आपत्ति उपस्थित कीं—'१. उनका वेग कौन धारण करेगा ? २. उनमें पापी स्नान करेंगे तो वह पाप दूर कैसे होगा ?'

भगीरथने उत्तर दिया—'भगवान् रुद्र आपका वेग धारण करेंगे। आपमें भगवद्भक्त भी स्नान करेंगे, जिनके हृदयमें सर्वपापहारी श्रीहरि निवास करते हैं।'

भगीरथने तप करके भगवान् आशुतोषको शीघ्र प्रसन्न कर लिया।

वे धूर्जटि जटा खोलकर खड़े हुए तो भगीरथकी प्रार्थनासे गङ्गा ब्रह्मलोकसे उतरीं, किन्तु शिवकी जटाओंमें उनका प्रवाह खो गया। भगीरथकी प्रार्थनापर शंकरजीने जटा निचोड़ दी। भगीरथ रथपर चढ़कर चले। गङ्गा पीछे चलीं। इस प्रकार कपिलाश्रम जाकर वे समुद्रमें मिलीं। उनके जलसे सगरके पुत्रोंकी देह-भस्म सिञ्चित हुई तो उन सबका उद्धार हो गया। भगीरथके द्वारा भूमिपर लानेके कारण गङ्गाका एक नाम भागीरथी पड़ गया।

राजा भगीरथके पुत्र श्रुत उनके पुत्र हुए नाभ, उनके सिन्धुद्वीप, उनके अयुतायु और उनके पुत्र हुए राजा ऋतुपर्ण। निषध्र-नरेश राजा नल इन्हीं अयोध्या-नरेश ऋतुपर्णके यहाँ कुछ समय बाहुक नामसे सारथी होकर रहे थे और इन्हींसे उन्होंने द्यूत-विद्या (अक्षक्रीड़ा) सीखी थी।

ऋतुपर्णके पुत्र सर्वकामके पुत्रका नाम सुदास था। सुदासके पुत्र सौदासका दूसरा नाम कल्माषांघ्रि पड़ गया। क्योंकि एक राक्षस छलपूर्वक इनका रसोइया बन गया। उसने घर आये कुलगुरु वशिष्ठको जब अखाद्य भोजन परसा तब वशिष्ठने क्रोधमें आकर राजाको शाप दे दिया—'तुम मुझे राक्षसोंके योग्य भोजन परसते हो, अतः राक्षस हो जाओ!'

राजाने भी गुरुको शाप देनेके लिए हाथमें जल लिया, किन्तु महारानी मदयन्तीने रोक दिया-'गुरुदेवको शाप देना उचित नहीं।'

राजा संकल्प करचुके थे। अब शापका जल कहीं भी डालें तो वहाँ निरपराध जीव भस्म होंगे और जीव तो सर्वत्र हैं, भले वे बहुत छोटे हों, यह सोचकर राजाने वह शापका जल अपने ही पैरोंपर डाल लिया। इससे उनके पैर काले पड़ गये। इसी कारण उनका नाम कल्माषांघ्रि पड़ा।

जब महर्षिको पता लगा कि राजा निर्दोष हैं। रसोइया बने राक्षसने छल किया था, तब उन्होंने अपना शाप बारह वर्षके लिए सीमित कर दिया।

इन महाराज सौदासके औरस पुत्र नहीं हुआ, क्योंकि जब वे शापके कारण राक्षस भावापन्न थे तब वनमें एक ब्राह्मण दम्पतिमें-से इन्होंने पुरुषको भक्षण कर लिया। उस समय वे दम्पति सहवास मग्न थे। पतिके भक्षित होनेपर उसकी अस्थि लेकर सती होते समय ब्राह्मणीने शाप दे दिया—'तुम्हारी मृत्यु भी पत्नीसे सहवास करते समय हो जायगी।'

गुरुके शापका समय समाप्त होनेपर ये ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवनपर्यन्त रहे। इनकी महारानी मदयन्तीको महर्षि वशिष्ठके अनुग्रहसे गर्भ रहा। जब बहुत दिन तक प्रसव नहीं हुआ, तब रानीने अपने उदरपर पत्थर (अश्म) पटक दिया। इससे जो बालक हुआ, उसका नाम अश्मक पड़ा।

अश्मकका पुत्र मूलक हुआ। इसे नारीकवच भी कहा जाता है, क्योंकि जब भगवान् परशुराम क्षत्रियोंका संहार कर रहे थे, तब मूलकको घेरकर उनकी रानियोंने बचाया। परशुरामजी स्त्री-हत्या नहीं करते थे, अतः जब भी वे अयोध्या पहुँचे, मूलकको स्त्रियोंने बचा लिया।

मूलकके पुत्र हुए दशरथ। श्रीरामके पिता दशरथ तो इस दशरथसे आठ पीढ़ी पीछे हुए। इस दशरथके पुत्रका नाम था ऐडविड, उनके पुत्र विश्वसह और उनके हुए खट्वाङ्ग।

देवताओंने खट्वाङ्गसे असुरोंके विरुद्ध युद्धमें सहायता करनेकी प्रार्थना की। यह युद्ध बहुत दिनों तक चला। जब असुर पराजित होकर रसातल भाग गये, तब देवताओंने महाराजसे वरदान माँगनेको कहा। खट्वाङ्ग बोले– 'पहिले मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी आयु कितनी शेष है ?'

देवताओंने बतलाया—'केवल एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी।'

खट्वाङ्ग—'तब मुझे शीघ्र पृथ्वीपर भारतवर्ष पहुँचा दें।'

महाराज खट्वाङ्ग अमृत मांगकर अमर हो सकते थे, किन्तु उन्हें शरीरका मोह नहीं था। कर्मभूमि भारत आना आवश्यक था, क्योंकि देवलोकमें किसी कर्मके करनेसे फल नहीं होता। देवताओंने उन्हें भारतवर्ष पहुँचा दिया। यहाँ पहुँचते ही सरयू-तटपर वे ध्यान करने बैठ गये। भगवान्का ध्यान करते हुए देह-त्यागकर भगवद्धाम चले गये।

महाराज खट्वाङ्गके पुत्रका नाम दीर्घबाहु था। इनका दूसरा नाम दिलीप था, जो लोकमें अधिक प्रचलित हुआ। बहुत दिनों तक जब इनके कोई सन्तान नहीं हुई तो पत्नीके साथ ये महर्षि वशिष्ठकी शरण गये। महर्षिने बतलाया—'तुम एकबार स्वर्गसे पृथ्वीपर लौट रहे थे तो मार्गमें कामधेनु मिली। तुम्हारा ध्यान दूसरी ओर था, अतः तुमने उसे प्रणाम नहीं किया। उसने शाप दे दिया कि उसकी सन्तानकी आराधनाके बिना तुम्हें पुत्र नहीं होगा। लेकिन मेरी गाय नन्दिनी कामधेनुकी पुत्री है, अतः इनकी सेवासे तुम्हें सन्तान प्राप्त हो जायगी।'

गुरुकी आज्ञासे राजा-रानी नन्दिनीकी सेवा करने लगे। महारानी गोशाला स्वच्छ करतीं। रात्रिमें गायके पास दीपक रखतीं। राजा गाय चराने जाते। वे गौके पीछे चलते, उसपर बैठनेवाले मक्खी-मच्छर उड़ाते, उसे कोमल घास खिलाते। रात्रिमें गायके पास ही सोते थे।

एक दिन वनमें गाय दौड़कर दूर चली गयी। राजा पीछे थे, तभी गायका डकराना सुनायी पड़ा। दौड़कर समीप पहुँचे तो देखा कि एक भारी सिंह गायको गिराकर उसपर चढ़ा बैठा है। राजाने धनुषपर ज्या चढ़ायी, किन्तु जब तोणसे वाण निकालने लगे तो हाथ त्रोणमें चिपक गया।

इस सबसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि सिंह मनुष्य-भाषामें बोला—'राजन् ! मैं भगवती पार्वतीका वाहन हूँ। तुम मुझे मार नहीं सकते। जगदम्बाने अपने हाथसे लगाये देवदारु वृक्षकी रक्षाके लिए मुझे यहाँ नियुक्त करके इस वनमें आये पशुओंका भक्षण कर लेनेकी आज्ञा दी है। यह गाय मेरा आजका आहार है।'

महाराज दिलीप बोले—'आप भगवती उमाके वाहन हैं, देवता हैं और मुझपर कृपा करके बोले हैं मुझसे, तो इतनी कृपा और करें कि इस गायको छोड़ दें। आपको तो आहार ही चाहिए। मुझे खाकर आप अपनी क्षुधा मिटालें।'

सिंहने समझाया—'तुम प्रजापालक हो। गुरुको बहुतसी गायें दे सकते हो। मनुष्य जीवन दुर्लभ है। एक गायके लिए प्राण मत दो।'

महाराज दिलीपने कहा—'वैसे भी गोरक्षा मेरा धर्म है। यह तो गुरुदेवकी गाय है और मेरी निजी रक्षामें है। धर्म ही न रहे तो जीवन रखनेसे क्या लाभ ?'

सिंहने फिर समझाया, किन्तु जब राजा अपने वचनपर दृढ़ रहे तो सिंहने गायको छोड़कर उन्हें खालेना स्वीकार कर लिया। राजाका चिपका हाथ छूट गया। वे धनुष तथा त्रोण पृथक रखकर सिर झुकाकर बैठ गये। प्रतीक्षा करने लगे कि सिंह उनपर आक्रमण करेगा, किन्तु उनके ऊपर आकाशसे पुष्प वर्षा हुई। सुप्रसन्न नन्दिनी मनुष्य-वाणीमें बोली—'वत्स ! उठो। यह तो मैंने मायासे सिंह दिखलाकर तुम्हारी परीक्षा ली है। मैं प्रसन्न हूँ। पत्तेके दोनेमें दुहकर मेरा दूध पीलो। इससे तुम्हें उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।'

दिलीप उठे। नन्दिनीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले--'माता! आप मुझे क्षमा करें। आपका दूध मैं यहाँ पी लूँ तो यह चोरी होगी। आपके दूधपर आपके बछड़ेका पहिला स्वत्व है, फिर गुरुदेवका। अतः आश्रम चलकर गुरुदेवकी आज्ञासे ही मैं उसे पी सकता हूँ।'

महाराजकी इस धर्मनिष्ठासे नन्दिनी प्रसन्न हुई। आश्रम लौटकर महर्षि वशिष्ठकी आज्ञा लेकर राजाने नन्दिनीके थोड़े दूधका प्राशन किया और राजधानी लौटे। इसके थोड़े दिनों पीछे महारानीने एक पुत्रको जन्म दिया। इस बालकका नाम रघु पड़ा। इन्हीं रघुके कारण आगे यह वंश रघुवंश कहलाया।

महाराज रघु चक्रवर्ती नरेश हुए। इनकी दानशीलताकी एक कथाका वर्णन महाकवि कालिदासने किया है। महाराज रघुने एक महायज्ञ किया और उसमें सर्वस्व दान कर दिया। उनके समीप केवल शरीरपर के वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र और मिट्टीके बर्तन रह गये। महारानीके शरीरपर भी केवल वस्त्र और सौभाग्य चिह्न शेष रहा।

इसी समय एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी इनके समीप आया। महाराजने आदरपूर्वक कुशका आसन देकर मिट्टीके पात्रके जलसे हाथ धुलाये, चरण धोये, पूजा की। अन्तमें पूछा—'आप यहाँ कैसे पधारे?'

ब्रह्मचारीका नाम कौत्स था। उसने कहा—'राजन्! मैं आपको और आपके इन मृत्पात्रोंको देख रहा हूँ। आपको मैं संकोचमें नहीं डालूँगा। आपका कल्याण हो। मुझे जानेकी आज्ञा दें।'

रघु—'मैं क्या इतना अनधिकारी हूँ कि मैं आपका प्रयोजन भी न सुन सकूँ? मुझपर कृपा करके अपना प्रयोजन तो सुना दीजिये।'

कौत्सने बतलाया कि वे ऋषि वरतन्तुके शिष्य हैं। उन दिनों बालक किसी गुरुके समीप रहते थे। भिक्षा माँग लाते थे। गुरुदेवकी सेवा करते थे और अध्ययन करते थे। इसी प्रकार कौत्सने भी अध्ययन किया था। अध्ययन समाप्त होनेपर गुरुदेवसे पूछा—'क्या दक्षिणा अर्पित करूँ?'

ऋषिने कह दिया—'तुम ब्राह्मण बालक हो। तुम्हारी सेवा ही दक्षिणा है। तुम्हारा मंगल हो।'

कौत्सने गुरुके बार-बार मना करनेपर भी जब दक्षिणा देनेका हठ किया तो गुरुदेवने रुष्ट होकर कहा—'तुमने मुझसे चतुर्दश विद्याओंका अध्ययन किया है, अतः चौदह सहस्र स्वर्णमुद्रा दक्षिणा दो।'

उस समय देशके क्षत्रिय नरेश विद्वानोंकी सेवा अपना सौभाग्य मानते थे, अतः कौत्स गुरुका आदेश सुनकर बिना हिचक अयोध्या आये थे। उनकी बात सुनकर महाराज रघुने प्रार्थना की—'अब आप इतनी कृपा करें कि रघुके पास जाकर अतिथि निराश लौटा, यह अपयश मुझे न हो। केवल तीन दिन मेरी यज्ञशालामें सम्मानपूर्वक रहते हुए, प्रतीक्षा करें।' कौत्सने यह प्रार्थना स्वीकार करली। सायंकाल रघुने अपना धनुष तथा त्रोण रथमें रखवाया और रात्रिको रथमें ही सोये। उन्होंने मन्त्रीसे कहा—'धनाधीश कुबेर जब पृथ्वीपर रहते हैं, तब भले वे देवता या लोकपाल हों, उन्हें पृथ्वीके चक्रवर्ती सम्राट्को कर देना चाहिए। अबतक उन्होंने कभी कर नहीं दिया। अतः मैं कल उनकी पुरी अलकापर चढ़ाई करूँगा।'

महाराज रघुको यह युद्ध यात्रा नहीं करनी पड़ी। वे प्रातः सन्ध्यादि करके रथपर बैठने जा रहे थे, तभी कोषागारके रक्षकने सूचना दी—'रात्रिमें स्वर्ण-वर्षा हुई लगती है कोषागारमें। वह पूरा भवन स्वर्णमुद्रासे भरा है।'

रघुने ले जाकर कौत्सको कोषागारके द्वारपर खड़ा करके प्रार्थना की- 'यह सब धन आपका है। इसे स्वीकार करें।'

कौत्स—'राजन्! मैं अपरिग्रही ब्राह्मण हूँ। गुरुदक्षिणाकी चौदह सहस्र स्वर्णमुद्रासे एक भी अधिक मैं नहीं ले सकता।'

कौत्स उतनी मुद्रा लेकर विदा हो गये। ब्राह्मणके निमित्त आया धन महाराज रघु ले नहीं सकते थे। अतः शेष स्वर्णराशि ब्राह्मणोंमें वितरित करदी उन्होंने।

इन सम्राट् रघुके पुत्र हुए अज। अज भी महान प्रतापी तथा सद्गुणों के निवास थे; किन्तु वे दीर्घजीवी नहीं हुए। उनका शरीर युवावस्थामें ही छूट गया।

महाराज अजके देहावसानके पश्चात् उनके एक मात्र कुमार महाराज दशरथ अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हुए।

———

महर्षि वशिष्ठ-इक्ष्वाकुवंशके कुलगुरु

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही वे ब्रह्माके प्राणसे उत्पन्न उन प्रारम्भिक दस मानसपुत्रोंमें-से एक हैं, जिनमें-से देवर्षि नारदके अतिरिक्त शेष नौ प्रजापति हुए। १. मरीचि, २. अत्रि, ३. अङ्गिरा, ४. पुलस्त, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. भृगु, ८. वशिष्ठ, ९. दक्ष और १०. नारद—ये ब्रह्माके दस मानसपुत्र हैं। इनसे पहिले—सबसे पहिले ब्रह्माजीके मनसे—संकल्पसे कुमार चतुष्टय—१. सनक, २. सनन्दन, ३. सनातन और ४. सनत्कुमार उत्पन्न हुए थे; किन्तु इन चारोंने प्रजा-सृष्टि अस्वीकार करदी। सदा पांचवर्षकी अवस्थावाले बालक ही रहते हैं। इन चारोंकी अस्वीकृतिके कारण क्रोध आया ब्रह्माजीको तो उनके भ्रूमध्यसे भगवान् नील लोहित रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सनकादि कुमार तथा रुद्र वशिष्ठजीके अग्रज हैं।

भगवान् ब्रह्माने अपने नौ पुत्रोंको प्रजापति नियुक्त किया। इन लोगोंको प्रजाकी सृष्टि, संवर्धन तथा संरक्षणका दायित्व प्राप्त हुआ। केवल नारदजी नैष्टिक ब्रह्मचारी बने रहे। इन नौ प्रजापतियोंमें-से प्रथम मरीचिके पुत्र हुए कर्दमजी। कर्दमने स्वाम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिका पाणिग्रहण किया। कर्दमजीके नौ पुत्रियाँ हुईं और पुत्रके रूपमें भगवान् कपिलने उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया। कर्दमने अपनी पुत्रियोंका विवाह ब्रह्माजीके मानसपुत्र प्रजापतियोंसे किया। वशिष्ठजीकी पत्नी अरुन्धतीजी महर्षि कर्दमकी कन्या हैं।

भगवान् ब्रह्माने सृष्टिके प्रथम कल्पमें ही वशिष्ठजीको आदेश दिया—'वत्स! तुम सूर्यवंशका पौरोहित्य सम्हालो।'

जैसे विश्व व्यवस्थापूर्वक चलता है, समाज भी व्यवस्थापूर्वक ही चलता है। यदि समाजको सुदृढ़ रखना है तो उसकी व्यवस्था सुदृढ़ रहनी चाहिए। यह व्यवस्था तभी सुदृढ़ रहेगी, जब वह समाजके सदस्योंकी शक्ति एवं स्वभावको ध्यानमें रखकर बनी हो। वैदिक-धर्म मनुष्य जीवनमें धर्मको

प्रधान मानता है, किन्तु अर्थोपार्जन, जाति-परिवारके रक्षण-पोषणमें लगा गृहस्थ धार्मिक दायित्वोंको स्मरण रखे और प्रमादहीन होकर उनका ठीक समयपर निर्वाह करता रहे, यह सम्भव नहीं है। न यही सम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति वेद एवं कर्मकाण्डका भी निष्णात बने और दूसरी विद्याओंका भी। इसलिए समाजको पुरोहितोंकी आवश्यकता होती है।

पुरोहितका अर्थ है कि वह अपने यजमानका हित पहिलेसे सोच लेता है। उसके अनुसार समयपर यजमानको सावधान करके उससे धार्मिक दायित्व सम्पन्न कराता है। वेद-शास्त्र एवं वैदिक कर्मोंका वह विद्वान होना चाहिए।

वशिष्ठजीको ब्रह्माजीकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने प्रार्थना की—'पौरोहित्य कर्म शास्त्र-निन्दित है, क्योंकि इसमें लगे ब्राह्मणको पराश्रित रहना पड़ता है। वह आत्मचिन्तनके स्थानपर यजमान और यजमानके हित-चिन्तनमें लगे रहनेको वाध्य होता है। उसकी आजीविका यजमानपर निर्भर है, अतः यजमानकी प्रसन्नताका उसे ध्यान रखना पड़ता है। यजमानमें यदि कृपणता, अश्रद्धा आजाय तो पुरोहितमें चाटुकारी, लोभ, छल आदि दोष आये बिना नहीं रह सकते। ब्राह्मणको सन्तुष्ट, तपस्वी होना चाहिए। तब वह परायेका भार लेकर परमुखापेक्षी क्यों बने ?'

ब्रह्माजोने समझाया—'तपस्यासे, एकान्त चिन्तन—ध्यानसे जिसको पानेकी कामनाकी जाती है, वे परात्पर पुरुष इस सूर्यवंशमें आगे उत्पन्न होनेवाले हैं। तुम्हें उनका सान्निध्य, उनका आचार्यत्व प्राप्त होगा सूर्यवंशका पौरोहित्य स्वीकार करनेसे।'

वशिष्ठजीने यह सुना तो सहर्ष अपने पिता सृष्टिकर्ताका आदेश स्वीकार कर लिया। वे सूर्यवंशके पुरोहित बन गये। लेकिन सूर्यवंशका यह पौरोहित्य इस वैवस्वत मन्वन्तरमें आकर सीमित हो गया।

भगवान् सूर्यके पुत्र श्राद्धदेव—मनुके दस पुत्र थे। इन सबके पुरोहित वशिष्ठजी ही थे। एक बार उनमें-से मनु-पुत्र निमिने जो भारतके पूर्वोत्तर प्रदेशके अधिपति थे, जिसका नाम पीछे मिथिला पड़ा, वशिष्ठजीसे प्रार्थना की—'मेरी इच्छा एक महायज्ञ करनेकी है। आप उसे सम्पन्न करादें।'

वशिष्ठने कहा—'वत्स ! तुम्हारा संकल्प पवित्र है, किन्तु देवराज

इन्द्र एक यज्ञ करने जा रहे हैं। उसमें मेरा वरण हो चुका है। मैं अमरावती जा रहा हूँ। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर लौटकर तुम्हारा यज्ञ करा दूँगा।'

निमिने कुछ कहा नहीं। महर्षि वशिष्ठ स्वर्ग चले गये इन्द्रका यज्ञ कराने। स्वाभाविक था कि उनको लौटनेमें अनेक वर्ष लगते, क्योंकि देवताओंका एक दिन-रात मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है। गुरुदेवके शीघ्र लौटनेकी आशा नहीं थी। निमिके मनमें आया—'जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। मृत्यु किसी क्षण आ सकती है। अत: विचारवानको शुभ संकल्प अविलम्ब पूरा करना चाहिए। अच्छे संकल्पको दूसरे समयपर करनेके लिए नहीं छोड़ना चाहिए।'

महर्षि वशिष्ठको आनेमें विलम्ब होता देखकर निमिने दूसरे विद्वान ब्राह्मणको पुरोहित बनाया। ये पुरोहित थे महर्षि यमदग्नि, भगवान् परशुराम के पिता। निमिने उनके आचार्यत्वमें यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।

महर्षि वशिष्ठ इन्द्रका यज्ञ पूर्ण होनेपर लौटे तो महाराज निमिका यज्ञ चल रहा था। यह देखकर उन्हें लगा कि निमिने मेरी अवज्ञा की है। उन्होंने शाप दे दिया—'अपनेको पण्डित मानकर मेरा तिरस्कार करने वाले निमिका शरीर नष्ट हो जाय।'

निमिने भी शाप दिया—'लोभवश धर्मको विस्मृत कर देनेवाले आपका भी देहपात हो जाय!'

भूल दोनों ओरसे हुई थी और वह शापके रूपमें बढ़ गयी। महाराज निमिको प्रारम्भमें कह देना था कि वे लम्बे समय तक प्रतीक्षा नहीं करना चाहते।

महर्षि वशिष्ठने भी यह तथ्य ध्यान देने योग्य नहीं माना कि अपना आचार्य या पुरोहित किसी कारण अनुपलब्ध हो तो यजमान कर्म-विशेषके लिए दूसरे ब्राह्मणको आचार्य वरण कर सकता है। यह दूसरा ब्राह्मण केवल उस कर्मके पूर्ण होने तक आचार्य रहता है।

निमिका शरीरान्त हो गया। इसके बाद उनके शरीर मन्थनकी कथा निमि-वंशके वर्णनमें आगे आवेगी। महर्षि वशिष्ठने आसन लगाया और योगधारणके द्वारा अपने शरीरको भस्म कर दिया। थोड़े समय पश्चात् भगवान् ब्रह्माके यज्ञमें उर्वशीको देखकर मित्र (सूर्य) और वरुणका रेत:स्खलन

हो गया। उन दोनों लोकपालोंका सम्मिलित वीर्य यज्ञीय कलशपर पड़ा। उसका जो भाग कलशपर पड़ा था, उससे कुम्भज अगस्त्यजी उत्पन्न हुए और जो भाग नीचे गिरा, उससे वशिष्ठजीने पुन: शरीर प्राप्त किया। इसलिए वशिष्ठजीको मैत्रावरुणि भी कहते हैं।

दूसरा शरीर प्राप्त करके वशिष्ठजीने पूरे सूर्यवंशका पौरोहित्य पद त्याग दिया। वे केवल इक्ष्वाकुवंशके पुरोहित बने रहे। अयोध्याके समीप ही उन्होंने अपना आश्रम बना लिया। दूसरी मुख्य बात यह हुई कि वह नवीन देहकी प्राप्तिके साथ महर्षि वशिष्ठ परम शान्त हो गये। किसीको भी क्रोध करके शाप नहीं देना चाहिए, यह उन्होंने अपना व्रत बना लिया। अत: पीछे विश्वामित्रके द्वारा बहुत अनर्थ करनेपर भी वे शान्त ही बने रहे।

महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माजीके मानसपुत्र होनेसे—मित्र एवं वरुणके वंशोद्भव होनेसे भी दिव्य देह हैं। कल्पान्त अमर हैं। इस मन्वन्तरमें सप्तर्षियोंमें उनका स्थान है।

महाराज गाधिके पुत्र विश्वामित्रजी भगवान् परशुरामके पिता यमदग्निके मामा लगते हैं। महाराज गाधिकी पुत्री सत्यवतीका विवाह भृगुवंशीय महर्षि ऋचीकसे हुआ था। ऋचीकके पुत्र यमदग्नि हुए।

जब विश्वामित्र राजा हो गये, तब सेनाके साथ वे एकबार आखेट करते महर्षि वशिष्ठके आश्रमके समीप पहुँच गये। वशिष्ठजीने उनको आतिथ्य-ग्रहणके लिए आमन्त्रित किया और समूची सेनाका भली प्रकार सत्कार किया। विश्वामित्रने देखा कि नानाप्रकारके भोज्यपदार्थ वशिष्ठकी होमधेनु नन्दिनी प्रकट कर रही है, अत: विदा होते समय उन्होंने उस गौको बलपूर्वक ले जाना चाहा। उन्होंने तो वशिष्ठसे गौ मांगनेकी शिष्टता भी नहीं की।

जब ब्रह्मर्षि वशिष्ठने देखा कि विश्वामित्र बल प्रयोग करना चाहते हैं तो वे अपना कुशोंसे बना ब्रह्मदण्ड लेकर अपनी गौके पास खड़े हो गये। वह ब्रह्मदण्ड अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। विश्वामित्र या उनके सैनिक वशिष्ठके समीप जानेका साहस नहीं कर सके। उनके सब वाण तथा दूसरे शस्त्र जो प्रयोग किये गये, ब्रह्मदण्डसे टकराकर भस्म बन गये।

'क्षत्रिय बलको धिक्कार है ! ब्रह्म बल ही सच्चा बल है !' यह कहकर

विश्वामित्र वहाँसे लौटे। उन्होंने इसी जीवनमें ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया। राज्य पुत्रोंको देकर वे वनमें तप करने चले गये।

अत्यन्त कठिन तप करके विश्वामित्रजीने ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया। जब हंसवाहन सृष्टिकर्ताने आकर बरदान माँगनेको कहा तो विश्वामित्रने माँगा—'मैं इसी शरीरमें ब्रह्मर्षि हो जाऊँ।'

ब्रह्माजी बोले—'गायत्रीका दर्शन करके तुम ऋषि तो हो गये हो, किन्तु ब्रह्मर्षि तब होगे जब वशिष्ठ तुम्हें ब्रह्मर्षि स्वीकार करलें।'

विश्वामित्रजी वशिष्ठजीसे मिलने गये तो वशिष्ठने उनको 'राजर्षि' कहकर पुकारा। क्रोधमें आकर विश्वामित्रने फिर तपस्या करके अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये, किन्तु वे दिव्यास्त्र वशिष्ठजीको मार नहीं सके। वे भी वशिष्ठके ब्रह्मदण्डसे टकराकर तेजहीन हो गये।

विश्वामित्र पुन: तपमें लगे, किन्तु अप्सरा मेनकाने उन्हें मोहित करके विचलित कर दिया। उससे एक पुत्री शकुन्तला हो जानेपर विश्वामित्र सावधान हुए। इस बार तप करके वे नवीन सृष्टि ही बनाने लगे। अनेक अन्न, पशु, वृक्षादि उन्होंने बनाये। जब मनुष्य बनाने लगे, तब ब्रह्माजीने आकर रोका—'यह प्रयास बन्द करो। वशिष्ठकी स्वीकृतिके बिना तुम ब्रह्मर्षि नहीं हो सकते।'

ब्रह्माजीने विश्वामित्र द्वारा बनाये पदार्थोंको अपनी सृष्टिका अंग बना लिया। सृष्टिकर्ताके जानेपर क्रोधमें भरे विश्वामित्रने एक राक्षसको उकसाया। उसने वशिष्ठके सौ पुत्रोंमें-से सभीका भक्षण कर लिया।

सभी पुत्रोंके मारे जानेपर महर्षि वशिष्ठको अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उसी समय उनके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिकी पत्नी अदृश्यन्तीके गर्भमें स्थित शिशुने एक ऋचा (ऋग्वेदके मन्त्र) का उच्चारण किया। जब पता लगा कि पुत्रवधूके गर्भस्थ शिशुने ऋचा बोली है, तब वशिष्ठजी पत्नी तथा पुत्रवधूके साथ आश्रम लौट आये।[1] वह गर्भस्थ बालक उत्पन्न होनेपर पराशर नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यह सब हुआ, इतना दु:ख, सब पुत्र मारे गये, किन्तु महर्षि वशिष्ठको क्रोध नहीं आया। उन्होंने विश्वामित्रको न शाप दिया, न उनका द्वेष मनमें

---

१. यह कथा तथा पराशरका वर्णन 'शिव-चरित' में आया है।

आने दिया। दूसरी ओर विश्वामित्रको इतना विनाश करके भी कोई लाभ नहीं हुआ। वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि कहनेको उद्यत नहीं थे। इस कारण अत्यन्त क्षुब्ध विश्वामित्रने छिपकर वशिष्ठको मार डालनेका निश्चय किया। वे अस्त्र-शस्त्र लेकर रात्रिमें वशिष्ठके आश्रम आये और लताकुञ्जमें आघातका अवसर पानेकी प्रतीक्षामें छिपकर बैठ गये।

चाँदनी रात्रि थी। महर्षि वशिष्ठ रात्रिके प्रथम प्रहरमें पत्नीके साथ कुटीसे बाहर एक वेदीपर बैठे थे। देवी अरुन्धतीने कहा—'कैसी निर्मल धवल चन्द्रिका है।'

वशिष्ठ—'यह दिशाओंको वैसी ही उज्ज्वल कर रही है, जैसे आजकल विश्वामित्रका तपःतेज।'

छिपे बैठे विश्वामित्रने सुना और उनका हृदय पुकार उठा—'एक यह महापुरुष है कि मेरे जैसे शत्रुकी—उस शत्रुकी जो इसके सौ पुत्रोंका हत्यारा है, एकान्तमें पत्नीसे प्रशंसा कर रहा है और एक मैं अधम हूँ कि रात्रिमें धोखेसे उसकी हत्या करने आया हूँ। धिक्कार है मुझे!'

विश्वामित्रने सब अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और दौड़कर वशिष्ठके चरणों पर 'क्षमा! क्षमा!' पुकारते गिर पड़े। महर्षि वशिष्ठने आदरपूर्वक उन्हें उठाकर हृदयसे लगाते हुए कहा—'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र! आप यहाँ इस समय?'

विश्वामित्र निहाल हो गये। उनके प्राण परितृप्त हो गये। रुदनका वेग शान्त होनेपर उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन्! आपने मुझे सदा राजर्षि कहा, आज क्या हो गया कि आपके श्रीमुखसे मुझे ब्रह्मर्षि सम्बोधन प्राप्त हुआ?'

वशिष्ठ—'आप ऋषि तो हैं ही। लेकिन शस्त्र-ग्रहण और अभीष्टको शस्त्र-बलसे प्राप्तिका प्रयत्न क्षत्रियका धर्म है। जबतक आप उस रूपमें थे, मैं आपको राजर्षि न कहता तो कहता क्या? उसे त्यागकर आपने जब यह ब्राह्मणोचित क्षमा धारण की, ब्रह्मर्षि तो हो ही गये। मैंने आपको ब्रह्मर्षि कहकर कोई आपपर उपकार तो किया नहीं।'

तभीसे विश्वामित्रजीने अस्त्र-त्याग कर दिया। वे भी किसीको शाप न देनेका व्रत लेकर परम शान्त हो गये। वे गंगा-तटपर आश्रम बनाकर रहने लगे।

परम तपस्वी, परम शान्त, अमित तेजा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ रघुकुलके—इक्ष्वाकुवंशके कुलाचार्य रहे–तब तक रहे, जब तक मर्यादा पुरुषोत्तमने अवतार धारण करके पृथ्वीको धन्य किया। श्रीरघुनाथके साकेत पधारनेपर वशिष्ठजी पत्नीके साथ अपने सप्तर्षि वाले धाममें जाकर निवास करने लगे। कुशका पौरोहित्य तो वशिष्ठजीके पौत्र महर्षि पराशरने किया।

रावणकी अयोध्यासे शत्रुता

महाराज मान्धातासे पराजित रावणने उन्हें वचन दिया था कि वह अयोध्यापर आक्रमण नहीं करेगा। अपने इस वचनका उसने पालन किया, किन्तु ब्रह्मलोक जाते महाराज अनरण्यको मार्गमें रोककर उसने युद्ध करनेके लिए विवश किया और आहत होकर देह-त्याग करते समय अनरण्यने उसे शाप दे दिया कि मेरा वंशधर तेरा वध करेगा, तबसे रावण अयोध्याकी ओरसे सशंक हो गया।

रावणने जीवनके प्रारम्भमें कठिन तप किया था। उसके तपसे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजीने उसके समीप आकर जब उससे वरदान माँगनेको कहा तो उसने माँगा—'मैं अमर हो जाऊँ। कोई मुझे मार नहीं सके।'

ब्रह्मा—'अमर तो मैं स्वयं नहीं हूँ। मुझे भी द्विपरार्धके अन्तमें मरना पड़ेगा। अतः मैं अमरत्व नहीं दे सकता। जो जन्म लेता है, उसे मरना तो पड़ता ही है। तुम मृत्युके लिए कोई विकल्प स्वीकार करलो।'

'कोई मुझे शाप देकर न मार सके।' रावणने माँगा—'मुझे कोई देवता, उपदेवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव, राक्षस, किन्नर, नाग, पक्षी, पशु, सरीसृप, जलचर न मार सके।'

रावणने बहुत बड़ी सूची बतला दी कि इन सबसे वह न मारा जाय। उसकी सूचीमें अग्नि, जल, बिष आदि सब थे। जिनसे तनिक भी भयकी आशंका थी, उन सबका नाम उसने ले लिया था कि उनसे उसे भय न हो, किन्तु मनुष्यों और वानरोंका नाम उसने नहीं लिया। वह इन दोनोंको बहुत दुर्बल, तुच्छ मानता था। इनसे उसे कोई भय होगा, इसका उसे तनिक भी विचार नहीं था।

'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी चले गये थे और रावण सन्तुष्ट होकर तपोवनसे लौटा था।[1]

जब अनरण्यने शाप दिया—'मेरा वंशधर तेरा वध करेगा।' तब रावण सशंक हो गया। ब्रह्माका वरदान उसे मनुष्योंसे अभय नहीं करता था। अब अनरण्यके शापसे यह निश्चित हो गया कि कोई अयोध्याका अधिपति ही उसको मारनेवाला होगा। इसलिए अयोध्याके नरेशोंकी वह उपेक्षा करे, उसे शत्रु न माने, किन्तु वह तो अयोध्याका शत्रु हो ही गया।

जब महाराज रघु अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हुए, तब रावण अयोध्या आया। संयोग ऐसा बना कि रावण जब अयोध्या पहुँचा, तब महाराज रघु राज्यका निरीक्षण करने गये थे। अपने वचनके अनुसार रावणने अयोध्यापर आक्रमण नहीं किया। उसने द्वारपालके द्वारा सन्देश भेजा—'रघुको कहो कि राक्षसेन्द्र दशग्रीव आया है और उनसे द्वन्द्वयुद्ध चाहता है।'

द्वारपालसे सन्देश सुनकर महामात्य द्वारपर पहुँचे, उन्होंने रावणसे कहा—महाराज इस समय नगरमें नहीं हैं। राक्षसेश्वर किसी दूसरे समय पधारें तो महाराज अवश्य आपकी युद्धेच्छा पूर्ण करेंगे।

महामन्त्रीने मुखसे कुछ कहा नहीं, किन्तु मुस्कराकर जो मुखकी भङ्गिमा बनाली, उसका अर्थ था—'पता नहीं क्यों आपको मरनेकी शीघ्रता है। थोड़ी प्रतीक्षा कर लीजिये!'

दशग्रीव महामन्त्रीकी चेष्टासे चिढ़ गया। उसने कहा—'पृथ्वीपर एक ही चक्रवर्ती सम्राट् है और वह मैं हूँ। रघुसे लौटनेपर कह देना कि वे शीघ्र कर भेजें, अन्यथा उनको युद्धके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।'

रावण तो चला गया, किन्तु जब महाराज रघु लौटे और महामन्त्रीसे उन्होंने रावणके आगमन तथा उसकी गर्वोक्ति सुनी तो क्रोधमें भरकर धनुष चढ़ा लिया। बोले—'मैं उस कदर्प रात्रिचरको अभी कर भेजता हूँ।'

---

१. 'राक्षस राज' में यह कथा विस्तार पूर्वक आ गयी है।

धनुषपर बाण चढ़ाकर मन्त्र प्रयोग पूर्वक लंकाकी दिशामें उन्होंने नारायणास्त्रका प्रयोग कर दिया। उस बाणसे लाख-लाख महाज्वालायुक्त बाण प्रकट हो गये और लंकाके भवन, अट्टालिकाएँ ध्वस्त होने लगीं। नारायणास्त्रका कोई प्रतिकार नहीं है। विरोधका प्रयत्न करनेपर उसका तेज और बढ़ता है। लंकामें 'त्राहि त्राहि' मच गयी।

रावण विद्वान था। अस्त्रज्ञ था। उसने नारायणास्त्रका प्रयोग हुआ है, यह पहिचान लिया! उसने घोषणा करादी—'कोई रथपर न बैठे। कोई किसी प्रकारका अस्त्र-शस्त्र हाथमें लिये न रहे। सब भूमिमें खड़े होकर हाथ उठाकर तत्काल कह दें कि 'हम महाराज रघुकी शरणमें हैं!'

लंकाके सभी शूरवीरोंने इस आज्ञाका पालन किया। स्वयं रावणने ऐसा ही किया। तब वे प्रज्वलित बाण शान्त होकर लौटे, किन्तु इतना होने तक लंकाका आठवाँ भाग नष्ट हो चुका था। राक्षसी सेनाका एक भाग मारा जा चुका था। इस घटनाने रावणको सचेत कर दिया। जब तक महाराज रघु जीवित रहे, वह अयोध्याकी ओरसे निकलनेका भी साहस नहीं कर सका।

रघुके पश्चात् उनके पुत्र अज जब अयोध्या नरेश हुए, तब फिर रावण अयोध्या आया। इस बार जब वह अयोध्या पहुँचा, तब महाराज अज सरयू-स्नान करके जलमें ही खड़े होकर सन्ध्या कर रहे थे। इस बार रावण एक साधारण ब्राह्मणके वेशमें आया था। वह सावधान था कि रघुके समान उनका पुत्र भी क्रुद्ध होकर कोई भयानक प्रयोग न कर बैठे। वह सरयू-किनारे खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगा।

रावणने देखा कि महाराज अजने अचानक हाथमें जल लिया और कोई मन्त्र पढ़कर पश्चिम दिशामें वह जल फेंका। इससे वेद-शास्त्र तथा कर्मकाण्डके परम विद्वान दशग्रीवको आश्चर्य हुआ—'यह तो मध्याह्न सन्ध्याको कोई विधि नहीं है?'

रावण प्रतीक्षा करता रहा। जब सन्ध्या समाप्त करके महाराज जलसे निकले, तब रावण समीप जाकर बोला—'महाराज! प्रातः या मध्याह्न सन्ध्यामें पश्चिम दिशामें जल-निक्षेपकी कौनसी विधि है?'

ब्राह्मण समझकर अजने रावणको प्रणाम किया। बोले—'राजाका

कर्तव्य है कि वह रात-दिन सब समय अपनी पूरी प्रजाकी रक्षाके लिए सतर्क रहे। राज्यके सब प्राणी शासकके द्वारा रक्षणीय हैं। विपत्तिमें पड़े प्राणीकी रक्षा तथा अपराधीको दण्ड न दे, वह शासक पाप-भागी होता है। यहाँसे एक योजन (सात मील) दूर वनमें पश्चिम दिशामें चरती गौपर व्याघ्रने आक्रमण किया तो गायने आर्तनाद किया। मैंने मन्त्रपूत जलसे उस हिंसक पशुको मारकर गोरक्षा की।'

महाराज अजने प्रार्थना की कि ब्राह्मणदेवता राजभवन पधारकर महाराजका आतिथ्य स्वीकार करें, किन्तु रावणने कह दिया--'आपका कल्याण हो। मैं इस समय त्वरामें हूँ।'

वह वहाँसे पश्चिम एक योजन दूर वनमें गया। थोड़ा अन्वेषण करने पर उसे एक मृत व्याघ्र मिल गया। उसका पूरा शरीर वाणोंसे विद्ध हो रहा था। कुछ ही दूर एक गौ चर रही थी।

'अद्भुत हैं अयोध्या नरेश' रावणने मन ही मन प्रशंसा की 'दिव्यास्त्रों का ऐसा ज्ञाता त्रिभुवनमें दुर्लभ है। सन्ध्या करते समय भी सम्पूर्ण राज्यके प्राणियोंका उन्हें पता रहता है। जल बिन्दुओंको जो अधर हिलाकर प्रचण्ड शरोंमें परिवर्तित करके योजन-भरकी दूरीपर अलक्ष्य स्थित व्याघ्रको मार दे सकता है, उसका विरोध करनेवाला मूर्ख होगा।'

रावण वनसे ही लंका लौट गया। अजके जीवनकालमें उसे सतर्क रहना था कि अयोध्यासे कोई खटपट भूलसे भी न हो।

महाराज अजका शरीर युवावस्थामें ही पूरा हो गया। उनके पश्चात् जब महाराज दशरथ अयोध्याके सिंहासनपर बैठे, रावण फिर अयोध्या आया। इस बार नगरसे बाहर ही वह महाराज दशरथसे मिला—'अयोध्या नरेश राक्षसेश्वर दशग्रीवसे अपरिचित नहीं होंगे।' रावणने कहा—'मैं आपसे शस्त्र-रहित द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ।'

रावण समझता था कि रघु अजकी परम्परासे दशरथको भी दिव्यास्त्र सब मिले ही होंगे। अतः युद्धकी चुनौती देकर तो विजयकी आशा की नहीं जा सकती। अभी दशरथजीका विवाह नहीं हुआ था। रावणको आशा थी कि मल्लयुद्धमें दशरथको मार दे सकता है। ऐसा होनेपर अनरण्यका वंश समाप्त हो जायगा और उनका शाप व्यर्थ हो जायगा।

'अपने हीनबलसे लड़ना लोक-निन्दाका कारण होता है।' महाराज दशरथने कहा—'इसलिए पहिले बल-परीक्षण होजाना उचित है। लोगोंको यह अवसर नहीं मिलना चाहिए कि युवक दशरथने वृद्ध रावणको द्वन्द्व-युद्धमें मार दिया।'

इससे रावण बहुत झल्लाया। वह बोला—'तुम जानते हो कि राक्षस कुलके लोग कभी वृद्ध नहीं होते, फिर भी बल-परीक्षण जैसे करना हो, करो। मैं प्रसन्न हूँ।'

'सीधा उपाय है।' महाराज दशरथने कहा—'मैं नगर-द्वारको भीतरसे दोनों हाथोंसे बन्द करके दबा रखता हूँ। शृङ्खला या अर्गला उपयोगमें नहीं आवेगी। आप बाहरसे बल लगाकर खोलिये। यदि आप सफल हो गये तो मैं आपसे मल्लयुद्ध करूँगा।'

'तुम चाहो तो अर्गला, शृङ्खला सब लगा लो।' रावणने हुंकार की—'मेरी भुजाओंमें उनको तोड़ डालनेकी शक्ति है।'

व्यर्थ था रावणका यह गर्व। महाराज दशरथने द्वार बन्द करके केवल हाथोसे उन्हें दबा रखा। रावण बाहरसे द्वारोंको ठेलने लगा। उसके मस्तकसे स्वेद टपकने लगा। पूरी शक्ति लगाकर वह हार गया, किन्तु द्वार हिले तक नहीं। लज्जित होकर महाराज दशरथसे बिना मिले ही वह द्वारके बाहरसे लङ्का लौट गया।

'अयोध्याके नरेश भी सब अद्भुत होते हैं।' रावणको अब फिर दशरथके राज्यकाल तक भी प्रतीक्षा ही करनी थी। वह अयोध्यासे छेड़छाड़ करनेका साहस नहीं कर सकता था। 'अस्त्रज्ञानमें त्रिभुवनमें इनकी समता नहीं है और शरीरबलमें भी ये मुझ राक्षसेश्वरसे किञ्चित भी कम नहीं हैं।'

जो बल-परीक्षण पद्धति थी उसके द्वारा यह पता नहीं लग सकता था कि दशरथजीमें कितना बल है। उसके द्वारा तो केवल यह सिद्ध हुआ कि रावण उनका समबल नहीं है।

———

दशरथ-विवाहमें रावण द्वारा बाधा

अयोध्या आकर रावण बार बार पराजित हुआ था। वह ज्योतिषका भी परम विद्वान् था। अपनी आयुके सम्बन्धमें भी उसने गणना की थी। लगभग एक मन्वन्तर उसका राज्यकाल था, किन्तु भोग-तृष्णा कहीं सन्तुष्ट तो होना नहीं जानती। बहत्तरवीं चतुर्युगी चल रही थी रावणको राज्य करते हुए और उसका गणित कहता था कि अब उसका मरण-काल समीप आ रहा है; किन्तु ज्योतिषको, ग्रह-गणितको, प्रारब्धके तथा ब्रह्माके भी विधानको मिथ्या कर देनेका उसने निर्णय कर लिया था। अब यह तो वह समझ चुका था कि अयोध्याके ही किसी रघुकुलके व्यक्तिके हाथसे उसकी मृत्यु होनी है। लेकिन वह कौन होगा? पहिले पता लग जाय तो छलबलसे चाहे जैसे उसे मारकर रावण निश्चिन्त हो जाना चाहता था।

'मेरी मृत्यु किसके द्वारा होगी?' एक दिन रावण सीधे ब्रह्मलोक चला गया और उसने ब्रह्माजीसे पूछा।

'अयोध्याके वर्तमान नरेश महाराज दशरथकी ज्येष्ठा राज्ञीका पुत्र तुम्हें मारेगा।' ब्रह्माजीने रावणकी ओर देखा और बतला दिया। उनके पास समय नहीं रहता। सृष्टिके काममें वे बहुत व्यस्त रहते हैं। अतः चाहते थे कि रावण झटपट चला जाय उनके समीपसे।

'दशरथकी बड़ी रानी कौन होगी?' रावणने दूसरा प्रश्न किया। दशरथका बल वह देख चुका था। यदि उन्हें मार न सके तो किसी कन्यासे उनका विवाह तो रोक ही सकता है।

'दक्षिण कौसलकी राजकुमारी कौसल्या।' ब्रह्माजीने ऊबे हुए स्वरमें उत्तर दिया।

रावण अट्टहास करके हँसा—'क्या हुआ कि आप अपनी काल-गणनासे केवल पचास वर्षके हुए हैं, किन्तु अब सोचकर नहीं बोल पाते। मैं कौसल्याका विवाह दशरथसे कदापि नहीं होने दूंगा।'

'प्रयत्न कर देखो !' ब्रह्माजीने तनिक व्यंगपूर्वक कहा—'यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम्हें मारनेवाला उत्पन्न नहीं होगा। लेकिन मेरा विधान टला नहीं करता।'

'मैं उसे टाल दूंगा !' रावणने चुनौती दी—'आपके इस विधानको टालनेके पश्चात् आपको हटाकर दूसरेको ब्रह्मा बनाऊँगा। आपको अब कार्य-निवृत्त किया जाना चाहिए।'

ब्रह्माजी हँसकर अपने कार्यमें लग गये। रावण वहाँसे सीधे अयोध्या आया। उसे पता लग गया कि दक्षिण कौसल[1] नरेशका अपनी कन्या कौसल्याके विवाहके लिए नारियल अयोध्या आ चुका है और यहाँ विवाह यात्रासे पूर्वका उत्सव, मंगल-कार्य चल रहा है।

रावण आकाश-मार्गसे अदृश्य रहता हुआ अयोध्या पहुँचा था। उसने देखा कि महाराज दशरथ एक सुसज्जित नौकापर मन्त्री सुमन्त्र तथा अन्य लोगोंके साथ सरयूमें जल विहार करने निकले हैं। अनेक दूसरी नौकाएँ उनकी नौकाके चारों ओर हैं। उन नौकाओंपर नृत्य-संगीत चल रहा है।

आषाढ़ मासका प्रारम्भ होनेपर भी सरयूमें पर्याप्त जल बढ़ गया है। अभी वर्षासे बाढ़ नहीं आयी, जल निर्मल है, किन्तु हिमालयमें ग्रीष्म-तापसे हिम गलनेका प्रभाव पूरा पड़ा है। उसने प्रबलतम अन्धड़ उत्पन्न कर दिया। बिना किसी पूर्व लक्षणके एक क्षणमें आकाश धूलिसे भर गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। नीचे सरयूमें जितनी नौकाएँ थीं, उन सबको रावणने उस अन्धकार, अन्धड़का लाभ उठाकर डुबा दिया।

नौकाओंपर जो लोग थे, उनमें-से कुछ डूब गये। कुछ किसी प्रकार तैरकर किनारे भी लगे, किन्तु महाराज दशरथ तथा मन्त्री सुमन्त्रका पता नहीं था। अन्धकारके कारण रावण भी उन्हें देख नहीं सका। उसने मान लिया कि दशरथ डूब गये।

अन्धड़ जब रुका, प्रकाश हुआ, रावण जा चुका था। अयोध्यामें आर्त्तनाद गूंजने लगा—'महाराजका पता नहीं है। वे जलमें डूब गये।'

समाचार पाकर महर्षि वशिष्ठ आये। अपने यजमानकी रक्षाका उन

---

१. आजकल दक्षिण कौसलको छत्तीसगढ़ कहा जाता है। रायपुर, विलासपुर, दुर्ग जिले इसके अन्तर्गत आते हैं।

पर दायित्व है। जिस कुलके वे पुरोहित हैं, वह इस प्रकार समाप्त हो जाय, यह उनके लिए असह्य है। उन्होंने सरयू-तटपर आसन लगाया। कुछ क्षण ध्यान करके उठे तो मन्त्रियोंसे बोले—'चिन्ताकी बात नहीं है। यह उत्पात लङ्काके अधिपति दशग्रीवने किया है, किन्तु महाराज सकुशल हैं। सुमन्त्र उनके साथ हैं। अब वे महारानीको लेकर लौटेंगे। हुआ केवल यह कि उनकी बारात नहीं जा सकेगी। उनके लौटनेपर दक्षिण कौसल-नरेश यहीं आकर कन्यादान करेंगे। सब मन्त्री और सेनापति सावधान होकर राज्यकी, नगरकी रक्षा करें। यह बात प्रकट मत करो कि महाराज पुरोमें नहीं हैं।'

मन्त्रियोंने यह बात दबा दी कि महाराजका पता नहीं है। लोगोंने समझा कि दूसरे बचे लोगोंके समान महाराजभी तैरकर कहीं तटपर लग गये हैं और सम्भवतः भीगनेसे अथवा आहत होनेसे राजभवनमें ही हैं। उनका उपचार होता होगा, अतः विवाहका उत्सव इस समय स्थगित कर दिया गया है।

मन्त्रियोंने घोषणा करा दी—'रघुकुलके सर्वज्ञ कुलगुरुका आदेश है कि महाराजके विवाहके ठीक पूर्व जो दुर्घटना हुई है, उसके कारण इस अपशकुनको देखते महाराज विवाह-यात्रा नहीं करेंगे। दक्षिण कौसल-नरेश समयपर यहीं पधारकर कन्यादान कर देंगे। उन्हें समाचार दिया जा रहा है।'

महाराज दशरथ नौका उलटनेसे जलमें डूब गये थे। उन्होंने हाथ-पैर मारे और ऊपर आये तो उन्हें एक छोटी नौका उलटी मिल गयी और समीपसे ही सुमन्त्रकी पुकार सुनाई पड़ी—'महाराज ! महाराज !!'

सुमन्त्र भी डूब गये थे और प्रयत्न करके जलके ऊपर आये थे। संयोग ऐसा था कि वे भी उसी छोटी नौकाको पकड़े थे जो उलटी थी और जिसके दूसरी ओर महाराज थे। महाराजने स्वर पहिचानकर कहा—'सुमन्त्र ! इस नौकाको सीधा करनेका प्रयत्न करो !'

दोनोंके प्रयत्नसे नौका सीधी हो गयी, किन्तु वह भी टूट चुकी थी। अब वह नौका न रहकर लकड़ीका तख्ता मात्र थी। दोनों उसके ऊपर चढ़ कर बैठ गये। इतना सब करनेमें वे अयोध्यासे बहुत दूर बह चुके थे। सरयूकी धाराका वेग प्रबल था और रात्रिका अन्धकार हो चुका था। दोनों बहुत अधिक श्रान्त हो चुके थे। दोनोंके वस्त्र भीगे थे, किन्तु आषाढ़में

यह भीगना कष्टदायक नहीं था। वस्त्र शीघ्र सूख गये। दोनों उस भग्न नौकापर बैठे रहे।

कभी-कभी आपत्तियाँ एक साथ आती हैं। महाराज दशरथ और सुमन्त्र आशा करते थे कि प्रातःकाल वे कहीं तटपर लग सकेंगे अथवा तटपर स्नान करने आये लोगोंमें-से किसीकी सहायता उन्हें उपलब्ध हो जायगी। ऐसा कुछ नहीं हुआ। प्रातः सूर्योदय होनेसे पूर्व ही गगन मेघोंसे आच्छन्न हो गया। वायुने झंझाका रूप ले लिया। ऐसे दुर्दिनमें भला कौन सरिता-तट आता। सरयूमें बहते हुए दोनों सरयूकी धाराके साथ गङ्गामें पहुँच गये। गङ्गामें बाढ़ आ रही थी। उनका वेग प्रचण्ड था। अतः तटपर पहुँचने अथवा सहायता मिलनेकी सम्भावना ही समाप्त हो गयी।

दोनोंको तब जलसे बाहर आनेका अवसर मिला, जब गङ्गा-सागर-सङ्गमसे पूर्व जलका वेग शिथिल हुआ। वे उस सागर-द्वीपमें किसी प्रकार अपनी भग्न नौकाको तटसे लगाकर नीचे उतरे।

तीन-चार दिन बिना आहारके जागते हुए व्यतीत हुए थे। महाराज दशरथ और सुमन्त्र दोनोंने स्नान तक नहीं किया था। केवल जल पीकर, जलके छींटे शरीरपर डालकर समयपर दोनों तीनों समय सन्ध्या करते रहे थे। अब गगन स्वच्छ था। दोनोंने स्नान किया, सन्ध्या-तर्पण किया। किसी प्रकार इतना करके महाराज दशरथ वहीं भूमिपर लेट गये।

सुमन्त्र भी कम श्रान्त नहीं थे, किन्तु अपने महाराजकी यह स्थिति उनको कुछ करनेको उत्तेजित कर रही थी। उन्होंने कहा—'महाराज! यह वन है। यहाँ जलचर और वनचर दोनों हिंसक पशु हो सकते हैं। आप सावधान रहें। मैं देखता हूँ कि आहारके योग्य वनमें कोई फल या कन्द मिल सकता है या नहीं। कदलीवृक्ष दीख रहे हैं। यदि उनमें पक्व फल न भी मिलें तो उन्हें अग्नि-पक्व करनेका प्रयत्न करूँगा।'

सुमन्त्र फल तथा शुष्क इन्धन ढूँढ़ने निकल गये। महाराज दशरथ भी थोड़े क्षण विश्राम करके उठे और गङ्गाकी दो शाखाओंके मध्य बने उस द्वीपपर थोड़े टहलने निकल गये। वे भी फल या कन्द ढूँढ़ना चाहते थे। वह द्वीप बड़ा नहीं था। भटक जानेका कोई भय नहीं था। दोनों अवसर आनेपर दूसरेको पुकार ले सकते थे।

थोड़ी दूर जाकर जहाँ वह द्वीप समुद्रसे मिलता था, महाराज दशरथ ने द्वीपकी भूमिपर सागर-तटपर एक बड़ी मञ्जूषा देखी। मञ्जूषा (सन्दूक) बहुत सुदृढ़ थी और उसमें एक व्यक्ति सो सके, बैठ सके, इतनी बड़ी थी। महाराज दशरथ कुतूहलवश उसे इधर-उधरसे देखने लगे। उस निर्जन स्थानमें उस मञ्जूषाकी उपस्थिति आश्चर्यजनक थी। महाराजने उसे खोलनेका प्रयत्न किया और जब सफल नहीं हुए, सुमन्त्रको पुकारा।

महामन्त्री सुमन्त्रने कुछ कच्चे केले तथा कुछ सूखी टहनियाँ एकत्र करली थीं। उन्होंने आग्नेय पाषाण (चकमक) भी ढूंढ़ लिया था। महाराजकी पुकार सुनकर सब एकत्र सामग्री लेकर वे उनके समीप आ गये।

सुमन्त्र और महाराज दशरथ दोनोंके सम्मिलित प्रयत्नसे मञ्जूषा खुली तो दोनों चकित रह गये। उसमें-से एक अत्यन्त सुन्दर कुमारी कन्या निकली। उसके वस्त्र, आभूषणादिसे लगता था कि विवाहकी पूर्व-मंगल क्रियाके मध्यसे किसीने उसका हरण किया है। वह कुमारी मञ्जूषासे निकल आयी, किन्तु लज्जापूर्वक संकुचित खड़ी रही। वह भयभीत भी लगती थी। मञ्जूषामें भोजन-सामग्री एवं पेयजल भी पर्याप्त सुरक्षित था।

'देवि! मैं अयोध्या नरेशका मन्त्री सुमन्त्र हूँ।' मन्त्रीने अपना परिचय दिया—'आप देखती ही हैं कि यहाँ हम भी विपत्तिके मारे ही पहुँचे होंगे। अतः आपत्तिकालमें लज्जा उचित नहीं। आप कौन हैं? इस मञ्जूषामें क्यों हैं? किसने आपको इसमें अवरुद्ध किया। अपना परिचय दें और विश्वास करें कि हम प्राण देकर भी आपकी सहायता करना चाहेंगे।'

'मैं दक्षिण कौसलकी राजकन्या कौसल्या हूँ।' उस कुमारीने कहा—'नहीं जानती कि किसने मुझे स्वजनोंसे पृथक् किया। किसी मायावीकी मायासे निद्रित हो गयी। निद्रा भंग हुई तो अपनेको इस मञ्जूषामें बन्दी पाया। यह बहुत समय तक हिलती रही, जैसे कहीं ले जायी जाती हो। स्थिर होनेके कुछ क्षण उपरान्त ही आप दोनोंके दर्शन हुए हैं।'

'ये अयोध्या नरेश महाराज दशरथ हैं।' सुमन्त्रने अब तक जान-बूझकर महाराजका परिचय नहीं दिया था। परिचय पाते ही उस कुमारीने लज्जापूर्वक मुख छिपा लिया।

'हम दोनों सरयूमें नौकापर थे, जब कि झञ्झावातके कारण नौका डूब गयी। एक भग्न नौकाका आश्रय मिल गया। यहाँ तक धारामें बहते

पहुँचे हैं। यह भगवदीय विधान ही है कि यहाँ मैं अपनी होनेवाली साम्राज्ञीके दर्शन कर रहा हूँ।' सुमन्त्रने संक्षिप्त परिचय दिया।

'महाराज ! जिसने भी महारानीको मञ्जूषामें बन्दी किया है, वह मञ्जूषा लेने शीघ्र लौट सकता है।' सुमन्त्र अन्ततः अयोध्याके महामन्त्री थे। वे सावधान हो गये—'यहाँ हम दोनों शस्त्रहीन हैं। उससे संग्रामकी बात सोचनेका अवसर नहीं है। अब महारानीको एकाकिनी नहीं छोड़ा जा सकता। उचित यह है कि हम तीनों इसी मञ्जूषामें बैठकर इसे बन्द कर लें, किन्तु कुमारी कन्याके साथ आप सटकर बैठें, यह धर्मतः उचित नहीं होगा। मैं तो आप दोनोंके चरणोंसे सटकर बैठ लूँगा। ये आपकी वाग्दत्ता पत्नी हैं। मैं अग्नि प्रज्वलित करता हूँ। अग्निकी साक्षीमें आप इनका पाणिग्रहण करलें और तब हम मञ्जूषामें बैठें।'

'तुम धर्मज्ञ हो सुमन्त्र !' महाराजने कहा—'देवि ! इस आपत्तिकालमें यही वैवाहिक विधि सम्भव है। इसे स्वीकार करो। विधिपूर्वक विवाह पीछे अयोध्या पहुँचनेपर होगा।'

कौसल्याने सिरके संकेतसे स्वीकृति दे दी। सुमन्त्रने आग्नेय पाषाणों के द्वारा अग्नि-प्रकट करके टहनियाँ जलायीं। अग्निकी साक्षीमें महाराज दशरथने वहीं कौसल्याका पाणिग्रहण किया। संक्षिप्त रूपमें यह क्रिया सम्पन्न करके तीनों उस मञ्जूषामें बैठ गये और उसे बन्द कर लिया। मञ्जूषामें जो आहार था, उससे महाराज दशरथ तथा सुमन्त्रने क्षुधा शान्त की।

लंकाधिप रावण अयोध्यासे दक्षिण कौसल गया था। वहाँ उसने मायाके द्वारा सबको निद्रित करके राजकुमारी कौसल्याका हरण कर लिया। राजकुमारीको मञ्जूषामें बन्द करके लङ्का ले जा रहा था। मार्गमें उसे ध्यान आया कि अयोध्यासे उसकी शत्रुता है। उसपर सन्देह किया जा सकता है और तब वशिष्ठ अपने योगबलसे वहाँ पहुँच सकते हैं। उसने वह मञ्जूषा समुद्रमें स्थित अपने एक मित्र तिमिंगलको[1] थोड़े समय सुरक्षित रखनेके लिए दे दी।

---

१. तिमि आजकल ह्वेलके नामसे जाना जाता है। उस समय उसे भी निगल लेनेवाले महामत्स्य सागरमें थे। उन्हें तिमिंगल कहते थे।

रावण मञ्जूषा देकर ब्रह्मलोक गया। उसने ब्रह्मासे कहा—'आपका विधान मैंने मिटा दिया। अयोध्याका राजा दशरथ जलमें डूब गया। कौसलकी राजकन्या मेरे मित्र तिमिंगलके मुखमें सुरक्षित है।'

ब्रह्माजी हँसे—'तुम जाकर अपनी मञ्जूषा देखो, किन्तु कुछ दिन और जीवित रहना हो तो दशरथ-कौशल्याको अयोध्या लौटा देना। अन्यथा उनके रक्तके मिलनसे कोई उत्पन्न होकर तुम्हें मार दे सकता है।'

रावण ब्रह्मलोकसे लौटा। समुद्रमें अपने मित्र तिमिंगलको पुकारकर उसने मञ्जूषा माँगी। तिमिंगलने जलके ऊपर आकर कहा—'मुझसे युद्ध करने एक प्रबल शत्रु आ गया था। युद्धमें आपकी मञ्जूषा क्षतिग्रस्त न हो, इस भयसे मैं उसे गङ्गासागर संगमपर सागर-द्वीपमें रख आया हूँ। अपने शत्रु तिमिंगलको मैंने अभी-अभी पराजित करके भगाया है। आप मेरे साथ चलकर मञ्जूषा ग्रहण कर लें।

रावण उस स्थान तक आया। मञ्जूषा देखकर उसने तिमिंगलको लौटा दिया। मञ्जूषा बिना खोले ही उसमें-से आते मनुष्योंका शब्द उसने सुन लिया। सावधानी-पूर्वक मञ्जूषा खोलकर एक झलक देख उसे उसने बन्द कर दिया और मञ्जूषा लेकर आकाश-मार्गसे उड़ा। इस बार उसने ब्रह्माजीका आदेश स्वीकार कर लिया था। अयोध्याके समीप वनमें वह उतरा। मायाके द्वारा मञ्जूषामें बन्द तीनोंको निद्रित करके, मञ्जूषासे निकालकर भूमिपर लिटाया और उसने मञ्जूषा सरयूमें फेंक दी।

रावण लङ्का लौट गया। माया-निद्रासे तीनों सचेत हुए तो सुमन्त्र पहिले अयोध्या गये। उनसे समाचार पाकर नागरिक, मन्त्री हर्ष-पूर्वक आये। रथमें बैठकर महाराज दशरथ कौसल्याजीके साथ नगरमें पहुँचे।

समाचार पाकर दक्षिण कौसल-नरेश बन्धु-बान्धवों सहित अयोध्या आये। अयोध्यामें ही विधि-पूर्वक उन्होंने अपनी कन्याका विवाह महाराज दशरथसे किया।

अयोध्याके विरुद्ध रावणका व्यूह

अयोध्याके समीप वनमें मञ्जूषासे महाराज दशरथ, सुमन्त्र तथा कौसल्याको छोड़कर रावण लौटा तो उसे इस बातका निश्चय हो चुका था कि दशरथके पुत्रके हाथों उसकी मृत्यु होनी है। सृष्टिकर्ताके विधानका अविचल रहना वह देख चुका था। दशरथके विवाहको रोकनेमें विफल हो चुका था। अब उसे अपनी सुरक्षाकी चिन्ता करनी ही थी।

अयोध्यापर आक्रमण न करनेके लिए रावण वचनबद्ध था। अपना वचन तोड़नेमें भी भय ही था। वह देख चुका था कि दशरथ उससे बलवान हैं और रघु एवं अजके दिव्यास्त्र तो उनके समीप होंगे ही। ऐसी अवस्थामें वह स्वयं युद्ध नहीं करेगा। उसका वध करना हो तो अयोध्याके राजा या राजकुमारको लङ्कापर चढ़ाई करनी पड़ेगी। इस दृष्टिसे अपनी सुरक्षा दृढ़ करना आवश्यक था।

भगवान् परशुराम यदि पुनः क्षत्रिय-संहार करते ? लेकिन वे संघर्ष त्यागकर दक्षिण-भारतमें ही महेन्द्राचलपर तपस्यामें लग गये थे। परशुराम भगवान् शङ्करके आराधक एवं शिवके शिष्य थे। उन्होंने कभी देवताओंके पक्षमें होकर दैत्य, दानव, राक्षसोंका विरोध नहीं किया। केवल क्षत्रियोंसे उनकी शत्रुता थी। रावणको उनसे कोई भय नहीं था। लेकिन परशुरामजीको वह उभाड़ भी नहीं सकता था। उनसे किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न की जाय, इसीमें कुशल थी।

परशुरामजी जैसे परम प्रचण्ड पुरुषपर सतर्क दृष्टि रखना भी आवश्यक था। स्वयं परशुराम लङ्काके विरुद्ध नहीं होंगे, किन्तु कोई उनको उत्तेजित करदे तो ? ऐसा कौन कर सकता है ? इसपर रावणने विचार किया। उसे एक ही व्यक्ति ऐसे लगे—ब्रह्मर्षि विश्वामित्र। विश्वामित्र भले क्षत्रिय रहे हों, अब ब्राह्मण हो चुके हैं। परशुरामके पिता महर्षि जमदग्निके सगे मामा हैं। वे स्वयं भी महातेजा, प्रचण्ड क्रोधी हैं और अस्त्रज्ञानमें अद्वितीय हैं। उनके समीप सम्भवतः परशुरामसे भी अधिक दिव्यास्त्र हैं।

विश्वामित्रजीकी अयोध्याके कुलगुरुसे जो प्रबल शत्रुता थी, वह समाप्त हो चुकी थी। रावणको विश्वामित्र ही सबसे अधिक आशङ्का करने योग्य लगे। उसने ताड़काको उसके दोनों पुत्रों मारीच और सुबाहुके साथ प्रबल राक्षसी सेना देकर विश्वामित्रके सिद्धाश्रमके समीप वनमें नियुक्त किया।

'इतना उत्तेजित मत करना कि विश्वामित्र शाप दे दें अथवा तुम लोगोंको और लङ्काको नष्ट करनेके प्रयत्नमें लग जायँ।' रावणने सावधान किया—'विश्वामित्र बहुत क्रोधी हैं। अत्यन्त हठी हैं। उनको इतना ही तंग करते रहो कि वे सिद्धाश्रम छोड़कर कहीं हिमालयमें चले जायं। उनका जनपदमें रहना भयप्रद है। वशिष्ठ कभी उन्हें बुला सकते हैं। कोई ऋषि-मुनि उनसे हमारे विरुद्ध सहायता माँग सकता है और वे अयोध्याके पक्षमें परशुरामको भी उत्तेजित कर सकते हैं।'

विश्वामित्रकी गति-विधिपर सतर्क दृष्टि रखनेका आदेश रावणने अपने सेवकोंको दिया। विश्वामित्र अयोध्या अथवा दक्षिण-भारतकी ओर चलें तो तत्काल रावणको सूचना मिलनी चाहिए, यह आदेश भी दिया उसने।

महर्षि अगस्त्य दक्षिणमें ही आश्रम बनाकर बस गये थे। जो समुद्र पी लेनेमें समर्थ हो, उससे शत्रुता करनेका साहस तो नहीं किया जा सकता। अगस्त्य देवताओंके मित्र थे, किन्तु उनको हटानेका कोई उपाय नहीं था। अगस्त्यके कारण उनके बड़े भाई, मतंग और अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्णने भी वनमें आश्रम बना रखे थे। इनके कारण ऐसी आश्रमोंकी श्रृङ्खला बन गयी थी कि अयोध्यासे कोई चले तो वह इन ऋषि आश्रमोंमें आश्रय लेता दक्षिण-भारत तक पहुँच सकता था।

रावणने अपनी सुरक्षापर दृष्टि डाली तो उसे विपक्षीको मिल सकनेवाली सुविधाएँ भी दृष्टि पड़ीं। उत्तर-भारतके वनोंमें ऋषि-मुनियोंके आश्रम बहुत अधिक थे। अयोध्यासे जो लङ्काकी ओर चलेगा, उसे प्रयागमें भरद्वाज मिलेंगे। वनमें प्रवेश करते ही वाल्मीकि ओर चित्रकूटमें अत्रि। लेकिन इन आश्रमोंके विरुद्ध कुछ करनेका अर्थ अयोध्या-नरेशको आक्रमणके लिए उत्तेजित करना था। ऋषि-मुनियोंकी रक्षा तो उनके लिए अपने नगरकी रक्षासे भी महत्वपूर्ण थी।

रावणको एक आश्वासन था कि अत्रिआश्रमके आगे ही विराध स्वयं रहने लगा था। उसने अत्रिआश्रमसे आगे इधरके ऋषि-मुनियोंका बढ़ना अशक्य बना दिया था। विराध अकेला ही सहस्रों राक्षसोंसे अधिक प्रचण्ड था; किन्तु विराधके स्थानके आगे मुनि शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, और अन्तमें परशुराम—यह क्रम तो भारतके दक्षिण तक बन गया था।

इसमें केवल कबन्ध था अगस्त्य तथा मतङ्गाश्रमके मध्य, किन्तु अकेले उसपर निश्चिन्त नहीं रहा जा सकता था। जनस्थान बना डाला था इन ऋषि-मुनियोंने दण्डकारण्यको। जबकि दण्डकारण्यका बड़ा भाग रावणका था। मन्दोदरोके पिता दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्रीके दहेजमें पृथ्वीपर-का यह भाग मयराष्ट्र (अब महाराष्ट्र) रावणको दे दिया था। अब तक रावणने इस अरण्यकी उपेक्षा की थी। अब उसे यह अपनी सुरक्षाके लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

अपनी बहिन सूर्पणखाको रावणने इस प्रदेशका शासन दिया। विधवा बहिनकी सहायताके लिए खर, दूषण, त्रिशिरा—ये तीन बहुत बलवान, अस्त्रज्ञ, क्रूर सेनापति तथा भारी राक्षस सेना प्रदान की।

'इस प्रदेशमें जो बहुत तेजस्वी प्रधान ऋषि हैं—अगस्त्य, अगस्त्यका भाई, सुतीक्ष्ण, मतङ्ग आदि उनसे दूर रहना। उनके आश्रमोंमें रहनेवाले तथा दूसरे ऋषि-मुनियोंको अवसर देखकर भक्षण कर लिया करो।' रावणने समझाया—'इन सबोंकी संख्या घटाते रहना है। इतना आतङ्क रखना है कि दूसरे इधर आकर आश्रम बनानेका साहस न करें। ये ऋषि-मुनि बहुत हठी होते हैं। जहाँ आश्रम बना लेते हैं, हटनेका नाम नहीं लेते। अतः अपने प्रदेशको धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे अधिकृत करना है। किसी तेजस्वीको इतना तङ्ग मत करो कि वह शाप दे। उसके आश्रमसे बाहर निकलने वालोंपर दृष्टि रखो। उनको लौटनेका अवसर मत दो।'

रावणने विशेष सावधान किया—'उत्तर-भारतसे आकर कोई कहीं नवीन आश्रम न बना ले, यह सावधानी रखनी है। कोई आ ही जाय तो उसे समाप्त कर देने अथवा भगा देनेका प्रयत्न करना चाहिए। सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, मतङ्ग, परशुरामके समीप न जायँ, परस्पर भी न मिल सकें, अपने आश्रममें रहनेमें ही सुरक्षा मानें, इतना आतङ्क अवश्य बनाये रखो।'

रावणने किष्किन्धाके वानर अधिपति बालिसे मित्रता कर ली थी।

बालि अत्यन्त बलवान् था, किन्तु रावण उधरसे निश्चिन्त रह सकता था। बालिसे उसकी सन्धि थी—'परस्पर एक दूसरेके शत्रुकी सहायता नहीं करेंगे।'

बालि महत्वाकांक्षी नहीं था। उसे राज्य बढ़ाने अथवा दिग्विजयी कहलानेका व्यसन नहीं था। वह वानराधिप होकर सन्तुष्ट था। देवताओं तथा ऋषियोंमें बालिकी श्रद्धा थी। अतः रावण बालिसे अधिक आशा नहीं कर सकता था। बालिको पराजित करने जाकर तो रावण स्वयं पराजित होकर उस वानरेन्द्रके यहाँ बन्दी रह चुका था। इतना ही बहुत था कि बालिने वचन दे दिया था कि वह लङ्काके किसी शत्रुकी सहायता नहीं करेगा।

सिद्धाश्रमके समीप मारीच, सुबाहुके साथ ताड़काके नेंतृत्वमें राक्षसी सेना और दण्डकारण्यमें सूर्पणखाके साथ खर-दूषण ससैन्य—यह व्यवस्था रावणने की। विराध और कबन्ध उसे निसर्ग सहायक मिल गये थे। उसने जान बूझकर सिद्धाश्रम तथा दण्डकारण्यमें भी राक्षसी सेनाका प्रधान राक्षस स्त्रियोंको बनाया था।। ताड़का और सूर्पणखा भी अत्यन्त क्रूर थीं। किसी भी बलवान राक्षससे अधिक बलवती थीं। साथ ही उनके स्त्री हानेका यह लाभ था कि आर्य योधा तथा ऋषि-मुनि भी स्त्रियोंको रक्षणीय मानते थे। वे स्त्रीपर शस्त्र उठाने अथवा उसे शाप देनेमें बहुत संकोच करते थे।

सूर्पणखा तो अत्यन्त मायाविनी भी थी। वह इच्छानुसार रूप धारण करनेमें निपुण थी। विद्युज्जिह्व जैसे क्रूर, समर्थ दैत्यकी वह विधवा अपने मृत पतिसे कम शक्तिशालिनी नहीं थी। पतिकी मृत्युके पश्चात् तो वह बहुत चिड़चिड़ी, क्रूरा और प्रायः सबके प्रति निर्दय हो उठो थी। उसे दण्डकारण्य में नियुक्त करके रावणने बुद्धिमानी की थी।

महर्षि मतङ्गने जब परमधाम प्रस्थान किया, रावणको प्रसन्नता ही हुई, किन्तु मतङ्गाश्रममें तब भी ऐसे तपस्वी बचे रहे कि रावणके अनुचर उस आश्रमको घर्षित नहीं कर सके। इसीलिए शबरी इस आश्रममें सुरक्षित रहीं।

रावण जानता था कि गोदावरी तटपर पञ्चवटीके समीप गिरिगुहामें जटायु भी रहते हैं। लेकिन अरुणके वीर्यसे श्येनीमें उत्पन्न इस गीधसे तो

रावण अपना सहायक होनेकी आशा नहीं कर सकता था। जटायुसे रावण को कोई भय भी प्रतीत नहीं हुआ। पीछे भी जब जटायुने महाराज दशरथ की रक्षा करके उन्हें मित्र मान लिया, रावणने जटायुको उपेक्षणीय ही माना। इस वृद्ध गीधसे उसे आशङ्का नहीं हुई।

रावणका निर्णय जटायुके सम्बन्धमें भ्रमपूर्ण था, किन्तु वह एक अत्यन्त प्रचण्ड पक्षीको उद्भासित करनेका प्रयत्न भी करके सफल हो सकता था, यह तो नहीं कहा जा सकता। गीधसे उसका आवास छुड़ा देना सरल नहीं होता। इसलिए रावणकी उपेक्षा स्वाभाविक थी।

सुमित्रा और कैकेयीसे विवाह

महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट् थे। यह चक्रवर्ती साम्राज्य उन्हें अपने पिता, पितामहकी परम्परासे ही प्राप्त हुआ था, किन्तु उस कालमें प्रत्येकको अपने बल-पौरुषसे ही सम्राट् बनना पड़ता था। भारतीय नरेश किसीको भी पराधीन नहीं बनाया करते थे। पृथ्वीमें—भारतमें भी बहुतसे स्वतन्त्र राज्य थे। इनमें-से बहुत तो बहुत ही छोटे थे। कोई भी अपनेको बल-पराक्रममें योग्य माने और उसके पास पर्याप्त सम्पत्ति हो तो वह अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ आरम्भ कर सकता था और यज्ञका अश्व छोड़ सकता था।

यज्ञीय अश्व एक प्रकारकी चुनौती थी—'अपनेको यदि अधिक शक्तिशाली मानते हो तो अश्व पकड़ लो। अन्यथा जिसका अश्व है, उसे कर देकर अपना सम्राट् स्वीकार कर लो।'

अश्व पकड़े जानेपर युद्ध होता था और तब पराजित होनेपर यज्ञ-रक्षकोंके साथ जाना पड़ता था। करमें क्या दिया जाय, यह देनेवालेकी इच्छापर निर्भर था। जो अश्व नहीं पकड़ते थे, वे थोड़ी भेंट करके रूपमें दे देते थे और यज्ञके समय भेंट लेकर उपस्थित होते थे। यह सम्मान प्रदर्शन मात्र था। सम्राट्का उनके राज्य, शासन-प्रबन्धादिपर कोई अधिकार नहीं होता था।

किसीको पराजित करके उसके राज्यपर अधिकार करनेकी बात ही भारतीय मस्तिष्कने नहीं सोची। जो युद्ध करके पराजित होते, उनको भी राज्याधिकार तो बना ही रहता था। जो युद्धमें मारे जाते थे, राज्य उनके पुत्र या स्वजनको देकर विजेता विदा होता था। अतः चक्रवर्ती पदका अर्थ यही था कि दूसरे राजाओंने उसे कर देकर सम्राट् स्वीकार कर लिया है। यह कर भी स्वेच्छा भेंट थी, कोई वार्षिक बन्धन नहीं।

महाराज दशरथने अनेक बार अपने राज्यकालमें अश्वमेध यज्ञ किया था। वे भारतके चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनके इस सम्मानको कभी दशग्रीवने भी चुनौती नहीं दी। वैसे प्रायः नरेशगण उस समय पृथ्वीपर जो उपदेवताओंके राज्य थे, उनको दिग्विजयमें छोड़ देते थे, क्योंकि उपदेवता सम्मान्य थे। नाग, वानर, यक्ष, राक्षस उपदेवता थे। कुछ ही दिग्विजयी नरेशोंने अपने दिग्विजय क्रममें इन जातियोंसे भी कर लेना आवश्यक माना।

महाराज दशरथने अश्वमेध यज्ञ किया। उनके अश्वको कहीं विरोधका सामना नहीं करना पड़ा। अतः अयोध्या नरेश चक्रवर्ती हो गये, किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। जब बहुत वर्षों तक कोई सन्तान नहीं हुई, तब कुलगुरु महर्षि वशिष्ठकी अनुमतिसे महाराजने दूसरा विवाह करनेका निश्चय किया।

अयोध्या नरेश दूसरा विवाह करेंगे, यह समाचार ज्ञात हुआ तो मगध देशके नरेश सुमित्रने अपनी रूप, गुण सम्पन्ना कन्या गुणावती (सुमित्रा) को देनेका स्वयं प्रस्ताव किया। यह विवाह पूरे उत्साहसे हुआ।[1]

सुमित्राजी (गुणावती) से विवाहके कुछ वर्षोंके पश्चात् महाराज

---

१. गुणावतीजोको पिताके नामके कारण सुमित्रा कहते थे जो प्रचलित नाम हो गया। मगधकी होनेसे मागधी भी कहते थे।

दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्याके पश्चात् महाराज दशरथको फिर कोई सन्तान अपने तारुण्यमें नहीं हुई।

प्रौढ़ावस्थामें महाराज अपने राज्य-भ्रमणमें कहीं कैकय[1] पहुँचे तो उन्होंने कैकय नरेश अश्वपतिकी कन्या रूपमालिनीके स्वयम्वरकी बात सुनी। प्रौढ़ होनेपर भी महाराजने इस स्वयम्वरमें सम्मिलित होनेका निश्चय किया।

प्रचलित प्रवादके कारण—यह पता लगाना आवश्यक हो गया कि कैकय नरेशने पत्नीका त्याग क्यों किया था। क्योंकि कैकयकी राजकन्या रक्तकी दृष्टिसे पवित्र हो, तभी महाराज दशरथ उसका पाणिग्रहण कर सकते थे।

महामन्त्री सुमन्त्रने चर नियुक्त किये। चरोंको पता लगानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। लेकिन जो कुछ पता लगा, उसे महामन्त्रीने केवल महाराज दशरथ एवं कुलगुरु वशिष्ठको ही सूचित किया। अयोध्यामें तो वह घटना महामन्त्री के मुखसे ही तब सुनी गयी जब श्रीरामको वन देनेका वरदान कैकेयीने माँगा। उस समय सुमन्त्रने क्रोधमें आकर महारानी कैकेयीको फटकारते हुए सबके सामने उस घटनाका वर्णन किया।[2]

महाराज अश्वपतिको किसी सिद्ध मुनिने प्रसन्न होकर पशु-पक्षियोंकी भाषा समझनेकी शक्ति दे दी, किन्तु सावधान कर दिया कि—'यदि तुम किसीसे किसी पशु-पक्षी, कीटादिकी भाषा जानकर उनके परस्पर व्यवहार की चर्चा करोगे तो तत्काल तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।'

एकबार कैकय नरेश महाराज अश्वपति अपनी महारानीके साथ उपवनमें विराजमान थे। उन्होंने चींटियोंको परस्पर मुख सटाकर कुछ कहते-संकेत करते देखा। वरदानके प्रभावसे उनका तात्पर्य समझकर महाराजको हँसी आ गयी।

---

१. कैकय देश कहाँ था, इसमें बहुत विवाद है। मेरी रायमें वर्तमान काकेशिया होना चाहिए जो यूराल पर्वतकी तराईमें अब रूसका क्षेत्र है और अब भी सौन्दर्यके लिए प्रसिद्ध है।

२. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड।

'आप हँसे क्यों ?' महारानीनें पूछा—'यहाँ इस समय दूसरा कोई है नहीं। हममें कोई ऐसी चर्चा भी नहीं हो रही थी कि आपको हँसी आवे। मुझमें ऐसी क्या त्रुटि दीखी कि आपको हँसी आयी ?'

'देवि ! तुममें कोई त्रुटि देखकर मैं नहीं हँसा।' महाराजने पत्नीको आश्वस्त करना चाहा।

'तब आप क्यों हँसे ?' महारानीनें हठ की।

महाराजने कहा—'कुछ ऐसी कठिनाई है कि मैं अपने हँसनेका कारण नहीं बतला सकता।'

'आप अवश्य मेरी कोई त्रुटि देखकर, मेरा कोई दोष देखकर हँसे हैं।' महारानी रूठ गयीं—'अन्यथा आप मुझे हँसनेका कारण क्यों नहीं बतला सकते। यहाँ तो कोई पशु या पक्षी भी आपके सम्मुख इस समय नहीं था।'

'यदि मैं हँसनेका कारण तुम्हें बतलाऊँगा तो तत्काल मेरी मृत्यु हो जायगी।' महाराजने गम्भीर होकर समझाया—'इसलिए तुम कारण जानने का आग्रह मत करो।'

महारानीको अपने पतिकी इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। उनका सन्देह दृढ़ हो गया कि महाराज अवश्य उनकी ही किसी त्रुटिको देखकर या स्मरण करके हँसे हैं। अवश्य वह त्रुटि इतनी गम्भीर होनी चाहिए कि उसे मुझसे किसी प्रकार कहना नहीं चाहते।

'आपका बहाना मुझे स्वीकार नहीं है।' महारानीने स्पष्ट कह दिया—'परिणाम कुछ भी होता हो, मुझे आपके हास्यका कारण जानना ही है।'

महारानी उठकर राजभवन चली गयीं। उन्होंने भोजन त्याग दिया। महाराजसे मिलना तक अस्वीकार कर दिया। इस संकटमें महाराज अश्वपतिने उन्हीं सिद्ध मुनिकी शरण ली, जिन्होंने उनको वरदान देकर सावधान किया था। महाराजने उनके समीप जाकर चरण पकड़कर प्रार्थना की—'इस विकट परिस्थितिमें मेरा क्या कर्तव्य है ?'

'राजन् ! तुमने मायाका स्वरूप देख लिया। जो स्त्री अपने उपहास की आशङ्काको महत्व देती है और तुम्हारी मृत्युकी आशङ्काकी भी उपेक्षा करती है, उसके साथ तुम किस सुखकी आशा करते हो ?' उस सिद्ध तापसने समझाया—'तुम पुत्रवान् हो। उस स्त्रीका त्याग करके सुखी हो जाओ !

इन्द्रियोंका संयम करके अब भगवान्के स्मरणमें मन लगाओ और धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करो।'

महाराज अश्वपतिको यह उपदेश उचित जान पड़ा। राजभवन लौटकर उन्होंने घोषणा कर दी--'मैंने महारानीका त्याग कर दिया। अब उनसे तथा उनके सम्बन्धियोंसे, उनसे सहानुभूति रखनेवालोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उनको अविलम्ब राजभवन तथा कैकयको छोड़ देना चाहिए। वे अपने आभूषण, वस्त्रादि तथा जो कुछ और ले जाना चाहें, ले जायँ। जो दासियाँ उनके साथ जाना चाहें, जायँ, किन्तु मेरी कन्या यहीं रहेगी। महारानीको आज ही सूत रथमें बैठाकर जहाँ वे जाना चाहें, राज्यसे बाहर पहुँचा आवेगा।'

महारानीने पतिकी घोषणा सुनी। उन्होंने रूठकर पतिसे मिलना अस्वीकार किया था और अब पतिने उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया था। वे मानिनी थीं। राजसदनसे वे कुछ नहीं ले गयीं। एकाकी, निराभरण ही वे रथमें बैठकर चली गयीं। उनको ले जाने वाले सूतने लौटकर केवल इतनी सूचना दी—'महारानी पितृगृह नहीं गयीं। उन्होंने महारण्यमें रथ छोड़ा और मुझे लौटनेका आदेश देकर घोर वनमें प्रवेश किया।'

कुछ पता नहीं लगा कि उस अपने ही भ्रम तथा आग्रहके जालमें उलझ पड़ी मानिनीका क्या हुआ। महाराज अश्वपति उनकी ओरसे सर्वथा विरक्त हो चुके थे। उन्होंने कोई प्रयत्न उनका पता लगानेका नहीं किया।

कैकेयी बालिका थीं। पिताने बड़े स्नेह पूर्वक उनका पालन किया। उनको माताके अभावका बोध नहीं होने दिया। अपने भाई युधाजित्के साथ ही उन्होंने शास्त्राध्ययन किया तथा अश्वचालन, रथचालन एवं युद्धविद्या, धनुर्वेदकी शिक्षा भी प्राप्त की। अपने नीतिशास्त्रके विख्यात ज्ञाता पितासे उन्हें राजनीतिकी शिक्षा मिली।

यह जानकारी ऐसी नहीं थी कि कैकय नरेशकी पुत्रीमें कोई दोष माना जाय। उनकी माताके आचरणपर कोई कलङ्क नहीं था। अतः मन्त्रियोंने महाराजके इस स्वयम्वरमें सम्मिलित होनेका विरोध नहीं किया।

कैकय नरेश महाराज अश्वपतिकी कन्या रूपमालिनी[1]के सौन्दर्यकी

---

१. कैकय देशकी होनेसे इनको पतिगृहमें कैकेयी ही कहा जाता था।

प्रशंसा बहु-चर्चित थी। साथ ही यह भी बहु-चर्चित प्रवाद था कि कैकय नरेशने पत्नीका त्याग किया है। इस चर्चाके कारण ही कैकय नरेशने कन्याके स्वयम्वरकी घोषणा की थी। उसके विवाहका प्रस्ताव कहीं भेजनेमें दो बाधाएँ थीं—१. कोई कन्याकी माताके त्यागकी बात उठाकर प्रस्ताव अस्वीकार कर दे तो अपमानित होना पड़ेगा। २. बहुत अधिक नरेश एवं राजकुमार गुणावतीके पाणि प्रार्थी थे। किसी एकसे विवाहका प्रस्ताव करना शेषको शत्रु बना लेना होता।

कैकयकी राजधानी गिरिव्रज (पर्वतोंसे घिरे नगर) में दूर-दूरके राजा तथा राजकुमार पधारे। महाराज अश्वपतिने सबका यथोचित सत्कार किया। सबको आवास-स्थान दिया। चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके आगमनसे कैकय नरेशको प्रसन्नता हुई। श्रीचक्रवर्तीजीका उनके अनुरूप सत्कार हुआ।

स्वयम्वर सभामें जब राजकन्या रूपमालिनी जयमाला लिये पधारीं, देवकन्याएँ भी उनके सौदर्न्यके सम्मुख तुच्छ जान पड़ीं। वन्दियोंने उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारोंका परिचय देना प्रारम्भ किया।

महाराज दशरथ भले प्रौढ़ थे, किन्तु उनके विशाल भाल, सुदीर्घ नेत्र, प्रलम्ब बाहु, स्वर्ण-गौर वर्ण और अत्यन्त बलिष्ठ शरीरका वैभव अपार था। राजकन्या रूपमालिनी जहाँ सौन्दर्यमयी थीं, अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी थीं। उन्होंने वन्दीके मुखसे सुना—'सुरपति जिन्हें आगे आकर सखा कहकर स्वयंको सम्मानित मानते हैं, अपने सिंहासनपर दाहिने बिठाते हैं, सुरोंको भी सुरक्षा देने वाले अयोध्याके सूर्यवंशी सम्राट् महाराज दशरथ।'

वैसे ही राजकन्याने जयमाला उनके कण्ठमें डाल दी और पदोंमें प्रणत होगयी।

अयोध्याकी विजय-वाहिनीका विरोध करनेका साहस किसीमें नहीं था। दूसरे सब शान्त लौट गये। बड़े उत्साहसे विवाह सम्पन्न हुआ। नवीन महारानीको लेकर महाराज दशरथ अयोध्या आये।

महाराज दशरथकी ये तीन महारानियाँ—पटरानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। इनके ये नाम पतिगृहमें पुकारेजाने वाले नाम हैं। इनमें-से कौसल्याजीका पितृगृहका नाम नहीं मिलता। शेष दो के नाम यथास्थान दिये गये हैं।

भारतमें बहु-पत्नी प्रथा थी, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साथही यह प्रथा तो अब तक भी चली आरही है कि पतिगृहमें

वधू को उसके पितृगृहके नामसे नहीं पुकारा जाता। राजस्थानमें राजकुलोंमें वधू को उसके पितृकुलकी उपाधिसे या जहाँसे वह आयी है, उस स्थानकी उपाधिसे 'अमुक स्थानकी बहू, कहा जाता है। कौसल्याजी दक्षिण कौसलकी कन्या थीं। सुमित्राजी सौमित्र राज्यकी थीं; जो वर्तमान विहारका मिथिलासे लगने वाला राज्य था। कैकेयीजी कैकय देश (मेरी रायमें काकेशस) की राजकन्या थीं।

पुराने समयमें बहु-विवाह पुरुषोंके लिए समाजमें निन्दित नहीं माना जाता था। सामान्य नागरिक भी कई विवाह कर लेते थे। शासकोंको तो विवाह करनेके अनेक कारण थे। उनके विवाहका पूरे राज्यपर राजनैतिक प्रभाव पड़ता था। अतः अनेक बार सशक्त समर्थक पानेके लिए अथवा युद्ध बचानेके लिए भी विवाह किये जाते थे।

यद्यपि महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट् थे; किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सुमित्राजी तथा कैकेयीसे विवाह करके उन्हें कोई राजनैतिक लाभ नहीं हुआ। सुमित्राजीसे विवाह करके अयोध्याका सम्बन्ध मिथिला-को सीमा तक होगया। कैकेयीजीके विवाहसे तो काकेशिया (टर्कीके एशियायी भागसे ऊपर) तक अयोध्याके सम्बन्धकी सीमा विस्तृत होगयी।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने आगे एक स्वस्थ परिपाटी अवश्य स्थापित की। उन्होंने और उनके भाइयोंने केवल एक-एक ही विवाह किये; किन्तु यह 'एकनारी-व्रत' केवल प्रशंसनीय होकर उस समय रह गया। समाजमें उसे व्यापक प्रचार नहीं प्राप्त हुआ; क्योंकि प्रजा प्रायः शासकका अनुशीलन करती है और देशमें छोटे-छोटे राज्य बहुत थे। उनमें सबके शासक संयमी रहेंगे, यह आशा नहीं की जा सकती थी। वे राजनैतिक-सामरिक लाभ के लोभ अथवा दबावमें भी एकाधिक विवाह करनेको विवश होते थे। यह सब स्थिति तथा परम्परा देखते हुए महाराज दशरथके तीन विवाह करने पर अँगुली नहीं उठायी जा सकती।

अन्ध तापस-शाप

आखेट उत्तम व्यायाम भी है और व्यसन भी। व्यसन बनकर निन्दनीय एवं त्याज्य होजाता है, क्योंकि तब वह केवल क्रूर कर्म रह जाता है। स्वार्थ तथा मनकी उग्रवृत्तिको तुष्ट करनेके लिए किया जाता आखेट निन्दनीय है। इससे निरपराध वन्य पशुओंकी हत्या होती है।

आखेट केवल हत्या है और सर्वथा त्याज्य है, ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो मृगचर्म एवं कस्तूरी पवित्र नहीं मानी जातीं, क्योंकि ये आखेट बिना प्राप्त होने वाले द्रव्यमान नहीं हैं। वन्य पशु अपनी मृत्युसे मरें तो उनका शरीर गीध, चील तथा दूसरे माँसजीवी पशु थोड़े क्षण भी सुरक्षित नहीं रहने देते।

वनमें पशुओंकी संख्या नियन्त्रित रहनी चाहिए, वनके विशेषज्ञ जानते हैं कि यदि मृग, वाराह या शशकोंकी संख्या ही अनियन्त्रित होजाय तो वह दूसरे पशुओंके लिए तथा स्वयं उस जातिके लिए सम्पूर्ण विनाशक बन सकती है। ये तृणजीवी पशु वनमें घासका अकाल उत्पन्न कर देंगे। नवीन् वृक्षोंके अंकुर चरते रहेंगे। फलतः वन कुछ कालमें उजड़ जायगा।

वृद्ध और रोगी वन पशु भी दूसरे पशुओंके लिए आतङ्क तथा विनाशक होता है। उसका रोग संक्रामक हो सकता है। वृद्ध मृग, वाराह, गजको उनका यूथ बहिष्कृत कर देता है। ऐसा अकेला पशु अत्यन्त चिड़चिड़ा एवं आक्रामक होज़ाता है। सिंह व्याघ्र वृद्ध होजानेपर आखेट करनेमें असमर्थ होजाते हैं। सभी वृद्ध पशु भागनेमें मन्द गति होजाते हैं। उनकी आँतें कच्चा माँस या कड़ा तृण पचा नहीं पातीं। मृग वृद्ध होनेपर सींगोंका भार बढ़ जानेसे घास नहीं चर पाता। शशकोंकी संख्या बढ़ती है तो वे परस्पर ऐसी लड़ाई करते हैं कि अत्यन्त घायल होजाते हैं। इन पशुओंको अपनी मौत मरनेको छोड़ दिया तो वे संक्रामक रोगोंको जन्म देकर मरते हैं।

हिंसक प्राणी जब नरभक्षी हो जाते हैं, तब उनका आखेट अनिवार्य हो जाता है। तृणजीवी पशुओंकी संख्या बहुत बढ़ जाय और वे वनके भीतरी भागोंमें तथा वनके समीप रहने वाले मनुष्योंकी कृषि, उपवनोंके लिए कठिन समस्या बन जायँ तो उनकी संख्या सीमित करनेके लिए, उन्हें जनपदसे दूर हटानेके लिए भी आखेट आवश्यक होता है।

वृद्ध, रोगी, आहत वन-पशुका आखेट होता है, जिससे वह दूसरे वन-पशुओंके लिए संक्रामक रोगोंको उत्पन्न न कर सके। इसके लिए वन तथा वन-पशुओंपर निरीक्षण रखना पड़ता है। आज भी सभी राष्ट्रोंके वन-विभाग ऐसा निरीक्षण रखते हैं और उचित आखेटकी व्यवस्था करते हैं।

जब राजा ही अपने राज्यका प्रधान सेनापति भी होता था, आवश्यक था कि उसे युद्धकी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो। आखेट व्यक्तिमें साहस, कष्ट सहिष्णुता, तितीक्षा, समयपर उचित निर्णय लेनेकी क्षमता, अत्यन्त सतर्क रहनेकी शक्तिका विकास करता है। किञ्चित् असावधानी आखेटक-को स्वयं आखेट बना दे सकती है। मृत्यु भय उपस्थित होनेपर भी स्थैर्य, धैर्य, दृढ़ताके गुण आखेट देता है। अचूक लक्ष्यवेध तो आखेटमें अनिवार्य माने जाते हैं। अतः शासकके लिए उचित आखेट सद्गुण है, दुर्गुण नहीं। आज भी कोई शासन इसका त्याग नहीं कर सकता। केवल व्यसनवश किये जाने वाले आखेटको नियन्त्रित या वर्जित किया जाता है।

महाराज दशरथ आखेटके लिए निकले थे। आखेटका विलासितासे तो बैर है। मुख्यरूपसे आखेटका समय रात्रिका होता है। क्योंकि हिंसक पशु रात्रिमें ही निकलते हैं। वनके तृणजीवी पशु ही दिनमें चरते-घूमते हैं। दिनमें आखेट अधिकांश तृणजीवी प्राणियों अथवा पक्षियोंका ही होता है। हिंसक पशुओंका दिनमें आखेट तो हाँका करके उन्हें उनके छिपनेके स्थानोंसे निकालकर होता है, या अकस्मात कहीं मुठभेड़ हो जाय तब होता है।

महाराज दशरथ सरयू-किनारेके वनमें रात्रिमें आखेट करने निकले थे। यह आखेट उनके लिए व्यायाम तथा अभ्यास था। वन-पशुओंका नियन्त्रण भी इसके द्वारा होता था—निरीक्षण भी। रात्रिमें गहन वनमें एकाकी, कवच तथा शिरस्त्राण पहिने, पीठपर तरकश बाँधे, कटिमें खड्ग लटकाये, धनुष चढ़ाये पैदल अत्यन्त सावधान महाराज दशरथ दबे पैर चले जा रहे थे।

उज्ज्वल चन्द्रिकासे वन प्रकाशित था। सघन वनमें अश्व आ नहीं सकता था और अश्वकी आहटसे पशु सावधान हो जाते हैं। आज महाराजने कोई आखेट-सहायक भी साथ नहीं लिया था। वनमें सघनताके कारण चाँदनीका प्रकाश कम पड़ता था। महाराज भी वृक्ष-लताओंका सहारा लेकर ही चल रहे थे। वे अत्यन्त सावधान थे। तनिक पत्तेके खड़कनेपर भी उनके पद रुक जाते थे।

सहसा भूमिपर सूखकर गिरे पत्तोंपर किसीके चलनेकी चरमराहट सुनायी पड़ी। महाराज धनुषपर वाण चढ़ाये खड़े हो गये। उनके कर्ण सतर्क हो गये। उनको लगा कि कोई बड़ा पशु वनसे सरयूकी ओर जल पीने जा रहा है। जलकी ओर कोई मनुष्य इस समय जा रहा होगा, ऐसी कल्पना भी सम्भव नहीं थी। वहाँ कोई वन्य जनपद भी समीप नहीं था। किसी तपस्वीका उधर आश्रम होता तो महाराज उस दिशामें आखेट करने पहुँचते ही नहीं। सरयू तक जानेकी कोई पगडण्डी भी उधर नहीं थी। यह तो दुर्दैव ही था कि वनमें इस रात्रिमें बिना मार्ग जल तक जानेवाला मनुष्य था।

उस मनुष्यने अपना तूँबा जलमें डुबाया तो गुड़-गुड़की ध्वनि हुई। महाराज दशरथने समझा कि कोई वन्य गज जल सूँड़में भरकर मुखमें डाल रहा है। गुड़गुड़ाहटसे यह भी लगा कि गज अकेला है। गज यूथ बनाकर रहने वाला प्राणी है। वह अकेला वनमें तभी होता है जब वृद्ध होनेपर उसके यूथके गज उसे मारकर भगा दें। ऐसा अकेला गज बहुत भयङ्कर होता है। वह मनुष्यों तथा दूसरे पशुओंपर अकारण आक्रमण करता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है।

'अकेला गज ?' महाराज चौंके। उनको लगा कि इसको मार देना चाहिए। यह वनके पशुओंके लिए आतङ्क हो चुका। उन्होंने शब्दको लक्ष्य करके वाण छोड़ दिया।

मनुष्य कैसा भी हो, उससे भूल नहीं होगी, यह कहा नहीं जा सकता और भूल हुए बिना विपत्ति कदाचित् ही आती है। भूल, प्रमाद ही विपत्ति के आनेका छिद्र है। महाराज़ दशरथसे प्रमाद हो गया। उन्हें स्मरण नहीं रहा कि स्मृतिमें युद्धके अतिरिक्त गज-वध निषिद्ध है। पागल हाथीको भी किसी प्रकार घेरेमें लेकर बन्धनमें रखने, अनाहार रखनेकी ही परम्परा है। वनमें अकेले गजको दूसरे पाले गये गजोंकी सहायतासे पकड़ा जाना चाहिए

था। यह बात स्मरणमें नहीं रही। अकेला गज आतङ्क उत्पन्न करता है, अतः वध्य है, यह मानकर महाराजने वाण छोड़ा—फलतः अनर्थ हो गया।

महाराज दशरथको शब्दवेधी वाण छोड़नेके दूसरे ही क्षण मनुष्यका आर्तनाद सुनायी पड़ा। 'हाय ! मुझ निरपराधको किसने मारा ? मैंने तो किसीका कोई अपराध नहीं किया। मैं न्यस्तदण्ड मुनि हूँ। मुझपर यह आघात क्यों ?'

शब्द सुनते ही महाराज दशरथ चौंके–'मुझसे यह कैसा अनर्थ होगया !'

वे दौड़ते हुए गये और आहतके चरणोंपर धनुष फेंककर गिर पड़े—'अजके पुत्र इस क्षत्रियाधम दशरथको क्षमा करें। मुझसे अनजानमें यह महापाप हो गया है।'

'राजन् ! आप डरो मत।' उस वाणविद्ध महाप्राण तपस्वीने कहा—'आपको ब्रह्म-हत्या नहीं लगी है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, वैश्य हूँ। मेरा नाम श्रवणकुमार है।। आप बोलें नहीं, मेरी बात सुन लें, क्योंकि आपका वाण मेरे हृदयमें लगा है। मैं शीघ्र बोलनेमें असमर्थ हो जाऊँगा। मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेरे माता-पिता वृद्ध और अन्धे हैं। उनकी इच्छा तीर्थयात्रा करनेकी थी, अतः मैं उन्हें कामर[1]पर बैठाकर कन्धेपर लेकर तीर्थाटन करने निकला था। मार्गमें उनको प्यास लगी तो उन दोनोंको उतारकर मैं जल लेने आया था। वही मेरे देवता तथा आराध्य हैं। आप यह वाण मेरे हृदयसे निकालकर उन्हें जल देने जायँ, किन्तु जब वे जल पी लें, तब उनसे मेरी दशा सुनावें, अन्यथा वे जल नहीं पियेंगे। वे वनमें हैं। कोई वन-पशु उन्हें पीड़ा न दे, इसलिए वाण निकालकर आप शीघ्र उन्हें जल देने जावें।'

महाराज दशरथने जैसे ही श्रवणके हृदयसे वाण निकाला, रक्तकी धारा चलने लगी। वे निष्प्राण हो गये। महाराजने उनका जलसे भरा तूँबा उठाया और जिस ओर श्रवणकुमारने संकेत किया था, उधर चल पड़े।

वनके मध्यसे एक पगदण्डी जाती थी। उसमें स्वच्छ स्थानपर चाँदनीमें कामर रखी थी, जिसके टोकरोंमें एक ओर श्रवणकुमारके पिता तथा दूसरी ओर उनकी माता बैठी थीं। दोनों ही अत्यन्त वृद्ध और अन्धे

---

१. एक लकड़ीके दोनों सिरोंपर रस्सीमें बँधे दो टोकरे लटकाये जाते हैं। इसे कामर कहते हैं। टोकरोंमें कुछ भी रखा जा सकता है। कन्धे पर उस लकड़ीको रखकर चलनेमें सुविधा होती है।

थे। महाराज दशरथने समीप जाकर अन्धे वृद्ध पुरुषके हाथमें चुपचाप जलसे भरा तूँबा पकड़ा दिया।

'बेटा! तुम चुप क्यों हो? तुम बोलते क्यों नहीं?' वृद्धने हाथमें तूँबा लेकर कहा—'हम दोनों तुमको बड़ा कष्ट दे रहे हैं। रातमें वनमें भी राह-कुराह जलके लिए भटकाते हैं, यह सोचकर हमसे रुष्ट हो गये हो? हम वृद्ध हैं, अन्धे हैं, असमर्थ हैं। तुम्हीं हमारे सहारे हो। रोष मत करो। अब हम तुमको ऐसा कष्ट नहीं देंगे।'

महाराज दशरथ क्या बोलते? वृद्धने फिर कहा—'बेटा! यदि तुम नहीं बोलोगे तो हम जल नहीं पियेंगे।'

अब महाराज विवश हो गये। उन्होंने भरे कण्ठसे कहा—'आपके महाभाग तपस्वी पुत्र यहाँ नहीं हैं। यह जल उनके आदेशसे मैं अजका पुत्र अयोध्याका राजा दशरथ ले आया हूँ। आप जल पीलें तो मैं आपके पुत्रका समाचार दूं।'

'राजन्! आप यहाँ कैसे आये? हमारा विनयी पुत्र श्रवणकुमार कहाँ है? वह किस दशामें है? उसका समाचार पाये बिना मैं जल नहीं पी सकता।' वृद्धने कहा।

महाराज दशरथको विवश होकर कहना पड़ा—'श्रवणकुमार जल लेने गये थे। वे जब सरयूमें तूँबा डुबाने लगे तो ध्वनि हुई। उस ध्वनिको सुनकर वनमें आखेटके लिए निकले मुझ अधमने समझा कि कोई अकेला वनगज जल पी रहा है और वाण छोड़ दिया। वाण लगनेसे आपके पुत्रने चीत्कार किया तो मैं दौड़कर उनके समीप पहुँचा। उन महाभागने मुझे आपको जल देने भेजा है। अब वे इस लोकमें नहीं हैं।'

वृद्धा यह सुनते ही 'हाय पुत्र' कहकर मूर्च्छित हो गयी। वृद्धके हाथसे जलसे भरा तूँबा छूटकर गिर पड़ा। उसने कुछ क्षण पश्चात् कहा–'राजन्! हमें कृपा करके हमारे पुत्रके शवके समीप पहुँचाओ।'

महाराज दशरथने दोनोंको कामरसे उतरनेसे रोका। स्वयं कन्धेपर कामर रखकर श्रवणकुमारके समीप ले गये। दोनों वहाँ कामरसे उतरे। पुत्रके शरीरको टटोलकर उसपर सिर पटककर, उसे भेंटकर दोनों क्रन्दन करने लगे।

'राजन् ! हम दोनों श्रवणकुमारके बिना जीवित नहीं रहना चाहते। आप इसी समय सूखी लकड़ियाँ एकत्र करके चिता बना दें तो हम पुत्रके साथ अग्नि-प्रवेश करें।' वृद्धने रोते-रोते कहा।

महाराज दशरथ दोनोंको राजधानी ले जाकर सुख-पूर्वक रखनेको प्रस्तुत थे, किन्तु दोनोंमें कोई किसी प्रकार अब जीवित रहना नहीं चाहता था। यह बात भी ठीक थी कि वनमें श्रवणकुमारकी मृत देह उन अन्धोंके पास छोड़कर राजधानी जानेपर वन-पशु शवको विकृत कर सकते थे और वृद्ध अन्धोंको भी हानि पहुँचा सकते थे। महाराजने वनसे सूखी लकड़ियाँ एकत्र करके सरयू-किनारे चिता बना दी। श्रवणकुमारके शरीरको गोदमें लेकर वे दोनों वृद्ध महाराजकी सहायतासे चितामें बैठ गये।

जब आग्नेय पाषाणकी सहायतासे अग्नि प्रकट करके महाराजने चितामें अग्नि लगा दी, तब उस वृद्धने उन्हें शाप देते हुए कहा—'राजन् ! तुमने हम अन्धोंसे सत्य कहा। यदि तुम मिथ्या बोलकर निरपराध बनते तो तत्काल तुम्हारे मस्तकके टुकड़े हो जाते। तुमने हमारे एकमात्र आश्रय पुत्र-को मार दिया। अतः जैसे हम पुत्रके वियोगमें मर रहे हैं, तुम्हारी मृत्यु भी पुत्रके वियोगमें होगी।'

महाराज दशरथको उस समय यह शाप भी वरदान ही लगा। उस समय तक उनके कोई पुत्र नहीं था। शापका अर्थ था कि उनके पुत्र होगा। अतः उस अन्धे वृद्धके शापको सुनकर महाराजको कोई भय या क्लेश नहीं हुआ।

जब चिताग्नि भली प्रकार प्रज्वलित हो गयी, उसमें मृत पुत्र-देहके साथ अन्धे दम्पति भस्म हो गये, तब महाराज राजधानी लौट आये। इस घटनाकी चर्चा उस समय उन्होंने लज्जा तथा खेदके कारण किसीसे भी नहीं की।

इसके पश्चात् तो महाराज दशरथने आखेट करना ही त्याग दिया था।

जटायु-मैत्री

अयोध्याकी प्रजाने जाना ही नहीं था कि आधि-व्याधि होती क्या है। शासक जब धर्मनिष्ठ होता है और अप्रमत्त होता है तो प्रजा भी स्वधर्मपर स्थित रहती है। जहाँ धर्म है वहाँ सुख-शान्ति अनिवार्य रूपसे रहते हैं।

सतयुगमें धर्म पूर्णरूपसे धरापर प्रतिष्ठित था। त्रेतामें भी महाराज रघु, अज आदिके प्रबल प्रतापने किसीको यह प्रतीत नहीं होने दिया कि पृथ्वीपर सतयुग नहीं रहा है। अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्की छत्रछायामें प्रजा सम्पूर्ण सुखी थी।

महाराज दशरथने कैकय नरेशकी कन्या कैकेयी (रूपमालिनी) से विवाह किया उनके रूप-गुणको सुनकर। इसमें कामको स्थान मिला। शासककी इतनी शिथिलताने अधि-देवताओंको अवकाश दे दिया।

ग्रहोंका प्रभाव भी कुण्ठित रहता है यदि धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो। पृथ्वी रावणके अत्याचारोंसे पीड़ित थी। दुर्दम दशग्रीव तथा उसके अनुचर वनोंमें ऋषि-मुनियोंको पीड़ित करते थे। किसी भी शासकने इसका प्रतिकार करनेका साहस नहीं किया था। सब अपने जनपदोंकी रक्षा करके ही सन्तुष्ट रहे, यह प्रमाद है। अरण्य भी उसीके द्वारा रक्षित होने योग्य है। महाराज दशरथसे पूर्व उनके पिताने तो अरण्यमें चरती अकेली गौ पर व्याघ्रके आक्रमणका भी तत्काल प्रतिकार किया था। अब जो किञ्चित अनवधानता चक्रवर्ती महाराजमें आयी, उससे ग्रह-देवताओंको अवसर मिल गया पृथ्वीपर अपना प्रभाव प्रकट करनेका।

जैसे व्यक्तियोंपर ग्रहोंकी महादशा, अन्तर्दशा, गोचरदशाका प्रभाव पड़ता है, स्थानोंपर, नगरोंपर भी पड़ता है। अयोध्याके राज्यपर शनिकी साढ़ेसातीका प्रभाव पड़ने लगा। टिड्डियोंने उपवनों, खेतोंको खा लिया। कृषकोंका कठिन परिश्रम नष्ट हो गया। उनकी लहलहाती कृषि कहाँ गयी, उनकी आशापर तुषारपात हुआ।

आजके भौतिकवादके युगमें ऐसी समस्याओंका कारण तथा समाधान बाहर जगत्में ढूँढ़ा जाता है। वह समय धर्मकी प्रतिष्ठाका था। लोगोंके हृदयमें धर्म था, सन्तोष था। प्रजाने कोई प्रतिवाद नहीं किया। यह प्रतिवाद करनेका अवसर आवे, शासक इतने प्रमत्त नहीं थे। महाराजने स्वयं इन क्षुद्र कीटोंके असंख्य समुदायका उत्पात देखा। मन्त्रियोंके साथ तत्काल मन्त्रणा करने बैठ गये। वहाँ एक ही आशङ्का सबने व्यक्त की—'कोई देवता क्रुद्ध हुए हैं। यह आधिदैविक उत्पात है।'

महाराज कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके आश्रम पहुँचे। उन्हें सन्तोष हुआ कि यह उत्पात आश्रम तक नहीं आया था। आश्रमके सब वृक्ष सुरक्षित थे। महाराजने जब महर्षिको प्रणिपात करके अपने आगमनका कारण निवेदन किया और ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंके सम्बन्धमें चिन्ता व्यक्त की तो महर्षिने कहा—'राजन् ! तपोनिरत, धर्मप्राण ब्राह्मणके लिए कहीं भय नहीं है। यह आधिदैवत उत्पात उनके आश्रमोंका स्पर्श नहीं कर सकता था।'

महर्षिने बतलाया—'अब त्रेतायुगका अन्तिम चरण प्रारम्भ हो गया है। पृथ्वीपर ग्रहोंका प्रभाव पूरा पड़ने लगा है। कोई देवता आपके राज्यमें उपद्रव नहीं कर सकता। देवराज इन्द्र आपके मित्र हैं, किन्तु ग्रहोंमें अतिशय क्रूर सूर्य-पुत्र शनिकी साढ़ेसाती आपके राज्यपर प्रारम्भ हो गयी है। यह उसीका प्रभाव है।'

शनिकी साढ़ेसातीका प्रभाव साढ़े सात वर्ष रहता है और प्रत्येक तीस वर्षमें साढ़े सात वर्ष का यह क्रम चलता है, यह बात सुनकर महाराज दशरथने गुरुदेवसे आज्ञा माँगी—'इतने अल्पकालके अन्तरसे किसी ग्रहको प्रजाको पीड़ित करनेका अवसर देना योग्य नहीं है। आपके अनुग्रहसे यह सेवक शनि तक जाकर उन्हें दण्डित करनेमें समर्थ है। आप आशीर्वाद दें।'

'आपका निर्णय इक्ष्वाकुके प्रतापी वंशधरके ही योग्य है। इतना स्मरण रखें कि शनिकी वक्र दृष्टिमें आपको नहीं पड़ना चाहिए। शनि अधोमुख रहते हैं। उनकी दृष्टिका प्रभाव अमोघ है। वह दृष्टि-विनाशक है।' महर्षिने अपने यजमानको विजयी होनेका आशीर्वाद दिया। उनके लिए मङ्गल-पाठ किया।

धर्मकी शक्तिने तब मनुष्यको अतर्क्य क्षमता दे रखी थी। महाराज दशरथ अपने संकल्प-बलसे अस्त्र-शस्त्र सहित रथको शनि-ग्रह तक ले गये।

आजके युगमें इसे समझा जाना कठिन है। आज स्थूल ऊर्जाकी सहायतासे ही राकेट उड़ सकते हैं, किन्तु संकल्पकी शक्ति और वेग किसी भी स्थूल ऊर्जासे अनन्त गुणित है।

हम आप चेतन हैं, किन्तु हमारे शरीरपर आघात लगे तो कितनी व्यथा होती है? शनि-ग्रहके अधिदेवताको पराजित करना था, किन्तु इसके लिए आक्रमण तो ग्रहपर ही किया जाता था। शनि-ग्रह ठोस कम ही है। वह बहुत कुछ वायवीय है, किन्तु दिव्यास्त्रोंके परम ज्ञाता महाराज दशरथ को इससे क्या अन्तर पड़ने वाला था?

महाराज दशरथ अपने संकल्प-बलसे अन्तरिक्षमें सबसे दूरस्थ ग्रह शनि तक कुछ क्षणोंमें ही पहुँच गये थे। वे शनिके ऊपरी भागकी ओरसे पहुँचे थे, जिससे शनिकी विष-दृष्टिका प्रभाव उनपर न पड़े। उन्होंने ललकारा—'मैं इक्ष्वाकु गोत्रीय अजका पुत्र दशरथ पृथ्वीसे इसलिए आया हूँ कि आप मेरे राज्यकाल तक धरापर अपना अनिष्ट प्रभाव न डालनेका वचन दें, अथवा युद्ध करें।'

'राजन्! सृष्टिकर्ताके विधानके अनुसार हम ग्रहोंका प्रभाव पृथ्वीपर पड़ता है।' शनिने टालनेका प्रयत्न किया।

महाराज दशरथ ऐसे भुलावेमें नहीं आ सकते थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—'सतयुगसे मेरे पिताके शासनकाल तक और मेरे शासनकालमें भी इससे पूर्व आपका अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा है। आप देवता हैं, अतः इच्छा करके अपने प्रभावको नियन्त्रित रख सकते हैं। यदि आप यह स्वीकार नहीं करते तो विवश होकर मुझे आघात करना पड़ेगा। मैं आपके इस वायवीय ग्रहमण्डलको छिन्न-भिन्न कर अन्तरिक्षमें अदृश्य कर दे सकता हूँ।'

शनिने कोई उत्तर नहीं दिया तो महाराजने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। उन्होंने सीधे ब्रह्मास्त्र सन्धान करनेका संकल्प किया। शनिके ग्रह-मण्डलसे ज्वालाएँ उठने लगीं। शनिग्रहके वलय इतस्ततः होने लगे। लगा कि शनि सचमुच आकाशमें अदृश्य हो जाने वाला है।

'राजन्! मैं तुमसे सन्तुष्ट हुआ।' शनिके अधिदेवताने कहा—'अस्त्रका सन्धान मत करो। तुम जानते हो कि मैं भगवान् आदित्यका ही पुत्र हूँ।

तुम्हारे यहाँ परमपुरुष अवतीर्ण होकर इस वंशको धन्य करने वाले हैं। अतः मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारे पौत्रके शासनकाल तक भी पृथ्वीके तुम्हारे कुलके राज्यपर मेरा अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

महाराज दशरथने अस्त्रका सन्धान नहीं किया। उन्होंने अञ्जलि बाँधकर शनिदेवको प्रणाम किया। वहाँसे विदा होते समय महाराज उतने सावधान नहीं रहे, जितने वहाँ जाते समय थे। विजयने उन्हें शनिके प्रभाव, शनिकी दृष्टिकी ओरसे असावधान कर दिया। शनिदेव सूर्यपुत्र हैं, यह सोचकर श्रद्धावश उन्होंने अपने रथसे शनिकी प्रदक्षिणा की और पृथ्वीकी ओर चले। इस प्रदक्षिणामें वे शनिके समानान्तर होगये थे। वहाँसे ऊपर जाकर दूरसे लौटनेके स्थानपर सीधे नीचे चलनेके कारण शनिकी अधोगामिनी वक्र दृष्टि किञ्चित् उनके रथपर पड़ गयी।

महाराज दशरथका रथ शनिकी दृष्टि पड़ते ही भस्म होगया। रथके अश्व, ध्वज तथा उसमें रखे सब उपकरण तत्काल अन्तरिक्षमें भस्म होकर बिखर गये। महाराज दशरथ मूर्च्छित होगये थे। शनि स्वयं उनपर कृपालु थे और उनकी दृष्टिकी किञ्चित् किरण ही रथपर पड़ी थी। महर्षि वशिष्ठके आशीर्वाद एवं मङ्गलाशासनसे भी महाराज रक्षित थे। अतः वे निष्प्राण तो नहीं हुए, किन्तु उनकी चेतना लुप्त होगयी।

कुशल यह थी कि शनिकी दृष्टि महाराजके रथपर तब पड़ी थी, जब उनका रथ पृथ्वीके आकर्षण क्षेत्रमें प्रविष्ट हो चुका था। यदि यह घटना अन्तरिक्षमें धराके आकर्षणसे बाहर होती तो महाराजके शून्यमें स्थिर या भटकते शरीरको महर्षि वशिष्ठको ही अपने संकल्प-बलसे आकर्षित करना पड़ता।

प्रजापति कश्यपकी पत्नी विनताके पुत्र हैं भगवान् नारायणके वाहन गरुड़जी। गरुड़से भी पहिले उनके बड़े भाई अरुण उत्पन्न हुए थे। वे भगवान् सूर्यके सारथी हैं। उनके द्वारा एक श्येनीसे दो पुत्र हुए—सम्पाती और जटायु। अरुण एवं श्येनीसे होनेके कारण ये गरुड़-गीध जातिके हुए। सूर्य भगवान्के सारथि अरुणजीके ये दोनों औरस पुत्र अमित पराक्रम, महाकाय थे।

महाराज दशरथका शरीर जब धराके आकषणमें मूर्च्छित गिरने

लगा पृथ्वीकी ओर तो उसका वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जाता। वायु-मण्डलके सङ्घर्षमें आकर उसके भस्म होजानेका भय था, किन्तु उस समय गरुड़ गगनमें ऊपर उड़ रहे थे। साधारण गीध भी आकाशमें बहुत ऊपर उड़ते हैं, जटायुको तो वायुहीन आकाशमें—अन्तरिक्षमें उड़नेमें भी कठिनाई नहीं थी। उनका शरीर लगभग दिव्य था। वे उस समय पृथ्वीके आकर्षण-क्षेत्रके प्रायः ऊपरी स्तरमें उड़ रहे थे।

महाराज दशरथको मूर्च्छित गिरते देखकर जटायुको दया आ गयी। जैसे किसी दूरस्थ देशमें किसी एक देशके नागरिक मिलते हैं तो उनमें सहज प्रीति उत्पन्न होजाती है, वैसे ही पृथ्वीसे दूर अन्तरिक्षमें मिलनेवाले पार्थिव शरीरको देखकर जटायुके मनमें प्रीतिका उदय हुआ। वे उड़कर गिरते हुए महाराज दशरथके शरीरके नीचे पहुँचे और उसे पीठपर ले लिया।

गीधराज जटायु महाराज दशरथकी मूर्च्छित देहको पीठपर सँभाले धीरे-धीरे मण्डलाकार घूमते पृथ्वीकी ओर उतरने लगे। उनके लिए यह उड़ान प्रतिदिनका कार्य थी। उनको महाराजके शरीरका भार अधिक नहीं लगा। जटायुका आवास दण्डकारण्यमें गोदावरी नदीके तटपर पञ्चवटीके समीप था। वे महाराज दशरथको लेकर अपने आवासके समीप पृथ्वीपर उतरे। महाराजके शरीरको उन्होंने कोमल तृणोंपर ढुलका दिया धीरेसे।

महाराज दशरथकी जब चेतना लौटी, तो उन्होंने देखा कि एक पर्वताकार गीध जलमें अपने पक्ष भिगोकर हिलाते हुए उनपर वायु कर रहा है। जलके सीकरों, वायुके झोकों तथा पक्षोंकी फड़फड़ाहटने महाराज-की मूर्च्छा दूर की थी।

महाराज दशरथने उठकर बैठते ही अपने गोत्र तथा पिताका नाम लेकर अपना परिचय देते हुए कहा—'आप कौन हैं, जो मुझपर इस प्रकार कृपा कर रहे हैं ?'

'राजन् ! अन्तरिक्षमें आपका रथ शनिकी दृष्टि पड़नेसे भस्म हो-गया। आप मूर्च्छित होकर गिर रहे थे।' जटायुने बतलाया—'मैं श्येनीमें उत्पन्न अरुणजीका पुत्र जटायु हूँ। गीध हूँ, यह आप देख ही रहे हैं। आपको मैंने गिरते देखा। हम गीधोंको बहुत ऊपर उड़नेका व्यसन होता है। मैंने

आपको पीठपर लिया और यहाँ ले आया। अब आपका और क्या प्रिय करूँ ?'

'मित्र ! आप मेरे प्राणरक्षक हैं।' महाराज दशरथने जटायुके कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं—'विपत्तिमें सहायता करनेवाला ही सच्चा सखा होता है। अयोध्याका यह नरेश अकृतज्ञ नहीं है। आप अयोध्या पधारें। राजकीय उपवनमें आप निवास करें। आपके आहार एवं सुविधाकी व्यवस्था मैं सदा करता रहूँगा।'

'महाराज ! आपने मुझे सखा स्वीकार करके सम्मानित किया है।' जटायु मानव भाषामें ही बोल रहे थे—'गीध अशुभ पक्षी होता है। अपने सखाके नगरपर मैं अपनी अमङ्गल छाया नहीं डाल सकता। आपका कल्याण हो। मेरे पक्ष सशक्त हैं। इस वनमें मुझे सब प्रकारकी सुविधा है। गीधको जनपद कभी रुचता नहीं। हम घोर अरण्य अथवा उजाड़ पर्वतोंमें रहनेवाले प्राणी हैं। आप मेरी पीठपर बैठ जायँ तो मैं आपको अरण्यसे बाहर किसी जनपदके समीप छोड़ दूँगा।'

जटायुके बहुत आग्रह करनेपर महाराज दशरथ उनकी पीठपर बैठे। जटायुने उन्हें गङ्गाके किनारे, प्रयागके समीप निर्जन रेतपर उतारा और विदा ली। चक्रवर्ती महाराजको प्रयागमें पहुँचनेपर रथ तथा सुविधाएँ मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं थी। वहाँसे वे अयोध्या लौटे।

महाराजसे फिर जटायु नहीं मिले, जटायुको महाराजने अपना सखा माना सो सदाके लिए ही मान लिया। महाराज दशरथके राज्यकालमें फिर शनिका प्रकोप कभी नहीं हुआ।

———

दशरथ-कन्या शान्ता

अङ्गदेशके नरेश चित्ररथका लोक-प्रसिद्ध नाम रोमपाद था। अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथ के ये बालमित्र थे। दोनों उपनयनके पश्चात् महर्षि वशिष्ठके आश्रममें रहकर अध्ययन करने पहुँचे। सभी सहाध्यायियोंसे मित्रता नहीं हुआ करती, किन्तु जिनसे जिनका शील-स्वभाव मिलता है, उनमें प्राय: मित्रता होजाती है। दीर्घकालका गुरुकुल-निवास, एक साथ अध्ययन, गुरुसेवा और एक-सी शिक्षा—क्योंकि दोनों राजकुमार होनेसे धनुर्वेद तथा राजनीतिकी शिक्षामें अधिक रुचि लेते थे। शील-स्वभावकी एकताने दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री स्थापित कर दी।

अयोध्याके उस समयके युवराज दशरथने एक दिन मित्रसे पूछा—'चित्ररथ! देखता हूँ कि तुम प्राय: खिन्न रहते हो। अनेक बार हतोत्साह लगते हो। कोई कारण तुम्हारे विषादका मुझे सोचकर मिलता नहीं। मित्रको मित्रसे दुराव नहीं करना चाहिए। बात क्या है, मुझसे स्पष्ट बतला दो। सम्भव है, मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूं।'

रोमपादने कहा—'दुराव करने जैसी कोई बात नहीं है। तुम जानते हो कि मैं अपने पिताकी एकमात्र सन्तान हूँ। मेरे कोई भाई या बहिन नहीं है।'

'मैं भी अपने पिताका अकेला ही पुत्र हूँ।' महाराज दशरथने कहा—'मेरे भी कोई भाई या बहिन नहीं है, किन्तु इसमें खिन्न होनेका तो कारण नहीं है। मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुम मेरे भाई हो।'

रोमपादने फीके हास्यके साथ कहा—'तुमने तो समस्या बहुत सरल मान ली। ज्योतिषी लोगोंने कहा है कि मेरे कोई सन्तान नहीं होगी। मेरा पितृवंश ही मुझसे समाप्त होजाने वाला है।'

'तुम खेद मत करो। समस्या कोई कठिन नहीं है।' दशरथजीने कहा—'मैं अपनी पहिली सन्तान तुमको दे दूंगा। उसे दत्तक ले लेना। इससे तुम्हारा वंशोच्छेद नहीं होगा।'

दशरथजी बाल्यकालसे सत्यवादी थे। उनकी सत्यनिष्ठासे सब परिचित थे। उनके इस आश्वासनने रोमपादके साथ उनकी मित्रता और प्रगाढ़ कर दी।

समयपर अध्ययन पूरा हो गया। समावर्तन संस्कार सम्पन्न कराके दोनों राजकुमार अपनी-अपनी राजधानियोंको लौट गये। दशरथजी तो अयोध्याके समीप ही थे। रोमपादको उन्होंने विदा किया। दोनों ही अपने-अपने राज्योंके समयपर राजा हुए। दोनोंने विवाह किया, किन्तु रोमपादके कोई सन्तान नहीं हुई।

महाराज दशरथको बड़ी महारानी कौसल्यासे एक कन्या हुई। इसका नाम शान्ता रखा गया। जैसे ही यह कन्या माताके दूधको छोड़कर अन्न खाने लगी, महाराज दशरथने अपने बालमित्र रोमपादको मन्त्री भेजकर बुलवाया। अयोध्यामें उनका स्वागत किया। अन्तमें पुत्री उनकी गोदमें रखकर कहा—'अब यह तुम्हारी पुत्री है।'

दत्तक जानेके कारण शान्ता महाराज रोमपादकी ही पुत्री मानी गयी। उनका लालन-पालन महाराज रोमपादके ही राजभवनमें हुआ।

अङ्ग, मगध और सौमित्र—ये तीनों राज्य वर्तमान विहारके ही भाग थे। एकबार अङ्ग देशमें भारी अकाल पड़ा। धानकी खेतीका प्रदेश और वर्षा हुई नहीं। कृषक संत्रस्त हो गये। अङ्ग नरेश रोमपाद चाहते तो अपने मित्र महाराज दशरथसे उन्हें सहायता मिल सकती थी। वे जानते थे कि दशरथजी देवराज इन्द्रके मित्र हैं। वे देवराजको वर्षाके लिए कह सकते हैं, किन्तु मित्रको तब कहा जाता है, जब दूसरा कोई उपाय न रह जाय। राजा रोमपादने ऋषियोंसे पूछा–'मेरे राज्यमें वर्षा होनेका कोई उपाय है?'

ऋषियोंने बतलाया—'गङ्गा-तटपर राज्यके समीपके तपोवनमें विभाण्डक ऋषिका आश्रम है। मृगीसे उत्पन्न उनके पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग यदि किसी प्रकार राज्यमें आ जायँ तो अवश्य वर्षा होगी। उन तपोधनका प्रभाव ऐसा है कि वे जहाँ रहते हैं, वहाँ अवर्षण, आधि-व्याधि आदि कोई आधिदैविक उत्पात नहीं होते। वहाँ न महामारी आती, न भूकम्प।'

राजा रोमपादने ऋषियोंका सत्कार करके विदा किया, अपने मन्त्रियों तथा राजाके चतुर पुरुषोंके सम्मुख ऋष्यश्रृङ्गको बुलानेका प्रश्न रखा।

सबको पता था कि विभाण्डक ऋषि वन्य लोगोंकी बस्तियोंसे दूर रहते हैं। वे महान तपस्वी होनेके साथ बहुत क्रोधी हैं। कोई नरेश उन्हें यज्ञमें बुलानेका साहस नहीं कर पाता। वे कोई पात्र नहीं रखते, इसीसे उनका नाम विभाण्डक पड़ा है। गङ्गा या निर्झरका जल और वनमें उत्पन्न फल, कन्द, तृणोंके बीजको वे जैसे वे मिलते हैं, वैसे ही बिना अग्निपर पकाये काममें लेते हैं। मृगीसे उत्पन्न उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि अभी युवक हैं। पिताने सावधानीसे उनका पालन किया है। अपने पिताके अतिरिक्त किसी दूसरे मनुष्यको उन्होंने अब तक देखा ही नहीं है। विभाण्डक ऋषिका आग्रह है कि उनके पुत्र तपस्यामें लगे रहें। प्रौढ़ होनेसे पहिले मनुष्योंके सम्पर्कमें न आवें।

लोगोंने कहा—ऋषि विभाण्डक अपने पुत्रके समीप किसी मनुष्यका पहुँचना पसन्द नहीं करते। कोई वहाँ जानेका साहस करेगा तो उसे वे शाप दे देंगे। वे अपने पुत्रको महान तपस्वी बनाना चाहते हैं। उसे वे नगरमें जान-बूझकर नहीं आने देंगे।

कोई विभाण्डकके आश्रम जानेका साहस नहीं करता था और ऋष्य-शृङ्गको राज्यमें लाना आवश्यक था, जिससे वर्षा हो। अतः जब राजाने घोषणा की कि ऋषि विभाण्डकके पुत्रको लानेवालेको बहुत पुरस्कार दिया जायगा, तब एक वृद्धा गणिका इस कामको करनेके लिए उद्यत हो गयी। उसकी कई युवा लड़कियाँ सङ्गीत-नृत्य प्रदर्शनसे जीविका चलाती थीं। उनको साथ लेकर विभाण्डक आश्रम जानेकी उसने योजना बनायी। उसने एक विशाल नौका सज्जित की। वह नौका छोटे भवनके ही समान थी। उसमें उत्तम वस्त्र तथा भोजनादिकी सामग्री कुछ समयके लिए उसने रखवाया। अपनी नौकाको अपनी लडकियोंके साथ उसने विभाण्डक ऋषिके आश्रमसे कुछ अधिक दूर गङ्गामें जाकर टिकाया। नौका इतनी दूर रखी गयी कि ऋषि विभाण्डक देख भी लें तो कोई आपत्ति न करें, क्योंकि उस समय तो बड़ी नौकाओंपर लोग गङ्गा तथा दूसरी नदियोंमें यात्रा करते थे। व्यापार भी नौकाओंके द्वारा होता था। वैसे भी नौका ऐसे स्थानपर ठहरायी गयी जहाँ वृक्षोंके कारण छिपी रह सके।

उस गणिकाने वहाँ कई दिन रहकर छिपकर केवल यह निरीक्षण किया कि विभाण्डक ऋषि कब क्या करते हैं। वे कब वनमें कुश, काष्ठ,

फल आदि लेने जाते हैं। उनके पुत्र कब पितासे पृथक् रहते हैं। उसे शीघ्र पता लग गया कि ऋषि विभाण्डक पुत्रको वनमें भो प्राय: नहीं जाने देते। वे स्वयं ही वनमें जाकर पुष्प, कुश, फल, समिधा एकत्र कर लाते हैं। स्वभावत: यह संग्रह करके लानेमें उन्हें देर तक वनमें रहना पड़ता था। वे मध्याह्न सन्ध्या करके, फल, कन्द आदि आहार-ग्रहण करके पुत्रको कुछ पढ़ाते थे। तीसरे प्रहरके प्रारम्भमें वनमें चले जाते थे और सूर्यास्तसे कुछ पहिले लौट आते थे। गणिकाको उनका यह दैनिक कार्य-क्रम पता लग गया।

विभाण्डकजीके वनमें चले जानेपर उनके पुत्र ऋष्यशृङ्ग भी थोड़ी दूर तक वनमें घूमने निकलते थे। पिताने उन्हें गङ्गा-तट तक जानेकी अनुमति दे रखी थी। एक दिन जब वे गङ्गा-तटकी ओर गये, पहिलेसे सावधान गणिकाने अपनी कन्याओंको उसी ओर एक लताकुञ्जमें भेज दिया। वहाँ वे जाकर गाने-बजाने लगीं।

ऋष्यशृङ्गने पढ़ी थी नृत्य-संगीतकी बात। वे स्त्रियोंके सम्बन्धमें अध्ययन कर चुके थे, किन्तु इन्होंने पशु-पक्षियोंका ही संगीत सुना था। कोई स्त्री कभी देखी नहीं थी। संगीतसे आकर्षित होकर वे उस कुञ्जकी ओर गये तो उन लड़कियोंने उनका स्वागत किया। उनको तो उनकी माताने सिखला रखा था। वे उन ऋषिकुमारको बार-बार आलिङ्गन करती थीं। उन्हें समीप बैठाकर उन्होंने नृत्य दिखलाया, गायन किया वाद्यके साथ।

शृङ्गी ऋषि उनके सौन्दर्य-वस्त्राभरण देखकर चकित रह गये। उन्होंने कहा—'आप सब मुनिकुमार यहाँ रहते हैं, मुझे यह पता नहीं था। आपके बल्कल तो बहुत मृदुल, सुखस्पर्शी हैं। आपके ये अङ्गाभरण दिव्य हैं। आप सबका स्वर कर्णरम्य है। आप अद्भुत ढंगसे देव-स्तवन करते हैं। किसी दिन आप हमारे आश्रम पधारकर हमारे पिताका आतिथ्य ग्रहण करें। हमारा आश्रम समीप ही है।'

उन लड़कियोंने कहा—'हमारा आश्रम भी यहाँसे थोड़ी दूर है। हम आज वन-भ्रमणपर हैं, किन्तु हमारे संरक्षक नहीं चाहते कि किसीसे मिलें। आप अपने पितासे हमारे मिलनेकी चर्चा कृपा करके मत करना। इससे हमारा व्रत भंग होता है। आपके आश्रमका दर्शन हमको करना है, किन्तु उसका मुहूर्त आना चाहिए।'

ऋष्यश्रृङ्ग जानते थे कि संरक्षक कहीं जानेसे मना करते हैं। व्रत-भङ्गकी बात भी उनको महत्त्वकी लगी। मुहूर्तकी प्रतीक्षा भी वे समझ सकते थे। अतः उन्होंने लौटकर पितासे कोई चर्चा नहीं की। लेकिन उन लड़कियोंके स्पर्श, उनके नृत्य, सङ्गीत, वस्त्र-आभूषणने उनके मनको मुग्ध कर लिया था। वे उनके सम्बन्धमें ही चिन्तन करते रहे।

दूसरे दिन विभाण्डक ऋषिके वनमें चले जानेपर वें लड़कियाँ उनके आश्रममें आ गयीं। श्रृङ्गी ऋषिने प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया। उनको आसन देकर अर्घ्य पाद्य देने चले तो उन्होंने मना कर दिया—'हम जिस व्रतमें हैं उसमें किसीका अर्घ्य, पाद्य अथवा पूजन स्वीकार करना वर्जित है।'

एक ऋषिपुत्रके द्वारा पूजा करानेका साहस वे नहीं कर सकती थीं। जब श्रृङ्गी ऋषिने खिन्न होकर कहा—'अतिथिका सत्कार न करना तो अधर्म है।' तब उन्होंने कह दिया—'आप पानीय जल, फल हमें दे सकते हैं। हमारा दिया जल, फल आप ग्रहण कर लेंगे तो इस विनिमयसे हमारा व्रत भी सुरक्षित रहेगा।'

उन ऋषिकुमारने उन्हें जो कन्द, फल दिये, उसे उन्होंने प्रेम-पूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने सुस्वादु मोदक और मधुर पेय उनको दिया यह कहकर—'हमारे फल तथा पानीयको स्वीकार करें।'

श्रृङ्गी ऋषिको मोदक तथा मधुर पेय प्रथम बार मिला। ऐसे सुस्वादु फल भी होते हैं, यह जानकर वे चकित हुए। उन लड़कियोंने तो आलिङ्गन करना अपना शिष्टाचार बतलाया था। वे आलिङ्गन करके यह कहकर विदा हो गयीं—'कृपा करके अपने पितासे हमारे आगमनको मत कहना। हमारा व्रत इससे भङ्ग होगा।' आप तो कल दैवयोगसे मिले थे, अतः आपसे मिलना व्रत-दूषण नहीं रहा। यहाँसे थोड़ी दूरपर हमारा आश्रम है। कल मध्याह्नोत्तर आप वहाँ पधारें तो हमको बहुत प्रसन्नता होगी।'

विभाण्डक ऋषिके आगमनके भयसे वे वहाँसे शीघ्र विदा हो गयीं। ऋष्यश्रृङ्गको उनके दिये मोदक तथा पेयके मधुर स्वादने अधिक मुग्ध कर दिया था। दूसरे दिन पिताके वनमें जाते ही वे निकल पड़े। गङ्गातट पहुँचते ही वे लड़कियाँ मिल गयीं। वे तो प्रतीक्षा ही कर रही थीं। स्वागत करके

ऋष्यशृङ्ग नौकामें भीतर जैसे ही गये, केवटोंने जो छिपे थे लङ्गर उठा दिया। पूरे वेगसे नौका खेने लगे। नौका रस्सीसे बाँधकर तटपर से भी खींची गयी थोड़ी दूर। अनुकूल वायु मिलते ही पाल चढ़ा दिये गये। नौका पूरे वेगसे चल पड़ी।

भीतर नौकामें वे लड़कियाँ ऋष्यशृङ्गके सत्कारमें लगी थीं। उन्होंने उनके चरण सुगन्धित जलसे धोये। अर्घ्य-पाद्य, आचमन, स्नान सब आग्रह पूर्वक कराया। सबमें विलम्ब किया। उनको अपने सुन्दर कौशेय वस्त्र धारण कराये। भोजन कराया और तब आसनपर बैठाकर नृत्य-सङ्गीतसे उनका सत्कार करने लगीं। इस सत्कारमें ऋष्यशृङ्गको यह पता ही नहीं लगा कि समय कितना व्यतीत हो गया।

नौका जब अङ्गराज्यकी राजधानीमें तटपर लगी तो महाराज रोमपाद अपने पुरोहितों, ब्राह्मणोंके साथ स्वागत करनेको प्रस्तुत थे। ऋष्य-शृङ्गका बहुत बड़ा सत्कार हुआ। उनके भूमिपर चरण रखते ही वर्षा प्रारम्भ हो गयी। राजसदन ले जाकर उसी दिन राजाने अपनी पुत्री शान्तासे उनका सविधि विवाह कर दिया।

यह तो जानी-समझी बात थी कि विभाण्डक ऋषि अपने पुत्रके अपहरणसे बहुत क्रुद्ध होंगे। इसका उपाय राजाने पहिलेसे ऋषियों तथा मन्त्रियोंसे पूछकर कर लिया था। वे जब आश्रम लौटे, पुत्रको न पाकर ढूंढ़ने चले तो शीघ्र उनको राज-सेवक मिलने लगे। वे थोड़ी दूरीपर उनका सत्कार करते थे। ऋषिने जब-जब पूछा—'यह सत्कार किसकी ओरसे किया जा रहा है ?' तब-तब सेवकोंने एक ही उत्तर दिया—'यह सब भूमि और राज्य आपके श्रीमान पुत्रका है। हम उन्हींके सेवक हैं। उन्हींकी आज्ञासे आपकी सेवामें नियुक्त हैं।'

राजधानी पहुँचनेपर जब पुत्रवधूके साथ पुत्रने आकर चरणोंपर मस्तक रखा तब विभाण्डकजी प्रसन्न हो गये। आशीर्वाद देकर स्वयं तपोवन लौट गये।

———

भू-भारके उपचारका यत्न

आजके वैज्ञानिक युगमें भी यह बात समझी जाती है कि बहुत बड़ी सेना समाजपर भार होती है। पृथ्वीका भार दो प्रकारसे बढ़ता है—१. सेनाकी वृद्धिसे, २. अहङ्कारकी वृद्धिसे। पहिले प्रकारका भार द्वापरान्तमें बढ़ा था। उसे दूर करनेके लिए कृष्णावतार हुआ। इस भारका विवेचन 'भगवान वासुदेव'में हुआ है। उससे पहिले—बहुत पहिले पृथ्वीपर दूसरे प्रकारका भार जब अत्यधिक बढ़ गया, तब उसे दर करनेके लिए सृष्टिकर्ताको भी सचिन्त होना पड़ा, जिसके फलस्वरूप अन्तमें मर्यादा-पुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव हुआ।

अहङ्कार सृष्टिके मूल तत्वोंमें है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। जब तीनों गुण साम्यावस्थामें रहते हैं, तब सृष्टि नहीं रहती। तब प्रलयकी अवस्था रहती है। इस प्रकृतिको ही अव्याकृत कहते हैं। समयपर—सृष्टि-काल आनेपर प्रकृतिमें क्षोभ होता है। प्रकृतिके क्षुब्ध होनेपर जो प्रथमतत्व प्रकट होता है, उसे महत्तत्व कहते हैं। व्यक्तिमें—व्यष्टिमें यह बुद्धि तत्व है। इस महत्तत्वके भी क्षुब्ध होनेपर अहंतत्व होता है। व्यक्तिमें—व्यष्टिमें इसीका नाम अहङ्कार है।

अहङ्कार प्रकृतिजन्य होनेसे त्रिगुणात्मक तो है ही। उसके तीनों गुण इस क्षुब्धावस्थामें पृथक्-पृथक् होकर परिणमित होते हैं। अहङ्कारके सात्विक अंशसे समष्टिमें प्राण और व्यष्टिमें इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। अहङ्कारके तामस अंशसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा व्यष्टि देह बनते हैं।

शास्त्रोंने अन्तःकरणके चार भाग माने हैं। जब हम जागते होते हैं, चारों भाग सक्रिय रहते हैं। मन संकल्प-विकल्प करता है। बुद्धि निर्णय करती है। चित्त पुराने संस्कारोंकी स्मृति कराता है और अहंका बोध तो सबको है ही।

हमारे सो जानेपर स्वप्न देखनेकी दशामें मन तथा बुद्धि सो गयी होती हैं। केवल चित्त संस्कारोंको मूर्तिमान करता रहता है। एक ऐसा भी मानसिक रोग होता है, जिसमें सोते रहते हुए भी व्यक्ति उठकर चलता है या दूसरे कार्य जागतेके समान सावधानीसे करता है। उसकी सब इन्द्रियाँ सचेत रहती हैं, किन्तु जब वह सचमुच जागता है तो उसे कुछ स्मरण नहीं रहता कि उसने क्या किया था। इस दशामें केवल मन सोता रहता है। बुद्धि जागी होती है, अतः सब काम बुद्धिपूर्वक होते हैं, किन्तु चित्त ही संस्कार देकर यह सब करानेमें लगा होता है, अतः वह इन कर्मोंके संस्कार नहीं रख पाता। इसीलिए उस समयके कर्मोंका स्मरण नहीं रहता।

जब स्वप्न भी न देखकर सुषुप्ति अवस्था रहती है, तब चित्त भी सो गया होता है। उस समय केवल अहङ्कार जागता है। वही शरीरमें रक्तकी गति, पाचन-क्रिया, श्वास आदि सञ्चालन करता है। इस अहङ्कारकी सत्ताके दो प्रमाण हैं—१. कई लोग पास-पास सो रहे हों तो जिसका नाम लेकर पुकारा जाता है, वही जागता है। सुषुप्तिमें इन्द्रियाँ सो गयी थीं, तब पुकारने पर यह सुननेवाला कि मुझे पुकारा जा रहा है, अहङ्कार ही तो था। २. योगी जब निर्विकल्प समाधि दशामें पहुँचता है, तब उसके शरीरमें न श्वास चलता, न रुधिरमें गति रहती, न आहार-पाचन होता। चित्तवृत्तिके पूर्ण निरोधसे यह अवस्था प्राप्त होती है। इससे सिद्ध होता है कि रुधिराभीसरण, श्वासोच्छ्वासादि सुषुप्तिमें होनेवाली क्रियाओंका भी सञ्चालन वृत्तिके द्वारा ही होता है। उसी वृत्तिका नाम अहङ्कार है। यह अहङ्कार समाधिके बिना कभी सोता नहीं।

आपका हाथ या पैर अधिक मोटा हो जाय तो वह शरीरका भार होगा या नहीं ? आपने श्लीपद (हाथीपाँव) रोगसे पीड़ित व्यक्ति देखे होंगे। बहुत मोटे व्यक्तिका मोटापा उसके लिए कैसा भार होता है, यह भी देखा होगा। इसी प्रकार जब किसीका अहङ्कार बढ़ जाता है, तब वह पूरे समाज पर—पृथ्वीपर भार बन जाता है। इसी अर्थमें अहंबोध तथा अहङ्कारको पृथक् किया जाता है। अहंबोध न हो तो व्यक्ति पागल, मूर्च्छित या निद्रामग्न होगा, किन्तु अहङ्कार दोष है।

अहङ्कारी व्यक्ति चाहता है कि दूसरे सब उनके अनुकूल चलें। वह अपनी ही बुद्धिको सर्वश्रेष्ठ मानता है। अपनी मान्यता सबपर बलात् लादना

चाहता है। वह केवल अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। अपनी त्रुटि, निन्दा, सलाह सुनना उसे अप्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति शक्तिशाली होकर पूरे समाजको पंगु—अपनी कठपुतली बनाने लगता है। समाजपर ऐसे लोग भार होते हैं, यह बात सदा स्पष्ट रही है। ऐसे लोग होते ही रहे हैं, अतः सबको इनका अनुभव है।

हम आपको सौभाग्यवश ऐसे अहङ्कारीका अनुभव नहीं करना पड़ा जो पूरे विश्वपर छा जाय। आधिदैविक शक्तियोंपर भी प्रभुत्व स्थापित कर लेनेवाले तो इस युगके लिए अभी स्वप्न भी नहीं बने हैं, किन्तु अहङ्कार-का भार तो पूरा पृथ्वीपर कैसा रहा होगा, यह समझा जा सकता है।

पृथ्वी भी चेतन है—उसका भी अधिदेवता है, यह बात आप मान लें तो समझ जायँगे कि प्रबलतम अहङ्कारी पृथ्वीके लिए वैसा ही है, जैसे किसी शरीरके लिए कैन्सर। शरीरमें कैन्सरका अणु अपनेको बढ़ाता जाता है, वह सशक्त होता जाता है और पूरे शरीरके लिए आतङ्क—उत्पीड़क बनता जाता है। यही अवस्था रावणके कारण पृथ्वीकी हो गयी थी। क्योंकि उसका कोई उपचार सम्भव नहीं दीखता था, देवशक्तियाँ भी पराजित हो चुकी थीं, पृथ्वी आर्त होकर सृष्टिकर्ताकी शरणमें गयी।

पृथ्वीका अधिदेवता गौ-रूपी है, यह पुराणोंका प्रतीकात्मक वर्णन है। इसलिए है कि तथ्यको किसी प्रकार समझाया जा सके, क्योंकि अतीन्द्रिय तत्वका हम-आपको कोई अनुभव नहीं है। उसका वर्णन हमारे अनुभवोंको प्रतीक बनाकर करना पड़ता है। गौ अर्थात् गतिशीला। गौ अर्थात् प्राणि-मात्रकी धारिका, पोषिका। पृथ्वीके अधिदेवता—भूदेवीके स्वामी भगवान् नारायण हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी नारायणकी नाभिकमलसे उत्पन्न होनेसे उनके पुत्र हैं। पृथ्वीदेवीने अपने कष्टकी बात पुत्रसे कही, क्योंकि कष्टका कारण पुत्रकी सृष्टिने उत्पन्न किया था।

जो समष्टिमें होता है, व्यष्टिमें भी होता है। आधिदैवत जगत् सत्य होनेपर भी इन्द्रियातीत है, अतः उसे समझनेके लिए हमारे संतजन अध्यात्म-का सहारा लेते हैं। अध्यात्म अर्थात् हमारे शरीरके भीतर मानसिक स्थिति, किन्तु इस भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए कि कथाका यह आध्यात्मिक अर्थ ही परम सत्य है और आधिदैविक तथा आधिभौतिक रूप कल्पना है। सत्य तो

आधिदैविक एवं आधिभौतिक रूप ही है, किन्तु आधिदैविकका ही प्रतिरूप (माडल) अध्यात्म है, अत: अध्यात्मके सहारे उसे समझा-समझाया जा सकता है।

व्यष्टिमें अन्त:करण चतुष्टय ब्रह्मा हैं। शरीरमें जब असाध्य व्याधि हो गयी तो पहिली बात कि आप—शरीरके अधिदेवता क्या करेंगे ? अपने चित्तको एकाग्र करके विचार करेंगे। विचारसे भी कोई उपाय न सूझे तो ? तब अन्तर्यामी हृषीकेशको पुकारना चाहिए।

भूदेवी रावणके अहङ्कार भारसे पीड़ित होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीकी शरणमें गयीं। सभी इन्द्रादि देवता जो व्यष्टिमें इन्द्रियोंके देवता हैं, भूदेवीके साथ गये। सब व्यथित थे। साथ ही सब विवश थे। रावणने सभी देवताओंको पराजित करके आज्ञानुवर्ती बना लिया था। व्यष्टिमें वह अपरिमित इन्द्रिय-शक्ति प्राप्त कर चुका था और समष्टिमें वर्षा, वायु, भूकम्प, ज्वालामुखी, समुद्रादि सब उसके नियन्त्रणमें हो गये थे। प्रकृतिपर नियन्त्रणकी इतनी महान स्थिति अभी विज्ञान-विशारदोंकी कल्पनामें भी नहीं है, जबकि नगरकी स्वच्छता, उपवनोंकी सिंचाई ही नहीं, यह भी नियन्त्रणमें हो कि समुद्रमें-से कब कैसे रत्न निकलेंगे। ज्वार-भाटेपर भी अधिकार हो। रावणने यमपर—मृत्युपर भी अधिकार कर लिया था।

ब्रह्माके समीप भी कोई उपाय नहीं था। रावणके तपसे प्रसन्न होकर वे उसे वरदान देकर अजेय बना चुके थे। अत: देवताओंके साथ वे कैलास पहुँचे और शङ्करजीको—प्रलयके अधिदेवताको भी साथ लेकर परमपुरुषकी स्तुति करने लगे।

भगवान् शङ्करकी रावण आराधना करता था। वह सृष्टिमें विनाश ही तो कर रहा था। अत: शङ्करजी स्वयं उसे नहीं मार सकते थे। अपने भक्तको मारना किसी प्रकार उनके लिए सम्भव नहीं था।

आधिदैवत जगत्में यह घटना कब हुई ? यह गणना कहीं मिलती नहीं, किन्तु मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीके अवतार ग्रहणसे बहुत पूर्व हुई, क्योंकि ब्रह्माजीको जब परात्पर पुरुषने आश्वासन दिया अपने अवतार ग्रहणका, तब सृष्टिकर्ताने देवताओंको पृथ्वीपर अपने-अपने अंशसे वानर उपदेव जातिमें उत्पन्न होनेका आदेश दिया। देवांशसे जो वानर पृथ्वीपर उत्पन्न हुए वे श्रीरामावतारसे बहुत पहिले उत्पन्न हुए थे।

ब्रह्माजीके मानसपुत्र ऋक्षराज जाम्बवन्त तो सृष्टिके प्रारम्भमें ही उत्पन्न हुए थे। वे युवा थे जब वर्तमान मन्वन्तर (वैवस्वत मन्वन्तर)के पूर्व चाक्षुष मन्वन्तरमें अमृत-मन्थनके पश्चात् वामन भगवान्ने अवतार धारण किया था।

बालि-सुग्रीवके पिता ऋक्षराज भी ब्रह्माजीके ही अंशसे उत्पन्न हुए थे। हनुमानजीके पिता केसरीकी भी उत्पत्ति पहिले मन्वन्तरमें हुई थी। अमृत-मन्थनके पश्चात् मोहिनीके कारण भगवान् शङ्करका रेतस्खलन हुआ था। उससे श्रीहनुमानजीकी उत्पत्ति हुई।[1] अतः श्रीहनुमानजी भी चाक्षुष मन्वन्तरमें ही उत्पन्न हुए थे।

बालि-सुग्रीव, नल-नील, द्विविद, तार आदि अधिकांश वानर लगभग समवयस्क ही थे। अतः इन सबकी उत्पत्ति पिछले मन्वन्तरमें ही हुई होनी चाहिए।

रावणने अपनी दिग्विजय यात्रामें बालिको ललकारा था और बालिने पराजित करके उसे अपने नगरमें लाकर बाँध दिया था। बालि-पत्नी तारा उसके मस्तकोंपर सन्ध्या समय दीपक रखने लगी थीं। अङ्गदने कहा था कि वे तब शिशु थे और अपने पालनेमें बँधे रावणके सिरोंपर पैर पटकते थे।[2] इसका अर्थ यह हुआ कि अङ्गदका जन्म भी रावणकी उस विजय-यात्रासे पूर्व हो चुका था।

रावण अपनी भूमि-विजय यात्राके क्रममें ही महाराज मान्धातासे पराजित हुआ था।[3] अतः पृथ्वीपर उपदेव जातिमें वानरोंका जन्म उससे भी पूर्व हुआ होना चाहिए। यह वानरोंका जन्म पृथ्वीपर चाक्षुष मन्वन्तरमें हुआ, सभी वर्णनोंसे ऐसा ही प्रकट होता है।

रावणने क्योंकि लगभग बहत्तर चतुर्युगी राज्य किया, उसके अहङ्कार-से भार पीड़ित पृथ्वीने पर्याप्त पहिले ब्रह्माजीकी शरण ली और तभी ब्रह्माजी-ने देवताओंको वानर जातिमें जन्म ग्रहणका आदेश दिया।

---

१. 'आञ्जनेयकी आत्मकथा'में यह चरित पूरा आया है।
२. 'राक्षसराज'में यह वर्णन पूरा आया है।
३. 'राक्षसराज'में यह वर्णन पूरा आया है।

देवताओंका दिन एक मानव वर्षके बराबर होता है। अतः आधिदैवत जगत्‌की घटनाओंके सम्बन्धमें जब हम अपनी दृष्टिसे विचार करने लगते हैं, तब कालके सम्बन्धमें उचित कल्पना करना बहुत कठिन होता है।

दूसरी बात यहीं समझ लेने की है कि भारतीय सभ्यतामें व्यक्तिके प्रति स्नेह या सम्मानमें आयुका महत्व अत्यन्त अल्प है। सामाजिक दृष्टिसे जो बड़ा है, वह सम्मान-भाजन और जो छोटा है, वह स्नेह-भाजन है। आयुकी दृष्टिसे हनुमानजी श्रीरामसे बहुत बड़े होनेपर भी श्रीजानकी उन्हें पुत्र ही मानती थीं। श्रीरामसे केवल दो दिन छोटे थे श्रीलक्ष्मणजी, किन्तु श्रीजानकी उन्हें 'शिशु' और 'लालन-दुलार पाने योग्य' ही मानती थीं।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके समीप भूदेवी रावणके अहङ्कार-भारसे पीड़ित होकर देवताओंके साथ चाक्षुष मन्वन्तरके समय ही पहुँची होंगी। ब्रह्माजीके समीप तो सृष्टिके इस कैन्सरका कोई उपाय था नहीं, अतः उन्होंने देवताओं तथा शिवके साथ परमपुरुषकी शरण ग्रहण की।

परमपुरुषको पुकारनेके लिए स्थान विशेषकी आवश्यकता नहीं है। जो सदा, सर्वत्र व्यापक है, उसे पुकारनेके लिए कोई कहाँ जाय? लेकिन उपासनाके लिए भी एकान्त तथा सात्विक स्थान आवश्यक होता है। सृष्टिकर्ताके लिए उनकी सृष्टि राजस—हलचल भरी है। अतः देवताओंके साथ वे क्षीर-सागरके तटपर गये। उन्होंने उच्छलित सत्वगुणके सामीप्यका सहारा लिया।

आकाशवाणी हुई—देवता स्वयं दिव्य देही हैं। भगवान् ब्रह्मा इस हमारे आकाशके रहनेवाले पाञ्चभौतिक प्राणी तो हैं नहीं। अतः इस भौतिक आकाशकी चर्चा ही वहाँ नहीं है। ब्रह्माजीने अपने हृदयाकाशमें ही अन्तर्यामी परमपुरुषका आश्वासन प्राप्त किया। ब्रह्मासे लेकर क्षुद्र कीट तकके हृदयमें तो वे हृषीकेश अवस्थित ही हैं। उनकी वाणी श्रवणके लिए अन्तर्मुख होना आवश्यक होता है।

ब्रह्माको—सृष्टिकर्मके अधिदेवताको उन परमपुरुषने आश्वासन दे दिया कि वे स्वयं अवतरित होकर सृष्टिके इस महारोग, भू-भारभूत दशग्रीव का दलन करेंगे। सृष्टिकर्ताने देवताओंको अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर उत्पन्न होनेका आदेश दिया। देवता पृथ्वीपर उपदेव जाति वानरोंमें उत्पन्न हुए और वनोंमें, पर्वतीय प्रदेशोंमें अपने नगर बनाकर रहने लगे। उन्हें परम पुरुषके अवतार लेकर दशग्रीव-दलनमें आह्वानकी प्रतीक्षा करनी थी। ★

परमपुरुष

आप यदि जगतका मूल तत्व जड़ मानते हैं तो मानना पड़ेगा कि उसका विश्वास हो रहा है। जड़का विकसित रूप चेतन है, इस मान्यताका तात्पर्य है कि हम अपने पूर्व पुरुषोंसे बहुत अधिक बुद्धिमान हैं। हमारी सन्तान उत्तरोत्तर हमसे अधिक बुद्धिमान होती जायगी, किन्तु यह तथ्य प्रत्यक्षके ही विरुद्ध है। जो देश अतीतमें नितान्त बर्बर रहे हैं, केवल वे ही इस मान्यतापर बने रह सकते हैं। भली प्रकार खोज करनेपर प्रमाणित यह होता है कि भारत जैसे देशमें हमारा समस्त ज्ञान अपने पूर्व पुरुषोंका प्रसाद है। विज्ञानके क्षेत्रमें–जो आजके विकासकी सबसे प्रमुख विधा है उन प्राचीन उपलब्धियोंको अभी तक भी प्राप्त नहीं किया जा सका है।

जगतका मूल तत्त्व यदि चेतन है —जैसा कि तथ्य है, तो उससे जितना समीप हम रहते हैं। उससे जितना दूर हटते जाते हैं, ज्ञानालोक क्षीण पड़ता जाता है और अन्धकारमें टटोलना तथा अनुमान करना हाथमें रह जाता है। क्या आजके विज्ञानकी यही अवस्था नहीं है? उसकी उपलब्धियाँ टटोलकर अनुमानके आधारपर ही स्थापित हैं।

सृष्टिकी आदिमें सतयुगका क्रमशः ह्रास होते-होते कलियुग तक पहुँचना इसी तथ्यको सूचित करता है। सृष्टिका वह मूल-तत्त्व सगुण-निर्गुण उभयात्मक है। उसके दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। अवाङ्मनस-गोचर उसके स्वरूपका ठीक-ठीक निरूपण सम्भव नहीं है।[1]

एक पाश्चात्य अन्वेषकने खोज की है कि 'अतीतमें अन्य ग्रहोंके लोग पृथ्वीपर आते रहे हैं। उन्होंने यहाँके मनुष्योंसे सन्तानें उत्पन्न कीं। वे बहुत बुद्धिमान थे और उनको बहुत अधिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमताएँ प्राप्त थीं।'

---

१. 'भगवान वासुदेव' में इस तत्त्वका विस्तृत वर्णन 'सगुणतत्त्व' अध्यायमें आया है।

इसके प्रमाणमें उन्होंने पृथ्वीके कुछ भागोंमें—दक्षिण अमेरिकाकी पहाड़ियोंके सिरेपर समानान्तर धातुकी पट्टियाँ ढूँढ़ निकाली हैं जो हवाई पट्टीकी सड़कें जैसी हैं और सड़क वहाँ पर्वत शिखरसे नीचे जावें, ऐसी स्थिति नहीं है। उन्होंने आस्ट्रेलियाकी गुफाओंमें ऐसे चित्र ढूँढ़े हैं जो आजके राकेट यात्रीके समान खोल पहिने मानवके हैं। यह सिद्ध हो गया है कि वे चित्र सहस्रों वर्ष प्राचीन हैं।

उन्होंने देवताओंके विमानों द्वारा पृथ्वीपर आने तथा मनुष्योंसे संपर्क करने, वैवाहिक सम्बन्ध तक करनेकी विभिन्न जातियोंमें प्रचलित कथाओं-का उल्लेख किया है।

पितृलोक, स्वर्ग, नरक तथा दूसरे लोक अन्य ग्रहोंमें स्थित हैं या नहीं, यह विवादास्पद विषय है। अनेक भारतीय विद्वानोंका मत भी ऐसा ही है कि ये ग्रहान्तरमें स्थित स्थानोंके वर्णन हैं। वाराणसीके एक प्रख्यात ज्योतिर्विदने अपनी यह व्यक्तिगत सम्मति सूचित की थी।

यहाँ हम लोक विशेषका वर्णन नहीं कर रहे हैं। हम उस चेतनको परमपुरुष परमात्मा कहते हैं, जो सर्वव्यापक है और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका धारक-पालक सञ्चालक, कर्त्ता एवं संहर्त्ता है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व्यापक, अज, अविनाशी है। वही मूल सत्ता है और देश-कालका भी आश्रय है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड उसके भीतर ही हैं। निर्गुण रूपसे यदि वह आत्मरूपमें अनुभव होता है तो सगुणरूपमें वही सबका पालक है और छुद्र-तम जीवाणुके भीतर भी स्थित है। उसका भी अन्तर्यामी है। जो कोई भी परमात्माकी आराधना करता है, चाहे जिस सगुण रूपमें करता हो, उसीकी आराधना करता है।

उसके सगुण साकार रूप अनन्त हैं, क्योंकि हमारी भावनाएँ अनन्त हैं और प्रत्येक भाव निष्ठा पूर्वक आश्रयण किये जानेपर उस परमपुरुष तक पहुँचा देता है। हमारा पात्र जैसा होगा उसमें भरे गये गङ्गाजलका वही आकार होगा। हम जो रूप उस सर्वेशका मानें हमारे लिए उसका वही रूप। लेकिन उसके सब रूप नित्य हैं अर्थात् उसके नित्य रूपोंमें-से ही किसीका चिन्तन-आश्रयण हम कर सकते हैं। उससे भिन्न रूप मनमें आ ही नहीं सकता।

आप कह सकते हैं कि अनन्त ग्रह-तारकोंमें-से जो दिव्यलोक हैं, उनसे भावस्तरें अन्तरिक्षमें प्रसारित होती रहती हैं और हमारा मन उनसे ही तरङ्गें ग्रहण करता रहता है। अभी विज्ञानने इस दिशामें कोई उपलब्धि नहीं की है।

वे दिव्यलोक ग्रहान्तरोंमें हों या सूक्ष्म जगतमें, यहाँ हम उस परमात्माकी—परमपुरुषकी चर्चा कर रहे हैं जो अनन्त-अनन्त लोकोंका अधिष्ठान है। सब लोकोंका जो आश्रय है। उसके अमुक रूपका दिव्यधाम कौनसा—यह वर्णन शास्त्रोंमें है, किन्तु हम यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

'राम ब्रह्म परमारथ रूपा।'

की चर्चा कर रहे हैं। यद्यपि पृथ्वीपर भगवान् नारायणके अंश, कलासे ही अधिकांश अवतार होते हैं, क्योंकि स्थितिका दायित्व अर्थात् सृष्टिकी व्यवस्था बनाये रखना उनका ही काम है, किन्तु जो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वनियन्ता है वह अवतार ले ही नहीं सकता, यह नियम कैसे बनेगा ? उसपर नियन्त्रण कौन कर सकता है ?

प्रत्येक ब्रह्माण्ड (सौर जगत) के एक ब्रह्मा, (सृष्टिकर्त्ता) एक पालक विष्णु और एक संहारकर्त्ता रुद्र होते हैं, यह शास्त्रोंने कहा है। पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाली समस्याओंका यही समाधान करते हैं। सत्पुरुषोंका परित्राण, दुष्ट उत्पीड़न कर्ताओंका विनाश तथा धर्मकी स्थापना युग-युगमें अवतार लेकर यही करते हैं। ये अवतार केवल भगवान् विष्णुके ही नहीं होते, शक्तिके, शिवके, गणपतिके भी होते हैं।

परमपुरुष परमात्मा क्यों अवतार ले ? ऐसा क्या काम है जो केवल सङ्कल्प करके न कर सके ? जब प्रत्येक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं ही और अपने ब्रह्माण्डमें वे सक्षम हैं तब एक जिलाधीशके क्षेत्रमें व्यवस्थाका भार लेकर राष्ट्रपति क्यों पधारें ?

यहीं दूसरा प्रश्न है कि राष्ट्रपति स्वेच्छापूर्वक कहीं आना चाहें और कोई व्यवस्था स्वयं देखना चाहें, स्वयं कुछ करें तो कोई प्रतिबन्ध है ?

'तत्तु लीला कैवल्यम्।'　　—ब्रह्मसूत्र

भगवान्—परमपुरुष परमात्माका अवतार केवल उनकी लीला है। उनकी इच्छा है। इसका कारण नहीं ढूंढ़ा जा सकता।

ऐसा होनेपर भी उनके अवतारका कारण है। प्रत्येक निष्काम आराधक परमपुरुष परमात्माकी ही आराधना करता है, भले वह किसी रूपमें करे। भक्ति भावात्मिका है अर्थात् बिना किसी भावके, बिना उस परमात्मासे कोई सम्बन्ध जोड़े भावमें दृढ़ता आती ही नहीं। प्रेमका स्वभाव है कि वह परायेसे नहीं होता।

स्वामी, सखा, पुत्र, पति आदि मानकर जो परमपुरुषमें प्रीति रखते हैं, उनके मनमें उसे प्रत्यक्षरूपमें उसके साथ रखने, अपने भावके अनुसार उससे व्यवहार करनेकी उत्सुकता होगी या नहीं? जब तक ऐसी उत्सुकता वैयक्तिक रहती है, जहाँ तहाँ कुछ थोड़े लोगोंमें रहती है, उन्हें दर्शन देकर, दूसरोंसे अलक्षित रखते हुए केवल उनके लिए प्रकट रहकर काम चल सकता है। यदि आप इसे अवतार कहें तो पृथ्वीपर ऐसे अवतार सदा होते रहते हैं। शत-शत स्थानोंपर, शत-शत महाभाग भक्तोंके लिए होते रहते हैं। धरा कभी भक्तोंसे रिक्त नहीं होती। सच्चे भक्त हैं तो भगवान् भी उनके लिए प्रकट ही हैं। वे तो नित्य भक्तोंके अपने ही हैं।

ऐसा भी कभी-कभी होता है कि भावुक भक्तोंका समुदाय ही धरापर एकत्र हो जाता है। जब कोई दूसरा कुछ नहीं चाहता, केवल परमपुरुषको पुत्र रूपमें प्राप्त कर उसका लालन-पालन करना चाहता है, उसे अङ्कमें बैठाकर स्नेह करना चाहता है तो परमपुरुषके पास केवल सङ्कल्प करके उसकी भावना पूर्ण करनेका क्या उपाय रह जाता है। सङ्कल्प करके उसका मन परिवर्तित किया जा सकता है; किन्तु भगवान् भी भक्तिके भावको मिटा नहीं पाते। स्नेह–प्रेमको पुरस्कृत किया जाता है, ठुकराया अथवा मिटाया नहीं जाता। अतः भगवान् भक्ति–परतन्त्र हैं। भक्तिका नियन्त्रण, परिवर्तन वे भी नहीं कर पाते। फलतः ऐसे भक्तके लिए उन्हें अवतार धारण करना पड़ता है।

जब भक्तोंका समाज ही धरापर एकत्र हो जाता है और वे किसी एक भगवद्रूपके प्रत्यक्ष सम्पर्कके अभिलाषी होते हैं तब परात्पर पुरुष स्वयं अवतार लेते हैं। वे उनके मध्य पधारते हैं। उनके भावानुरूप नाना प्रकारके चरित करते हैं।

निर्गुण तत्वका ग्रहण अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिके लोग ही कर सकते हैं और उनमें-से भी केवल वे जो शम-दमादि सम्पन्न शुद्धान्तःकरण हों। योगके साधनोंके द्वारा निर्विकल्प समाधि प्राप्त करनेकी योग्यता भी अत्यल्प लोगोंमें होती है। मनुष्य योनिका परमोद्देश्य भगवत्प्राप्ति है और मनुष्य जन्म जीवको भगवदीय विधानसे ही प्राप्त हुआ है। ऐसी अवस्थामें सर्वसाधारण भगवत्प्राप्ति न कर सकें तो मनुष्योंकी सृष्टि क्यों ? तब तो मनुष्य ही वैसा निर्मित करना था जो ज्ञान अथवा योग करनेमें सक्षम हो। मनुष्य जैसा भी है, उसी योग्यता तथा अवस्थामें भगवत्प्राप्ति कर सकता है, यह उसके मनुष्य होनेसे ही स्पष्ट है। अतः सभी मनुष्योंके लिए भगवत्प्राप्तिका ऐसा साधन भी मनुष्योंके स्रष्टाको ही देना चाहिए जिसे सब कर सकें।

अनन्त करुणावरुणालय परमपुरुष इसलिए भी अवतार लेते हैं कि उनका नाम, उनका अचिन्त्य कल्याण गुणगणैक धाम चरित, उनका भुवन-मनोहारी रूप सृष्टिके स्मरणका विषय बने। अवतार-कालके पश्चात् भी मनुष्य उनके नामोंका जप-कीर्तन करके, उनके चरितका श्रवण-गायन-चिन्तन करके, उनके मङ्गलमय रूपका ध्यान करके उन्हें प्राप्त कर सकें।

अवतार लेनेपर—साधारण बालकके समान जन्म लेनेपर तथा तिरोभाव दिखलानेपर, मनुष्य शिशुके समान ही बढ़ने, विवाह करने, सन्तानोत्पन्न करने तथा दूसरे समस्त मानव-चरित दिखलानेपर भी भगवान् जन्म-मृत्यु, घटना-बढ़ना, परिवर्तित होना तथा स्थूल रूपमें बने रहना, इन सभी विकारोंसे सर्वथा असंस्पृष्ट रहते हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दघन ही होता है।[1]

भगवान् श्रीरामके अवतार भी कल्पभेदसे दो प्रकारसे हुए हैं—१. भगवान् नारायणके अंशसे, २. साक्षात परात्पर पुरुषका। भक्तोंके आराध्य, उनके हृदयधन तो साक्षात्परमपुरुष मर्यादापुरुषोत्तम ही हैं, अतः हम उनको ही चर्चा करते हैं।

त्रेतामें लगभग त्रेताके अन्तिमकालमें पृथ्वीपर मर्यादा पुरुषोत्तमके परम भक्तोंका समूह एकत्र हो गया। यह समूह केवल अयोध्यामें ही नहीं

---

१. यह अवतार-तत्व 'श्रीद्वारिकाधीश' तथा 'पार्थ-सारथि'के उपक्रम अध्यायोंमें विस्तारसे निरूपित है।

था। जनकपुरमें, शृङ्गवेरपुरमें, वनमें तथा अन्यत्र भी था। माता कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयीजीके पितृगृहोंको कैसे भूला जा सकता है ? लङ्कामें नहीं था, ऐसा भी नहीं। वहाँ भी था और वह पीछे विभीषणका परिकर बना।

परात्पर पुरुषके सगुण श्रीराम रूपका नित्यधाम साकेत सृष्टिके प्रारम्भमें ही अयोध्याके रूपमें धरापर आ चुका था। उनके दिव्य धामके परिकर भी यथा समय अवतीर्ण हुए।

महाराज दशरथ तथा महारानी कौसल्याके पूर्व चरित कल्पभेदसे अनेक हैं। उन्हें कश्यप-अदिति या मनु-शतरूपाके रूपमें जाननेका तात्पर्य इतना ही है कि वे नित्य दशरथ-कौसल्यासे एक हो गये थे। भगवान्के नित्य धामस्थ उनके नित्य परिकर धरापर, अयोध्यामें विशेषतः प्रकट हो गये।

समय-समयपर, युग-युगमें आराधना करके जो भी जीव अधिकारी हुए थे, वे इन नित्य परिकरोंसे तादात्म्यापन्न हो गये। इसका तात्पर्य है कि पूर्वकालका कोई अमुक महाभागवत ही अपनी भावनानुसार महाराज दशरथके रूपमें जन्म लें, ऐसा नहीं है। श्रीरामके अवतारके पूर्व उस कल्पमें जब भी जितने भी लोग वात्सल्य भावको अपनाकर परात्पर पुरुषको पुत्रके रूपमें पाना चाहते थे, वे सब इस समय महाराज दशरथसे एक हो गये। उन्हें महाराज दशरथमें सायुज्य प्राप्त हो गया।

इस प्रकार जब धरापर लक्ष-लक्ष प्राण उन परमपुरुषको अपने मध्य अपना बनाकर प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करने लगे, उन नित्यधामके परिकरोंमें शत-सहस्र महाभागवत सायुज्य प्राप्त करके परात्पर पुरुषकी सन्निधि, साहचर्य प्राप्त करनेको अत्यन्त उत्सुक हो उठे, उन दयाधामको अवतीर्ण होना ही था।

उन परम सर्वज्ञने त्रेतामें उपस्थित होनेवाली इस अवस्थाको समझकर ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको सुरोंके साथ प्रार्थना करनेपर अपने अवतीर्ण होनेका आश्वासन दिया था।

पुत्रेष्टि याग

अयोध्या इक्ष्वाकुवंशीय नरेशोंकी राजधानी थी। इस वंशमें परम प्रतापी दिक्‌चक्रजयी नरेशोंकी परम्परा ही बनी रही। अतः अयोध्या उत्तरोत्तर समृद्ध होती गयी थी। उसका विस्तार बहुत अधिक था। उसकी शोभा, उसकी सम्पत्तिकी तुलना पृथ्वीपर नहीं थी।

अयोध्या नगरके चारों ओर परिखा थी अत्यन्त सुदृढ़ और उसमें उत्तुंग महाद्वार थे। उन द्वारोंमें ताम्र-कपाट लगे थे। द्वारोंपर सशस्त्र प्रहरी रहते थे, किन्तु इन द्वारोंको बन्द करनेका प्रयोजन ही नहीं पड़ा। प्रहरी भी किसीको न रोकते थे, न कुछ पूछते थे, क्योंकि ऋषि-मुनि, विद्वान, कलाजीवी तथा व्यवसायियोंका नगरमें आना-जाना रात-दिन बना रहता था। अयोध्याके प्रचण्ड प्रतापी नरेशकी छत्र-छायामें असुर-नाग-गन्धर्व किसीसे नगरको कोई आशङ्का नहीं थी।

नगर परिखासे लगी एक ओर परम पावन सरयूकी धारा थी। परिखाके बाहर सघन वन था। उसमें गज, सिंह आदि वन पशु निर्भय विचरण करते थे। नगर परिखाके भीतर लगभग सभी ओर फलोद्यान तथा पुष्पोद्यान थे। आम्रोपवन थे। नगरमें सरोवर, वावलियाँ, कूप स्थान-स्थानपर थे। सरोवरोंमें अनेक रङ्गोंके कमल एवं कुमुदिनियाँ खिलती थीं। उनमें हंस, सारस, चक्रवाकादि जल पक्षियोंका समुदाय क्रीड़ा करता था। उपवनोंमें पक्षियोंका बाहुल्य था। अनेक रङ्गोंके, मधुर स्वर वाले पक्षियोंका सङ्गीत गूंजता रहता था।

नगरमें विशाल गजशाला, अश्वशाला, गौशालाएँ थीं। ये महाराज-की तो थीं ही। उनमें पर्वतोत्तुंग गज थे। महाराजकी गजशालामें अनेक चतुर्दन्त, ऐरावत कुलोद्भव श्वेत गज थे। अश्वशाला श्यामकर्ण तथा अन्य विविध गुणवाले अश्वोंसे समृद्ध थी। गोशालाओंमें वृषभ, गायों तथा उनके बछड़े, बछड़ियोंकी संख्या करना कठिन था।

नगरमें स्थान-स्थानपर उत्तुंग बहुत विशाल देव मन्दिर थे। रङ्ग-शालाएँ थीं, मल्लशालाएँ थीं और गज, अश्वादिके क्रीड़ा स्थान थे। राजपथ विशाल थे। उनपर रथों, गजों या अश्वपर बैठे लोगोंका आवागमन लगा रहता था। वीथियाँ तक सदा स्वच्छ रहती थीं। नालियोंकी उत्तम व्यवस्था थी। चतुरष्कोंपर वेदियाँ थीं जो सजी रहती थीं।

नगरमें नाना प्रकारके पदार्थोंके आपण (बाजार) थे। उनमें सब प्रकारके पदार्थोंके पृथक्-पृथक् आपण थे। नगरमें ऊंट, खच्चर, गधे, शकट सामग्री ढोनेमें लगे ही रहते थे।

ब्राह्मणोंके आश्रम थे सरयू तटके समीप। उनसे वेदपाठकी ध्वनि उठती रहती थी। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी वर्णके लोग नगरमें थे। रत्न पारखी, स्वर्णकार, ताम्रकार, लौहकार, वायक, बढ़ई, रजक, माल्यकार सूत-मागध-बन्दी, वादक, नर्तकियाँ, बुनकर, मल्ल, विदूषक, पशु-पक्षियोंके शिक्षक, सेवक, बाजीगर, प्रभृति सब प्रकारके लोग अयोध्यामें थे। विद्या और कलामें देशके उच्चतम ज्ञाता आकर अयोध्यामें बस गये थे। उन्हें नरेशने पूरी सुविधाएँ दी थीं। यह विद्वानों, कला निपुणोंका आकर बस जाना परम्परासे चलता आया था। अतः अयोध्या समस्त विद्याओं एवं कलाओंके उच्चतम ज्ञाताजनोंका आवास थी।

रत्नसे लेकर तृण तक अयोध्यामें प्रचुर आता रहता था। जहाँ नगरसे गोबर तथा अन्य छिलके, तृण आदि अनुपयोगी पदार्थ बाहर शकटोंमें जाते रहते थे, वहीं शकटों तथा ऊँटोंकी पंक्तियाँ नाना पदार्थ लेकर आती रहती थीं।

नगरमें गगनचुम्बी उच्च भवन थे। उनपर स्वर्ण-कलश चमकते थे। केवल उनपर फहराती ध्वजाएँ बतलाती थीं कि वह भवन किस वर्णके व्यक्तिका है या किस विद्या-व्यवसायके आश्रितका है। गवाक्षोंसे सुगन्धित धूम्र उठता रहता था। कोई झोंपड़ी या लघु गृह नहीं था। कोई भवन असज्ज या श्रीहीन नहीं था। सबके द्वार सदा मङ्गल कलशोंसे सजे रहते थे। सबपर दीप जलते थे।

सभी द्विजातियोंके भवनोंमें यज्ञशालाएँ थीं। सब हवन, सन्ध्या, देव-पूजन करते थे। अयोध्यामें रोगी, दुर्बल, कुरूप कोई था ही नहीं। देवोपम

पुरुष और देवबालाओं जैसी नारियोंसे अयोध्या भरी थी। किसीके शरीरपर रत्नाभरण न हों तो निश्चित था कि वह किसी व्रत-अनुष्ठानमें होगा। सब कौशेय वस्त्र धारण करते थे। स्त्री-पुरुष स्वर्ण-रत्नालङ्कारोंसे सज्जित रहते थे।

कोई चिन्तित नहीं। कोई उद्धत या क्रूर नहीं। सब विनम्र, सब धर्मपरायण, सब संयमी। जहाँ चोर, डाकू, हत्यारे या अधर्मी भी मनुष्य होते हैं, यह कल्पना ही नहीं थी, वहाँ गृह-द्वार क्यों बन्द होते? वहाँ पुरुष या महिलाएँ कहीं भी आने-जानेको स्वतन्त्र। सबके मुख प्रसन्न, तेजोदीप्त।

आज अयोध्याकी समृद्धिकी कल्पना सम्भव नहीं है। वहाँ भी वैद्य थे, किन्तु उन्हें आखेट या क्रीड़ामें आहत होनेवालोंके उपचारका भी समय कदाचित् ही मिलता था। वहाँ भी विवाद होते थे, किन्तु इस बातके कि किसीकी उचित सेवा या उपहार दूसरा स्वीकार नहीं करता है। वहाँ भी वाद-विवाद होता था, किन्तु तत्त्व-निर्णय या धर्म-निर्णयके लिए।

महाराज दशरथका राजभवन वस्तुतः भवनोंका समुदाय था। उनकी तीन पटरानियाँ थीं और साढ़े तीनसौ रानियाँ थीं। इन सबके भवन पृथक-पृथक थे। उनमें-से प्रत्येक भवनमें रथोंपर बैठकर जाया जाता था। उनमें-से प्रत्येकमें सेवक-सेविकाओंकी भारी संख्या थी।

पशु-पक्षी तो अयोध्याके सामान्य नागरिकोंके भवनोंमें भी पले थे। स्वर्णके पिंजरे सभी भवनोंमें थे। श्वान एवं मार्जार ही नहीं, पारावत, मृग, चित्रक तथा केहरी तक नागरिकोंने पाले थे। सुखी, समृद्ध राष्ट्रमें कला, विद्या तथा विनोदकी नाना विद्याएँ उन्नति करती हैं। अयोध्यामें इस उन्नतिमें सात्विकता थी। प्राणियोंका उत्पीडन न हो और सदाचारके विपरीत उत्तेजना न प्राप्त हो, इसका पूरा विचार रखा गया था।

अयोध्यामें अतिथियोंका अजस्र प्रवाह आता रहता था। उनमें ब्राह्मण, तपस्वीसे लेकर राजपुरुष, कलाजीवी, सेवक सभी होते थे। जहाँ प्रत्येक नागरिक अतिथि-सत्कारको समुत्सुक था, वहाँ अपरिचितको क्या असुविधा होनी थी।

महाराज दशरथ देवराज इन्द्रके मित्र थे। ऐसे मित्र कि देवराजको भी महाराज दशरथकी सहायता अपेक्षित होती थी असुरोंके विरुद्ध। जब

अपने दिव्यरथसे महाराज स्वर्ग पधारते थे, देवेन्द्र स्वयं स्वागत करने आगे आते थे और अपने सिंहासनपर महाराजको अपने दाहिने बैठाते थे। देवता अयोध्याकी समृद्धि, सुव्यवस्थाकी स्पृहा ही कर सकते थे।

महाराज दशरथकी राजसभा विश्वकी ही नहीं, त्रिभुवनकी सुन्दरतम, समृद्धतम राजसभा थी। उसमें किसी सामन्तका आसन प्राप्त हो जाना बड़े-बड़े शूर नरेशोंके लिए भी गौरवकी बात थी। देवता भी आकर चक्रवर्ती महाराजको साञ्जलि उपहार ही अर्पण करते थे।

अयोध्यामें ही नहीं, पूरे राज्यमें अकाल (अतिवृष्टि–अनावृष्टि), महामारीका प्रवेश नहीं था। राज्यमें मूर्ख, नास्तिक, असंयमी, अनाचारी थे ही नहीं, कोई हीनांग नहीं, कोई रोगी नहीं, कोई दुःखी नहीं। किसी स्त्रीको सती होनेका अवसर नहीं आता था, क्योंकि अपने अल्पवयके स्वजनकी मृत्युसे दुःखी होनेका अवसर नहीं पाता था। सब अंगराग लगाये, पुष्पमाल्य सज्जित रहते थे।

महाराज दशरथकी राज-सभामें प्रजाके प्रत्येक वर्गके प्रधान-प्रतिनिधि थे। वे अपने-अपने समाजके प्रमुख तो थे ही, उस समाजके कार्योंके विशेषज्ञ भी थे। महाराजके आठ मन्त्री थे, जिनमें सुमन्त्र महाराज दशरथके सखा, सारथी तथा महामन्त्री भी थे। शेष मन्त्री थे—१. धृष्टि, २. जयन्त, ३. विजय, ४. सिद्धार्थ, ५. मन्त्रपाल, ६. अशोक, ७. अर्थसाधक। ये सब राज्यके विविध विभागोंको सँभालते थे और अपने विषयोंके श्रेष्ठतम ज्ञाता थे।

महाराज दशरथके ये सब मन्त्री इंगितज्ञ, देश-काल, स्थिति समझनेवाले, नीतिज्ञ, दयालु, यशस्वी, प्रजावत्सल तथा धर्मात्मा थे। कामी, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्यालु तो राज्यके नागरिक भी नहीं थे। किसी समस्याको लेकर मतभेद कभी हुआ नहीं, किन्तु हो ही जाय तो उसकी व्यवस्था थी। प्रजाके प्रतिनिधियोंमें-से एक या अधिकोंसे किसी मन्त्रीकी सम्मति न मिले अथवा उनके मतोंमें परस्पर विरोध हो तो वीतराग ऋत्विकोंकी सम्मति परम प्रमाण मानी जाती थी। वामदेव, जावालि आदि ऋषिगण चक्रवर्ती महाराजके ऋत्विक् थे और उनके भी प्रधान थे—कुलगुरु अमित तेजा महर्षि वशिष्ठ।

महाराज दशरथ इन ऋत्विकोंकी सम्मतिका सदा सम्मान करते थे। अन्तिम सम्मति कुलगुरुकी ही थी। महाराज केवल उसे सक्रिय करनेवाले थे। ऐसे राजतन्त्रकी आज कल्पना भी नहीं है और यदि ऐसा राजतन्त्र कहीं बन सके तो वह शासनका सर्वोत्तम तन्त्र होगा।

अयोध्या नगर तो उत्सव पुरी थी। वहाँ केवल देव मन्दिरोंमें ही नहीं, गृहोंमें भी सदा उत्सव होते रहते थे। स्त्री-पुरुष सभी आराधना, व्रत तथा मङ्गल पर्वोंके महोत्सवमें लगे रहते थे। वैदिक सनातन धर्ममें तो सात दिनमें नौसे भी अधिक पर्व पड़ते हैं। अयोध्याके नागरिक अपनी श्रद्धा-निष्ठाके अनुसार इन पर्वोंको पूरे उत्साहसे मनाते थे।

उपासनामें निष्ठा आवश्यक है और निष्ठा रुचिके अनुसार होती है। एक ही घरमें गृहपतिकी निष्ठा भगवान् नारायणमें, गृहस्वामिनीकी भगवती महाशक्तिमें, पुत्रकी शङ्करजीमें, पुत्रवधूकी गणपतिमें, भाईकी सूर्यमें तथा उनकी पत्नीकी स्वामिकार्त्तिकमें, किसीकी किसी दूसरे देवतामें, यज्ञमें, योगमें सम्भव है। अयोध्याके नागरिक धार्मिक थे, परलोककी चिन्ता करने वाले थे, अतः उनमें यह निष्ठा भेद भी था—भरपूर था, किन्तु इसके कारण तो नगर देव मन्दिरोंसे, योगाश्रमोंसे सजा था। इसके कारण गृहोंमें महोत्सवोंका क्रम बना रहता था। कभी किसीके आराध्यका महोत्सव और कभी किसीके आराध्यका। उसमें परिवारको, पड़ोसियोंको भी पूरे उत्साहसे लगना था। सबके लिए सबके आराध्य सम्मान्य थे।

अयोध्यामें सब सुखी थे, सम्पन्न थे, किन्तु स्वयं चक्रवर्ती महाराज सचिन्त थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। केवल एक कन्या हुई युवावस्था में और महाराजने उसे अपने मित्र राजा रोमपादको दत्तक दे दिया। अयोध्याका राजसदन फिर शिशुका कलरव नहीं सुन सका। किसी भी रानीकी गोद नहीं भरी। महाराजकी अवस्था तारुण्यको पार कर चुकी। अब वे प्रौढ़ावस्थाको भी पार करने लगे। महाराजके सन्तान न होनेसे प्रजा भी चिन्ता करने लगी थी। राज्यका योग्य उत्तराधिकारी अब तक नहीं था, यह सबकी चिन्ताका विषय था। सहस्र-सहस्र लोगोंने चुपचाप देवाराधन, जप, अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये थे कि उनके धर्मात्मा प्रजावत्सल नरेशको पुत्र प्राप्त हो।

चक्रवर्ती महाराजकी गुप्तचर व्यवस्था शिथिल नहीं थी। यद्यपि

गुप्तचरोंके लिए एक ही कार्य रह गया था कि वे देखते रहें कि कहीं कोई सङ्कोचवश किसी प्रकार अभाव पीड़ित तो नहीं होता अथवा कोई अपरिचित अयोध्या आकर उचित सत्कारसे वञ्चित तो नहीं रह जाता। महाराजके प्रति प्रजाका कोई नागरिक असन्तुष्ट हो तो यह बात महाराज तक शीघ्र पहुँचानी थी। अतः प्रजाके व्रत, अनुष्ठानादिका समाचार भी पहुँचता ही था। इससे भी महाराजकी चिन्ता बढ़ गयी थी।

'मेरी इच्छा है कि पुत्र-प्राप्तिके लिए मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ।' एक दिन महाराज दशरथने राजसभामें मन्त्रियों, प्रजा-प्रतिनिधियोंके सम्मुख यह सङ्कल्प प्रकट किया। इससे पूर्व भी महाराजने अनेक प्रकारके यज्ञ किये। यज्ञ-आराधना सबसे प्रिय कार्य थे।

'इस समय कोष परिपूर्ण है।' अर्थमन्त्री अर्थसाधकजीनें सबसे पहिले समर्थन किया—'ब्राह्मण, कलाजीवी, सेवक तथा दूसरे भी अब उपहार लेनेमें बहुत हिचकने लगे हैं। राजकीय द्रव्यके सद्व्ययका यह उत्तम मार्ग महाराजाधिराजने सोचा है।'

'महाराजका कहीं कोई शत्रु नहीं है।' महासेनापति विजय उठे—'लङ्काका दुर्दम अधिपति दशग्रीव भी अयोध्याकी रणवाहिनीके सम्मुख आनेका साहस नहीं करता। हमारे अश्वमेधीय अश्वको वह भी उपहार ही देगा। कहीं कोई साहस ही करले तो अयोध्याके शूर प्रसन्न होंगे। हमें अवसर मिलेगा शौर्य प्रदर्शनका।'

'महाराजका निर्णय उचित है। अश्वमेध किये महाराजको अधिक काल हो चुका।' सिद्धार्थ, मन्त्रपाल, जयन्त, धृष्टि आदि सबका मत था—'महाराजका कहीं कोई शत्रु नहीं। जहाँ असुरोंके साथ भी न्याय होता है और उनसे भी अवज्ञाका व्यवहार करनेवाले स्वजन भी दण्डित होते हैं, ऐसे देववन्द्य नरपतिके अश्वको दैत्य-दानव भी अर्घ्य अर्पित करेंगे।'

'हम सब इसका अनुरोध बार-बार करते हैं कि हमारे उपहार राज-सेवक अस्वीकार न करें।' प्रजा-प्रतिनिधियोंने कहा—'हमारे पूरे वर्गके लोगोंको सेवाका अवसर मिलेगा महाराज यज्ञ करेंगे तो।'

राजसभाका सर्वसम्मत निर्णय हो गया तब महाराजने कुलगुरुके आश्रम जाकर उनके चरणोंमें दण्डवत प्रणाम किया। राजकीय रथ आश्रमके बाहर ही खड़ा हो गया था। महर्षिने आशीर्वाद दिया। अनुमति पाकर

महाराजने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'आपके यजमानोंकी परम्पराका उच्छेद न हो, इसके लिए मेरे मनमें अश्वमेध यज्ञ करनेका सङ्कल्प उठा है। इसकी पूर्ति श्रीचरणोंके अनुग्रहपर ही अवलम्बित है।'

'राजन्! तुम धर्मप्राण हो, तुम्हारा सङ्कल्प धर्मकार्यके लिए है।' महर्षि प्रसन्न हो गये—'तुम्हारी कामना अवश्य पूर्ण होगी। तुम्हारे विश्व-विश्रुत चार पुत्र उत्पन्न होंगे। तुम अवश्य अश्वमेध यज्ञ करो। मैं इसके लिए चल रहा हूँ। इसकी आवश्यक प्रस्तुति आज ही प्रारम्भ हो।'

'यह आपका ही कार्य है। आपके ही अनुग्रहसे सम्पन्न होगा। सदा ही मैं आज्ञानुवर्ती हूँ। दायित्व तो सदा श्रीचरणोंने वहन किया है।' महाराजने हाथ जोड़कर पुनः प्रणिपात किया।

सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप प्रभृति सभी पुरोहित प्रसन्न हो गये। महर्षि वशिष्ठने सुमन्त्रको आवश्यक निर्देश देने प्रारम्भ कर दिये अयोध्या आकर। सरयूके दक्षिण तटपर वनको काटकर, स्वच्छ करके एक बड़ा नगर बस गया। दूत भेज दिये गये ऋषियोंको तथा सामन्त नरेशोंको आमन्त्रित करनेको। देशके सभी विद्वान्, शूर तथा कलाजीवी आमन्त्रित हुए। वैश्योंके, शूद्रोंके प्रधानोंको भी आमन्त्रण गया और सबके निवासके लिए उचित भवनोंका निर्माण प्रारम्भ हो गया। आवश्यक द्रव्यों, औषधियों, तीर्थजलों आदिको लेनेके लिए भी दूत चले गये।

उसी दिन इतनी सब व्यवस्था करके महामन्त्री सुमन्त्र रात्रिके प्रथम प्रहरमें महाराजसे राजभवनमें एकान्तमें मिले। प्रणाम करके आज्ञा पाकर महाराजसे उन्होंने कहा—'मैंने राज्यके उत्तराधिकारीके लिए सृष्टिकर्ताके प्रथम पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमारसे तब प्रार्थना की थी, जब वे अयोध्या पधारे थे।'

'महामन्त्री! तुम जानते हो कि हमारी रुचि सृष्टि-संवर्धनमें नहीं है। हम किसीको सन्तान-प्राप्तिका आशीर्वाद नहीं देते।' उन्होंने कहा—'किन्तु तुम्हारे महाराजके पुत्र तो त्रिभुवनको धन्य करेंगे। यदि ऋष्यश्रृङ्ग आकर पुत्रेष्टि यज्ञ करा दें तो महाराज दशरथ अवश्य पुत्र प्राप्त करेंगे।'

'नन्हीं बालिका मेरे अंकसे चली गयी।' महारानी सुमित्राने महा-मन्त्रीकी बात सुनकर कहा—'मैं उसे देखनेको उत्सुक हूँ। इस महायज्ञमें उसे पतिके साथ साग्रह आमन्त्रित किया जाना चाहिए।'

महाराज दशरथका निमन्त्रण अङ्गनरेश राजा रोमपादके पास पहुँचा तो उसमें पुत्री तथा जामाताको भी साथ लानेका अनुरोध था। राजा रोमपाद चक्रवर्ती महाराजके बालमित्र और अतिशय उपकृत थे। चिन्तित थे कि उनके इन महान् मित्रने अपनी एकमात्र कन्या उन्हें दत्तक दे दी और उन्हें फिर कोई सन्तान नहीं हुई। अतः महाराज पुत्र प्राप्त्यर्थ यज्ञ कर रहे हैं, यह सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। महाराज दशरथने पतिके साथ शान्ताको भी आमन्त्रित किया था, अतः उन्होंने शृङ्गी ऋषिसे पत्नीके साथ चलनेकी प्रार्थना की।

अङ्गनरेश जैसे बालसखाका महाराज दशरथने बड़े उत्साहसे स्वागत किया। उन्हें तथा सपत्नीक शृङ्गी ऋषिको राजभवनमें निवास दिया गया। शान्ता माताओंसे मिलीं। सभी महारानियोंने उल्लासपूर्वक शान्ताके अङ्क-माल दी। उनको बहुमूल्य उपहार प्रथम दिन ही बहुत मिले।

शुभ मुहूर्तमें महाराजने महारानी कौसल्याके साथ यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। आभूषण त्याग दिये। कृष्णचर्म उत्तरीय बना। भूमि-शयन और व्रतका जीवन महाराजने अपना लिया।

महाराज दशरथका चन्द्रोज्ज्वल, श्यामकर्ण अश्व पूजित होकर छूटा। उसके संरक्षणमें सैनिकोंका दल साथ था, किन्तु उस अश्वको सर्वत्र सत्कार ही मिला। कहीं किसीने अश्वको पकड़ा नहीं। क्योंकि अश्वको समस्त भूमण्डलका भ्रमण करना था, उसके लौटनेमें कई महीने लगने ही थे, किन्तु वह अनुमानसे पर्याप्त पहिले लौट आया।

अश्वमेध यज्ञमें अधिकांश भूपाल आये थे। महारानी कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयीके पिता, भाई तो आये ही थे, सभी रानियोंके पितृगृहोंसे उनके पिता या भाई आये थे। स्वजन-सम्बन्धी ही नहीं, दूसरे भी सहस्रशः नरेश आये थे। पर्वतीय वन्य जातियोंके प्रतिनिधि, व्यापारियोंमें प्रमुख, ऋषि-मुनि सभी आये थे। लक्ष-लक्ष लोगोंका समुदाय एकत्र था।

राजागण, व्यापारी, प्रजाप्रतिनिधि बहुमूल्य अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ तथा रत्न, स्वर्णराशि भेंटमें लाये थे। वन्य तथा पर्वतीय जातियोंके प्रतिनिधि अत्यन्त दुर्लभ औषधियाँ, चर्म, रत्न आदि लाये थे। अश्व, गज, मृग भी उपहारमें आये, बहुत अधिक आये और अलभ्य गुणवाले आये। सागरीय द्वीपोंके लोग बहुमूल्य शङ्ख, मुक्ता प्रभृति ले आये।

चक्रवर्ती महाराजने इतना दान किया, इतना पारितोषिक और उपहार दिया कि याचक, ब्राह्मण, कलाजीवी आदि सम्पन्न हो गये। उन्हें पूरे जीवन अर्थ-चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी। याचकों तकने प्राप्त द्रव्य एवं पदार्थ छोड़ना प्रारम्भ कर दिया।

नरेशों, व्यापारियों, प्रजा-प्रतिनिधियों तथा यज्ञमें आये दूसरोंका हृदय भी गद्गद् हो गया था। उनके उपहार महाराजकी ओरसे प्राप्त भेंट-के सम्मुख नगण्य हो गये थे। महाराजने उनके उपहार आदर पूर्वक बहुमानसे लिये थे, किन्तु यह अत्यन्त नम्रतासे जो विपुल भेट उन्होंने दी, वह अतुलनीय थी।

अत्रि, अङ्गिरा, मरीचि प्रभृति प्रजापति महाराजके यज्ञमें ऋत्विक् थे। सभी वेदज्ञ, तपस्वी ऋषि-मुनि पधारे थे। महर्षि भृगु जिसमें अध्वर्यु हों, उस यज्ञकी क्या समता। सामान्य उपकरण, पात्र, यज्ञ-मण्डपके स्तम्भ तथा वेदियाँ भी स्वर्ण-निर्मित थीं। देवताओंने प्रत्यक्ष होकर पूजन स्वीकार किया, आहुति ग्रहण की।

यज्ञ सविधि, सानन्द सम्पूर्ण हुआ। सबने सरयूमें अवभृत स्नान किया। ऋषि-मण्डलने महाराजको आशीर्वाद दिया पुत्रवान होनेका। ब्रह्माजीके पुत्र प्रजापतियोंने आश्वासन दिया—'वशिष्ठजीके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। आपके भुवनवन्द्य चार पुत्र होंगे।'

दान-मानसे सत्कृत होकर जब ऋषि-मुनि तथा आगत अतिथि विदा होना चाहते थे, रात्रिके प्रारम्भमें महाराज दशरथने ऋष्यश्रृङ्गके चरणमें मस्तक रखा। महाराजने सुमन्त्रके द्वारा कही बात महर्षि वशिष्ठको सुना दी थी। महर्षिने अनुमति दी कि वे स्वयं अपने जामातासे प्रार्थना करें। महर्षि उपस्थित रहकर विशेष अनुरोध करना स्वीकार कर चुके थे। शान्तासे महारानी सुमित्राने आग्रह किया था कि वे पतिसे कहें।

महाराजके प्रणाम करनेपर शान्ताने ही श्रृङ्गी ऋषिसे कहा—'मेरे कोई भाई नहीं है। मेरे पूजनीय पिता तथा माताजी आपसे प्रार्थना करने आये हैं कि आप उनकी वंश रक्षाका प्रयत्न करें।'

'आपको महाराजका अनुरोध स्वीकार करना चाहिए।' महर्षि वशिष्ठने भी श्रृङ्गी ऋषिसे कहा।

'आप मेरे पिता महर्षि विभाण्डकके भी पूज्य हैं।' श्रृङ्गी ऋषिने

नम्रतापूर्वक रघुकुलगुरुसे कहा—'आप यदि मेरी सहायता करें तो महाराजके द्वारा मैं पुत्रेष्टि याग कराना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि आपके सान्निध्यमें यह इष्टि निर्विघ्न सम्पन्न होगी और आपके आशीर्वादको सफल करेगी।'

महर्षि वशिष्ठने स्वीकार कर लिया। आगत ऋषि-मुनियोंका इस यज्ञके लिए वरण हो गया। अश्वमेध यज्ञमें आये सभी लोग इस यज्ञके लिए रुक गये। यज्ञका मण्डप, वेदी आदि परिष्कार करके इस दूसरे यज्ञके आरम्भका साधन बन गया।

पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ हुआ। परम वेदज्ञ प्रजापति ब्रह्माजीके पुत्र भी चकित रह गये श्रृङ्गी ऋषिके यज्ञीय-विधानके अपार ज्ञानसे। महर्षि वशिष्ठ आचार्य थे इस यज्ञमें और ब्रह्मा थे ऋष्यश्रृङ्ग। कल्पसूत्र, श्रौतसूत्रकी समस्त विधियाँ पूर्ण की गयीं। अथर्ववेदके मन्त्रोंसे सविधि आहुति दी जा रही थी। देवता प्रकट होकर आहुतियाँ ले रहे थे। यज्ञ पूर्ण हुआ। पूर्णाहुति देनेका अवसर आया। ऋष्यश्रृङ्गका मुख तेजोमय हो उठा। वे अपलक अग्निशिखाकी ओर देख रहे थे।

पूर्णाहुति हुई—वसोर्धारा पातके साथ अग्निकी ज्वाला जैसे आकाशको स्पर्श करती बढ़ने लगी। सब चकित हो गये। सहसा यज्ञ-कुण्डसे उठती उस ज्वालाके मध्य सबने देखा कि प्राजापत्य अग्नि स्वयं साकार हो गये हैं। वे ज्योतिर्देह, किरण श्मश्रुकेश, रक्त-श्वेतवस्त्र, द्विभुज अग्निदेव स्वर्णपात्र दोनों हाथोंसे सँभाले हैं।

'राजन्! यह प्रसाद ग्रहण करो!' अग्निदेवने महाराजको आदेश किया। महाराजने उठकर, मस्तक झुकाकर वह प्रसाद-पायस भरापात्र दोनों हाथ फैलाकर ले लिया। अग्निदेव यह कहकर अन्तर्हित हो गये—'इसको अपनी महारानियोंको यथोचित ढंगसे वितरित कर देना। इसके ग्रहणसे वे उत्तम पुत्र प्राप्त करेंगी।'

महाराज दशरथने वहीं महारानियोंको बुलाया। पायसका आधा भाग उन्होंने बड़ी महारानी कौसल्या को दे दिया। शेष आधेके दो भाग किये। उसमें-से एक भाग सुमित्राजीको तथा एक भाग कैकेयीजीको दिया।

इसी समय एक दुर्घटना हो गयी। महारानियोंने पत्रपुटकमें पायस ग्रहण किया था। एक चीलने झपट्टा मारा और सुमित्राजीके हाथसे पायसका

दोना लेकर उड़ गयी।[1] महारानी सुमित्रा इससे बहुत उदास हो गयीं।

'बहिन ! तुम खिन्न क्यों होती हो ?' यह कहकर महारानी कौसल्याने अपने पायसमेंसे चतुर्थांश सुमित्राजीके हाथपर रख दिया। कैकेयीजीने भी अपने भागके पायसका चतुर्थांश सुमित्राजीके हाथपर रखकर हँसते हुए कहा—'आपको तो उस पक्षीने द्विगुणका अधिकारिणी बना दिया है। उसका आभार मानना चाहिए आपको।'

'उसका मङ्गल हो !' सुमित्राजीने कहा—'मुझे उसपर क्षणार्धके लिए भी रोष नहीं आया। मेरे पायसके भागसे कोई सौभाग्यशालिनी यदि पुत्रवती होती है तो मैं प्रसन्न हूँ। मैं उसकी तथा उसके होनेवाले पुत्रकी भी मङ्गल कामना करती हूँ।'

यज्ञान्तमें महाराज दशरथनें अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिके समयके समान ही पूरी पृथ्वीका दान कर दिया। ब्रह्माको दक्षिण दिशा, होताको प्राची, उद्गाताको प्रतीची, अध्वर्युको उत्तर दिशा तथा आचार्यको मध्यका शेष सब भाग महाराजने दे दिया। उन्होंने तथा महारानियोंने भी सर्वस्व दान कर दिया। महारानियोंके शरीरपर केवल पहिननेके वस्त्र तथा सौभाग्य-चिह्न रह गये। महाराजके समीप उनका रथ, धनुष तथा अस्त्र-शस्त्र बचे।

'महाराज हम तपस्वीं ब्राह्मण हैं। हम भूमि लेकर क्या करेंगे ? यह राज्य हमारा प्रसाद मानकर आप स्वीकार करें।' इसबार भी ब्राह्मणोंनें राज्य लौटा दिया।

'महाराज ! ब्राह्मणोंने ही नहीं, याचकोंने, विद्याजीवियोंने तथा दूसरे अतिथियोंने भी दान या उपहारमें प्राप्त रत्न, स्वर्ण, गज, रथादिका बहुत बड़ा भाग त्याग दिया है। वे उसे ले जानेको किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं हुए। यद्यपि हम उनके स्थान तक यह सब भेजनेकी व्यवस्था करनेको उद्यत थे।' महामन्त्रीने अन्तमें आकर निवेदन किया—'महर्षिका आदेश है कि स्वामिहीन सम्पत्ति नरेशकी होती है। यह धन कोषागारमें तथा अश्व, गज, रथादि उनके स्थानोंमें भेजनेकी अनुमति दें।'

महाराजकी गजशाला, अश्वशाला, गोशाला, रथागार, कोषागार

---

१. 'आञ्जनेयकी आत्मकथा'में लिखी इस चीलकी कथा है। यह भी कि कैसे इसी पायसको देवी अञ्जनाने पाया और उससे हनुमानजीका जन्म हुआ।

सब इस प्रकार पूर्ण हो गया। विदा होते समय राजाओंने, वैश्यों तथा जन प्रतिनिधियोंने पुनः उपहार अर्पित किये।

ऋषि-मुनिगण सत्कृत होकर विदा हुए। नरपतिगण तथा दूसरे भी आगत सत्कार सहित विदा हुए। सबसे अन्तमें अङ्ग नरेश महाराज रोमपादको दशरथजीने विदा किया। श्रृङ्गी ऋषि तथा शान्ताको बहुत अधिक बहुमूल्य सामग्री देकर महाराजने भेजा।

सर्वत्र महाराज दशरथके यज्ञकी चर्चा। जहाँ भी लोग इस यज्ञ से विदा होकर गये, मार्गमें और अपने स्थानोंपर भी वे इस यज्ञकी, महाराज दशरथके वैभव, विनम्रता, दानशीलताकी प्रशंसा करते रहे।

'स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर महाराजको प्रसाद दिया।' प्रजाके लोगोंके हर्षका पार नहीं था। अब हमारे महाराजके सदनमें राजकुमार पधारेंगे।'

'महाराजके चार पुत्र होंगे। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठने यही आशीर्वाद दिया है। महातेजा ऋष्यश्रृङ्ग भी यही कह गये हैं।' लोगोंमें चर्चा चलने लगी—'महारानियाँ तीन ही हैं। उन्हें ही पायस प्राप्त हुआ है। अवश्य उनमें किसीको युग्म सन्तति होगी।'

'धन्य थी वह चील !' यह चर्चा भी चली—'वह माँस-भक्षी पक्षी पायसका क्या करेगी ? कहीं गिरा देगी। भाग्यशालिनी वह होगी जो वह पायस प्राप्त करेगी।'

अयोध्यामें तो लोगोंने नवजात राजकुमारोंको अर्पित करनेके लिए उपहार, आक्रीडनक (खिलौने) भी बनवाने, मँगाने प्रारम्भ कर दिये। अयोध्यामें ही क्यों, दक्षिण कोसलमें, सौमित्र नगरमें तथा कैकयमें महाराज अश्वपतिके यहाँ भी यह आयोजन प्रारम्भ हो गया। वहाँ तो अपनी पुत्रियों तथा जामाता चक्रवर्ती महाराज एवं उनके समस्त परिकरोंको भी इस अवसरपर अधिकतम महार्घतम[1] तथा प्रिय लगें ऐसे उपहारोंका चयन, संग्रह चलने लगा।

---

१. बहुमूल्य।

मर्यादा पुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव

अयोध्या सामान्य रूपसे भी उत्सवपुरी थी और अब तो प्रजा अत्यन्त उल्लसित हो उठी थी इस समाचारसे कि महारानियाँ अन्तर्वत्नी हैं। महाराज दशरथने देव-मन्दिरोंमें विशेष अर्चन-अनुष्ठानोंकी व्यवस्था करवा दी थी।

पुंसवन तथा गर्भाधान संस्कारका प्रश्न ही नहीं था। महाराज दशरथने महारानियोंको अग्निदेवसे प्राप्त पायस प्रदान किया था, इसे पुंसवन कहना हो तो कहा जा सकता है। उस पायसके प्राशनको गर्भाधान मानना पड़ेगा। महारानियोंके अन्तर्वत्नी होनेके तीसरे मास सविधि सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्पन्न हुआ।

चक्रवर्ती महाराज बार-बार महारानियोंसे पूछते रहते थे कि उनके मनमें कोई इच्छा होती है? केवल महारानी कौसल्याने दोहद (गर्भवती माताकी इच्छा) सूचित की। उनके मनमें ऋषियों, ब्राह्मणोंके पूजन तथा दान करनेकी इच्छा बनी रहती थी।

'तुम प्रारम्भसे ऐसी हो।' महाराजने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम्हें देव-विप्रपूजन तथा दानमें तो सदासे रुचि है। अपने लिए कोई विशेष आहार, आभरण, वस्त्र अथवा कहीं जाने, कुछ देखनेकी भी इच्छा होती है?'

'मुझे दूसरोंको भोजन कराके तृप्त देखनेमें आनन्द आता है।' महारानीने बतलाया—'वस्त्राभरण, स्वर्ण-अन्न, गौ आदि पाकर जब ब्राह्मण अथवा अन्य कोई प्रसन्न होता है, मेरा हृदय खिल जाता है। केवल एक विशेष इच्छा इन दिनों होती है।'

'वही तो मैं बार-बार पूछता हूँ।' महाराजने आग्रहपूर्वक जानना चाहा।

'महाराज घोषित करदें कि राज्यमें जो भी अभाव-पीड़ित हों, ऋण-ग्रस्त हों वे राजकोय कोषसे जितना धन चाहें ले लें।' महारानीने अनुरोध किया—'राज्यमें कोई किसी प्रकारका भी कष्ट न पावे।'

'घोषणा तो मैं आज ही करवा देता हूँ, किन्तु—'महाराजने सस्मित कहा—'दशरथ कभी इतना कृपण अथवा प्रमत्त नहीं रहा कि राज्यमें कोई किसीसे ऋण ग्रहण करे अथवा अभावकी पीड़ा सहे। किसी प्रकारका कष्ट प्रजामें नहीं है, देवि इस सम्बन्धमें आश्वस्त रह सकती हैं।'

'मुझे पता नहीं क्या हो गया है।' महारानी कैकेयीने पूछनेपर महाराजको बतलाया—'मेरा स्वभाव सदासे शासन करने—आज्ञा देने और सेवा स्वीकार करनेका रहा है, किन्तु मैंने कभी बड़ोंकी सेवा-ग्रहणकी धृष्टता नहीं की है। इन दिनों सुमित्रा जीजीकी सेवा-ग्रहण करनेमें मुझे पता नहीं क्यों, तनिक भी संकोच नहीं होता है।'

'तुम्हारी अपनी कोई इच्छा ?' महाराजने पूछा।

'कभी सेवा-प्रिय मैं नहीं रही, किन्तु इन दिनों बड़ी जीजीके समीपसे हटनेको ही मन नहीं होता है।' हँसकर महारानीने कहा—'बार-बार जी करता है कि उनके सदनकी सब दासियोंको पृथक् कर दूँ और उनकी सब सेवा स्वयं करूँ। यह भी कर नहीं पाती। किसी दासीको सेवाधिकारसे वञ्चित कैसे करूँ और बड़ी जीजीसे तो इन दिनों पता नहीं क्यों कुछ कहनेमें मुझे सङ्कोच होने लगा है। लगता है कि जो आनेवाला है, वह बड़ी जीजीके कुमारका दृढ़ अनुगामी रहेगा।'

'मुझे कोई इच्छा नहीं होती।' सुमित्राने पूछनेपर सरल भावसे कह दिया—'अपनी दोनों बहिनोंकी सुविधाकी व्यवस्था मेरा स्वत्व है और मुझे इसमें परम सन्तोष है। दोनोंने स्नेहपूर्वक मुझे यह अधिकार दे रखा है। मुझे भी कुछ चाहिए—यह तो मैं सोच ही नहीं पाती।'

महाराजने अत्यन्त कुशल सेविकाएँ महारानियोंकी सेवामें नियुक्त कर रखी थीं। वे सेवामें, आवश्यक उपचारमें तो निपुण थीं ही, इस विषयमें भी अत्यन्त ख्यात थीं कि अन्तर्वत्नीके वस्त्र, आभरण कैसे होने चाहिए, उनके समीप कौनसे रत्न कब रहने चाहिए, उनका शृङ्गार एवं अंगराग किस ऋतुमें, किस दिन कैसा रहे, इस विषयमें उनसे अधिक ज्ञाता मिलना दुष्कर है।

महाराज दशरथ देवेन्द्रके सखा थे, अतः राजसदनमें एवं अन्तःपुरमें किसीको भी आश्चर्य नहीं होता था, जब गगन सहसा आलोकित हो उठता

था, अथवा कक्षमें भी अद्भुत पुष्प वर्षा होने लगती थी। देवता तथा देवियाँ प्रत्यक्ष भी चाहे जब पधारते थे। महारानियोंकी सेवामें देवियाँ कब कितनी सेविकाओंके साथ सम्मिलित हो जाती हैं, सेविकाओंने भी इसे ध्यान देने योग्य नहीं माना।

देवताओंका उचित सत्कार होता रहे, उनकी अवमानना न हो, इस सम्बन्धमें सावधानी रखनी थी और पूरी रखी जाती थी, किन्तु देवता ही सत्कार स्वीकार न करें तो कोई क्या करे ? वे तो इन दिनों महारानियोंकी स्तुति-परिक्रमा करने लगे थे।

जिन औषधियोंका, रत्नोंका ग्रन्थोंमें नामोल्लेख मात्र मिलता है, ऐसे दुर्लभ पदार्थ अयोध्यामें सामान्य हो गये थे। प्रतिदिन पता नहीं कहाँ-कहाँसे आकर लोग ऐसे उपहार भेंट कर जाते थे। यह भी निश्चित नहीं था कि उनमें सब मानव ही थे। उनके रूपमें देवता, गन्धर्व, नाग कोई भी हो सकते थे, किन्तु महाराज दशरथके यहाँ तो अतिथि मात्र साक्षान्नारायण मानकर सत्कृत हुआ करते थे।

लोकपालोंने, नाग-गन्धर्व-किन्नरोंने, नदी-समुद्र-पर्वतोंके अधिदेवताओंने भी प्रत्यक्ष अयोध्या आनेमें सङ्कोच नहीं किया। अवश्य जब वे प्रत्यक्ष आये, महाराजको उनके सविधि पूजनका अवसर नहीं मिला। कोई दिव्य पदार्थ प्रसाद-रूपमें देकर वे अन्तर्हित हो जाते थे।

गाएँ, अश्विनियाँ तथा दूसरे पशु अब अपने वर्गके श्रेष्ठतम शिशु उत्पन्न करने लगे। गजशालाके अध्यक्षने प्रायः सूचना देनी प्रारम्भ की कि वनगज आकर स्वयं गजशालामें शान्त खड़े हो जाते हैं। चतुर्दन्त श्वेत वनगज—पता नहीं वे सचमुच वनगज हैं अथवा किसी देवताने उन्हें भेजा है।

वन, पुष्पित, पल्लवित हो गया था। फल, वृक्ष सभी ऋतुओंमें फलने लगे थे। उनकी कुछ शाखाएँ पुष्पोंसे लदी हैं तो कुछपर कुड्मल आ रहे हैं। कुछपर अपक्व फल हैं और कुछपर सुपक्व फल। लताओंमें पत्र ही कम दीखते हैं पुष्पोंके कारण।

पृथ्वी हरित है तृणोंसे और तृणोंमें पुष्प हैं। सर्वत्र एक अद्भुत बात है—भूमिपर, लता-वृक्षोंपर भी लगता है कि कोई अत्यन्त निपुण अदृश्य कलाकार पत्र, पुष्प, फल सब सज्जित करता रहता है। भूमिपर तृण-पुष्प विविध मण्डलोंमें, नित्य नवीन आकारोंमें उगते-बढ़ते हैं। लताओंके पुष्प, वृक्षोंके फल पत्रोंके साथ भव्य आकार बनाते हैं। सरिताओंमें, सरोवरोंमें कमल-कुमुदिनियाँ खिलती हैं तो लगता है, वे भी ललित आकार बनाकर उगती हैं। गगनमें पक्षी तक अद्भुत मण्डल बनाते उड़ते हैं।

कण्टक वृक्ष जनपदोंके समीप रहे ही नहीं। बिल्व जैसे वृक्षोंमें कण्टक नहीं उगते। शतवीर्या जैसी मञ्जुपत्राके कण्टक कोमल एवं ललित बन गये हैं। कटुगन्ध, अप्रियगन्ध वृक्ष, लता तृण मानो धरासे ही निर्वासित हो गये हैं।

होनेको काक भी हैं और क्षेमकरी भी, किन्तु इन कर्कश स्वर पक्षियोंने मानो मौन-व्रत ले लिया हो और कोकिल, पपीहे, पुष्पजीविका जैसे पक्षी मुखर हो गये हैं। नगरोंमें, ग्रामोंमें सुरंग सुस्वर पक्षी भवनोंपर स्वयं आ बैठते हैं और कूजते रहते हैं। वे ऐसे मनुष्योंसे निर्भय हो गये हैं, जैसे पाले हुए हों।

भूमिपर ललित वीरवधूटी बिना वर्षा भी लहराती दीखती हैं, किन्तु कुरूप, उग्र स्वभाव कीटोंके दर्शन नहीं होते। सर्प, वृश्चिक, दंश, मशकका कहीं नाम नहीं रहा है। धरणी और गगनका कोना-कोना सुसज्ज हो गया है।

पर्वतोंपर रत्न-मणियोंकी राशियाँ प्रकट हो गयी हैं। सागर-पुलिन मुक्ता तथा सुलक्षण शङ्खोंसे भरा रहने लगा है। किसीके लिए अब कोई रत्न, मणि अथवा विशिष्ट शङ्ख, विशेष औषधि संग्रहणीय नहीं रह गयी। इन सबकी प्रचुरताने इनको सामान्य बना दिया।

आकाश स्वच्छ रहता है। दिशाएँ निर्मल रहती हैं। नदियोंमें, सरोवरोंमें स्वच्छ जल परिपूर्ण रहता है। वायु सदा मन्द सुख-स्पर्शी चलता है। वर्षा समयपर और सुहावनी होती है। सूर्यातप केवल शीत-निवारण करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति जैसे श्रृङ्गार करके किसीके स्वागतमें प्रतीक्षारत हो। स्वच्छता, सम्पन्नता, शोभा, सङ्गीतसे विश्व भव्य हो गया है। लगता है कि भगवती ज्येष्ठाने अपने सब उपकरण समेट लिये और उन्हें लेकर कहीं ग्रहान्तर चली गयीं।

अयोध्यामें प्रतीक्षा चल रही है। प्रतीक्षा चल रही है जन-जनके मानसमें और प्रतीक्षा तो चल रही है स्वर्गमें, ऋषि-लोकोंमें तथा ब्रह्मलोक तक में। परमपुरुष धरापर महाराज दशरथके राजसदनमें आविर्भूत होने वाले हैं। उनके आगमनकी प्रतीक्षा चल रही है।

ऋषियोंके कण्ठसे भी सप्रयत्न प्रकट होनेवाली परावाणी अब विप्र-कुमारों तक के कण्ठमें आ बसी है। किसी भी ऋषिकुलका अन्तेवासी अभ्यासके लिए भी वेदमन्त्र बोलता है तो उसके स्वरमें परावाणी गूँजती है।

गगनसे सदा अम्लान रहनेवाले पुष्पोंकी राशि-राशि अयोध्याकी वीथियोंमें झरती रहती है। निर्मल गगन चाहे जब ज्योतिर्मय दिव्य विमानोंसे आच्छन्न हो जाता है।

ग्रह और नक्षत्रोंने अपने श्रेष्ठ स्थान ग्रहण कर लिये हैं। उनमें वक्री, अतिचारी कोई रहा ही नहीं। उनमें केवल शुभ-वेध बनता है और परस्पर युति होती है, युद्ध नहीं होता। केवल निसर्ग क्रूर राहु-केतु स्तम्भी होकर शुभ हो रहे हैं।

चल रही है यह प्रतीक्षा और अब तो वह अभीप्सासे भी अधिक हो उठी है। चक्रवर्ती महाराजकी महारानियोंको अन्तर्वत्नी हुए नौ महीने होते ही प्रतीक्षा तीव्र हो उठी, किन्तु दशम मास व्यतीत हुआ, एकादश व्यतीत हुआ, द्वादश मास पूरा होनेको आ गया है। प्रतीक्षा—प्राणोंकी आतुर प्रतीक्षा बढ़ती जा रही है।

अयोध्यामें तो लोग रात्रिमें निद्रासे चौंक-चौंक पड़ते हैं—'राजभवनसे मङ्गल ध्वनि गूंजी ?' स्वयं महाराज दशरथके समीप अन्तःपुरसे कोई सेविका आती है तो महाराजका कर अपने कण्ठकी मणिमालापर पहुँचता है—'यह शिशु-जन्मका शुभ-सम्वाद देने आ रही है ?'

महाराजकी चर्चा क्यों, महर्षि वशिष्ठ तथा दूसरे ऋषिगण तक जो सहज वीतराग, परम गम्भीर हैं, राजसदनसे किसीको आता देखते हैं तो

समुत्सुक होकर यज्ञाहुति देता कर रोक लेते हैं—'राजकुमारके जातकर्मका आमन्त्रण आ रहा है ?'

सचमुच वह समय आ गया। चैत्रमास, शक्लपक्ष, नवमी तिथि मङ्गलवार अन्ततः जो मर्यादा पुरुषोत्तम पधार रहे थे, उनके स्वागतके लिए काल मधुमास शुक्लपक्षकी मध्य तिथि, रिक्ता—किसी भी शुभाशुभसे शून्या शुद्धा तथा मध्याह्नके ज्योति-क्षणसे अधिक उपयुक्त समय क्या प्रस्तुत कर सकता था। पावन पुनर्वसु नक्षत्रका तृतीय चरण था।

कर्कलग्नका उदयकाल था और लग्नाधिप चन्द्रके साथ उच्चके गुरु वहाँ आसीन थे। मेषमें सूर्यनारायण, तुलामें शनिदेव, मीनमें आचार्य शुक्र, मकरमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे। बुध मिथुनमें अपने गृहमें थे। वृषमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे।

सहसा महारानी कौसल्याका कक्ष ज्योतिके अपार अम्बारसे भर उठा। कोटि-कोटि पूर्णचन्द्र ज्योत्स्ना -असीम तेज, किन्तु सुशीतल, सुमधुर, आह्लादक। महारानीको तो पता ही नहीं लगा कि प्रसव-वेदना क्या होती है ? उन्हें न तन्द्रा आयी और न वे मूर्च्छित हुईं, किन्तु जो नेत्रोंके सामने था—सहसा वे विश्वास नहीं कर सकीं कि वह प्रत्यक्ष है। उन्होंने दोनों करोंसे नेत्र मले—'मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ।'

वह कक्ष एकान्त नहीं था। महारानियोंको इधर महीनोंसे अकेले नहीं रहने दिया जा सकता था। यद्यपि महाराज बहुत चाहते थे कि वे अब पृथक-पृथक कक्षोंमें ही रहें, किन्तु रात्रिके अतिरिक्त सुमित्रा और कैकेयी बड़ी महारानीके निकट आ जाती थीं और रात्रिमें भी देरसे ही अपने सदन जाती थीं। तीनोंका दैनिक सब कार्य साथ ही सम्पन्न होता था। अतः महारानी कौसल्याके समीप ही उस समय दोनों महारानियाँ थीं। कक्षमें पर्याप्त निपुणा सेविकाएँ थीं।

'हमारे शरीरमें तो कोई अवसाद नहीं है।' तीनों ही महारानियोंका एक ही अनुभव था—'शरीर स्फूर्तियुक्त ही लगता है।'

तीनोंकी कान्ति म्लान होनेके स्थानपर बहुत बढ़ गयी थी। उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, किन्तु जो आवश्यक है उसकी उपेक्षा तो नहीं की जानी चाहिए। तीनों अपने कक्षमें रहें या न रहें वहाँ अग्नि बराबर प्रज्वलित रहते थे।

उसमें से औषधियोंका धूम उठता रहता था। वहाँ सदा रक्षोघ्न मन्त्रोंसे प्रातः-सायं हवन होता था। कक्षोंमें शस्त्र तथा मङ्गलरत्न रखे थे।

महारानी कौसल्याके कक्षमें ही नहीं, प्रत्येक द्विजातिकी अग्निशालाके हवन-कुण्डमें बिना आहुतिके अग्निदेव उस समय सहसा प्रज्वलित हो उठे थे। लेकिन महारानीके कक्षमें जो अपार प्रकाश राशि प्रकट हुई, उससे अग्नि-देवकी लपटोंका तेज दीख ही नहीं सकता था। उस ज्योतिने वहाँ जो भी महिलाएँ, सेविकाएँ थीं—उनपर अद्भुत प्रभाव डाला। जैसे वे आनन्दके असीम आवेगके कारण तन्द्रित हो गयीं। उनको अपने शरीरका भी पता नहीं लगा।

महारानी कौसल्या केवल तन्द्राको प्राप्त हुईं। वे चकित, आनन्द-मग्न थीं। नेत्र मलकर भी देख लिया—'नहीं, वे स्वप्न नहीं देख रही हैं।' वे जागृत हैं और प्रत्यक्ष देख रही हैं, किन्तु जो कुछ देख रही हैं, वह कितना अतर्क्य, अविश्वसनीय एवं अद्भुत है। कितना आह्लादकारी है। वे समझ ही नहीं पातीं कि किसीके भी जीवनमें इतना कल्पनातीत सौभाग्य भी सम्भव है।

उनके सम्मुख एक अमल, अचिन्त्य ज्योति है। सत्य तो यह है कि जो कुछ है, उसका वर्णन सम्भव नहीं है। ज्योति तो है, किन्तु लगता है कि अपना शरीर, अपनी इन्द्रियाँ, अपनापन ही नहीं रहा है। तब वह कक्ष—कक्षकी बात ही नहीं, सब देश और काल जैसे उस ज्योतिने आत्मसात् कर लिया है। उस ज्योतिकी ही कोई अचिन्त्य शक्ति है कि वही द्रष्टा और दृश्य भी बनकर अपनेको ही देख रही है। महारानीको अपना 'स्व' उस ज्योतिका अंश, उस ज्योतिसे अभिन्न लगता है।

सम्पूर्ण देश एवं काल जिसमें प्रतीत भी नहीं होते, उस ज्योतिको अनादि—अनन्त कहना भी औपचारिक ही है। उस ज्योतिके मध्य एक आकृति है—अत्यन्त सुकुमार आकृति। अब जब महारानीको अपना स्व ही ठीक प्रतीत नहीं होता, वे जो देखती हैं, वह कैसे एकरूप प्रतीत हो? वह जो इन्द्रनीलकान्त आकार है ज्योतिके मध्य, वह कहाँ स्थूल है कि उसका ठीक वर्णन हो। वह ज्योतिर्देह—चिद्‌घन, आनन्दघन। कभी लगता है कि अनन्त ब्रह्माण्ड उसके रोमकूपोंमें अणुसे भी तुच्छ घूम रहे हैं, इतना विशाल है,

और कभी लगता है कि वह शंख, चक्र, गदा, पद्मपाणि, कौस्तुभकण्ठ, श्रीवत्सवक्षा, वनमाली, पीताम्बर परिधान, रत्नमुकुटी, सर्वाभरण-भूषित वह आराध्य हैं, जिसका जाने कबसे—शैशवसे महारानी ध्यान करती रही हैं। वह नारायण, वह कुलाराध्य जैसे हृदयसे बाहर ज्योतिर्घन् हो गया है।

यह सब तो हैं, किन्तु वह आनन्दघन कहाँ स्थूल है कि एक रूप कहा जाय। वह—लेकिन उसका एक रूप सहसा प्रकट हुआ और महारानीका हृदय पुकार उठा—यही, यही रूप यदि स्थिर रह पाता ! वह जैसे नवनीत सुकुमार, दूर्वादल श्याम, ज्योतिर्मय नवजात नन्हा दिगम्बर शिशु बन गया हो।

अब तक महारानीने उसका एक भी सम्पूर्ण आकार देखा नहीं था। उन्होंने कुछ देखा भी था, यह भी कहना कठिन है। वह दिव्य ज्योति ही उनका 'स्व' बनकर अपनेको ही देख रही थी। उन अनन्त असीमका क्या दीखना था। विराट्को देखा भी कैसे जा सकता है ? यह तो उस ज्योतिका प्रभाव था कि वह देखा जैसा लगने लगा था।

वे आराध्य चतुर्भुज परम पुरुष—वेद वेद्य, ऋषि-मुनि आराध्य श्रीनारायण-हृदयमें उनके सम्पूर्ण श्रीविग्रहका ध्यान भले कर लिया जाय—महारानी सदा ही करती रही हैं, किन्तु जब वे ज्योतिर्घन होकर नेत्रोंके सम्मुख आये, उन सौन्दर्यघनका सम्पूर्ण दर्शन क्या ? दृष्टि जहाँ पहुँची—वहीं अटक गयी। केवल सूक्ष्म झाँकी, अस्पष्ट प्रतीति चतुर्भुज आकारकी—अन्यथा दृष्टि तो उनके कमल दल विशाल लोचनोंको ही देखती रह गयी थी। वे अरुणाभ अनन्त कृपावारिधि लोचन। महारानीको उस समय भी अपना स्व विस्मृत ही रहा था।

सहसा जब वह चिद्घन शिशु दीखा, महारानीको जैसे अपनी स्मृति हुई। लगा कि सम्पूर्ण अन्तरिक्ष गूंज रहा है। क्या गूंज रहा है ? कौन बोल रहे हैं—कुछ नहीं। यह सुनने, समझनेकी अवस्था नहीं थी। केवल इतना कि प्रणव अथवा परावाणीमें सस्वर श्रुतियाँ गूंज रही हैं। अव्यक्त स्तुतिके स्वर—और महारानीकी अञ्जलि भी अपने आप बँध गयी। उनके मुखसे भी स्तुतिके स्वर निकलने लगे।

महारानीने स्तुति की, यह कहना उपयुक्त नहीं है। इनके मुखसे कुछ स्वतः निकलने लगा। जहाँ तक उनकी बात है, उनका हृदय मचल उठा था—'उस शिशुको स्थिर प्राप्त करने, अङ्कमें उठा लेनेके लिए।'

'परमपुरुष ! स्रष्टा एवं शिवके---सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगीन्द्रोंके भी परमध्येय परं ज्योति ! आप एक नारीके प्रत्यक्ष गोचर होंगे, यह कोई कैसे समझ सकता है। अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके रोमकूपोंमें हैं, वे विराट्—वे किसीके दृष्टि-विषय कैसे होंगे ? समष्टि जिनकी कुक्षिमें है, वे किसीके गर्भजात—व्यर्थ विडम्बना है। आदि पुरुष, चिन्मय विग्रह श्रीनारायण—मेरे परमाराध्य ! अनन्त करुणा वरुणालयका अनुग्रह कि नेत्र धन्य हो गये। किन्तु यह श्रीविग्रह तो लोक-चक्षुका विषय होने योग्य नहीं है।' महारानी बोलती जा रही थीं--'यह शिशु—यह सुन्दरतम, सुकुमारतम शिशु यदि मेरे अंकमें आ सकता, इसे मैं अपना कह पाती, धन्य हो जाती ! सदा-सदाको धन्य हो जाती !'

अभिलाषा-उत्कण्ठा-अभीप्सा—शब्द पर्याप्त नहीं हो रहे हैं। प्राण पुकार रहे थे महारानीके और इस अत्यन्त तीव्र अभिलाषाने जैसे क्षणार्धके लिए उन्हें निश्चेष्ट, आत्मविस्मृत, बेसुध कर दिया। उनके दोनों कर फैले, वाणी अवरुद्ध हो गयी। वे शिथिलगात्र कब शय्यापर गिर गयीं, उन्हें पता नहीं लगा।

वह ज्योति विलीन नहीं हुई, घनीभूत होकर शिशु बन गयी थी और महारानीके अंकमें ही थी। ज्योतिके इस घनीभावके साथ कक्षमें जो जो भी थीं, सबकी चेतना जागृत हो गयी, एक साथ सब हड़बड़ाकर उठीं और कक्ष काँस्यपात्रकी ध्वनिसे, शंखनादसे गूँजने लगा।

'जीजी ! बधाई !!' महारानी कैकेयीने ही पहिले महारानी कौसल्या को सावधान किया। उस समय उनका कण्ठ इतना विह्वल था कि वे बोल नहीं पा रही थीं।

'मेरी सृष्टिकर्ताने सुन ली। श्रीनारायणने मेरी प्रार्थना स्वीकार की।' महारानी कैकेयी पीछे भी सबसे उल्लासपूर्वक कहती रही थीं—हम तीनों लगभग साथ ही अन्तर्वत्नी हुई तो मैं मनाती रही हूँ कि हममें जो ज्येष्ठा हैं, उनका यह स्वत्व बना रहे ! आराध्य कृपा करें !! वे ही ज्येष्ठकुमारकी माता बनें !!! मुझ किङ्करीकी नारायणने सुनी। मैं शुद्ध होते ही महाराजसे विष्णुयाग करनेको कहूँगी।'

नवजातको धात्रीने सँभाल लिया। उसने दोनों महारानियोंको बहुत आग्रह करके उनके सदनोंमें भेजा। 'आप इस सौन्दर्य राशिको देखलें,

किन्तु अब अपने सदन पधारें। इसके अनुज भी आने ही वाले होंगे। उनकी शुश्रूषा इसके जन्म-महोत्सवमें व्याघात बनेगी।'

'तू बहुत मुखरा है।' महारानी कैकेयीने धात्रीसे सलज्ज भावसे कहा—

'आज मैं इस कक्षकी शासिका हूँ।' धात्रीने भी हँसकर कहा—'आप सबको यहाँ मेरा आदेश आज स्वीकार करना है। अभी तो आप दोनोंके भी कक्ष मेरे प्रशासनमें आने हैं।'

उस कक्षके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही राजद्वारपर वाद्य गूँजने लगे थे। क्षणभरमें तो सम्पूर्ण नगर वाद्य ध्वनि तथा कोलाहलसे परिपूर्ण हो गया। गगन और धरामें जैसे वाद्य, नृत्य, गायनकी स्पर्धा चलने लगी। आकाशसे सुरगण पुष्पवृष्टि कर सकता था। देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ सब कब गगनसे नृत्य करते, गाते, वाद्य लिये अयोध्याके हर्ष मग्न लोगोंमें आ मिले, कौन जानने-पहचाननेकी स्थितिमें था।

'अयोध्याने युवराज पाया!' दासियाँ दौड़ीं, पहिले समाचार देने महारानी कौसल्याके सदनसे।

'बड़ी महारानीको पुत्र हुआ!' वाद्य ध्वनिने ही यह समाचार एक साथ सम्पूर्ण नगरको दे दिया, क्योंकि वाद्य ध्वनि बड़ी महारानीके सदनसे उठी थी और पुत्रके होनेका मङ्गलवाद्य भी क्या पहिचानना पड़ता है।

'बधाई!' जो जहाँ थे, वहींसे दौड़ पड़े। कोई नहीं देखता कि वह किससे कह रहा है। नियमतः सेवकोंको समाचार देना चाहिए। बड़ोंको उपहार देना चाहिए, किन्तु जब आनन्दके महापूरमें तन-मनका स्मरण ही न हो, यह सब ध्यानमें कौन रख सकता है। अयोध्यामें तो गृहपति, गृह-स्वामिनी अपने ही सेवक या दासीको बधाई देने लगे थे। जो भी सम्मुख मिला उसीको और उसने जो भी आभरण हाथमें आया, उतारकर दे दिया तो लेनेमें किसीने सङ्कोच नहीं किया।

महाराज दशरथ तक एक दासी दौड़ गयी थी। महाराज अभी मध्याह्न सन्ध्या करके उठे ही थे। करोंने कैसे कण्ठ-हार उतारकर दासीकी ओर बढ़ा दिया, महाराजको पता नहीं, दो क्षण महाराजका अङ्ग-अङ्ग आनन्दातिरेकसे शिथिल रहा।

महामन्त्री सुमन्त्र स्वतः रथ ले आये और सम्मुख खड़े हो गये। महाराजको एक शब्द नहीं बोलना पड़ा। उन्हें अविलम्ब कुलगुरुके समीप जाना था।

महर्षि वशिष्ठके आश्रममें महोत्सव प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याके सभी वृद्ध, तरुण, युवा ब्राह्मण वहाँ आ चुके थे। महर्षिने महाराजसे मार्गमें सस्नेह कहा—'वत्स! तुम्हारा पुत्र होकर जो आया है, वह परम ज्योति अप्रकट नहीं रह सकता। जब मध्याह्न हवनके समय स्वतः आहुतिदानसे पूर्व ही अग्निदेव निर्धूम ज्वाला देने लगे, ब्राह्मण कुमारोंका समुदायं मेरे समीप दौड़ आया। सबने मुझे प्रणाम कर कहा—'महर्षिने यजमान पाया।'

महाराज दशरथने महर्षिको प्रणिपात किया तो महर्षिने आशीर्वाद देते कहा—'नवजात! चिरायु हो! चिरायु हों उसके आनेवाले अनुज!'

महर्षिगण, विप्रवृन्द, राजसदन प्रस्थान करने ही वाले थे। आज अयोध्यामें किसीसे जैसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं थी। औपचारिक शिष्टाचार आनन्दातिरेकके प्रवाहमें बह चुका था। वाद्य, शङ्खनाद, वेद-ध्वनिसे गगन गूँज रहा था। गायक, सूत, मागध, वन्दी पूरे उत्साहमें थे। उन्हें यह भी अपेक्षा नहीं थी कि उनका संगीत, उनका काव्य या स्तवन कोई सुन भी रहा है अथवा नहीं।

जय ध्वनि, बधाई और स्तवन—कोलाहलमें यह श्रवण कर पाना अशक्य हो गया था कि कौन क्या कह रहा है? स्त्री-पुरुष सब सुसज्ज और नाना उपहार लिये राजसदनकी ओर दौड़ पड़े थे। राजपथोंपर रथ, अश्व या गजके लिए मार्ग नहीं रह गया था।

महाराज दशरथका राजकोष खुल गया था, यह कहना बहुत अल्प वर्णन है। अयोध्यामें प्रत्येक दे रहा था—लुटा रहा था। जो सम्मुख मिल जाय उसे ही दे रहा था। कोई नहीं देखता था कि वह सेवक होकर अपने सम्पन्नतम स्वामीको ही देने लगा है। दासियाँ तक आभूषण उछाल रही थीं, सम्मुख जो मिले, उसीकी ओर।

कोई अस्वीकार नहीं करता था। ऐसे मंगलोत्सवके समय किसीका भी उपहार कैसे अस्वीकार किया जा सकता है।

'सहस्र गायें! पञ्चशत गज! सहस्र श्यामकर्ण अश्व!' महाराजके

दानकी चर्चा क्यों करें, ऐसे दान-संकल्प तो अयोध्यामें घर-घर गूँजने लगे थे।

दधि, दूर्वा, लाजा, कुंकुम, हरिद्रा और सुगन्धित पुष्पसार (इत्र) इनसे राजपथ, वीथिकाएँ-प्रांगणोंमें कीच हो जाती यदि गगनकी अजस्र पुष्प-वर्षा वहाँ सुमन-राशि आस्तृत न करती होती। गगन मेघाच्छन्न जैसा बन गया कुंकुम उड़नेसे। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब रंगोंसे लथपथ और आनन्दमग्न। उछलते-कूदते, नाचते-गाते, स्तुति करते, जय-ध्वनि करते लोगोंका समुदाय। शङ्ख तथा मंगलवाद्योंका स्वर।

महाराज दशरथने मुनियोंके साथ राजभवनमें प्रवेश किया। स्नान करके देवता-पितरोंका तर्पण पूजन किया। महर्षि वशिष्ठने ब्राह्मणोंके साथ सविधि जातकर्म कराया।

महाराज दशरथको पुत्र-मुख दर्शन करके जो आह्लाद हुआ—अंग-अंग शिथिल, स्तब्ध रह गया। रोम-रोम उत्थित, देह स्वेद स्नात। किसी प्रकार महर्षिके पदोंमें शिशुको रखा—'यह आपका मूर्तिभूत आशीर्वाद········।'

महर्षिका कण्ठ भी मन्त्र-पाठमें असमर्थ हो रहा था। इस महोत्सवका वर्णन अशक्य है और दान—अयोध्याके पथ तथा प्रांगण आभूषणों, रत्न-राशिसे चलनेके अयोग्य हो गये थे। उनको हटानेकी विशेष व्यवस्था महाराजके मन्त्रियोंको करनी पड़ी।

भरतादिका जन्म

अयोध्यामें महोत्सवका महापूर प्रवाहित हो रहा था। चैत्रशुक्ल नवमीके मध्याह्नमें महाराज दशरथका राजसदन प्रथम पुत्रके प्रादुर्भावसे प्रोज्ज्वल हुआ। मधुमास, मङ्गलवार महामङ्गल लेकर आया। पता ही नहीं लगा कि वह दिन कैसे क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया और कैसे व्यतीत हो गयी वह रजनी।

महाराजका राजसदन ही नहीं, अयोध्याका प्रत्येक गृह, तपस्वियोंके उटजों तकमें रात्रि-जागरण चला। सर्वत्र महोत्सव, सर्वत्र उस भुवन-मोहन शिशुकी चर्चा और सर्वत्र आनन्दोल्लास। आलस्य, प्रमाद, निद्रा तमोगुणके प्रसाद हैं, किन्तु अयोध्यामें तो अन्तर-बाह्य आज परम सत्त्वसे प्रोज्ज्वल हो रहा था। वहाँ तमसकी छायाका भी प्रवेश नहीं था।

मध्याह्न सन्ध्या द्विजोंने समाप्त की थी, जब राजसदनसे पुत्रके प्राकट्यका मङ्गल-वाद्य गूंजा था। रात्रि पता नहीं कितनी अल्प बन गयी थी आज। ऋषि-मुनियोंने, तापसोंने, विप्रोंने, सभी द्विजातिके पुरुषोंने अनुभव किया कि वे अभी तो राजसदनसे लौटकर उस नन्हे इन्दीवर सुन्दर-की चर्चा करते बैठे ही थे और अरुणचूड़ (कुक्कुट) बोलने लगे। देव-मन्दिरोंसे प्रभातकालीन देवोत्थापन शङ्खनाद गूंजने लगा तो सब उठ पड़े, क्योंकि प्रथम आह्निक-स्नान-सन्ध्या तो सूर्योदयसे पूर्व ही हो जाना चाहिए।

धन्य था वह मङ्गलवार। अपने जाते-जाते, अपने अन्तिम प्रहरमें वह अयोध्याको एक और उपहार देता गया। ऐसा उपहार जो त्रिभुवनमें अतुलनीय रहा और रहेगा। किसीने सन्ध्या समाप्त नहीं की थी। अभी सूर्योदय हुआ नहीं था। वही मङ्गलवार था अभी। बुधवारका प्रभात तो होनेवाला था। अवश्य ही सब लोगोंने सन्ध्याके सङ्कल्पमें अब दशमी तिथिका उच्चारण किया था। चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रपर आ चुके थे और मीन लग्न था। इसी समय महारानी कैकेयीके सदनसे वही पुत्रके पदार्पणका मङ्गल-वाद्य गूंजा।

धर्मप्राण जन थे अयोध्याके, किन्तु आज आह्निक कृत्यमें यह व्याघात सबको प्रिय—अत्यन्त प्रिय लगा। ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, महर्षि वशिष्ठ तकने बहुत शीघ्रतामें प्रात:कालीन तर्पण, हवन समाप्त किया। लगता था कि भगवान् भुवन-भास्करको भी अपने वंशकी यह परमोत्तम श्रीवृद्धि दर्शनका कुतूहल है और वे भी त्वरित पदोंसे गगनमें उठ आये हैं।

वही उल्लास, वही जयनाद एवं वाद्य ध्वनि—अभी तो प्रथम महोत्सव ही चल रहा था। जैसे जो दूसरा आया था, उसका पहिलेसे पृथक् अस्तित्व ही नहीं था। वह अपने लिए पृथक् महोत्सवका अवसर भी लेकर नहीं आया। कुछ नवीन हुआ और आगे भी हुआ, वह यह कि महाराज दशरथ-को तथा पूरे रघुकुलके लोगोंको इस बार तर्पण, देवाराधन, दानका अवसर नहीं मिला। प्रथम सन्तानके उत्पन्न होनेका द्वादश दिनका हर्ष-दोष—जात सूतक चल रहा था, अत: जातकर्ममें नान्दीमुख श्राद्धादिका अवसर नहीं था। इस समयका दान कोई विप्र स्वीकार नहीं कर सकता था।

कुलगुरुको, ऋषियोंको, विप्रवर्गको शीघ्रता नहीं थी। उन्हें कोई शास्त्रीय कृत्य सम्पन्न नहीं कराना था, किन्तु कर्तव्यकी पुकार ही सदा त्वराका हेतु नहीं होती। अन्तरका आह्लाद उससे अधिक त्वराका कारण बनता है। इस बार महर्षि तक को सन्देश भेजकर बुलाना नहीं पड़ा। समस्त विप्रवर्ग स्वत: राजभवन चल पड़ा। सबके अन्तरमें एक ही भावना थी—'वह इन्द्रनीलकान्तका यह अनुज—यह भी पता नहीं कितना सुन्दर होगा। इसकी एक झलक पायी जा सकती है इस समय।'

धात्री तो शिशुको देखते ही चौंक गयी थी। चौंक गयी थीं कक्षमें स्थित दूसरी सब महिलाएँ। धात्रीने ही कहा था—'कल जो बड़ी महारानीके अंकमें आया, वही यह दूसरा रूप धारण करके आ गया है।'

वही अङ्गकी इन्दीवर सुन्दर कान्ति। वही अङ्ग-प्रत्यङ्गकी छटा। केवल महर्षि वशिष्ठने सर्वप्रथम सस्मित कहा था शिशुको देखकर 'यह अपने ज्येष्ठसे किञ्चित भिन्न है। वह भी बहुत ध्यानसे सर्वाङ्ग देखा जाय तब। इसके वक्षपर वामपार्श्वमें स्वर्णिम रोमराजि नहीं है।'

एक और चिह्न वक्षपर अग्रजके था और इस शिशुके नहीं था, यह धात्रीने पीछे लक्षित किया। मध्य वक्षमें जैसे नन्हा-सा पाद-चिह्न हो, यह

बड़े भाईके ही था, किन्तु नील सुन्दर अङ्गमें उसे सहसा लक्षित कर पाना कठिन था।

इस बार अवसर मिल गया था प्रजाके उन लोगोंको देने-लुटानेका जो क्षत्रिय नहीं थे। उन्हें तो जात-सूतक लगता नहीं था। अतः वैश्योंने, सेवकों तकने सोल्लास देना प्रारम्भ कर दिया था। अयोध्याके श्रेष्ठीजन धनाधीश लोकपाल कुबेर भी उनकी स्पर्धा करनेमें सङ्कोच ही करते और उन सबने अपने कोष, अपने वस्तु-भण्डार खोल दिये थे। वे आग्रहपूर्वक प्रत्येक मिल जानेवालेको देनेमें लगे थे। किसको क्या दे दें, यही उनकी समझमें नहीं आता था। अयोध्याके पथ, वीथियाँ, उनके दिये, लुटाये पदार्थोंसे पटते जा रहे थे। उन्हें लगता था कि उन्हें गृहीता मिल नहीं रहे हैं। जो मिलते भी हैं, वे अत्यल्प भी बहुत आग्रह करनेपर स्वीकार करते हैं।

अभी इस महोत्सवका जैसे प्रारम्भ ही हुआ हो, अभी नर-नारी सबका उत्साह पूरे आवेगमें ही था कि महारानी सुमित्राके सदनसे मङ्गल-वाद्य गूँजा। महाराज दशरथके कुमारोंको लोकाराध्य होना था, अतः सभी कुमार आराधनाके पावनकालमें ही प्रकट हुए।

दशमी तिथि, बुधवार, वही चैत्रमासका शुक्लपक्ष। इस बार तो लग्न भी वही कर्क। अवश्य ही चन्द्रदेव आश्लेषा नक्षत्रमें पहुँच चुके थे। सब ग्रह स्थिति प्रथम कुमारके जन्मके समयकी। भले चलितमें उनमें अन्तर पड़े, मध्याह्नका ही समय। महारानी सुमित्राके युग्मज सन्तान हुई—दो कुमार।

प्रायः युग्मज शिशुओंकी आकृति, स्वभाव समान होता है। महारानी सुमित्राके दोनों शिशुओंका शरीर तप्त स्वर्ण गौर, किन्तु शरीरके अङ्ग तो जैसे चारों कुमारोंके एक ही साँचेमें ढले थे। इन दोनों कुमारोंमें भेद कर पाना, दोनों नील सुन्दर कुमारोंमें भेद कर पानेसे भी कठिन था।

महारानी सुमित्राने पहिली बात शिशुओंको देखते ही कही—'मैं निश्चिन्त हो गयी। ये दोनों अपने अग्रजोंके अनुगामी बनेंगे। मैं अपनी दोनों बहिनोंकी सेवासे सन्तुष्ट हूँ। अब ये दोनों मुझे चारोंकी माताका गौरव देने आ गये हैं।'

महाराज दशरथको जैसे चारों पुरुषार्थ साकार प्राप्त हो गये। इन कुमारोंका दर्शन करके महर्षि वशिष्ठने कहा—'राजन्! धन्य हो तुम। श्रीनारायणका तुमपर असीम अनुग्रह। सृष्टिमें वे अपने चतुर्व्यूहात्मक स्वरूपोंसे आपको पिताका गौरव देने पधारे।'

ऋषि-मुनियोंमें विश्व-तैजस, प्राज्ञ और तुरीय कहकर किसीने वर्णन किया और किसीने परमपुरुष, ईश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट् कहा। ये ऋषि-मुनि सर्वत्र अपना तत्त्व-दर्शन ही देखनेके अभ्यासी होते हैं। अयोध्याके नागरिक—पुरुष और महिलाएँ भी इन सबको समझना क्यों आवश्यक मानें। उनके महाराजके चार कुमार—परम सुन्दर, भुवन मनोहारी चारों शिशु—'युग-युग जीते रहें।'

आशीर्वाद ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके द्वारा देते हैं और आज वे स्वस्ति पाठ करते आशीर्वाद देते थकते नहीं हैं। आशीर्वाद तो जन-जनके हृदयसे निकल रहा है। महिलाएँ अञ्चल फैलाकर सूर्यनारायणसे, देवताओंसे आशीर्वाद माँगने लगी हैं इन चारों राजकुमारोंके लिए।

महाराजाधिराजके राजकुमार—अभी आजही-के नवजात शिशु, किन्तु सुरोंको लगता है कि उनके प्रतिपालक आ गये हैं। ऋषि-मुनियोंका स्नेह उमड़ता है, किन्तु वह श्रद्धा भरित है। अयोध्याके नर-नारी तो जैसे अबसे ही इन चारोंके हो गये हैं।

एक बात इस मङ्गल-महोत्सवमें भी—त्रिलोकी महोत्सव मग्ना हुई। सर्वत्र शकुन हुए, किन्तु सबकी प्रतिक्रिया भी हुई। अपशकुन, अनुत्साहके देवताओंको भी कहीं शरण चाहिए थी। वे सब एक साथ दशग्रीवकी लङ्कापुरीमें एकत्र हो गये। वैसे वहाँ भी किसीको कोई असुविधा नहीं हुई। ध्वजाएँ टूट गिरीं, भवनपर गृद्ध और उलूकोंका समुदाय आ बैठा अथवा कुछ और अपशकुन हुआ, यह देखने-जाननेका अवसर किसीको नहीं मिला। राक्षसोंको भी जैसे अवधके कुमारोंके जन्मका पारितोषिक ही मिला। तमस प्रधान राक्षसोंको भरपूर निद्रा आयी। वे लगभग दो दिन-रातकी प्रगाढ़ निद्रासे सन्तुष्ट ही हुए।

दक्षिण कोसल, सौमित्र देश, कैकय समाचार पहुँचा और वहाँ भी महोत्सव प्रारम्भ होगया। सभी सम्बन्धियोंके यहाँ महामन्त्री सुमन्त्रने

तत्काल दूत भेजकर समाचार भेजा। चक्रवर्ती नरेशके सभी मित्रों, प्रियजनोंको सन्देश गया। राजा रोमपादको आमन्त्रित किया गया ऋष्य-श्रृङ्गके साथ सपत्नीक।

जहाँ सुर भी मित्र ही हैं, वहाँ अमरावती भी महोत्सव ही तो मनायेगी। अवश्य ही सुरोंके समान सुविधा अन्य किसीको प्राप्त नहीं थी। स्वजन, सम्बन्धियोंके यहाँसे आनेवालोंको पथ-पार करना था और कोई वाहन मनका तो साथ दे नहीं पाते, किन्तु सुरोंको तथा सुरेन्द्रको कोई अवरोध नहीं था। देवराज इन्द्रके दिव्य उपहार सर्वप्रथम अयोध्या पहुँचे नवजात कुमारोंके लिए।

अयोध्यामे अब अविराम महोत्सव चलना था। असंख्य अतिथि आते थे। उनके आवासकी, आतिथ्यकी व्यवस्था राज-कर्मचारियोंने प्रारम्भ कर दी थी और महर्षि वशिष्ठने महाराजको आगत तपस्वी, ऋषि-मुनि गणोंकी ओरसे निश्चिन्त कर दिया था।

अयोध्यामें यह पहिचाननेका उपाय नहीं रह गया था कि आगतोंमें मानव वेशमें कितने दिव्य-लोकोंके पूज्य हैं, कितनी देवियाँ हैं। सबका ही पूजनीयके समान सत्कार और सभी तो आते थे स्नेहका, सेवाका अवसर पानेकी उत्कण्ठाका भाव लेकर।

नित्य नूतन पुरी अयोध्या। नित्य नूतन महोत्सव। नित्य नूतन उत्साह जन-जनमें। अब तो अतिथियोंका अजस्र प्रवाह अयोध्याकी ओर उमड़ पड़ा था। अयोध्यामें महाराज दशरथके अन्त:पुरमें जो शिशु आ गये थे, त्रिभुवन जैसे उनके जन्मोत्सवमें उन्मद हो उठा था।

षष्ठी-पूजन

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के पुत्रोंका संस्कार-महोत्सव-वर्णन करना सम्भव नहीं है। देवराज इन्द्र जिनके मित्र हैं, सभी देवता, समस्त लोक-पाल उनका सान्निध्य पाकर गौरवान्वित ही हो सकते हैं। धरापर और महर्लोक, जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोकमें भी कोई ऐसा ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि नहीं जिसे महाराजकी श्रद्धाने सानुकूल न बना रखा हो, किन्तु षष्ठी-पूजनोत्सव केवल प्रसूता-स्नानोत्सव है। इसे शिशु-दर्शनोत्सव भी कह सकते हैं, क्योंकि जातकर्मके पश्चात् तो शिशु केवल महिलाओंको देखनेको मिल सकता है, जिनका प्रवेश प्रसूति-कक्षमें हो। षष्ठी-पूजनके साथ शिशु सूर्य-दर्शन करता है।

जात-सूतक द्वादश दिवसीय होता है। अतः षष्ठी-पूजनका दिन दान देनेका नहीं है। यह शिशुके लिए स्वजनोंके स्नेहोपहार अर्पणका भी दिन कहा नहीं जा सकता। सम्बन्धीजन तो द्वादशी-महोत्सवपर स्नेहोपहार अर्पण करते हैं। केवल नगरकी महिलाओंका शिशुको उपहारार्पण दिन है यह और षष्ठी-पूजनमें महिलाओंकी ही प्रधानता रहती है। अवश्य ही बालकोंको अवसर मिल जाता है नवजातका दर्शन करनेका। वह भी दूरसे क्योंकि उत्सुकता चाहे जितनी अधिक हो, वृद्धाएँ कहाँ बालकोंको शिशुका स्पर्श करने देती हैं।

अयोध्याके बालक, राजसदनमें उनके प्रवेशपर कभी प्रतिबन्ध नहीं रहा। विप्र-शिशु ही नहीं, सेवकों तकके शिशुओंका महारानियाँ सदा स्वजातके समान सत्कार करती रही हैं और बालकोंमें कहाँ स्व-पर, वर्ण-जाति भेद होता है। आज तो बालक-बालिकाओंसे राजसदन भर उठा है।

चक्रवर्ती महाराजके चारों शिशु-धात्रियाँ तक इनका स्पर्श करते समय अनेक बार शिथिल-कर संकुचित रह जाती हैं। सृष्टिमें ऐसा कुछ नहीं जिससे इनके सौकुमार्यकी तुलना की जा सके। इनके अतिशय, मृदुल,

स्निग्ध, ज्योतिर्घन श्रीअङ्ग—लगता है मार्दव एवं कान्ति घनीभूत हो गये हैं।

अयोध्याके राजसदनमें देवताओंके आवाहनकी विधिमात्र पूर्ण होती है। वे प्रतीक्षा करते रहते हैं कि रघुकुलगुरु संकेत करें तो प्रकट होकर वे आसन ग्रहण कर लें। षष्ठी देवीको, कृत्तिकाओंको इस सदनका पूजन प्राप्त होगा, यह आशा तो कुमारोंके जन्मदिनसे ही उत्सुक बनाये थी कि उनको आवाहन मिले।

भगवान् भुवनभास्कर अपने कुलको कृतार्थ करने आये इन शिशुओंको देखनेके लिए कितने समुत्सुक होंगे, यह बात कोई कुल-वृद्ध ही समझ सकते हैं। ऐसे कुल-वृद्ध, जिनके पौत्र या प्रपौत्रने बहुत प्रतीक्षाके पश्चात् सन्तान प्राप्त की हो।

निकटके भी स्वजन-सम्बन्धी नहीं पधारे थे। इस चक्रवर्ती महाराजको सङ्कोच होगा, क्योंकि रघुकुल शास्त्रीय मर्यादाओंका सदासे संरक्षक है। जात-सूतकमें सम्बन्धियोंका सत्कार—सदन पधारे अभ्यागतका सत्कार न किया जा सके, सङ्कोच तो होगा ही। अन्योंके द्वारा कराया गया सत्कार कहीं हृदयको सन्तुष्ट कर पाता है।

शिशुओंके मातुल-गृहोंको यह सौभाग्य प्राप्त होना था। सभी रानियोंके पिता, भ्राता आ गये थे इस दिन और उनके अमित उपहार—उनमें से प्रत्येकने अवध-राजसदनके दास-दासियों तकके लिए वस्त्राभरण शकटोंमें भरा था प्रस्थान करते समय। सबके लिए सभी रानियाँ उनकी अपनी कन्याएँ थीं। सबकी अभिलाषा थी कि उनके रत्नाभरण एवं वस्त्र सब धारण करें। परस्परकी प्रीतिके कारण किसीने आग्रह नहीं किया।

चक्रवर्ती महाराजने सबका सम्मान किया। आज महाराजके शरीर पर विभिन्न रङ्गोंके वस्त्र तथा आभरण शोभित हुए। वे किसे इस सौभाग्यसे वञ्चित करते। महारानी कौसल्याके पिता द्वारा प्रदत्त उष्णीष धारण किया उन्होंने तो उसपर कैकय नरेशके करोंने किरीट सजा दिया। प्रत्येक सम्मान्यका कोई वस्त्र, कोई आभरण महाराजने धारण किया।

यह समुदाय ऐसा था कि अयोध्यामें इसका इतना ही सत्कार सम्भव था कि इसके उपहार ग्रहण कर लिये जावें। अपनी कन्याओंके पति-गृह ही

नहीं—नगरसे भी उस कालमें कोई कुछ स्वीकार नहीं करता था। अपने नगरकी कन्याका विवाह जहाँ हुआ, वहाँ जाकर तो वहाँके कूपका जल भी ग्राह्य नहीं था। ये सम्मान्य अतिथि पधारे। इन्होंने उपहार अर्पित किये। शिशुओंको तथा उनकी माताओंको भी आशीर्वाद दिया और विदा माँग ली। अयोध्यामें इनसे कुछ समय भी रुकनेका आग्रह किया नहीं जा सकता था।

'धन्य महाराज दशरथ !' शिशुओंका दर्शन करके विदा हुए राजाओं के सेवकों तकके मुखपर यह चर्चा महीनों बनी रही। वे मार्गमें, अपने पुरमें जो मिले, उससे कहते थकते नहीं थे—'हमारे नेत्र सफल हो गये। हमने जीवनका लाभ प्राप्त किया। उन शोभा-सिन्धु शिशुओंको जिसने नहीं देखा, कुछ नहीं देखा। वे सौन्दर्य-मूर्ति—इतना सौन्दर्य भी सृष्टिमें सम्भव है, सोचा नहीं जा सकता।'

'तुम्हें देखकर वे चौंके नहीं ? रुदन नहीं किया ?' महिलाएँ पूछती थीं—'तुमने उनका स्पर्श प्राप्त किया ?'

'स्पर्श ?' सुननेवाले चौंककर पूछनेवालीका मुख देखते रह जाते। 'अब बिना देखे कोई कैसे समझेगा कि वे कितने सुकुमार हैं। उन्हें मनसे भी स्पर्श करनेकी बात सोचना क्रूरता है। हमारे कठोर कर—पता नहीं धात्री कैसे स्पर्श कर पाती हैं उनका ? हमारे वस्त्राभरण—उनको अर्पित करनेमें बहुत लज्जाका अनुभव हुआ। उनके योग्य तो संसारमें ही कुछ नहीं है। अभी तो उन्हें पलकें गिराना भी नहीं आता। वे आनन्दकी मूर्तियाँ, रुदन वे क्या जानें। केवल थोड़े निमेष देखते रहे और हमें स्वयं हट जाना उचित लगा। हमारी दृष्टि उन्हें न लगे—वे सुकुमार युग-युग जीते रहें और पृथ्वीका पालन करें !'

'अयोध्याका सिंहासन सदासे चक्रवर्तीका सिंहासन रहा है।' कुमार युधाजितसे उनके पिता कैकय नरेश अश्वजितने कहा था—'महाराज दशरथको महेन्द्र अपने सिंहासनपर दाहिने बैठाकर सम्मानित करते हैं, किन्तु युधाजित ! अब सुन लो कि तुम्हारे भागिनेयोंके पादपीठका किरीटसे स्पर्श करना भी सुराधिपका सौभाग्य ही होगा। हम इनके राजसूयके अश्व-रक्षकोंमें स्थान पा सकें तो हमारा परम सम्मान। मैं वृद्ध हो गया हूँ,

शिशुओंको देखते ही कोई सामान्य लक्षणज्ञ भी कह देगा कि इनमें से प्रत्येक त्रिभुवनका शासन करनेमें समर्थ होगा।'

चक्रवर्ती महाराजके शिशुप्रसूति-कक्षसे उस दिन बाहर आये और उनके सौन्दर्यकी, प्रतापकी चर्चा देशमें उसी दिन फैल गयी। रात्रिके गहनान्धकारमें भी प्रस्फुटित होते ही गन्धराज कलिकाका सौरभ दिशाओंको सुरभित कर देता है।

अयोध्यामें तो महोत्सव चल ही रहा था। आजकी रात्रि महिलाओंने जागरण करते व्यतीत की थी। षष्ठी-पूजन महोत्सवकी पूर्वरात्रि। गगनमें भी महोत्सव चल रहा था। ब्राह्ममुहूर्तसे पूजन प्रारम्भ हुआ। शिशुओंके परम सुकुमार श्रीअङ्ग भगवान् दिवाकरकी मृदुल किरणें भी सहन करने योग्य कहाँ हैं। वैसे भी मेषके उच्चस्थ आदित्यकी किरणें—लेकिन जैसे भगवान् भास्कर अपने वंशधर इन शिशुओंको देखकर स्वयं संकुचित हो गये हों। गगन यज्ञ-धूम्र-धूसर, कुंकुमारुण ओर शिशुओंके लिए तो क्षणार्ध ही पर्याप्त था किरण-स्पर्शके लिए।

अयोध्याकी विप्र-पत्नियोंके लिए ही नहीं, सभी नारियोंके लिए अब राजसदन अपना सदन हो गया। अपने सदन जाना पड़ता है गृहकी सेवाके लिए, यह कर्तव्यवश करना पड़ता था। पता नहीं सृष्टिकर्ताने रात्रिका सृजन ही क्यों किया था।

बालकोंके लिए कोई विवशता नहीं थी। वे षष्ठी-महोत्सवके दिनसे ही राजसदनमें प्रातः उठते ही भाग आने लगे। माताएँ कठिनाईसे उनके मुख धुलाकर श्रृङ्गार कर पाती थीं। रात्रिमें माताओंको राजसदनसे अपने निद्रित बालक उठा ले जाने थे।

शास्त्रीय कृत्य और कुलाचार तो विधि-पूर्वक सम्पन्न होने ही थे, पता नहीं कितने उपचार वृद्धाओंने शिशुओंके मङ्गलके लिए किये। राजसदनकी सज्जाके साथ द्वारोंपर अनेक प्रकारकी औषधियाँ लटकायी गयीं। शिशुओंके समीप शस्त्र तथा अग्नि रहनी ही थी। औषधियोंका धूम उठता रहता था।

महिलाओंको, शिशुओंको तो सौभाग्य मिल ही गया चक्रवर्ती महाराजके सुकुमार कुमारोंके सामीप्यका—कुछ नन्हें पक्षियोंको भी यह सौभाग्य प्राप्त हो गया। पता नहीं कहाँसे सुरङ्ग, सुस्वर छोटे-छोटे पक्षियोंका

समुदाय आने लगा राजसदनमें। ये पक्षी चाहे जब रत्न पालनेपर आकर बैठ जाते थे और गाने लगते थे। शिशुओंके समीप फुर्र-फुर्र उड़ते थे।

पक्षीके चञ्चु एवं नख कठोर होते हैं। धात्री अथवा वृद्धाएँ इन्हें शिशुओंके समीपसे उड़ानेका प्रयत्न करतीं। कहीं ये शिशुके ऊपर ही बैठनेकी चेष्टा करें तो? लेकिन ये बहुत धृष्ट हो गये थे। जैसे सब पाले हुए हों—उड़ानेवालीके करपर, कन्धोंपर, सिरपर ही बैठ जाते और उसीकी ओर देखकर बोलने लगते।

'इन्हें उड़ाओ तो उलाहना देने लगते हैं।' धात्रीने महर्षि वशिष्ठसे प्रार्थना की—'इनकी संख्या बहुत बढ़ गयी है और शिशुओंके समीप ही छाए रहना चाहते हैं।'

'भयका कोई कारण नहीं है।' महर्षिने पक्षियोंकी ओर देखकर कहा—'यह कोई आधिदैविक उत्पात नहीं है। इन शिशुओंकी प्रीति-प्राप्तिका अधिकार जन्म-जन्मकी आराधनासे जिन्हें मिला है, वे अपने स्वरकी सेवा समर्पित करते हैं। शिशुओंमें किसीको ये भूलसे भी कष्ट नहीं देंगे।'

महर्षिकी वाणीपर अविश्वास कोई नहीं करता, किन्तु हृदय मानता नहीं। पक्षी अबोध ही तो हैं। शिशु भी इन सबोंको देखकर प्रसन्न होते हैं। इनके लिए जल नन्हें स्वर्ण-पात्रोंमें रखा जाने लगा है और दाना दिया जाता है इन्हें किन्तु ये तो कदाचित ही उनमें मुख मारते हैं। नन्हें सुरङ्ग पक्षी—इनका अनाहार महारानियोंको भी सचिन्त बनाता है। इनके लिए दाने परिवर्तित होते रहते हैं। फल रखे जाने लगे हैं।

शिशुओंके रत्न-पालनेमें स्वर्ण-रत्नके खिलौने लटकाये गये हैं, किन्तु वे तो पक्षियोंके बैठनेके आसन बन गये हैं। इनकी फुरफुराहट और सङ्गीत दिनभर अखण्ड चलता रहता है। शिशुओंके ये स्वतः सिद्ध सहचर बन गये हैं। अयोध्याके बालकोंके करोंपर, सिरोंपर बैठनेमें इन्हें सङ्कोच नहीं। जैसे ये बालकोंके स्वभाव-सिद्ध मित्र हों।

———

नामकरण

—*—

अयोध्यामें यह तो निश्चित ही हो गया था कि चारों राजकुमारोंके संस्कार एक साथ ही होंगे। राजपुत्रका नामकरण बारहवें दिन हो, यह प्रथम कल्प (उत्तम विधि) है। महर्षि वशिष्ठजीने नामकरणके लिए मुहूर्त निश्चित कर दिया था। माधव मास (वैशाख) कृष्ण पञ्चमीको अनुराधा नक्षत्र प्राप्त हो जाता था। परम मङ्गल मुहूर्त और इसकी प्रतीक्षा तो सब कुमारोंके जन्मकालसे ही करने लगे थे।

नापित, मालाकार, वायक, सूत, मागध, वन्दियोंको राजकुमारोंकी न्यौछावर प्राप्त होनी थी। सुरगण तथा विप्रवर्गकी अर्चना होनी थी। उन्हें अब कुमारोंके कर स्पर्शसे परिपूत दक्षिणा प्राप्त होनी थी। श्रीचक्रवर्ती नरेश ही नहीं, अयोध्याके सभी नागरिक उल्लासमें थे। सबको कुमारोंको आज आभूषित करना था।

महाराजने ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान किया। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठजी अपना आह्निक संक्षिप्त करके शीघ्र विप्रवर्गके साथ राजसदन आ गये। मन्त्रियोंको, सेवकोंको कुछ समझाना नहीं था। सब प्रस्तुत थे। सङ्केतसे भी पूर्व आवश्यक पदार्थ लिये वे उपस्थित दीखते थे।

महाराजने, महारानियोंने, अन्तःपुरकी दासियों तक ने आज निर्मल नूतन वस्त्र धारण किये थे। कोई नहीं था जिसका शरीर रत्नाभरण भूषित न हो। जिसने अङ्गराग चन्दन न लगाया हो और पुष्पमाल्य धारण न किया हो। आज सुराङ्गनाएँ भी सौन्दर्य शृङ्गारमें राजसदनकी सेविकाओंमें पृथक पहिचानी नहीं जा सकती थीं। महारानियोंकी सहचरी बनी विप्र-पत्नियोंमें कितनी देवाङ्गनाएँ थीं, समझना कठिन था और सुरोंने ही सेवकोंमें सम्मिलित होनेमें कहाँ सङ्कोच किया था।

चक्रवर्ती सम्राट् और उनकी महारानियोंकी आजकी शोभा—देवपूजन, पितृतर्पण आदि सविधि चलने लगा प्रभातसे ही। सुरभित धूम्र-धूसर, वाद्य ध्वनि एवं श्रुतिके सस्वर मन्त्रपाठसे गगन गूंज रहा था।

भगवान् गणपति, मातृकाएँ, ग्रह—सभी पूजित होने थे। सबकी वेदिकाएँ, सबके मण्डल रत्न निर्मित थे और सबने प्रत्यक्ष होकर अपनी अर्चा ग्रहण की। कहना चाहिए कि बड़े सङ्कोचपूर्वक ग्रहण करना पड़ा। जहाँ अर्चाके ग्रहण स्थानपर सेवा करना सौभाग्य था, वहाँ महर्षि वशिष्ठका मन्त्रपाठ सहित आवाहन आदेश ही प्रतीत होना था पूजा-ग्रहणके लिए।

भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य आज जैसे परमानन्दके कारण सुधा-रश्मि हो गये थे। कहीं किसीको तापका कोई अनुभव नहीं हो रहा था।

जात-सूतक समाप्त हुआ। देव-पितृ-पूजन-तर्पण पूर्ण हुआ और रत्न-मण्डपमें महाराजके वामपार्श्वमें तीनों महारानियाँ कुमारोंको अङ्कमें लेकर विराजमान हुईं। ज्येष्ठ कुमार यदि महाराजके अङ्कमें सुशोभित थे तो बड़ी महारानीने श्रीकैकेयी-नन्दनको क्रोड़ीका आभरण बनाया था। कैकेयीजीके अङ्कमें सुमित्राजीने अपना कनिष्ठ कुमार दे दिया था—'इसे अब आप अपना लें! दूसरेको मैं जीजीको देकर आप दोनोंकी सेवाके लिए उन्मुक्त हो जाऊँ।'

अञ्जन-रञ्जित खञ्जन मञ्जु विशाल दृग, भालपर कज्जल विन्दु, सुरभित तैल सिञ्चित अलकोंमें लगी नन्हीं मोतियोंकी लड़ियाँ और अङ्गोंपर झीने कौशेय वस्त्र। करोंमें, चरणोंमें अत्यन्त स्वल्प रत्नाभरण। कटिमें कृष्णवर्ण कटि-सूत्र। आज सर्वप्रथम चारों शिशुओंका स्वल्प शृंगार किया गया था। चारोंको आभरण धारण कराये गये थे। जैसे सौन्दर्यमयी चार शिशु-मूर्तियोंमें परमानन्द साकार हो गया हो।

अमित तेजा श्रुति एवं तपके साक्षात् स्वरूप, महर्षियोंके भी महामान्य महर्षि वशिष्ठ दूसरे ऋषि गणोंके साथ स्वस्ति पाठ कर रहे थे। उनके करोंके कुशोंसे उठे तीर्थोदकके नन्हें सीकरों से शिशुओंकी अलकों, कपोलोंपर हीरक कण जैसे जल-विन्दु झलमलाने लगे। महाराज एवं महारानियोंने मानो जीवनका फल प्राप्त किया।

महर्षिने रत्नासनपर आसीन होकर महाराजके ज्येष्ठ कुमारको अङ्कमें लिया तो उनका शरीर पुलकित—रोम-रोम उत्थित हो गया। शरीरसे स्वेद धारा चलने लगी। थोड़ा समय लगा महर्षिको अपने अन्तरका आवेग संयत करनेमें।

कुमारके अत्यन्त मृदुल, कुङ्कुमारुण पाद-तलका महर्षिने एकाग्र होकर निरीक्षण किया। मस्तकसे चरणों तकके प्रत्येक लक्षणको देखते रहे। शिशु तो महर्षिके मुखको—सम्भवत: हिमश्वेत श्मश्रुको देखकर किलक रहा था।

'राजन्! इसके गुण, प्रभावका वर्णन तो सम्भव नहीं है।' महर्षिने गद्गद स्वरमें कहा—'इसकी समता सृष्टिमें न कभी हुई, न होगी। इसमें सब सत्पुरुषोंका मन रमण करेगा और अपने सद्गुणोंसे यह सबके हृदयमें रमण करेगा, अत: इसका नाम राम।'

'राम।' महाराजने, महारानियोंने मनमें दुहराया और ऋषियों-मुनिगणोंके हृदयने। उपस्थित समस्त लोगोंके मुखसे स्वत: निकला—'राम!' जैसे ये दोनों वर्ण अनन्त सुधासार हों।

'राम' अपरिचित नाम तो नहीं है यह। श्रुति-स्मृति-पुराण प्रतिपादित अमित प्रभाव नाम। प्रचण्ड पराक्रम, निखिल राजकुलोतङ्क भगवान् जामदग्नेयका परशु सहित नाम; किन्तु इस समय यह किसीको स्मरण नहीं हुआ। सबने यही अनुभव किया कि यह 'राम' तो यही चक्रवर्ती महाराज दशरथके कमललोचन दूर्वादलाभिराम कुमार ही हैं। श्रीकौसल्यानन्दनका ही नाम राम है—यह तो इनका स्वत:सिद्ध नाम है।

महर्षिने कुमारको कैकेयीजीके अङ्कमें दे दिया, क्योंकि जैसे ही महर्षिने ज्येष्ठ कुमारको महाराजके अङ्कसे उठाया था, कैकेयीजीने कनिष्ठ कुमारको महाराजके अङ्कमें दे दिया था। वे ज्येष्ठको अङ्कमें लेनेको आतुर थीं। रामको अङ्कमें लेकर उन्होंने सिर सूंघा और वक्षसे लगाकर बड़ी महारानीकी ओर देखकर धीरेसे कह दिया—'जीजी! अब राम मेरा ही रहेगा। आप अपनेको सम्हाले रहें!'

महर्षिके करोंमें महारानी कौसल्याने अपने अङ्कका कुमार सस्नेह दिया। कैकेयीकी ओर देखकर उन्होंने भी धीरेसे कहा—'तुम्हारा अनुग्रह कि तुमने एक तो मुझे दे दिया। तुम दोनों ले लेतीं तो भी मैं इनकी धात्री होकर सन्तुष्ट थी।'

'जीजी! आप दोनों मेरे स्वत्वपर तो दृष्टि मत डालो।' मन्द स्मितके साथ सुमित्राजीने कह दिया—'चारोंकी धात्री मैं हूँ। आप दोनोंकी एक-एक

नहीं, दो-दोको अङ्क-धन बनाये रखना है। आपके इन्दीवर सुन्दर कुमारोंके सेवक भी तो चाहिए।'

'उहँ !' कैकेयीजीने नेत्र कड़े किये। सम्भवतः उन्हें 'सेवक' शब्दपर बहुत आपत्ति थी, किन्तु महर्षि अब दूसरे कुमारके लक्षण देख चुके थे। वे उसका नामकरण करने जा रहे थे। सबके मन-प्राण कर्णगत हो गये।

'यह त्रिभुवनका भरण-पोषण करनेमें समर्थ होगा।' कुलगुरुका स्वर पूर्ववत् गद्‌गद था—'इसका स्मरण युग-युग तक जनमानसको भक्ति-भावसे भरता रहेगा। अतः इसका नाम भरत।'

'भरत' श्रोताओंमें सबके अन्तरने दुहराया—'राम-भरत—भरत-राम' एक जैसा रूप और दोनोंके नाम सर्वथा एकसे सुधा-स्निग्ध।

'मैं मुक्त हो गयी।' सुमित्राजीने महर्षिके करोंमें अपना स्वर्ण गौर कुमार देकर कैकेयीजीके कानोंके समीप मुख करके कहा—'अब आपने ज्येष्ठको लिया है तो इसे भी अपना लेना। मैं अभीसे भार-मुक्त हो गयी।'

'बहुत चतुर हैं आप' कैकेयीजीने भी सस्मित कहा—'इस प्रकार चारोंकी जननीका गौरव आप अकेली ही ले लेना चाहती हैं। धात्री तो आपने हम दोनोंको बना दिया।'

'राजन् ! जितने भी उत्तम लक्षण किसीमें सम्भव हैं' महर्षि कह रहे थे—'वे सब आपके इस कुमारमें हैं। इसके स्मरणसे मनुष्य सुलक्षण होते रहेंगे। इसका नाम लक्ष्मण।'

महाराजके ही अङ्कमें इस कुमारको रखकर महर्षिने सबसे छोटे कुमारको उठाया और उसके अङ्ग-लक्षण, पादतल देखनेमें तल्लीन हो गये।

सुरोंका, महर्षिगणोंका और स्वयं भगवान् ब्रह्माका भी अन्तर कह रहा था—'धन्य हैं वशिष्ठ। यह सौभाग्य इनका ही स्वत्व है। महाराज दशरथके कुमारोंमें कोई मनमें भी एक पलको आ जाय, कृतकृत्य हो गया वह महाभाग और अङ्कमें लेकर प्रत्येकके पादतलोंका यह स्पर्श—वशिष्ठके साथ स्पृहा भला कोई कैसे कर सकता है।'

'महाराज ! आपका यह कुमार ऐसा है कि इसके स्मरणसे हृदयके दुर्जय शत्रुओंको प्राणी सरलतासे जीत लिया करेंगे।' महर्षिकी वाणी कुछ

अद्भुत ढंगकी हुई—'बिना संकर्षणका आश्रय लिये कहाँ कोई साधक मोह, लोभ, क्रोध, कामादि शत्रुओंके संहारमें सफल हुआ है। उनका अनुज—अनिरुद्ध—अदम्य दोष-निषूदन यह, अतः इसका नाम शत्रुघ्न।'

ऋषि-महर्षि जब गूढ़ तत्त्वके सम्बन्धमें बोलने लगते हैं, उनकी वाणी सर्वसामान्यको अवगम न हो, सहज स्वाभाविक है। उनकी वाणीका स्पष्ट ग्राह्यतत्व भी सबके लिए पर्याप्त होता है। सभी प्रसन्न हो गये। कुमारोंके नाम उनके अनुरूप लगे सबको।

'शत्रुघ्न'—महाराजने, मन्त्रियोंने और उपस्थित प्रजाके प्रधान लोगोंने इस नामका अर्थ लिया—'यह छोटा कुमार अयोध्याकी विजय-वाहिनीका महासेनापति होगा। यह शत्रुओंका संहार करके अयोध्याके सम्राट् अपने अग्रजको यशस्वी बनावेगा।'

यह अर्थ सार्थक नहीं हुआ, यह तो कहनेका साहस किसीमें है नहीं। महाराजको, महारानियोंको, मन्त्रियोंको, प्रजाको भी अत्यन्त सन्तोष हुआ। अन्ततः चक्रवर्ती सम्राट्के कुमारोंमें एक तो प्रचण्ड पराक्रम, शत्रु-निषूदन होना ही चाहिए और वह अनुज है, इसका अर्थ है कि अग्रजोंको धनुष उठानेका अवसर उसकी उपस्थितिमें नहीं आवेगा। वह अग्रजोंका अनुगामी तो रहेगा ही।

'राजकुमार रामकी जय !' प्रजाके लोग, मन्त्रीगण हर्षसे जयघोष करने लगे—'श्रीकौसल्यानन्दवर्धन रामभद्रकी जय !'

'राजकुमार भरतकी जय !' नामकरणके साथ ही यह जयनाद गूँजने लगा था—'महारानी कैकेयी-नन्दन भरतकी जय !'

'राजकुमार लक्ष्मणकी जय !' प्रजा आनन्दमग्न पुकार रही थी—'महारानी सुमित्राके ज्येष्ठ कुमार लक्ष्मणकी जय !'

'राजकुमार शत्रुघ्नकी जय !' सबने अभीसे घोषणा की—'हमारे अपराजेय भावी महासेनापति कनिष्ठ राजकुमार शत्रुघ्नकी जय !'

अन्न-प्राशन

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के कुमारोंका अन्न-प्राशन महोत्सव—चारों कुमार हाथ और घुटनोंके सहारे प्राङ्गणमें सरकने लगे हैं तो इनका अन्न-प्राशन आवश्यक हो गया। बालक हाथमें पड़ी कोई वस्तु मुखमें डाल ही लेंगे। उनके मुखमें अकस्मात् अन्न पड़े, इससे पूर्व संस्कारपूर्वक वैदिक विधिसे उनको अन्नके स्वादसे परिचित किया जाना चाहिए।

शिशुके अधरोंसे स्पर्शमात्र कराना होता है इस दिन अन्नके रसका। अभी मधुर रसके अतिरिक्त दूसरा कोई रस शिशुके अधर एवं रसनाके लिए सह्य नहीं, किन्तु परिचित उसे पूरे षड्रससे आज ही करानेकी विधि है।

षड्रस—एक-एक रसके चार-चार भेद—चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय। इनमें भी प्रत्येकके छप्पन व्यञ्जन प्रकार। यह विस्तार शिशुके लिए नहीं, यह विस्तार तो आराध्यको, देवताओंको नैवेद्य अर्पित करनेके लिए। शिशुओंका अन्न-प्राशन तो आराध्यके प्रसादसे हुआ करता है।

अयोध्या—नित्य सज्जिता अयोध्या भली प्रकार सजायी गयी थी। समस्त गलियाँ, राजपथ, चतुरष्क सुगन्धि-सिञ्चित, विविध वर्णके मण्डलोंसे सुचित्रित और ध्वजाओंसे, तोरणोंसे मनोरम हो रहे थे। नगरके सम्पूर्ण देव-मन्दिरोंमें अभिषेक, अर्चन चल रहा था।

शिशुओंके अन्न-प्राशनके पश्चात् स्वजन, सम्बन्धी तथा अवधकी पूरी प्रजाको भोजन कराये बिना महाराज स्वयं कैसे भोजन करेंगे ? विप्रवर्ग तो वैसे भी प्रायः प्रत्येक पर्वपर राजसदन आमन्त्रित होता ही है, किन्तु आज राजकुमारोंका अन्न-प्राशन है। आज तो पशु-पक्षी सभीका स्वागत महाराजके राजभवनमें।

यद्यपि सर्वज्ञात है कि इक्ष्वाकुकुलके कुमारोंमें कभी रुचि-विपर्यय नहीं हुआ, किन्तु रुचि-परीक्षणकी विधि सम्पन्न तो करनी ही है और वह इसी अवसरपर होती है। महाराज, महारानियाँ ही नहीं, नगरके प्रत्येकके चित्तमें कुतूहल है—'चारों राजकुमारोंमें रुचिभेद कैसे प्रकट होता है।'

गगन और धरा प्रभातसे ही मङ्गलवाद्योंसे गुञ्जित हैं। झर रही है पुष्पवृष्टि और अम्बर यज्ञधूमसे पवित्र हो रहा है। सुर तो महाराजके सदनमें अपना भाग स्वीकार करने स्वयं अनाहूत आ गये हैं।

ऋषियोंके साथ महर्षि वशिष्ठ प्रभातसे ही विविध रत्न-वेदिकाओंपर पूजन करा रहे हैं। गणपति, ग्रह, योगिनियाँ—सभीको यथोचित अर्चन प्राप्त हुआ। द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें महारानियाँ शिशुओंको अङ्कमें लिये मण्डपमें रत्नासनोंपर विराजमान हुईं। उनकी शोभा—श्री, शारदा भी उनकी पद-वन्दना ही कर सकती हैं। उनकी और उनके श्रृङ्गार सज्जित अङ्क-धन शिशुओंकी शोभाका वर्णन किया नहीं जा सकता।

शीघ्र शिशु माताओंके अङ्कसे उतरे और चारों एक साथ बैठ गये। इन्हें अब इसी प्रकार बैठनेका अभ्यास है। राम कहीं भी बैठ जायँ तो तीनों अपने अग्रजको घेरकर बैठ जाते हैं। फिर इनमें किसीको कुछ देखना, सुनना नहीं रह जाता। राम हो घुटनोंके बल चलें, तो तीनों चलेंगे और बड़े भाईके पीछे ही चलेंगे।

महर्षिने स्वस्ति-वाचन किया। महाराजने बड़े सङ्कोचसे अपने बड़े कुमारके अरुण मृदुल अधरोंसे किञ्चित् कटु, तिक्त, क्षार, अम्ल, कषाय रसके व्यञ्जनोंका स्पर्श कराया। ये भी सब सुरभित, सुस्वादु एवं मधुर बनाये गये थे, किन्तु शिशुके अधर क्या इन रसोंके योग्य होते हैं ?

महर्षिका मन्त्रपाठ भाव-विह्वल होनेसे स्खलित होने लगा। महाराजके कर कम्पित हो रहे थे; किन्तु श्रीरामचन्द्रने तो केवल एक बार पिताके मुखकी ओर देखा स्थिर नेत्रोंसे और नन्हा मुख खोल दिया। तनिक अधर भी नहीं फड़काये उन्होंने। पिताने जो भी उठाया, श्रीरामने उसे मुखमें ले लिया। उसी स्थिरतासे, उसी चावसे वे कटु, तिक्त, कषाय भी जिह्वा चलाकर ग्रहण करते रहे, जिस चावसे अन्तमें मधुर रस लिया उन्होंने।

'मेरे लाल !' महारानी कैकेयीने जैसे ही यह क्रम पूरा हुआ, बड़ी आतुरतापूर्वक श्रीरामको अङ्कमें ले लिया। उनके अधरोंका प्रोञ्छन किया। महर्षिकी ओर देखनेपर अनुमति प्राप्त हो गयी कि वे शिशुको दुग्धपान कराने उठ सकती हैं।

तीनों भाई सटे बैठे थे। बड़े ध्यानसे देख रहे थे कि महाराज उनके अग्रजके अधरोंमें क्या लगा रहे हैं। महाराजने जब क्रमशः उनके मुखकी ओर कर बढ़ाया, तीनोंमें किसीने भी किञ्चित भी अरुचि प्रकट नहीं की। केवल लक्ष्मणने महाराजकी ओर कुछ ऐसी भङ्गीसे देखा, जैसे नेत्रोंमें उलाहना हो—'यह सब खिलाना ही था तो मुझे आप खिला देते। अग्रजके अधर तो इन रसोंके योग्य नहीं थे।'

'राजन्! आपके कुमार इस शैशवमें भी शील, सौजन्य तथा सहन-शीलतामें अतर्क्य हैं।' महर्षिने कहा—'कोई ऋषिकुमार भी इतने स्थिर, अव्यग्र भावसे अन्नप्राशनके समय कटु-तिक्त रसोंका स्पर्श सहन नहीं कर पाता।'

अन्नप्राशनके पश्चात् रुचि-परीक्षण तो तृतीय प्रहरमें होना था। अभी तो महाराजको भोजन करानेके पश्चात् समस्त आगतों तथा प्रजाका सत्कार करना था।

विशाल प्राङ्गण विविध वस्तुओंसे सज्जित था। समस्त पदार्थ अत्यन्त आकर्षक और अत्यन्त लघु—इतने छोटे कि शिशु उन्हें सरलता-पूर्वक एक करसे उठा सकें। रत्न-खचित वस्त्रोंसे आवेष्टित नन्हें ग्रन्थ, छोटे-छोटे स्वर्ण-धनुष, मनोरम स्वर्ण-तुला, स्वर्ण-हल, स्वर्णके स्रुक्-स्रुवा आदि।

सब उपकरण—खिलौने कहने चाहिए, ऐसे बने थे कि उनकी चमक और आकृति समान रूपसे शिशुओंके नेत्र आकर्षित करे। सब अरुण मृदुल आस्तरणपर अर्धचन्द्राकार मण्डलमें सज्जित थीं। सब वस्तुएँ भूमिके स्तरसे किञ्चित् ऊँचाईपर थीं—इतनी ऊँचाईपर कि शिशु बैठ जाय तो सरलतासे उन्हें उठा सके।

अञ्जन रञ्जित लोचन, मुक्तामाल भूषित अलकें, गोरोचनके तिलक भालपर, सूक्ष्म स्वर्ण खचित झगुलियाँ, कटिमें रत्नकिङ्किणी, करोंमें पतले कङ्कण और चरणोंमें नूपुर। चारों कुमारोंको माताओंने जब रुचि परीक्षण मण्डपके द्वारपर बैठा दिया भूमिपर, वाद्य ध्वनि बन्द हो गयी। बन्द हो गया मन्त्रपाठ। महिलाओंका गायन एवं वन्दियोंका स्तवन स्वर भी शान्त हो गया। जैसे वायुके पद भी शिथिल हो गये। सबके प्राण मानो नेत्रोंमें आ बसे।

'मेरा लाल ! क्या लेगा इनमें से ?' महारानी कैकेयीने श्रीरामको प्रोत्साहित किया—'वत्स ! तुमको जो प्रिय लगे, ले आओ।'

श्रीरामने माताकी ओर देखा, पिताकी ओर देखा, महर्षिकी ओर देखा। वे ऐसे बैठे रहे, जैसे उन्हें कुछ नहीं लेना। उन्हें कुछ नहीं चाहिए। उन्होंने अपने अनुजोंकी ओर अपना नन्हा दक्षिण कर उठाया। वे संकेत करने लगे—'मेरे इन भाइयोंको जो लेना हो ले लें।'

'ये भी लेंगे !' माताने कहा—'तुम चलो तो ये भी तुम्हारे साथ जायँगे।'

माताएँ, पिता तथा कुलगुरु सभी प्रोत्साहित कर रहे थे। श्रीराम जब इस प्रोत्साहनसे नूपुर रुनझुन करते घुटनोंके बल आगे बढ़े, उनके तीनों अनुज उनके पीछे चल पड़े।

तनिक दूर—केवल दो पद जाकर श्रीरामने अलकों घिरा श्रीमुख घुमाया—माताओंको, पिताको देखा और अनुजोंको आगे जाकर कुछ लेनेके लिए हाथ हिला-हिलाकर संकेत करते बैठ गये दोनों चरणोंको आधे संकुचित करके। वे बैठे और उनके तीनों भाई भी उनको घेरकर बैठ गये।

माताओंने पुनः प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। श्रीराम कभी एक भाईके मुख या कन्धेपर कर रखते और कभी दूसरेके; किन्तु तीनों भाई तो उनके श्रीमुखको ही देखनेमें लगे हैं। इनमें कोई अग्रजका संकेत नहीं समझता कि उसे जाकर खिलौने लेने हैं। खिलौनोंकी ओर तो तीनोंने पीठ कर रखी है।

माताओंके प्रोत्साहन, दुलार भरे आग्रहसे श्रीराम फिर चले तब तीनों चल पड़े उनके पीछे। श्रीरामने जाकर एक हाथसे एक नन्हा धनुष उठाया और दूसरे हाथसे एक छोटी पुस्तक।

'वत्स रामभद्र श्रुति और शस्त्र दोनोंका पारङ्गत होगा।' महर्षिने महाराजसे कहा—'इक्ष्वाकु कुलके गौरवको प्रोज्ज्वल बनावेगा आपका कुमार।'

तीनों शिशुओंने अग्रजकी ओर देखा। श्रीराम जब धनुष और पुस्तक लेकर बैठ गये अर्धसंकुचित चरण, तब तीनोंने लगभग एक साथ ही एक-एक धनुष उठाये और आकर अग्रजके समीप बैठ गये।

'तीनों मेरे रामके अनुगामी रहेंगे।' माता कैकेयीने हर्ष विह्वल होकर कहा और अपना कण्ठाभरण उतारकर श्रीरामके ऊपर न्यौछावर करके सबसे समीप उपस्थित वन्दीकी ओर उछाल दिया।

'स्वाभाविक है कि रघुकुलके कुमारोंको तुला अथवा हलमें कोई आकर्षण नहीं, किन्तु—'महर्षि वशिष्ठने महाराजसे कहा—'राजन्! इन पदार्थोंमें सबसे अधिक आकर्षक छत्र है।'

अब सबका ध्यान गया कि छत्र सचमुच ही रत्नजाल मण्डित, नाना रत्नोंके कारण सबसे अधिक नेत्राकर्षक है और सबके मध्यमें ही सजा है। सभी शिशुओंने उसे देखा भी है। सबको आश्चर्य हुआ कि किसी शिशुने उसको उठाया नहीं।

'मैंने इस राजकुलके कुमारोंका यह संस्कार प्रारम्भसे कराया है।' महर्षि वशिष्ठने कहा—'इक्ष्वाकुसे आप तक इस अवसरपर सभी कुमार धनुषके साथ छत्र उठाते रहे हैं, किसीने कभी स्रुक्-स्रुवा अथवा तुलाकी ओर कर नहीं बढ़ाया, किन्तु वत्स रामभद्रने नवीन परम्परा प्रारम्भ कर दी।'

'नवीन परम्परा?' महाराज दशरथने महर्षिकी ओर देखा।

'श्रीरामके रहते उनके अनुज कुछ लेनेको उत्सुक नहीं, यह सबने देखा है। धनुष भी इन्होंने तब उठाया, जब अग्रजने प्रथम स्वीकार कर लिया।' महर्षिने समझाया—'किन्तु रामभद्र छत्रसे निरपेक्ष ही रहेंगे। छत्रको ही उनकी अपेक्षा होनी चाहिए।'

महाराज, महारानियाँ भाव विह्वल हो उठे। अब वाद्य गूँजने लगे। शङ्खध्वनि होने लगी। ब्राह्मणोंने सामगान प्रारम्भ किया और महाराज दान देनेमें लग गये।

माता चकित

महाराज दशरथका प्राङ्गण चारों राजकुमारोंकी क्रीड़ाके कारण अयोध्याके नर-नारियोंका आकर्षण केन्द्र बन गया था। सभी वर्णोंकी नारियाँ एक या दूसरे बहाने राजसदन आती ही रहती थीं और जो भी आ जाती थीं, नृप-अजिरकी शोभा उन्हें कहाँ हटने देती थी। कोई कुछ उपहार लिए दौड़ी आयी है—'यह शिशुओंको स्वस्थ, सबल बनावेगा।'

कोई समाचार ही देने आयी है—'मेरे गृहपतिने अमुक पुष्प या रत्न अमुक स्थानपर देखा है, महारानी स्वीकार करें तो उसे आज ही सेवामें वे उपस्थित करें।'

किसीको कोई सामान्य-सी वस्तु आवश्यक हो उठी है और अब राजसदनकी अपेक्षा सुगमतासे वह कहाँ उपलब्ध होगी कि अन्यत्र ढूँढ़ने जाया जाय।

'महारानीके चरणोंमें कुछ निवेदन करने चली थी।' अब बेचारीको यही स्मरण नहीं कि वह क्या कहने चली थी।

प्रजाके सामान्य वर्गके लोग ही नहीं, वृद्ध, विद्वान् विप्रगण, ऋषि-मुनि तक बार-बार आते हैं—'आज मेरा अमुक व्रत, जप, यज्ञ या अनुष्ठान पूर्ण हुआ।' अनुष्ठान, जप या तप पूरा हुआ तो उसकी सफलता महाराजके कुमारोंको आशीर्वाद देनेमें ही तो है।

विप्र-पत्नियोंके लिए राजसदन सदा ही उन्मुक्त है और कला-जीवियोंको तो कभी अवरुद्ध किया नहीं जा सकता। वे महाराजको, महारानियोंको, नन्हें राजकुमारों तकको अपनी कलाके सृजनसे प्रसन्न करने चाहे जब आ जाते हैं।

महारानियाँ, राजसदनकी सेविकाएँ भी विनम्र हैं। प्रत्येक आगतका सत्कार करना यहाँ सबको आता है। सबको पता है कि यह सबका आगमन शिशुओंके आकर्षणके कारण है। सब इन कुमारोंको देखने आते हैं।

दूसरोंकी बात क्यों की जाय, महाराजके मन्त्रीगण, पुरोहित, प्रजा-प्रतिनिधि भी तब अन्तःपुरमें आनेकी सूचना भेजते हैं, जब महाराज अपने कुमारोंके समीप होते हैं। महाराज भी तो इन दिनों राजसभामें बहुत थोड़े क्षणोंको जाते हैं। वे भी तो एक या दूसरे बहाने अन्तःपुरमें आते ही रहते हैं।

चारों राजकुमार प्रायः महारानी कैकेयीके प्रांगणमें ही खेलते रहते हैं। खेलते रहते हैं अयोध्याके शत-शत समवयस्क शिशु उनके साथ। महारानी कौसल्याको जप, नियम, व्रत, देवार्चनसे दिनमें कम ही अवकाश मिलता है। प्रारम्भसे ये तपस्विनी हैं। महारानी सुमित्राको राजसदनकी पूरी व्यवस्था सँभालनी है। महाराजसे लेकर सेवक-सेविकाओं तककी सुख-सुविधा, आवश्यकताका ध्यान रखना है। महारानी कैकेयीको राजकुमारोंसे अवकाश नहीं है। इन शिशुओंके प्रभात जागरणसे लेकर रात्रिमें शयन तक वे इनके साथ ही लगी रहती हैं। इनको देखते रहना और इन्हें सम्हालना इससे उन्हें आजकल अपने आहार, शृंगारका भी ध्यान नहीं रहता।

महाराज शिशुओंके कारण प्रायः दिनमें भी महारानी कैकेयीके ही सदनमें रहते हैं। रात्रिमें तो वे इस सदनमें रहते ही थे। महारानी कौसल्या तथा महारानी सुमित्रा बीच-बीचमें इस सदनमें आती रहती हैं। वैसे कोई नियम नहीं है कि कौनसे कुमार किस माताका स्तनपान करेंगे। जब दुग्धपानकी जिसकी इच्छा हो और जो भी माता अंकमें उठा ले—यह अवसर महारानी कैकेयीको अधिक सुलभ है, किन्तु दूसरी माताओंका वात्सल्य भी तो उमड़ता है और जब वह उज्ज्वल दूध बनकर स्रवित होने लगता है, उन्हें कैकेयीजीके सदन आनेको विवश होना पड़ता है।

चारों जब रात्रिमें सो जाते हैं, माताएँ उन्हें अपने सदन ले जाती हैं। अभी इतने नन्हे हैं कि रात्रिमें भी कई बार इन्हें दुग्धपान कराना पड़ता है। अकेली महारानी कैकेयी चारोंको सम्हाल भी तो नहीं सकतीं।

माता कौसल्याने सदाकी भाँति ब्राह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें ही उठकर नित्यकर्म पूरा किया। स्नान करके वे सदा स्वयं भगवान् नारायणके लिए नैवेद्य प्रस्तुत करती हैं। आराध्यकी सेवाके लिए दूसरेकी सहायता उन्हें

स्वीकार नहीं। केवल उपवनसे आये पुष्प ले लेती हैं, उनका भी माल्य-ग्रन्थन दूसरा कोई करे, यह स्वीकार नहीं करतीं।

प्रातःकृत्य करके उन्होंने नैवेद्य प्रस्तुत किया। उनके अङ्क-धन इसी समय जाग गये। माताने दूर्वादलाभिराम श्रीरामको अङ्कमें उठाया। उनकी घुँघराली अलकें सम्हालीं जो चन्द्रमुखपर घिर आयी थीं। उठते ही शिशुको क्षुधा लगती है। महारानीने स्तनाग्र दे दिया मुखमें। उनींदे शिशुने माताके अञ्चलमें मुख ढके कुछ क्षण दूध पिया और फिर दूध पीते-पीते ही सो गया।

महारानी कौसल्याको शीघ्रता है। श्रीराम जैसे ही पूरे जगेंगे, इन्हें महारानी कैकेयीके सदन ले जाना पड़ेगा। ये मचलने लगेंगे वहाँ पहुँचनेके लिए। अभी निद्रामें थे, अन्यथा लक्ष्मणको टटोलने, देखने लगते। महारानी सुमित्रा अपने कुमारोंको कैकेयीजीके सदन सबेरे पहुँचा आती हैं। चारोंका स्नान, शृंगार सब महारानी कैकेयी करती हैं। अभी शिशु सो रहा है, अतः आराध्यको नैवेद्य अर्पित करके नीराजन करनेका अवसर है।

महारानीको इस ब्राह्ममुहूर्तमें अपने नित्यकर्म तथा अर्चनके मध्यमें बार-बार शिशुको देख लेनेका अभ्यास है। सेविकाओंको बिना पुकारे न आराधना-गृहमें प्रवेशकी अनुमति है, न वहाँ, जहाँ वे आराध्यके लिए नैवेद्य प्रस्तुत करती हैं। इन कक्षोंके मार्जन तककी सेवा भी वे स्वयं सम्पन्न करती हैं।

शयन कक्षमें सावधान सेविकाएँ हैं और उनका ममत्व शिशुसे कम नहीं है, किन्तु महारानीका वात्सल्य नहीं मानता। वे कुछ क्षणोंके पश्चात् शिशुको देखने स्वयं दौड़ आती हैं। दूध पीते-पीते श्रीराम सो गये। महारानीने उनको धीरेसे दुग्धफेन, कोमल-धवल शय्यापर सुलाया। हाथसे तनिक थपकाया और झीने पीत पटसे कण्ठ तक आच्छादित किया। सेविकाओंको नेत्रके संकेतसे ही समझाया—शिशुके जगनेके चिह्न हों तो उनको अविलम्ब सूचित किया जाय। वे आराध्यको नैवेद्य अर्पित करने जा रही हैं।

नैवेद्य जहाँ बनाया जाता है—मणि प्रदीपोंसे आलोकित, परमपावन स्वच्छ, समुज्ज्वल कक्ष। उसके द्वारपर पहुँचकर महारानी चकित थकित रह गयीं। यहाँ वे क्या देखती हैं? अभी तो वे अपने रामको शयन करा आयी हैं और यहाँ वे रत्नपीठपर विराजमान हैं?

महारानीने आराध्यके लिए नैवेद्य बना लिया था। स्वर्ण-थालमें रत्नोज्ज्वल कटोरियाँ सजा दी थीं। आराध्य तक यह पात्र ले जानेसे पूर्व शिशुको देखने शयन-कक्षमें गयी थीं और उसे दुग्धपान कराके, शयन कराके लौटी थीं। 'इतने क्षणमें कौन रामको यहाँ ले आयी ? इतनी धृष्ट तो कोई सेविका नहीं है ? कोई आयी तो कब आयी ? किधरसे आयी ? शिशुको कब उठानेका अवकाश मिला उसे ?'

महारानी कुछ समझ नहीं पाती हैं। उनका यह नन्हा स्तनन्धय अभी स्वयं पालनेसे उतर नहीं पाता तो शय्यासे कैसे उतरेगा ? लेकिन यहाँ तो वह सामने विराजमान है। रत्नपीठपर थालको सम्मुख लिये बैठा है। वही इन्दीवर सुन्दर सुकुमार अङ्ग, वही कटिमें किङ्किणी, चरणोंमें नूपुर, करोंमें कङ्कण तथा अङ्गद, कण्ठमें मुक्तामाल, बिखरी अलकें। द्वारकी ओर पीठ किये, अर्ध कुञ्चित पाद द्वय, वाम कर पीठपर टेके, दक्षिण करसे तनिक-तनिक नैवेद्य उठाकर मुखमें डाल रहा है।

महारानी बिना शब्द किये शयनकक्षमें लौटीं। वे सम्भवतः सेविकाओंसे पूछना चाहती थीं कि रामको यहाँ किसने पहुँचाया, किन्तु शयनकक्षके द्वारपर वे फिर ठिठककर खड़ी हो गयीं। उनके राम तो सामने शयन कर रहे हैं ! वह झीने पीतपटसे झाँकती अङ्गश्री, वे मुखपर बिखरी अलकें, वह भाल तथा कपोलोंपर फैला कज्जल, वे निद्रित लोचन। श्वास-प्रश्वासके कारण हिलता उदर और उससे हिलता पीतपट !

महारानी बिना एक शब्द बोले फिर लौटीं नैवेद्य जहाँ था उस कक्ष-की ओर। वहाँ भी द्वारसे वही दृश्य ! महारानी अब कैसे क्या समझें ? भरतके इतने प्रातः यहाँ आनेका प्रश्न ही नहीं और भरत-रामको महारानी ही नहीं पहिचानेंगी ? भरतने रामकी उपस्थितिमें कभी पहिले कुछ मुखमें भी लिया है ?

'यह क्या है ? यह मेरा कैसा मतिभ्रम है ? मुझे क्या हो गया चलते-फिरते स्वप्न-दर्शनके रोगसे ग्रस्त हूँ ?' महारानीके मुखसे सम्भवत अनजानमें ही निकल गया—'वत्स ! लाल ! राम !'

शिशुको आहट लगी होगी। अपना नन्हा सिर घुमाया उस ओर। भालपर फैला कज्जल-विन्दु, कपोलोंपर फैला नेत्रका अञ्जन, बिखरे

अलकें, किन्तु महारानीको यह शोभा देखनेका समय नहीं मिला। माताको देखकर राम हँस पड़े। खिल गया वह कमल मुख। दक्षिण कर जननीकी ओर उठा। वे सम्भवत: संकेत कर रहे थे—'इतने श्रमसे तुमने यह नैवेद्य बनाया है। बड़ा सुस्वादु है यह।'

महारानी द्वारके भीतर अपने शिशुके समीप आ गयी थीं। वे अब सम्भवत: शिशुको अङ्कमें उठाकर शयनकक्षमें जाना चाहती थीं, यह देखने कि शैय्यापर उन्हें दूसरा शिशु मिलता है या नहीं, किन्तु श्रीराम हँसे और महारानीके पद स्तम्भित हो गये। उनके नेत्र बालकके नन्हे खुले मुखको देखकर खुले ही रह गये।

श्रीरामके उस नन्हे खुले मुखमें अनन्त-अनन्त सूर्य, चन्द्र, तारक, पृथ्वी, सागर, पर्वत, देवता, दैत्य, नाग, किन्नर—अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड दीख गया उस आधे पलमें। ससागरा पृथ्वी, सरिताएँ, पर्वत और उसमें यह अयोध्यापुरी, अयोध्याका राजसदन—माताने तो वहाँ नन्हे श्रीरामको नैवेद्य थालके समीप देखा और अपनेको भी देखा।

अनन्त विराट्—ब्रह्मा, रुद्र, देवगण, ऋषि और समस्त स्थूल, सूक्ष्म जगत्। माता यह देखकर स्वेदसे लथपथ हो गयीं। उनका शरीर कम्पित होने लगा। उन्हें पता ही नहीं लगा कि वे कब वहीं भूमिपर बैठ गयीं। अपने करोंसे विशाल लोचन उन्होंने बन्द कर लिये!

अनादि अनन्त चिन्मय ज्योति। अवाङ्मनस गोचर सच्चिदानन्द। कोई दूसरी सत्ता नहीं—एक अखण्ड परिपूर्ण अद्वय चिद्घन। अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके रोमकूपोंमें परमाणुके समान घूम रहे हैं वे विराट्। उन विराट्का भी मानो हृदय हो—ज्योतिर्मय हृदय—दिव्य अयोध्यापुरी—शाश्वत साकेत और उसमें कल्पवृक्षके नीचे रत्नपीठपर नील सुन्दर श्रीराम—शिशु श्रीराम।

महारानीको अपनी—शरीर, मन, प्राणकी कोई सुधि नहीं। उनके अधरोंसे परावाणीके स्तवन स्वर भी निकल रहे हैं, यह भी उन्हें पता नहीं। वे बैठ गयी हैं नेत्र बन्द किये और उनके दिव्य नेत्र जो देखते-अनुभव करते हैं—वह वाणीमें आ नहीं सकता।

श्रीराम फिर हँसे और माता सावधान हो गयीं। उन्होंने नेत्रोंसे हाथ हटाया और स्वयं हँसीं—उज्ज्वल, मधुरतम हास्य—'मैं आज इतनी उनींदी हो गयी कि यहाँ बैठे-बैठे सोने लगी—स्वप्न देखने लगी।'

महारानीको अभी आराध्यका अर्चन करना है। इन्हें त्वरा है। इनके श्रीराम जागेंगे तो तत्काल उन्हें महारानी कैकेयीके सदन ले जाना होगा। कोई चमत्कार, कोई विभूति इस समय इन्हें विलम्बित करनेका साहस नहीं कर सकती।

सहज स्वभाव

श्रीरामका शैशवसे सहज स्वभाव है कि इन्हें लक्ष्मणके बिना रात्रिमें भी निद्रा नहीं आती। लक्ष्मणको भी कुछ क्षण रामके बिना रखा नहीं जा सकता। महारानी सुमित्राको अपने शिशुओंके लालन-पालनसे बहुत शीघ्र अवकाश प्राप्त हो गया। उन्होंने षष्ठी-पूजनके दिन ही अनुभव कर लिया कि उनके दोनों स्वर्ण-गौर शिशु अपने अग्रजोंसे पृथक् होते ही रुदन करने लगते हैं।

'जीजी ! यह आपके अङ्कके बिना न सोता है, न स्तन-पान करता है।' उसी रात्रिके प्रारम्भमें लक्ष्मणको महारानी कौसल्याके समीप लाकर अङ्कमे दिया उन्होंने—'अब आपके अङ्कमें आते ही चुप हो गया। यहाँ अब मैं इसे दूध भी पिला सकती हूँ। अतः आप ही इसे भी सँभालो।'

'मेरी समझमें ही नहीं आ रहा था कि राम क्यों रुदन कर रहा है ?' महारानी कौसल्याने कहा—'इसके नेत्रोंमें अश्रु मुझसे देखे नहीं जाते और यह किसी प्रकार चुप नहीं हो रहा था। अब छोटे भाईको देखते ही कैसा प्रसन्न हो गया है।'

श्रीराम छोटे भाईको देखकर किलकने लगे थे और लक्ष्मण भी अग्रज को देखकर हाथ उठाकर कुछ संकेत कर रहे थे। जैसे दोनों परस्पर पूछते हों—'इतनी देर तुम कहाँ थे ?'

'लेकिन तुम्हारा यह शत्रुघ्न तो रामके समीप आकर हाथ हिलाना भी भूल जाता है।' महारानी कौसल्याने कहा—'यह यहाँ दूध पीना भी भूला रहता है। रुदन नहीं करेगा, किन्तु भूखा कैसे रखा जा सकता है इसे ?'

'यह अपने दूसरे अग्रजकी प्रतीक्षामें होगा।' महारानी सुमित्रा हँसी—'जीजी ! आप दोनोंने अपने-अपने पायसका भाग दिया था मुझे। अब ये दोनों आप दोनोंके हैं। इनको आप दोनों सम्हाल लो और मुझे अपनी सेवा करने दो।'

शत्रुघ्नको भरतके समीप नहीं ले जाना पड़ा, क्योंकि कैकेयीजी ही भरतको लेकर आ गयीं—'जीजी ! अपने लाडिलेको लो। रामके बिना मेरा चित्त स्वस्थ नहीं रह पाता।'

'राम रुदन करता रहता है अपनी छोटी अम्बा और लक्ष्मणके बिना।' कौसल्याजीने कहा—'अतः तुम दोनोंको ले जाओ। मेरा भरत साधु है। यह रुदन करना जानता ही नहीं। शत्रुघ्नको भी केवल इसका सामीप्य चाहिए।'

जब तक शिशु घुटनोंके सहारे सरकने नहीं लगे, तब तक महारानी कौसल्याके अङ्कमें रात्रिको भरत, शत्रुघ्न और कैकेयीजीके समीप श्रीराम, लक्ष्मण प्रायः रहते थे। महारानी सुमित्राके लिए अपना ही सदन था दोनोंका सदन। वे अपने सदनमें पहिले भी केवल रात्रिमें मिलती थीं और अब तो रात्रि भी वे कभी कैकेयीजीके सदनमें और कभी कौसल्याजीके यहाँ व्यतीत कर देती हैं।

शिशु जैसे ही घुटनों सरकने लगे, परस्पर साथ ही रहना प्रिय था इन्हें। प्रातः उठते ही इनको—श्रीरामको विशेषतः भाइयोंसे मिलनेकी उतावली पड़ती। महारानी कैकेयीके अङ्कमे फिसले पड़ते और भूमिपर उतारते ही द्वारकी ओर सरकने लगते लक्ष्मणके साथ। अभी देहली पार नहीं हो पाते; किन्तु जाकर दोनों देहलीपर ही रुकेंगे और बार-बार नन्हें सिर घुमाकर अम्बाकी ओर देखेंगे।

'कोई जाकर जीजीसे कहो कि उनके लाल अपने अनुजोंसे मिलनेको आतुर हैं।' महारानी कैकेयी हँसकर सेविकाको भेजतीं।

शिशुओंके लिए भूमि और शैय्या समान होती है। दिनमें या रात्रिमें भी जब निद्रा आ जाय, जहाँ आ जाय, शिशु वहीं सो जायगा, किन्तु महाराज दशरथके कुमारोंमें लक्ष्मणको ऐसे सोते कभी किसीने नहीं पाया। श्रीराम सो जायँ, तब लक्ष्मण शय्यापर उनके समीप सो रहेंगे, किन्तु श्रीराम भूमिपर सो जायँ तो लक्ष्मण उनके समीप चुपचाप बैठे रहेंगे। राम तो कहीं सो जाते हैं, केवल लक्ष्मणको समीप होना चाहिए। लक्ष्मण समीप न हों तो रामको निद्रा आती ही नहीं है।

भरत-शत्रुघ्नकी जोड़ी एक जैसी है। राम सो जायँ तो दोनों उनके चरणोंके समीप बैठेंगे या वहीं सो जायँगे। शैशवमें भी कभी इन शिशुओंने अग्रजसे आगे सरकने अथवा उनके सिरके समीप सोनेका प्रयत्न नहीं किया।

चारों शिशु दिनमें साथ ही रहते हैं। कभी महारानी कौसल्या अपने सदनमें चारोंको उठा ले जाती हैं, किन्तु अधिक इनकी क्रीड़ा महारानी कैकेयीके ही अजिरमें चलती है। महारानी कौसल्याको प्रातः देर तक पूजन, जप, हवनादिसे अवकाश नहीं मिलता। ऋषियोंका, ब्राह्मणोंका सत्कार भी वही करती हैं। अतः मध्याह्नके पश्चात् ही शिशुओंकी ओर ध्यान दे पाती हैं। वे चारोंको ले भी जाती हैं तो महारानी कैकेयी लगभग साथ उनके सदन पहुँचती हैं। उन्हें शिशुओंसे पृथक् कुछ क्षण भी भारी लगते हैं।

कभी-कभी ही हो पाता है कि सायङ्काल श्रीराम-लक्ष्मण महारानी कौसल्याके सदनमें हों और वहीं सो जायँ। केवल जन्म नक्षत्रादि विशेष अवसरोंपर शिशुओंको उनकी अपनी जननी रात्रिमें अपने समीप रखना चाहती हैं, परन्तु लक्ष्मणके बिना रामको जब निद्रा ही नहीं आती तो सुमित्राजीके समीप सन्देश भेजना पड़ता है। यह भी कभी कदाचित् होता है, क्योंकि लक्ष्मण तो श्रीरामसे पृथक होते ही नींदसे भी जाग पड़ते हैं और रुदन करने लगते हैं।

चारों शिशु आहार एवं क्रीड़ाके विषयमें एक जैसे हैं—संसारके दूसरे सब शिशुओंसे विलक्षण। यह विलक्षणता तो अयोध्यामें ही उतर आयी है,

सभी घरोंके शिशुओंमें। वह यह कि कोई भी न मधुर पदार्थ अकेले मुखमें डालना चाहता, न कोई उत्तम खिलौना अपने समीप रखना चाहता। जैसे इन बालकोंने प्रथम श्वासके साथ स्वतः समझ लिया कि सब उत्तम पदार्थ श्रीरामके योग्य हैं और स्वयं ये रामके प्रसादके अधिकारी हैं।

श्रीरामको कोई मधुर पदार्थ जननी मुखमें देना चाहें तो वे महारानी कौसल्या हों या कैकेयी अथवा और कोई, राम अम्बाका कर पकड़ेंगे और सिर हिलावेंगे। इधर-उधर देखेंगे। लक्ष्मणको पहिले दिये बिना न मधुर ग्रास मुखमें लेंगे, न कोई खिलौना लेंगे। अवश्य ही लक्ष्मण समीप हों तो उनकी ओर देखेंगे, फिर उन्हें खिलाना चाहेंगे।

श्रीराम अपने समीपके सब बालकोंको खिलाना चाहेंगे। दूसरे बालक कुछ मधुर खाने लगें तो राम ताली बजाकर, सिर हिलाकर प्रसन्न होंगे। इन्हें जैसे स्वयंके लिए कुछ नहीं चाहिए। दूसरे बालक भी ऐसे हैं कि जो भी वस्तु उन्हें रुचे, सब रामको दे देना चाहते हैं।

महारानी कैकेयीका सदन प्रातःसे ही शिशुओंसे भर जाता है। कोई अङ्कमें शिशुको उठाये आ जायगी—'इसके पिता यह खिलौना कहींसे ले आये। अब यह बैठने ही नहीं देता। रो रहा है कबसे। अपने महाराज कुमारको यह उपहार दिये बिना नहीं मानेगा, जानती हूँ, इससे गृह-कार्य छोड़कर ले आयी इसे।'

'भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी ऐसे हो हैं।' महारानी कैकेयी हँसती हैं—'इन तीनोंको भी जो प्रिय लगे, वह ये रामके सम्मुख ला धरेंगे। इन शिशुओंका सहज सम्राट् है मेरा राम, और इसमें सम्राट्का उचित गौरव है। इसके सामने जो वस्तु धरो, किसीको भी दे देगा।'

'अयोध्यामें शिशुओंको देना ही आता है।' महर्षि वशिष्ठकी पत्नीने नहीं कहा, सभी कहती हैं—'ये सब कुछ लेते भी हैं तो परस्पर ही लेते हैं और वह भी ऐसे, जैसे लेकर अनुग्रह कर रहे हों।'

श्रीरामके करोंका उपहार सब प्रसन्न होकर लेते हैं, किन्तु देखते हैं श्रीरामकी ओर कि प्राप्त पदार्थका उपयोग कैसे करें? अयोध्यामें शिशुओंको हाथमें आये पदार्थको मुखमें डालना नहीं आता। राजकुमारोंको ही नहीं,

दूसरे शिशुओंको भी बार-बार कहना पड़ता है—'मुख खोल ! खा लाल !! यह भोजन करनेकी वस्तु है। इसे मुखमें डाल !'

श्रीरामने घुटनों सरकना सीखा और बड़ोंका चरण-स्पर्श सीख लिया। महारानी कैकेयी कहती हैं—'मेरा राम उठते ही मेरे पैरोंकी ओर खिसकने लगता है। वह जाकर पैरोंपर अपना अलक भरा नन्हा सिर रख कर प्रणाम कर रहा है, यह समझनेमें मुझे कई दिन लगे।'

'राम प्रणाम कर रहा है !' दूसरी वृद्धाओं, विप्र पत्नियोंको, ब्राह्मणोंको तो महारानी ही प्रारम्भमें बतलाती थीं, अन्यथा नन्हा शिशु सरकते आकर करोंसे चरण स्पर्श करे, वहाँ मस्तक रख दे, इसपर ध्यान कैसे जा सकता है ?

'इसे पहिले पाद-स्पर्श कर लेने दें !' समीप आये श्रीरामको आगत महिलाएँ अथवा विप्र अङ्कमें उठा लेते हैं तो राम सिर हिला-हिलाकर नीचे सरकते हैं, गोदसे उतर जाना चाहते हैं। महारानीको उनका तात्पर्य समझाना पड़ता है आगतको—'चरण-वन्दन किये बिना यह मानेगा नहीं।'

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न—अयोध्याके सभी शिशु तो जन्मसे रामके अनुयायी हैं। राम प्रणाम करते हैं तो सब करेंगे और राम तो सेवकोंको, सेविकाओं तकको प्रणाम कर लेते हैं। जो कोई भी सामने आ जाय, राम पहिले सरकते हैं उसकी ओर पाद-स्पर्श करने।

इन शिशुओंके लिए कोई अपरिचित नहीं है। किसीको देखकर ये हिचकते नहीं। किसीके अङ्कमें जानेमें इनमें से किसीको सङ्कोच नहीं होता। भय नामक वस्तु तो रघुवंशके बालकके रक्तमें ही नहीं हुआ करती।

पूजनके लिए कपिला गौ बछड़ेके साथ राजसदनमें नित्य लायी जाती है। महाराज एवं महारानियाँ प्रतिदिन प्रातः गो पूजन करते हैं। श्रीराम अपने भाइयोंके साथ गौको देखते ही उसकी ओर सरक चलते हैं। सरक चलते हैं उस समय जो भी शिशु वहाँ हों। श्रीराम जाकर गायके पिछले दाहिने चरणपर सिर रखेंगे। शिशुओंमें जिसे जो चरण मिल जाय उसपर। महारानीको सेविकाओंको सावधान रहना पड़ता है। शिशुओंको प्रणामसे रोका नहीं जा सकता और गायके हिलनेसे इन्हें आघात भी नहीं लगना

चाहिए। बछड़ेको तो कोई सेविका पकड़े रहती है कि वह चपल शिशुओंको प्रणाम करते समय कूदे नहीं या चाटने न लगे।

राजकुमारोंमें यह परस्पर वितरण, निस्पृहता और बड़ोंको, पूज्योंको प्रणति सहज स्वभाव है। यह इन्हें सिखलाना नहीं पड़ा। कभी शिशुओंको परस्पर झगड़ते नहीं पाया गया। इनमें से कोई फिसल गया या सरकते थककर लेटं गया तो दूसरे सब उसके समीप आ बैठेंगे, जैसे उसको उठाने, उसकी सहायता करने आ गये हों।

अद्भुत ज्योतिषी

अयोध्या आकर्षण केन्द्र बन गयी है उन सब सुरोंकी, सुरेश्वरोंकी, महर्षिगणोंकी, तपस्वियोंकी, सत्पुरुषों और विद्वानोंकी जो ध्यान, योग, तप, स्वाध्यायके साधनोंसे सर्वव्यापक, अन्तर्यामी आनन्दघनसे एकत्व प्राप्त कर चुके हैं अथवा प्राप्त करनेको समुत्सुक हैं। जन्म-जन्मकी साधनासे अन्तः-करणके निर्मल, सुस्थिर, अनावरित दर्पणमें जिसका क्षणार्धके लिए कभी कदाचित् आभासमात्र प्राप्त होता है, वही सच्चिदानन्द घनीभूत साकार विग्रह जब नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हो सकता हो, कोई इस परम सौभाग्यका त्याग कैसे करेगा ?

सम्पूर्ण साधन-मार्गोंके परमाचार्य, निखिल विद्याओंके प्रथमोपदेष्टा, योगियोंके परमगुरु भगवान् शशाङ्कशेखरके लिए अयोध्या दूर नहीं थी। वे श्रीरघुनाथजीके अवतरणसे पूर्व भी पधार चुके थे श्रीअवधमें और जन्म-महोत्सवके द्रष्टाओंमें तो वे सुरोंके अग्रणी ही थे, किन्तु जब काकभुशुण्डि

कैलास पहुँचे और उन्होंने कहा—'अयोध्या जानेसे पूर्व आपके श्रीचरणोंके दर्शन करने आ गया' तब भगवान् भूतनाथ भी उठ खड़े हुए।

'भुशुण्डि ! धन्य हो तुम। परात्पर प्रभु मर्यादापुरुषोत्तम बनकर किसी त्रेतान्तमें धरापर पधारें अथवा लीलापुरुषोत्तम होकर किसी द्वापरान्तमें, तुम्हें उनकी बाल-क्रीड़ाके दर्शनका सुयोग सदा प्राप्त है।' धूर्जटिने कटिमें व्याघ्र-चर्म लपेटा और महावृषभको केवल थपथपा दिया—'तुम उनकी शैशव, पौगण्ड लीलाके अबाध दर्शनके अधिकारी हो। मुझे तो उनके शिशु-विग्रहका क्षणिक स्पर्श ही मिलना है।'

'मैं इसी लोभसे श्रीचरणोंकी शरण आया।' भुशुण्डिने कहा—'एक कौएको उनके चरण-स्पर्शका सौभाग्य तो मिलनेसे रहा, किन्तु आशुतोषका अनुग्रह अनधिकारी कभी देखता नहीं और औढरदानी अनुकूल हों तो असम्भव सृष्टिमें शब्द ही नहीं है।'

'दैवज्ञ बनकर ही चक्रवर्ती सम्राट्के शिशुका स्पर्श सरल सुलभ हो सकता है।' महेश्वरने कहा—'एक शिष्य भी आवश्यक ही है अच्छे दैवज्ञके साथ। तुम तो मेरे सहायक ही बनोगे।'

भगवती शैलाधिराज नन्दिनीसे पूछने-कहनेकी समस्या नहीं थी। वे श्रीरघुनाथके आविर्भावसे कुछ पूर्वसे ही सिन्धुजा एवं देवी सरस्वतीके साथ अयोध्याके राजसदनमें महारानियोंकी सहेलियाँ बनकर निवास करने लगी थीं। गणोंको तथा महावृषभको भी महादेवने कैलासपर ही छोड़ दिया।

उसी दिन अयोध्यामें एक अद्भुत दैवज्ञका दर्शन हुआ लोगोंको। कर्पूर गौर प्रलम्ब शरीर, धूसर विशाल जटाओंका मुकुट, भस्म-त्रिपुण्ड तथा कण्ठमें लपेटकर बाँधे गये कृष्ण मृगचर्मने शीशकी चन्द्रलेखाको, तृतीय नेत्रको और कण्ठकी नीलिमाको भले छिपा लिया हो, किन्तु रुद्राक्षकी मालाओंसे शोभित भुजदण्ड, कङ्कण स्थान, जटाएँ और करके चन्द्रोज्ज्वल त्रिशूलको देखकर अयोध्याके नागरिकोंने साक्षात् शिव समझकर ही प्रणिपात किया।

कर्पूर-गौर, किञ्चित् वृद्ध प्रतीत होती काया, तेजोमूर्ति तापसके पीछे एक अत्यन्त कृष्णवर्ण, किन्तु अत्यन्त भव्य बालक शिष्य विनम्रतापूर्वक चलता आया। बालक ही तो था, अतः वह तो इधर-उधर चपल दृष्टिसे देखेगा ही। उसकी चपलताने नागरिकोंको साहस दिया। अन्यथा जो

तेजोमूर्ति योगीश्वर दीख रहे थे, उनसे कुछ पूछने-बोलनेका साहस ही कर पाना कठिन था। सब जानते हैं कि अयोध्यामें अद्भुत तेजस्वी योगीन्द्र आते हैं तो सीधे चक्रवर्ती महाराजके समीप जाते हैं।

'दैवज्ञ चक्र चूड़ामणि परमाचार्य शङ्कर।' शिष्य बालकसे नागरिकोंने धीरेसे पूछा तो इसने अपने गुरुदेवका परिचय दिया—'आपके नगरकी यह पावन सरिता सरयू जहाँसे प्रकट होती है, वहाँ आश्रम है और त्रिकालमें त्रिभुवनमें ऐसा कुछ नहीं जो अज्ञात हो, किन्तु केवल शिशुओंके कर-प्रेक्षणमें ही अभिरुचि है।'

'श्रीचरण मेरे गृहको पवित्र करनेकी कृपा करते!' एक वृद्ध ब्राह्मणने ही पहिले प्रार्थना की—'इस ब्राह्मणके उटजमें भी एक आपका अनुग्रहाकांक्षी शिशु ब्राह्मणीकी गोदमें है।'

'तुम राजकुमारोंके पूजनीय बनोगे!' वे दैवज्ञ भी विचित्र थे। प्रार्थना करनेपर भवनमें चले जाते थे, किन्तु अर्घ्य, पाद्य, पूजन कुछ स्वीकार नहीं करते थे। उनके बालक शिष्यने भी कहीं कोई सेवा स्वीकार नहीं की। शिशुको अङ्कमें लेनेसे पूर्व कक्षमें लटकता मृग-शृङ्ग बजाते थे। शिशुको अङ्कमें लेकर उसके कर, चरण देखते थे और जैसे शिशुके अतिरिक्त दूसरोंसे बोलते ही न हों, इस प्रकार शिशुसे ही बातें करके उसका भविष्य बतलाते थे।

'जहाँ आचार्य-चरणका आश्रम है, ऐसे चमकते पाषाणोंकी पर्वत श्रेणियाँ हैं वहाँ।' रत्नोंकी भेंट अस्वीकार करते हुए शिष्य कह देता था—'हम इन पत्थरोंका क्या करेंगे? परिग्रहका हमने त्याग कर दिया है। मध्याह्न सन्ध्याके पश्चात् जहाँ रहेंगे, मेरे इन सर्वज्ञ आचार्यके अनुग्रहसे फलाहार अलभ्य कभी नहीं हुआ।'

अयोध्यामें शीघ्र इन महाज्योतिषीकी चर्चा फैल गयी। लोगोंने कुछ कालमें ही अपने अनुभव दूसरोंको सुनाने प्रारम्भ किये—'शिशुको मैंने विप्र-पत्नीके अङ्कमें दे दिया था, किन्तु उन वृद्ध त्रिकालज्ञने गोदमें लेते ही कहा—'तुम तो राजकुमारके सखा, सैनिक बनोगे।'

'वे वैश्य एवं दासी-पुत्रको अङ्कमें लेते ही पहिचान लेते हैं। एकने कहा—'मेरे भागिनेयका शिशु अङ्कमें दिया गया तो कहने लगे—'तुम खिन्न

मत होना। अयोध्याके नहीं हुए तो क्या हुआ? राजकुमार तुम्हारा सत्कार करेंगे। तुमको उनका सामीप्य प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं होगी।'

चर्चा नगरमें फैली और राजसदनके सेवकोंमें पहुँची, तो सेविकाओं तक भी पहुँचनी ही थी। एक सेविका महारानी कैकेयीके सदनमें दौड़ती पहुँची। तीनों महारानियाँ एकत्र वहीं मिल सकती थीं। उसने तीनोंके ही चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

'तू कुछ कहनेको आयी है?' महारानी कैकेयीने ही पूछा—'बहुत शीघ्रतामें भागी-भागी आयी है, क्या कहना है तुझे?'

'महारानीजी! नगरमें एक त्रिकालज्ञ दैवज्ञ पधारे हैं।' दासीने बतलाया—'वृद्ध हैं और उनके साथ एक बालक शिष्य है। इतने तेजस्वी योगिराज तो मैंने सुरोंमें भी नहीं देखे। सब कहते हैं कि शिशुको अङ्कमें लेते ही उसका सम्पूर्ण भविष्य बतला देते हैं।'

'तेरा भविष्य बतलाया उन्होंने?' महारानीने सस्मित पूछा।

'मेरा भविष्य तो मैं ही जानती हूँ। मेरा भविष्य तो महारानीके श्रीचरणोंमें सुरक्षित है।' उसने महारानी कौसल्याके चरणोंमें मस्तक रखा। हाथ जोड़कर ही फिर बोली—'किन्तु वे तो शिशुओंके अतिरिक्त किसीका न हाथ देखते, न किसीसे बोलते। अभी प्रातः नगरमें आये हैं और अब तक किसीके यहाँ उन्होंने आतिथ्यका एक फल तक स्वीकार नहीं किया।'

'तू उन्हें शीघ्र ले आ।' महारानी कौसल्याने कहा—'वे यहाँ राजकुमारोंका हाथ भी देख लेंगे। मध्याह्न होनेको आया, अयोध्यामें पधारे किसी अतिथिको उपोषित तो नहीं रहना चाहिए। वे विप्र हैं, पूज्य हैं। उनका सत्कार राजसदनका कर्तव्य है।'

'जीजी! तुम्हारा ही निर्णय उचित है।' महारानी कैकेयीने कहा—'मैं कहने जा रही थी कि महाराजको सन्देश देना चाहिए, किन्तु इसमें विलम्ब होता। आगत वृद्ध-ब्राह्मण हैं तो उनका पूजन हमें करना चाहिए। राजकुमारोंका भविष्य जाननेकी उत्कण्ठा भी मुझे बहुत है। कुलगुरुसे पूछते सङ्कोच होता है और पूछनेपर वे जो गूढ़ निरूपण करने लगते हैं…।'

राजसदनकी सेविकाने प्रार्थना की तो वे आगत दैवज्ञ प्रतीक्षा ही कर रहे थे। सेविकाकी प्रार्थना उपस्थित नागरिकोंका अनुरोध बन गया। सबके प्राण बसते थे अपने राजकुमारोंमें। वे योगीन्द्र सशिष्य राजसदन पधारे। पहुँचते ही उनके शृङ्गनादने राजभवनको गुञ्जित किया।

महारानियोंने प्रणाम किया तो गुरु-शिष्य दोनोंने प्रणाम कर लिया। योगीन्द्रने आसन स्वीकार करते ही स्वयं दोनों हाथ बढ़ाकर नील-नीरदकांत बड़े कुमारको अङ्कमें लिया और उनके पादतल करमें लेकर देखने लगे। देर तक देखते रहे चरणतल—अरुण कोमल पादपल्लव करोंमें लिये, पुलकित तन, साश्रुनयन जैसे वे स्वयंको ही भूल गये।

'त्रिभुवन इनके स्मरणसे पवित्र होगा अम्ब!' यहाँ योगीन्द्रने अपना नियम भङ्ग करके शिशुके स्थानपर बड़ी महारानीसे कहा—'इनके तेज, प्रतापके सम्मुख इस कुलके आदि पुरुष ये आदित्य भी म्लान प्रतीत होने लगेंगे। अत्यन्त दीर्घायु होंगे कुमार—कालातीत!'

बहुत विलम्ब तक देखते बोलते गये और तब शिशुको अपने शिष्यके अङ्कमें देकर दूसरे इन्दीवर सुन्दर शिशुको गोदमें लिया उन्होंने—'भरत! भक्तिको भी भरण प्राप्त होगा तुमसे। रामके हृदयवासी! तुम्हारी महिमाका वर्णन किसीकी वाणी कर नहीं सकती।'

योगीन्द्रने पुनः शिशुओंसे ही बोलना प्रारम्भ कर दिया था। वे सर्वज्ञ शिशुओंको नाम लेकर पुकारते हैं यह कुछ अद्भुत् नहीं था। उन्होंने गौर कुमारको गोदमें लिया—'लक्ष्मण! सहस्र शीर्षा पुरुष कहकर श्रुति जिसका स्तवन करती है, उससे सदा अभिन्न! तुम्हारा वर्णन तुम्हारे अग्रजसे पृथक कहाँ है?'

ये दैवज्ञ जब एक शिशुको अपने शिष्यको देना चाहते थे, तब शिष्य अपनी गोदका बालक किसी महारानीको दे देता था। छोटे कुमारको अंकमें लेकर तो वे तनिक हँसे—'अयोध्याके महासेनापतिको मूक कर्मयोगी ही होना चाहिए।'

अपनी जटाएँ फिरायीं उन्होंने चारों कुमारोंपर। चारोंके श्रीअङ्ग अपनी झोलीकी उज्ज्वल विभूतिसे अलंकृत किये। महारानियाँ अत्यन्त आनन्दित हो रही थीं। ऐसे दिव्य तेजस्वीका आशीर्वाद प्राप्त हो रहा था उनके कुमारोंको।

'गृहस्थ हूँ। शङ्कर नाम है। आपके नगरकी पवित्र सलिला सरयूके उद्गमपर आश्रम है।' पूछनेपर वही संक्षिप्त परिचय—'हिमालयका सम्पूर्ण क्षेत्र आपके महाराजके पुण्य शासनमें रत्नोंसे परिपूर्ण है और मैं परिग्रहके प्रपञ्चमें कभी नहीं पड़ा।'

उन योगीन्द्रने कोई भेंट स्वीकार नहीं की। उनका यही अनुग्रह कि शिष्यके साथ उन्होंने राजसदनमें फलाहार ग्रहण कर लिया। जैसे वे परमोज्ज्वल, वैसे ही शिष्य कज्जल कृष्ण, किन्तु वह चपल बालक महारानियोंको बहुत प्यारा लगा। उसने तो पुनः शिशुओंको अङ्कमें लिया। जब वह स्वयं अपने गुरुदेवकी गम्भीरतासे शिशुओंके पादतल देखने लगा, महारानियोंके अधरोंपर स्मित आ गया।

गुरु-शिष्य दोनोंमें किसीने शीघ्रता नहीं की। वे तब राजसदन आये जब महाराज भोजन करके सभामें जा चुके थे। महारानियाँ और सेविकाएँ भी भोजन कर चुकी थीं। दोनों चतुर्थ प्रहरके अन्तमें सायं-सन्ध्याके समय विदा हुए। शृङ्गनाद करके, शिशुओंको जटा स्पर्श देकर गये, किन्तु अयोध्यामें फिर किसीको उनके दर्शन नहीं हुए।

———

विचित्र काक

—*—

अयोध्यासे निकलते ही भगवान् शङ्करसे भुशुण्डिजीने अनुमति ली। सदाशिव कैलास पधारे, किन्तु भुशुण्डिको तो कहीं जाना नहीं था। जब तक इनके आराध्य श्रीराम पाँच वर्षके नहीं हो जाते हैं, ये आये ही अयोध्या रहने को थे। विप्रकुमारका रूप त्याग दिया और अपने सहज काक रूपमें आ गये।

चक्रवर्ती महाराज दशरथके राजसदन, प्राङ्गणके लिए इन दिनों कोई बात आश्चर्यजनक नहीं रह गयी थी। जहाँ सुरोंका भी चाहे जब आ जाना अथवा गगनसे दिव्य सुमनोंकी वृष्टि सामान्य हो चुकी थी, वहाँ धराके ही नहीं, स्वर्गीय दिव्य उद्यानोंके पक्षियोंका वहाँ उतर आना किसीके विशेष ध्यान देनेकी बात नहीं थी। ऐसे वातावरणमें एक छोटा कौआ आँगनमें नवीन आने लगा है, इसपर कोई ध्यान क्यों देता ?

इतनेपर भी उस छोटे नवीन कौएकी ओर दासियोंका ही नहीं, महारानियों तकका भी ध्यान शीघ्र चला गया। सबको वह काक विचित्र लगा और प्रिय लगा। दासियोंने ही पहिले लक्षित किया कि वह काक महाराजके प्राङ्गणमें उतरता है तो हंस तक उसके लिए एक ओर हट जाते हैं। दूसरे सब पक्षी उसके साथ ऐसा सम्मानका व्यवहार करते हैं, जैसे वह काक न होकर पक्षिराज गरुड़ ही हो।

महारानी कैकेयी शिशुओंके साथ लगी प्राय: अजिरमें रहती थीं। उनका ध्यान गया और उन्होंने सुमित्राजी तथा कौसल्याजीको भी दिखलाया—'यह साधारण छोटा काक है, किन्तु कल जबसे दीखा, पक्षी इसका आदर करते हैं। पूरे प्राङ्गणपर मानो इसीका अधिकार हो, जिधर जाता है, पक्षी उधरसे हट जाते हैं।'

'महारानीजीने ध्यान दिया होगा' एक सेविकाने कहा—'यह पक्षियोंके लिए डाले गये दाने, फल, किसीको मुख नहीं लगाता, किन्तु राजकुमारोंमें-से किसीके करसे, मुखसे एक कण भी गिरे तो आतुरतापूर्वक उड़कर लपक लेता है। कुमारोंके उच्छिष्टपर इसने अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है।'

'यह हंसों और मयूरोंसे भी अधिक धृष्ट है।' महारानीने हँसकर कहा—'पाले हुए कपोत, शुक ही इतने समीप मनुष्योंके निर्भय घूमते हैं। भला इस काकको किसने पाला होगा ? यह तो हम सबके पैरोंके समीप ही घूमता रहता है। हाथ बढ़ाओ पकड़नेको तो तनिक उड़कर दो पद दूर बैठ जायगा और ऐसे बोलेगा जैसे उलाहना देता हो कि उसे क्यों डराया गया।'

'बेचारा काक है—अस्पृश्य पक्षी।' महारानी सुमित्राने कहा सकरुण—'इतना समझता है कि किसीका स्पर्श उससे नहीं होना चाहिए।

शिशुओंके समीप ही रहता है, किन्तु सेविकाएँ भले असावधान हो जायँ, इसने किसी शिशुको, हम सबको भी कभी अपने पक्षका भी स्पर्श नहीं होने दिया। हाथ बढ़ानेपर उड़कर दूर बैठकर सम्भवत: यही कहता होगा—'मैं स्पर्शके योग्य नहीं हूँ।'

'मेरे रामको बहुत प्रिय हो गया है यह आते ही।' महारानी कैकेयीने कौसल्याजीसे कहा—'राम तो अब दूसरे पक्षियोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते और न खिलौने स्पर्श करते। इनके तीनों छोटे भाई भी अब दिनभर इस कौएके साथ ही खेलने और इसीके सत्कारमें लगे रहते हैं।'

'महारानीजी! यह इतना भला भी नहीं है।' एक दासीने हँसकर कहा—'कल बड़े राजकुमारके करसे इसने पूएका खण्ड ही झपट लिया और लेकर ऊपर जा बैठा। पूरा पूप-खण्ड खाकर ही नीचे उतरा। राजकुमार तो इसे पूप लेकर उड़ते देखते रह गए चकित और फिर चारों भाई ताली बजाकर आनन्द मनाते रहे।'

'राम भी तो इसे बहुत ललचाते हैं।' महारानी कैकेयीने कौसल्याजी से कहा—'जीजी! रामको मैंने इस काकसे ही ऐसा विनोद करते देखा। अन्यथा राम इस शैशवमें भी परमोदार हैं। अपने करमें पूप हो या मोदक और भले उसे अभी अधरोंसे भी न लगाया हो, किन्तु कोई पक्षी, मार्जार, मृग समीप आ जाय तो राम उसे खिलाने लग जाते हैं। रामको तो देना ही देना आता है, किन्तु इस काकको हाथकी वस्तु दिखाकर बुलाते हैं, ललचाते हैं और यह समीप आता है तो पीछे मुड़कर भागते हैं। बेचारा काक कब तक ठगा जाय, कभी तो इसे भी हाथसे झपटनेका अवसर मिलना चाहिए।'

'इसे देनेको दूसरे तीन कुमार क्या कम हैं?' सेविका कहती है—'प्रात:से चारों भाई इसे देनेको कुछ-न-कुछ लाते ही रहते हैं, किन्तु यह इन कुमारोंका अवश्य कोई अनन्य सेवक होगा। जब तक कुमार पदार्थको उच्छिष्ट न करदें, यह उसकी ओर देखेगा ही नहीं। तीनों छोटे कुमार बार-बार पदार्थ भूमिमें रखकर, हटकर इसे बुलाते हैं, किन्तु यह तो लेगा तब जब पदार्थको कोई कुमार तनिक मुखसे लगा चुके हों।'

'महारानीजी! काक मोटा हो जाय तो कितना बड़ा हो जायगा? बहुत मोटा हो जायगा तो ऐसे उड़ पायेगा?' एक सेविकाने हँसकर कहा—

'हमारे चारों प्रजापालक शिशु राजकुमार प्रातःसे इसके सत्कारमें लग जाते हैं। यह इनमें किसीको उच्छिष्टका कोई कण दूसरे पक्षियोंको लेनेका अवसर नहीं देता। शीघ्र यह खूब मोटा हो जायगा।'

'तब तू इसे पाल लेना।' महारानीने विनोद किया।

'चक्रवर्ती महाराजके परमोदार चारों शिशु जिसका पालन करनेमें लगे हैं, उसका पालन दूसरा कोई क्या करेगा।' दासीने सविनय मस्तक झुकाया—'इस काकको पालनेकी बात तो दूर, इसके सौभाग्यकी भी स्पृहा कोई सुरांगना तक नहीं कर सकती। कुमारोंके केवल उच्छिष्टपर रहनेका ऐसा सौभाग्य मिले तो श्रीहरिके वाहनको भी बैकुण्ठ विस्मृत हो जायगा।'

सचमुच विचित्र था वह काक। चारों राजकुमार जब तक प्राङ्गणमें रहते थे, वह प्राङ्गण भूमिपर कुमारोंके समीप ही बैठा रहता था। कोई शिशु अत्यन्त समीप आ जाय तो फुदककर दो पद दूर जा बैठता और शिशु दूर हो जायँ तो खुद आता उनके समीप।

चारों राजकुमार ही नहीं, इनके समान दूसरे भी शिशु इस राज-प्राङ्गणमें प्रातः माताओंके अङ्कसे उतर जाते। सब घुटनोंके बल सरकते, किलकते, बैठकर ताली बजानेकी चेष्टा करते और सबके मध्य मयूर थनगन पक्ष फैलाये नाचते रहते, हंस कूजते घूमते, सहस्रशः पक्षी, किन्तु यह काक जिधर पहुँचता, दूसरे पक्षी उधरसे तत्काल एक ओर हट जाते थे।

काकको केवल राजकुमारोंमें—विशेषतः श्रीराममें रुचि है, यह स्पष्ट था। यह उनके सम्मुख ही बैठा रहता है। राम भी इसे देखकर किलकते हैं। कभी इसे पकड़ने घुटनोंके बल सरकते हैं, कभी जैसे डर गये हों, मुड़कर माताकी ओर सरकने लगते हैं। माताकी या किसी महारानीकी, सेविका-की गोदमें आकर करसे इस काककी ओर ही सङ्केत करते हैं बार-बार और दो क्षणमें गोदसे उतरकर फिर इसीकी ओर चल देते हैं।

चारों राजकुमार बार-बार कुछ माँग लेते हैं स्वादिष्ट भोजन और अपने नन्हें करोंमें लेकर काकको देनेका प्रयत्न करते हैं। चारों शिशु काक-को देना चाहते हैं और यह है कि सम्मुख बैठकर—'काँव-काँव' करता रहता है। सम्भवतः कहा करता है—'आप भोग लगालो तब मैं प्रसाद खाऊँ।'

शिशुओंको प्रातः सायं ही प्राङ्गणमें छोड़ा जा सकता है। दिनमें आतपमें रहने योग्य तो ये सुकुमार हैं नहीं, किन्तु राजकुमारोंको कक्षमें रख पाना कठिन हो गया है। यह काक शिशुओंके कक्षमें जाते ही कक्ष-द्वारपर जा बैठता है। कुछ भीतर भी बार-बार आ जाता है। इसे देखकर चारों शिशु इसके समीप सरकते हैं।

काकको सूर्योदय होते ही राजभवनके प्राङ्गणमें आ जाना है। सभी पक्षियोंको प्रातःकाल प्रकाश होते ही क्षुधा पीड़ित करने लगती है और वे आहारकी खोज प्रारम्भ कर देते हैं। यह काक सूर्योदय तक प्रतीक्षा कर लेता है, यही बहुत बड़ी बात है। सम्भवतः कहीं सरयू-तटके वृक्षपर रात्रि-विश्राम करता होगा। प्रातः सरयू स्नान करके भीगे शरीर आता है। राजसदनकी सेविकाएँ कहती हैं—'यह कोई ऋषि, सिद्ध, सुर होना चाहिए। इतने प्रातः स्नान करनेका नियम काकका तो सुना-देखा नहीं गया।'

राजसदनके ऊपर बैठकर अपने पक्ष झाड़ता हुआ यह भगवान् भास्करकी ओर देखकर बोलता रहता है—इसकी जैसे यह प्रभात-स्तुति है और श्रीराम इसका स्वर सुनते ही अनुजोंके साथ प्रातराश करमें लिये प्राङ्गणमें सरक आवेंगे, यह निश्चित् है। चारों शिशु प्रातराश मुखमें कम डालते हैं, गिराते अधिक हैं। कक्षमें तो जननीके करोंका ग्रास भले मुखमें ले लें, प्राङ्गणमें इन सबको स्वतः भोजन करना रहता है। महारानी कैकेयी जानती हैं कि उनके ये उदार शिशु काकको प्रभातमें परितृप्त कर देना चाहते हैं।

काक कुछ लेकर ऊपर जा बैठता है तो चारों मुख उठाये उसे आहार ग्रहण करते देखते रहते हैं, अथवा प्रसन्न होकर किलकते हैं। नन्हे कर हिला-हिलाकर समीप बुलाते हैं। काक समीप न आ जाय, तब तक इनमें किसीको माताके करका ग्रास मुखमें लेनेका स्मरण ही नहीं आता और काक अपने चञ्चु या पञ्जेका आहार समाप्त करके नीचे समीप उड़ आता है तो आते ही बोलने लगता है। पता नहीं और माँगता है या धन्यवाद देता है। दूसरे काकोंके समान अपने साथियोंको कभी पुकारता नहीं लगता, क्योंकि इसके बोलनेपर दूसरे काक कभी आते नहीं। हो सकता है कि यह दूरसे आया हो। इसका कोई साथी ही यहाँ न हो। सेविकाएँ ऐसा ही समझती हैं।

राजकुमार शिशु हैं। दिनमें भी विश्राम करते हैं। महारानी तथा सेविकाओंका भी स्नेह-भाजन बन गया है यह काक अपने इस विशिष्ट सद्‌गुणके कारण कि जब शिशुओंमें कोई सो रहा हो, यह मौन रहता है। प्राङ्गणमें भी कोई शिशु सो जाय तो भले चारों राजकुमार प्राङ्गणमें ही क्रीड़ा करते हों, काक उनके समीप आकर इधर-से-उधर सिर घुमाता रहता है, कूदता या उड़ता है, किन्तु बोलता नहीं है।

चारों राजकुमार प्रांगणमें न हों तो भी यह काक प्राङ्गण छोड़कर दिनमें कहीं नहीं जाता। तब ऊपर बैठा, राजकुमार जिस कक्षमें हों, उसके द्वारकी ओर देखता रहेगा। उस समय यह और किसी ओर देखता ही नहीं। ऐसा ध्यानस्थ इतना एकाग्र तो सरोबरमें एक पैरपर खड़ा कोई बक भी नहीं दीखता।

महीने-दो-महीने नहीं, पूरे पाँच वर्ष यह काक अयोध्याके राजसदनके प्राङ्गणमें दीखता रहा। राजकुमार बड़े हुए, ठुमुक कर चलने लगे। उनके उज्ज्वल दन्त प्रकट हुए। काकके पीछे वे दौड़ते, इसे देखकर नृत्य करते रहे और यह पलता रहा उनके उच्छिष्टपर।

राजकुमारोंने षष्ठम वर्षमें प्रवेश किया, तब सहसा यह काक अदृश्य हो गया। महारानियोंको, सेविकाओं तकको आश्चर्य हुआ, कुछ खेद भी हुआ कि कुमारोंसे इतना हिला-मिला काक कहाँ चला गया। किसी काकका पता लगानेका भला क्या उपाय। एक बार गया तो वह काक पुनः अयोध्यामें नहीं दीखा।

शैशव

○

अयोध्यामें आनन्दघन अवतीर्ण हो गये हैं तो यह स्वभाव सिद्ध है कि अनुदिन-अनुक्षण आनन्द बढ़ता ही रहेगा। चक्रवर्ती महाराजके चारों कुमारोंने क्रमशः रत्न-पालनेमें पार्श्व-परिवर्तन किया। फलतः चार दिन महोत्सव मनाया ही जाना था। भूमि-स्पर्श संस्कारके अनन्तर जब अपने आप चारों राजकुमार भूमिपर दोनों कर टेककर कुछ क्षण स्वयं बैठे रहनेमें समर्थ हुए, यह समाचार देनेवाली सेविकाको महारानियोंने, महाराजने रत्नोपहारोंसे लाद दिया।

कुमारोंने धीरे-धीरे करों और घुटनोंके सहारे रत्न-खचित स्फटिक प्राङ्गणमें रिङ्गण प्रारम्भ किया। सेविकाएँ सूर्योदयसे पूर्व प्राङ्गणमें हरिद्रा, कुँकुम, गोधूम चूर्ण, हरताल आदिसे स्थान-स्थानपर पुष्प, पक्षी, पशु, फल आदिका चित्राङ्कन करनेमें लग जाती थीं। शिशु उन सजीव प्राकृतिकसे लगते, चटकीले रङ्गोंसे बने चित्रोंकी ओर आकर्षित होकर खिसकते और उन्हें पकड़ना चाहते।

चारों शिशुओंमें श्रीराम जिधर चल देते, तीनों अनुजोंको अनुगमनका स्वभाव जन्मजात प्राप्त हो गया था। चारों शिशु किसी भी अङ्कित पुष्प, फल, पक्षीके समीप जाकर उसे पकड़नेका प्रयत्न करते। परस्पर चित्राङ्कनके द्रव्योंसे रंगे कर एक दूसरेके कपोल, बाहु, उदर, जानु आदिपर रखते और अद्भुत छटा बना लेते। श्वेत, पीत, अरुण आदि रङ्गोंके चिह्न सम्पूर्ण शरीरपर, चाहे जहाँ जिस चित्रपर उदरके बल लेट रहेंगे और पूरा उदर, वक्ष रङ्गीन बना लेंगे।

महारानियोंमें कोई या सेविकाओंमें, नागरिकाओंमें कोई अङ्कमें लेनेको समीप आकर दोनों कर फैलावेगी तो उसके अङ्कमें आवेंगे अथवा चपल-चपल दूर सरकने लगेंगे, कोई नियम तो नहीं है। अङ्कमें आ जाएँगे

तो इनके शरीरमें लगे रङ्गोंसे वस्त्र धन्य हो जाएँगे। अपने करोंका रङ्ग माता या सेविकाके कपोलपर, स्कन्धपर कहीं भी कर रखकर लगा देते हैं और जिसे यह सौभाग्य मिल जाय—वह नगरकी हुई तो दिनभर आनन्दसे उत्फुल्ल दिखलाती घूमेगी—'यह बड़े या अमुक राजकुमारके करका लगा चिह्न मेरे अङ्गपर या वस्त्रपर है।'

प्राङ्गणमें मयूर नाचते रहते हैं, हंस ठुमकते घूमते हैं, कपोत, शुक—पता नहीं कितने रङ्ग-बिरङ्गे पक्षी चहकते, उड़ते, घूमते दिनभर बने रहते हैं। गिलहरियाँ, शशक, मार्जार—अनेक छोटे प्राणी भी शिशुओंके ही समीप घूमते हैं। सब परस्पर सौहार्द्रसे भरे, सब शिशुओंके आकर्षणसे आत्म-विस्मृत। शिशु कभी किसी पक्षीकी छायाको पकड़ना चाहते हैं, कभी किसी छायाके पीछे सरकते हैं। कभी किसी नन्हे छोटे प्राणीको पकड़ना चाहते हैं।

प्राङ्गणकी स्फटिक भूमिमें अपने ही चन्द्रमुखके प्रतिबिम्बको राम पकड़नेका प्रयत्न करते हैं। तीनों भाई भी घेरकर, बैठकर या लेटकर उस प्रतिबिम्बको पकड़नेके प्रयासमें अग्रजकी सहायता करना चाहते हैं। समीप-की सेविका या माताकी ओर देखते हैं, जब प्रतिबिम्ब पकड़में नहीं आता।

शिशुओंने दो-एक क्षण स्वयं खड़े रहना प्रारम्भ किया। महा-रानियाँ बैठकर सम्मुख खड़ा करके दोनों ओर अपने कर सम्हालनेको उठाए रहतीं और शिशु दो क्षण खड़े रहकर बैठ जाते। धीरे-धीरे माताकी अँगुली पकड़कर लटपट पदोंसे चलनेका उपक्रम प्रारम्भ हुआ।

अकेला गायका बछड़ा भी देरसे मुखमें तृण लेना प्रारम्भ करता है; किन्तु समवयस्क दो शिशु परस्पर देखकर शीघ्र चलना, बोलना सीखते हैं। महाराज दशरथका प्राङ्गण तो अयोध्याके शिशुओंकी क्रीड़ा-स्थली हो रहा था। फलतः प्रायः सभी शिशुओंने अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र चलना और बोलना प्रारम्भ कर दिया।

चक्रवर्ती सम्राट्का प्राङ्गण—सेविकाएँ शिशुओंके साथ नित्य सावधान रहतीं, अतः प्राङ्गणमें अस्वच्छता क्षण भर भी रहने नहीं पाती थी। शिशुओंकी माताओंने भी नहीं जाना कि शिशु अस्वच्छता भी उत्पन्न रते हैं।

शिशु चलने लगे खड़े होकर और उनकी चपलता बढ़ गयी। बढ़ गया—बढ़ता चला गया आनन्दका अकूल अपार पारावार। चरणोंमें मणि नूपुर, कटिमें रत्न-मेखला, करोंमें कङ्कण रुनझुन कर रहे हैं। वक्षपर मुक्तामाल और मुखको घेरे अलकें लहरा रही हैं, इन्दीवर सुन्दर श्रीराम अपना प्रतिबिम्ब देख-देखकर अथवा किसी माताकी तालीका प्रोत्साहन पाकर नृत्य कर रहे हैं। श्रीरामके तीनों अनुज नृत्य कर रहे हैं। नृत्य कर रहे हैं समवयस्क सखा। नृत्य करने लगे हैं मयूर। लगता है कि सृष्टिका अणु-अणु झूम उठा—नृत्य करने लगा है।

किसी छोटे पशु या पक्षीको पकड़ लेते हैं अथवा पकड़ने दौड़ने लगते हैं। ये पक्षी, ये नन्हे शशक आदि—इन्हें कोई बालक पकड़ ले तो चुपचाप खड़े रहेंगे। अधिकांश तो नेत्र बन्द करके जैसे महातापस समाधिमें हों, ऐसे हो जाएँगे अथवा शिशुओंको सूँघने लगेंगे। इनके शरीरसे अपना शरीर रगड़ते इनकी परिक्रमा करेंगे। शिशु प्राङ्गणमें हों तो इन्हें आहारकी ओर देखनेका अवकाश ही नहीं रहता। इनमें से कुछ पक्षी, मयूर, हंस आदि तथा प्रायः सभी छुद्र पशु कक्षमें भी शिशुओंके साथ घूमते रहते हैं। बालक शयन करने लगें तब इन्हें सप्रयत्न कक्षोंसे निकालना पड़ता है। ये तो उस समय भी शिशुके पलनेमें अथवा उसके नीचे बैठे रहना चाहते है।

उज्ज्वल दन्तावली आनी प्रारम्भ हुई। जैसे शशिकी किरणें मुखोंमें स्थिर बैठ गयी हों। श्रीरामके ही नन्हे, पतले, चन्द्रोज्ज्वल दो दाँत आये पहिले। दन्तोद्गम महोत्सवका अवसर भी चार बार मिला। चारों शिशुओंकी परमोज्ज्वल दन्तावली। जब हँसते हैं, जैसे ज्योत्स्ना छिटक पड़ती है। अधर—पतले अरुण अधर मानो दुग्धोज्ज्वल हो उठते हैं।

'माँ!' श्रीरामने ही प्रथम बोलना भी प्रारम्भ किया। दो-दो अक्षरोंके सरल नाम, किन्तु चक्रवर्ती महाराजके चारों शिशु श्रुतधर तो होने ही थे। अपनी तुतलाहटमें भी ये महाप्राण अक्षरोंका ही उच्चारण करते थे। चारों कुमार सामान्य शिशुओंके समान 'दादा' को 'ताता' न कहकर 'ताऊ' को भी 'दाऊ' ही बोलने लगे थे।

शिशुओंकी क्रीड़ा—चक्रवर्ती महाराज यदि राजसभासे बार-बार प्राङ्गणमें आ जाते थे तो आश्चर्य क्या? दूसरे सभी ऋषि-मुनि ही नहीं, महर्षि वशिष्ठ तकने जैसे नियम बना लिया था कि एकबार प्रतिदिन

राजकुमारोंको आशीर्वाद देने राजसदन आना ही है। इसके अतिरिक्त भी कोई न कोई कार्य निकलता ही था राजभवन आनेका।

राजकुमारोंने तो घुटनों सरकना प्रारम्भ किया तबसे स्वयं कुलगुरु, विप्रवर्ग एवं गुरुजनोंको देखते ही समीप जाकर चरणोंपर मस्तक रखना सीख लिया।

भरतको कभी किसीने नहीं देखा। शत्रुघ्न भी सदा प्रसन्न रहते, किन्तु श्रीराम रूठ जायँ तो लक्ष्मण पहिले रूठे धरे हैं। श्रीराम कम रूठते हैं और जब रूठते है—बड़ा कठिन हो जाता है यह जानना हो कि चाहते क्या हैं? महारानियोंके हृदय मथ उठते हैं। दासियाँ सिसकने लगती हैं। चक्रवर्ती महाराज व्याकुल हो जाते हैं। महर्षि वशिष्ठ तक सुनते ही दौड़े आते हैं।

'श्रीराम रूठ गये हैं—रुदन कर रहे हैं!' बड़ा उत्पीड़न समाचार है यह अयोध्याके सभी जनोंके लिए।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं।' श्रीरामके बड़े-बड़े पद्मपलाश दृगोंसे अञ्जन-रञ्जित गिरते अश्रु-विन्दु—सोचकर ही जैसे हृदय विदीर्ण हो उठता है।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं!' इसका अर्थ ही है कि भरत रुदन कर रहे हैं कहीं एक ओर बैठकर, और इस समय किसीके अङ्कमें नहीं जायेंगे।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं!' अवश्य लक्ष्मणके दृगोंसे भी विन्दु झरते हैं, किन्तु उनका स्वर्ण गौर मुख अरुण हो गया है। नेत्र लाल हो आये हैं। नन्हें अधर फड़कते हैं और अग्रजकी ओर अपलक देखनेमें लगे हैं।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं!' शत्रुघ्न गुमसुम मुख छिपाए कहीं बैठे होंगे। इस समय—ऐसे ही समय भरतके भी समीप वे नहीं मिलते।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं!' कोई शिशु अयोध्यामें इस समय चुप, शान्त, प्रसन्न नहीं मिलेगा।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं!' यह तो राजसदनसे दूर, अयोध्याके अरण्यमें भी जान लिया जा सकता है। पक्षियोंका कलरव दिनमें भी शान्त हो गया और वे वृक्षोंपर बैठ गये मुख पङ्खमें छिपाकर। बछड़ोंने कूदना छोड़ दिया और गायें उदास हो गयीं। पशु-पक्षी सब जैसे सहसा खिन्न दीखने लगे तो अवश्य श्रीराम रुदन करते हैं।

'श्रीराम रुदन कर रहे हैं !' बड़ा कठिन था तब तक यह जब तक ये बोलते नहीं थे। समझ पाना ही कठिन था कि चाहते क्या हैं ? किसीकी अङ्कमें नहीं जायँगे। खिलौने फेंक देंगे। भूमिपर लेटेंगे। अङ्कमें उठानेपर नीचे उतरनेको मचलेंगे।

श्रीरामने रूठनेपर भी कभी किसीकी अलकें नहीं खींचीं। किसीकी नाक नोचनेकी चेष्टा नहीं की। चाहे जितने रूठे हों, कुलगुरुके आनेपर पद-वन्दनमें विलम्ब नहीं किया।

श्रीराम रूठते हैं—शिशुओंमें श्रीराम ही रूठते हैं। दूसरा कोई शिशु रूठ जाय तो श्रीरामके पहुँचते ही हँसने लगेगा, किन्तु जब राम रूठते हैं—केवल कुलगुरु ही समाधान कर पाते हैं। वे ही इन श्रीकौसल्यानन्द-वर्धनको ठीक समझते हैं। महर्षि आते ही श्रीरामको अङ्कमें उठाकर पूछेंगे—'वत्स रामभद्र ! कोई पीड़ित है ? किसी पशु-पक्षी या बालककी किसीने उपेक्षा की है ? किसीको कुछ देना है ?'

महर्षि जानते हैं कि श्रीराम शैशवमें भी परदुःखकातर हैं। किसी पशु या पक्षीको कहीं चोट लगी दीखी होगी। किसीको कोई पीड़ा है या किसीकी उपेक्षा की गयी है। कोई कुछ चाहता है और उसे उसका अभीष्ट मिला नहीं है। अपने लिए तो राम रूठना जानते नहीं। रामके नेत्रोंमें अश्रु हैं तो अवश्य किसीके लिए हैं।'

शिशुका संकेत भी यह सर्वज्ञ महर्षि ही समझ पाते हैं। श्रीराम तोतली वाणीमें कुछ कहें तो भी उसे ठीक समझ पाना सरल नहीं होता। शिशु हाथ उठाकर कुछ संकेत कर रहा है। वह कुछ चाहता है, किन्तु कोई कैसे समझेगा कि नगरसे बाहर, सरयूके दूसरे तटपर कोई महाभाग पधारे हैं और राम उनका सत्कार न होनेसे रुदन कर रहे हैं।

कोई सेवकका शिशु राजसदन आ गया। वह किसी वस्तुको पाना चाहता है। सङ्कोचसे अपनी मातासे भी कहेगा नहीं और रामका संकेत समझा नहीं जा रहा तो ये रूठें नहीं ? वह बालक जो चाहता है, रामके करोंमें वह दे दिया जाय तो ये प्रसन्न होकर उस शिशुको दे दें, किन्तु महर्षिके समान सब तो सर्वज्ञ नहीं हैं। कोई पशु-पक्षी उछल-कूदमें आहत हो जाय तो उसे आशीर्वाद देकर महर्षिके अतिरिक्त दूसरा तो स्वस्थ नहीं कर सकता। अतः श्रीरामके रूठनेपर प्रायः महर्षि ही इन्हें मना पाते हैं।

चूड़ाकरण

महर्षि वशिष्ठजीने राजकुमारोंके चूड़ाकरण (मुण्डन)का मुहूर्त निश्चित कर दिया है। अयोध्यामें महोत्सव मनानेकी उमङ्गमें हैं सब, किन्तु राजकुलके प्रधान नापितकी व्यथाका पार नहीं है। वह समझ नहीं पाता कि महर्षि इतने निष्ठुर कैसे हो गये।

'भगवन् ! मैं श्रीचरणोंकी शरण आया हूँ।' महर्षिके आश्रम जाकर दण्डवत प्रणिपात करके रुदन करने लगा वह—'मुझे अब कार्योपरत हो जानेकी अनुमति प्राप्त हो !'

'भद्र ! तुमको क्या हुआ है ? तुम स्वस्थ तो हो ?' महर्षिने अत्यन्त स्नेहपूर्वक पूछा। जो केवल नख-कर्तृकाकी सहायतासे केशको द्विधा विदीर्ण कर देता है बिना किसी प्रयास एवं एकाग्रताके, ऐसे कुशल केश-शृंगारक, राज्यके नापितोंके अग्रणीका कातर भाव महर्षिके लिए आश्चर्यकी बात थी—'तुम अभी प्रौढ़ हो, सशक्त हो। तुम्हारे अनुभव एवं अभ्यस्त करोंकी सेवा मिलनी चाहिए राजकुलको और अभी तो चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंका......... ।'

'इसे सोचते ही मेरा हृदय, मेरा पूरा शरीर कम्पित होने लगता है।' महर्षिके चरण पकड़ लिये उसने—'मैं उन सुकुमार कुमारोंके मस्तकपर शस्त्र-स्पर्श करानेके योग्य नहीं हूँ। मेरे प्राण कल्पनासे ही मूर्च्छित होने लगते हैं। मैं किसी प्रकार आश्वासन नहीं प्राप्त कर पाता कि मेरे कर कम्पित नहीं होंगे।

'भद्र !' महर्षिने अब स्थिति समझ ली। बड़े स्नेहसे कहा—'तुम जानते हो कि कुमारोंका यह संस्कार अनिवार्य है और पूरी धरित्रीपर तुम्हारे समान योग्य केश-शृंगारक नहीं है। तुम अपनी औषधियोंसे, अपनी अनुभवजन्य निपुणतासे उन शिशुओंको वञ्चित करके आश्वस्त हो सकोगे ? किसी अनिपुण अथवा अल्पनिपुण नापितको तुम उनके मस्तकका स्पर्श करते देख सकोगे ?'

वह चौंक गया। इस प्रकार तो उसने सोचा ही नहीं था। वह अपनी ही सोच रहा था, किन्तु—सचमुच वह यह कार्य न करे तो दूसरा करेगा। किसी-न-किसीको यह कार्य तो करना ही होगा और कोई किञ्चित भी अल्प-निपुण उन सुमन-सुकुमार शिशुओंके मस्तकका स्पर्श करे, यह कैसे सहन होगा उससे।

'सृष्टिके निर्माताने तुम्हें इतनी निपुणता, इतना औषधीय ज्ञान, इतना धातु-शोधन एवं तीक्ष्णीकरणका अनुभव इसी अवसरके लिए प्रदान किया है।' महर्षिने समझाया—'तुम अश्विनीकुमारोंके साक्षात् शिष्य तुम्हीं कातर हो रहे हो? तुम्हारे कर कम्पित नहीं होंगे, यह वशिष्ठ जानता है। तुम्हें आश्वस्त करता हूँ मैं।'

'यह संस्कार यदि न होता········?' अत्यन्त आर्त होकर नेत्र उठाये उसने।

'सम्भव होता तो मैंने पहिले ही अनुमति न दी होती।' महर्षि वात्सल्यपूर्ण स्वरमें कह रहे थे—'मुझे कम व्यथा हुई? कम व्यथा होती होगी महारानियोंको अथवा चक्रवर्ती महाराजको? किन्तु द्विजोंका विशेषतः जिनपर सम्पूर्ण प्रजाके लिए परमादर्श रहनेका दायित्व है, उनका ही कोई संस्कार न हो, सम्भव कैसे है?'

वह मस्तक झुकाये बैठ गया। महर्षिने उसे समझाया—'समय कितना अल्प रहा है, तुम देखते ही हो। तुम्हें तो अपनी प्रयोगशालामें होना चाहिए।'

वह बिना एक शब्द बोले महर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके उठा और वहाँसे अपने भवन आकर अपनी प्रयोगशालामें प्रविष्ट हुआ तो भूल ही गया कि उसे आहार-निद्राकी भी आवश्यकता होती है।

भारतमें नापित केवल केश-कर्तक नहीं होते थे। वे अत्यन्त निपुण चिकित्सक थे—विशेषतः चीर-फाड़की चिकित्साके विशेषज्ञ। घावको स्वच्छ करने, सुखा देनेकी औषधियोंके ज्ञाता और अपने उपयोगके शस्त्रोंके शोध-कर्ता।

अयस्कसार निर्मित सुर-वैद्योंसे प्राप्त शस्त्रोंसे भी उसे सन्तोष नहीं था। वह उनको बार-बार संतप्त करके औषधीय रसोंमें शीतल करनेमें जुट गया है। उसे पता नहीं कितनी औषधियोंका त्वक्सार, क्षार, क्वाथ

आदि आवश्यक जान पड़ता है। पता नहीं कितना स्मरण है उसे और कितना अलभ्य संग्रह है उसका। आज सबका सदुपयोग कर लेना है और बड़ी कठिनाईसे उसने केवल दो अनुभवी पुत्रोंकी सहायता स्वीकार की है इस कार्यमें।

वह शुभ समय भी आया। गणपति, गिरिजा, नवग्रह, मातृका-पूजन, हवन, तर्पणादि तो प्रत्येक शुभ-कर्मोंके अङ्ग ही हैं, किन्तु चूड़ाकर्मका प्रधान तो नापित होता है। चक्रवर्ती महाराजने महारानियोंके साथ उसका पूजन किया। कुलगुरुने मन्त्रपाठ-पूर्वक उसका तथा उसके शस्त्रोंका पूजन कराया।

उसके शस्त्र—चन्द्र-रश्मियोंसे भी शस्त्र-निर्मित हो सकें तो कदाचित् ही इतने उज्ज्वल हों। अयस्क-सारकी कान्ति, निर्मलता स्वर्णमें भी सुलभ नहीं तो अन्य धातुओंमें कैसे होगी? वह तो अपने इन शस्त्रोंसे सरलता-पूर्वक ताम्रको भी छिन्न कर लेता है।

चक्रवर्ती महाराजको अपने इस केश-शृङ्गारककी कलाका भली प्रकार अनुभव है। इसकी अँगुलियोंका स्पर्श इतना मृदुल, इतना सुखद है—यह शरीरकी स्नायुओंका ऐसा मर्मज्ञ कि कहाँ किस स्नायुपर कितना दबाव पड़नेसे सुखानुभव होगा, यह दूसरा कोई इसके समान कदाचित् ही जानता हो। शिशुओंका यह संस्कार इसके करोंमें है, अतः किसीको कुछ सोचना नहीं है।

सविधि पूजनके पश्चात् महाराज स्वर्णासनपर श्रीरामको अङ्कमें लेकर आसीन हुए। माताओंने शिशुओंको अङ्कमें रोक न रखा होता तो चमकते शस्त्रोंसे खेलनेके लिए कबसे मचल रहे थे वे।

'भगवन्! यदि कुमार मध्यमें निद्रित हो जायँ?' नापितने महर्षिकी ओर देखा।

'भद्र! तुम्हारे कर्ममें हस्तक्षेपका अधिकार मुझे नहीं है।' महर्षिने कहा—'तुम्हें जैसे सुविधा हो। यदि कुमारोंके निद्रित होनेसे तुम्हें असुविधा न हो तो तुम निद्राका आवाहन कर सकते हो।'

महर्षि जानते हैं कि यह कलाकार अपने कर स्पर्शमात्रसे अत्यन्त जागरूक—अनिद्रासे पीड़ितको भी कुछ क्षणोंमें गाढ़ निद्रामें सुला देनेमें निपुण है।

नापितने औषधीय द्रव्य मिलाये किञ्चित उष्णोदकमें। वह सुरक्षित जल उसने श्रीरामकी घुँघराली, काली, कोमल अलकोंमें अत्यन्त चपल अँगुलियोंके अग्रभागसे मलना प्रारम्भ किया। रोम-रोम उत्थित, शरीरसे झरती स्वेदधारा, किन्तु उसका शरीर, मन, प्राण सब सुस्थिर, एकाग्र। श्रीराम कब कमल-लोचन मूँदकर सो गये, यह महाराज भी लक्षित नहीं कर सके।

नापितने पुनः शस्त्रोंको देखा। उनका परीक्षण किया। भरतने कोई चञ्चलता प्रदर्शित नहीं की, किन्तु लक्ष्मण और शत्रुघ्नने बहुत प्रयत्न किया अग्रजके समीप पहुँचनेका। माताओंने उन्हें अङ्कमें निरुद्ध कर रखा था।

शिशुओंके अतिरिक्त केवल नापितके दृग खुले थे। महर्षि तकने नेत्रों-को बन्द कर लिया था। शङ्ख-ध्वनि, विप्रवर्गका मन्त्रपाठ, वाद्योंकी तुमुल ध्वनि गूँजती रही। चलते रहे नापितके कर अत्यन्त त्वरित लाघव गतिसे, किन्तु श्रीरामकी घुँघराली, घनकृष्ण अलकोंका यह कर्तन देख पाना किसीके लिए भी शक्य नहीं था। सबके मन-प्राण कम्पित हो रहे थे।

'चक्रवर्ती महाराजके कुमार चिरायु हों!' स्वच्छ मुण्डित मस्तक करके, औषधीय तैल भली प्रकार लगाकर नापितका जयनाद गूँजा, तब नेत्र खुले सबके। स्वर्णपात्रमें पड़ी वह केश-राशि—उसकी ओर अब भी नहीं देखा जाता था।

नवीन पात्र, नवीन शस्त्र, नापितने अपने पूरे वस्त्र परिवर्तित किये। श्रीरामको उष्णोदक स्नान कराया जाना था, किन्तु मुण्डित मस्तकपर तैल, केशर लगाये माताके अङ्कमें वे स्थिर बैठ गये। अनुजोंका चूड़ाकरण देखे बिना हटना ही नहीं चाहते और माताओंमेंसे भी अभी कोई उठ नहीं सकतीं, अतः महारानी कैकेयी श्रीरामको अङ्कमें लिये बैठी रहीं। अब उनका ध्यान किसी बालकके क्षौरकी ओर नहीं था। वे तो श्रीरामके मुण्डित मस्तकको ही देखनेमें तन्मय हो गयी थीं। राम ही कभी-कभी उनकी ओर मुख घुमाकर, उनकी ठुड्डी या कपोलपर कर रखकर हाथसे भरतकी ओर संकेत करते हैं।

'वह भरतका मस्तक भी ऐसा ही स्वच्छ बनाने जा रहा है।' माता श्रीरामको पुचकारकर समझाती हैं और फिर उनके मस्तकका कोई भाग देखने लगती हैं।

'इन कुमारोंको तुम निद्रित न भी करो तो ये रुदन नहीं करेंगे।' महारानी कौसल्याने कहा।

'चक्रवर्ती महाराजके कोई कुमार रुदन नहीं करेंगे!' नापितने मस्तक झुकाकर प्रणाम करके कहा—'किन्तु शस्त्रोंके प्रति इनका कुतूहल स्वाभाविक है। इनके चञ्चल कर मुझे शीघ्रता करने नहीं देंगे।'

नापितकी कलाने चारों कुमारोंको केश आर्द्र करते समय ही निद्रित कर दिया। उसने प्रत्येकका केश-कर्तन बहुत शीघ्र समाप्त किया। शिशुओंको तो पता लगना ही नहीं था, दूसरोंको भी लगा कि उनके पलक बन्द करनेके दो-चार क्षण पीछे ही नापितने जयघोष कर दिया है।

मुण्डित मस्तकोंपर केशर, तैल मिश्रित सुरभित उपलेप लगा। महर्षिके साथ विप्रवर्गने मन्त्रपाठ सहित चारों कुमारोंको स्नान करवाया। नापितका पुनः पूजन किया महाराजने और पूजन किया उसके शस्त्रोंका।

'भगवन्! अब ये कर इन कुमारोंके शिरःस्पर्शसे परिपूत हो गये। अब किसी भी औरका अङ्ग-स्पर्श यह जन नहीं कर सकेगा।' नापितने अब महर्षिके चरणोंमें मस्तक रखा।

'भद्र! हम भी चाहते हैं कि तुम केवल इन कुमारोंकी सेवा करो।' महर्षिने सोल्लास कहा—'किन्तु तुम्हें शस्त्रन्यासकी अनुमति नहीं दी जा सकती। इन कुमारोंका उपनयन भी तो होगा ही।'

'भद्र! तुम अस्वीकार नहीं कर सकते। तुमने हमारे कुमारोंका चूड़ाकरण किया है।' माता-पिताके शरीरपरके सब वस्त्राभरण मुण्डन करनेवाले नापितको न्यौछावरके अतिरिक्त प्राप्त होते हैं। चक्रवर्ती महाराजकी सब रानियाँ ही नहीं, सेविकाएँ भी सम्पूर्ण वस्त्रालङ्कार देने लगी हैं। अयोध्याके क्षत्रियकुल ही नहीं, विप्रवर्ग और वैश्योंका भी वात्सल्य है इन राजकुमारोंपर। नापित किसके उपहार अस्वीकार करदे। आजके उपहार वह वितरित करेगा—उसकी पूरी जाति अपनी कई-कई पीढ़ियों तकके लिए आजके इन उपहारोंसे धनाढ्य हो चुकी।

अब पुनः देवपूजन, पितृतर्पण, विप्रपूजन होना है। भोजन तो राजसदनमें सम्पूर्ण आज करना है। सभी सम्बन्धी, सामन्त पधारे हैं। सबका सत्कार सबके उपहार इन मुण्डित मस्तक चारों शिशुओंको पाकर कृतार्थ होने हैं।

बालक्रीड़ा

* * *

अयोध्याके सम्राट्का विशाल राजभवन वस्तुतः एक भवन नहीं था। वह भवनोंका समूह था एक सुदृढ़ परिखासे घिरा हुआ। उसमें प्रत्येक रानीके सदन पृथक्-पृथक थे। महारानियोंके भवनोंके साथ उद्यान थे, मन्दिर थे और विस्तृत प्राङ्गण थे। उन भवनोंमें एक-से दूसरेमें राज-सेवक भी अश्वोंपर बैठकर जाते थे। भवनों तक रथ जाते थे।

चक्रवर्ती महाराजके कुमार बड़े हुए, पैरों चलने लगे तो अब ये किसी एक ही प्राङ्गणमें क्यों रहने लगे। चाहे जब ये भवन द्वारसे निकल पड़ते हैं और जिधर मनमें आवे, उधर चल देते हैं। सेवक, सेविकाएँ साथ रहती हैं, किन्तु बालकोंको वारित करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं है। ये सब केवल सुरक्षा तथा सहायता ही कर सकते हैं।

महारानी कैकेयीके सदनमें ही अब भी चारों कुमार सखाओंके साथ खेलते हैं, किन्तु महारानी कहीं किसी कार्यमें लग जायँ तो राम भवनसे निकल पड़ते हैं और राम निकलें तो इनके साथ इनके तीनों अनुज भी निकलेंगे। दूसरे बालक भी निकलेंगे ही।

'रामभद्र ! वत्स !! तुम यहीं क्रीड़ा करो।' महारानी बार-बार स्नेह करके, अङ्कमें लेकर आग्रह करती हैं। जानती हैं कि राम यहाँ रहें तो कोई दूसरा बालक कहीं नहीं जायगा, किन्तु राम क्या करें ? सब माताएँ चाहती हैं कि आज उनका सदन कुमारोंकी क्रीड़ासे मुखर हो। सब प्रातः-कालसे ही बालकोंके स्वागतकी प्रस्तुति करके प्रतीक्षा करने लगती हैं। चक्रवर्ती महाराजकी रानियाँ—सब रानियाँ प्रतीक्षा करती रहती हैं। गृहोद्यानोंके पक्षी, माली प्रतीक्षा करते रहते हैं और रामको तो सबको ही सन्तुष्ट करना रहता है।

महारानी सुमित्राको अवकाश नहीं रहता राजभवनकी व्यवस्थासे, जब श्रीराम बालकोंके साथ सहसा उनके सदनमें पहुँच जाते हैं,

कितना आनन्द, कितनी प्रफुल्लता प्राप्त होती है उन्हें ? वे सब प्रबन्ध भूल जाती हैं और बालकोंके सत्कारमें लग जाती हैं।

श्रीराम माता कौसल्याके भवनमें मध्याह्नोत्तर माताकी आराधना समाप्त होने पर ही जायँ, ऐसा कोई नियम तो है नहीं। चाहे जब भागते, दौड़ते पहुँचते हैं। पहुँचते हैं रामके साथ तीनों राजकुमार और इनके शतशः सखा।

'अम्ब !' किसी रानीका सदन हो, कोई कुछ करती हो, ये बालक आवेंगे और दौड़ते अङ्कमें आ बैठेंगे। कोई पीछेसे कण्ठमें भुजाएँ डालकर पीठपर लटकेगा और कोई गोदमें बैठेगा। कोई कुछ कहेगा और कोई कुछ उठावेगा।

बालक आते हैं तो उनके साथ पक्षियोंका समूह आता है। बालक ही तो महोत्सव हैं। सभी रानियाँ चाहती हैं कि वे बालकोंको कुछ खिला सकें। कितना सुख होता है उन्हें जब कोई बालक कहता है—'अम्ब ! हम पुष्प लेंगे।' पुष्प, आहारकी कोई वस्तु—कुछ तो बालक स्वीकार करें।

बालक जैसे आते हैं, वैसे ही भाग जाते हैं। कहीं दो क्षण और कहीं दो घड़ी। इन सबोंको कहाँ कहीं रुकना आता है। कभी तो कोई दौड़ते आते हैं, किसी स्तम्भके पीछे अथवा महारानीके पीछे ही छिपते हैं और दूसरा ढूँढ़ता आता है तो हँसते भाग जाते हैं।

गृहोद्यानमें पहुँचते हैं तो माली धन्य हो उठते हैं। उस उद्यानकी स्वामिनी अवश्य तत्काल आ जायँगी। वे पुकारेंगे—'महाराज कुमार स्वयं पुष्पोंके समीप न जायँ ! हम ला देते हैं।'

क्यारियाँ आर्द्र न भी हों तो इन कुमारोंके सुकुमार चरण-तलके लिए कठोर तो हैं ही। पाटल जैसे पुष्पोंमें कण्टक होते हैं, किन्तु बालक कहाँ सुनते हैं। इन्हें जो पुष्प, जो फल प्रिय लगेगा, स्वयं तोड़ना चाहेंगे—तोड़ेंगे। मालीकी सहायता तो तब लेंगे जब कोई पुष्प या फल इनके करोंकी पहुँचमें न हो।

केवल पुष्प या फल लेने नहीं आते ये। आँख मिचौनी जैसे खेलमें लगे हों तो छिपने भी आते हैं कुञ्जोंमें। परस्पर एक दूसरेको छूनेकी

स्पर्धामें भी दौड़े आते हैं तो उद्यानमें साक्षात वसन्त आ जाता है, परन्तु टिकते कहाँ हैं ये।

इन बालकोंके साथ लगे आनेवाले पक्षी, पशु उद्यानके फल, पुष्पोंकी ओर देखना ही नहीं जानते। ये सब तो बालकोंको देखते, उनके साथ दौड़ते भागते रहते हैं। राजकुमार या कोई बालक ही इन्हें अपने करसे कुछ दे तो भले ये मुखसे लगावें। लेकिन बालक जाते हैं तो उद्यान सूना हो जाता है। उद्यानके पक्षी, भ्रमर तक इनके साथ लगे चले जाते हैं। फिर दिनभर उद्यान जैसे नीरव-उदास उदास रहेगा।

बालकोंको इस क्रीड़ामें अनेक बार गायें और गो-वत्स मिल जाते हैं। किसी महारानीके भवनसे निकलनेपर मार्गमें गौओंका मिलना स्वाभाविक है। श्रीराम और इनके सब भाई, सब सखा कोई गौ या बछड़ा देखते ही दौड़कर समीप जायँगे। उसके चरण स्पर्श करेंगे। उसे सहलाने लगेंगे। उसकी प्रदक्षिणा करेंगे। बालक भूल ही जायँगे कि इन्हें कहीं अन्यत्र भी जाना है और उस गाय या बछड़ेको बालकोंके समीपसे हटाना बहुत कठिन हो जायगा।

महारानी कैकेयीका सदन सहसा कोलाहल शून्य हुआ और वे चौंकती हैं—'गये सब ! पता नहीं कहाँ, किधर चले गये।'

महारानी बालकोंके पीछे दौड़ नहीं सकतीं और बालकोंके न होनेपर सदनमें रहा नहीं जाता। सेविकाएँ भेजती हैं, स्वयं द्वार तक आती हैं। कुछ क्षणोंमें रथ सज्जित करा लेती हैं। बड़ी कठिनाई तब होती है जब मार्गपर से अनुमान न लग सके कि बालक कहाँ हैं। जिसके द्वारपर रथ रुकेगा, वही स्वागत करने आ जायँगी। बालकोंमें मन कितना भी लगा हो, शिष्टाचारवश कुछ क्षण तो वहाँ बैठना ही पड़ेगा।

'अम्ब ! तुम यहाँ हो ?' अनेक बार होता है कि महारानी किसी सपत्नीके सदनमें बैठी हैं और श्रीराम उनको ढूँढ़ते सब बाल-मण्डली लिये आ पहुँचते हैं। अब जिसका सदन है वह बहुत अनुरोध करेगी कि वे कुछ क्षण बैठी रहें, जिससे उसे बालकोंके सत्कारका अवसर मिले।

चरणोंमें मणि-नूपुर, कटिमें रत्नमेखला, कण्ठमें मौक्तिक हार, मणि कङ्कण, रत्नखचित अङ्गद, अलकोंमें सजे मुक्ता, नेत्रोंमें अञ्जन, भालपर

तिलक, कटिमें कौशेय कछनी—केवल वस्त्र एवं अलङ्कारोंके रङ्गमें भेद होता है, अन्यथा सब बालक एक-से सज्जित होते हैं।

चारों राजकुमार इस सम्बन्धमें एक जैसे स्वभाव हैं-किसी बालकका वस्त्र या कोई आभूषण इन्हें मलिन लगे तो उतार फेंकेंगे और अपना वस्त्र या आभरण उसे पहिनावेंगे। साथके सेवकोंको इसमें सहायता ही करनी है।

दोनों कर फैलाकर गोल-गोल घूम रहे हैं शतशः बालक। जिसे चक्कर आता है, लद्से बैठ जाता है। दौड़ते हैं परस्पर एक-दूसरेको छूने। लुका-छिपी खेलते हैं। हँसते हैं, ताली बजाते हैं, कोलाहल करते रहते हैं। इनके आभूषणोंकी रुनझुन, इनका मधुर स्वर और साथमें पक्षियोंका स्वर–राजसदनका कोई न कोई भाग दिनभर मुखर बना रहता है।

शीतकालमें शिशुओंके सिर रङ्ग-बिरङ्गी चौतनी टोपियोंसे ढके होते हैं। शरीरपर अनेक रङ्गोंकी झगुलियाँ और चरणोंमें भी नन्हें उपानह। केवल कर तथा चौतनीमें से प्रफुल्ल कमल जैसे झाँकते मुख। ग्रीष्ममें तो ये केवल कछनीं लगाये घूमते भागते हैं।

अङ्गराग मण्डित श्रीअङ्ग, विविध पुष्पोंके आभूषण और गगनसे झरते सीकरोंसे सुशोभित अलकें—पावसकी छटा—बालक पावसमें सबसे अधिक प्रसन्न रहते हैं। अनेक बार इन्हें वर्षामें स्नान करनेकी अनुमति मिल जाती है और तब स्फटिक प्राङ्गणमें वर्षाके जलमें छपाछप करते, दौड़ते, हँसते, नाचते बालकोंका आमोद—आर्द्र अङ्गोंसे चिपके वस्त्र, बिन्दु झरती अलकें—इस शोभाको देखती दासियाँ तक भूल जाती हैं कि कब उन्हें बालकोंको भीगने से रोकना है।

बाल्यावस्थासे ही रघुकुलके इन कुमारोंको, इनके सखाओंको प्रभात-स्नानका अभ्यास हो गया है। माताएँ शीत-ऋतुमें कितना भी चाहें किन्तु सब सूर्योदयसे पर्याप्त पूर्व उठ जाते हैं और तब स्नान करना चाहते हैं। केवल मुख धुला देने से ही इन्हें सन्तोष नहीं होता।

श्रीराम स्नान करके अनुजोंके साथ पिताके समीप जा बैठते हैं और चारों भाई पिताको देख-देखकर सन्ध्यादिका अनुकरण करते हैं। महाराज ध्यान करने लगें तो ये भी नेत्र बन्द कर लेते हैं और बीच-बीचमें नेत्र खोलकर देख लेते हैं।

महाराज देवमन्दिर जाते समय कुमारोंको महारानी कौसल्याके सदन भेज देते हैं—'तुम लोग अपनी बड़ी माताके साथ पूजन करना।'

महारानी कौसल्याको अपना प्रभातकालीन देवाराधन संक्षिप्त करना पड़ता है। बालकोंको प्रातराश (कलेऊ) कराना भी आवश्यक है, उस समय तक आ गये इनके सखाओंके साथ और यह कार्य सेवकोंपर छोड़ा नहीं जा सकता। प्रातराश करके जब बालक खेलने अन्य सदन चले जाते है, तब महारानी अपना अवशिष्ट नित्यकर्म पूरा करनेमें लगती हैं।

सभी बालक दिनभर खेलते रहते हैं। रात्रिमें भी सूर्यास्तके बहुत पीछे उनींदे होनेपर अपने भवनोंको जाते हैं, जब उनकी माताएँ आकर ले जाती हैं। दिनका सब आहार प्रायः बालक माता कैकेयीके सदनमें ही करते हैं।

श्रीराम यदा-कदा ही महारानी कौसल्याके सदनमें रात्रि-शयन करते हैं। भरतने जाना ही नहीं कि महारानी कैकेयीका सदन उनका मातृ-सदन है।

बालकोंके लिए प्रतिदिन नवीन वस्त्र, नवीन आभरण, नवीन-नवीन खिलौने तथा नवीन शिक्षित पक्षी, छोटे पशु आते रहते हैं। चक्रवर्ती महाराज मँगाते हैं, प्रजाके लोग लाते हैं, सम्बन्धी नरेशोंके यहाँसे आते हैं, सामन्तगण भेजते हैं। वनमें महातापस तथा सुर एवं लोकपाल तक बालकोंके लिए उपहार भेजते हैं।

राजकुमारोंकी क्रीड़ाके लिए आये कृत्रिम पक्षी ऐसे कि वास्तविक पक्षी भी भ्रमसे उन्हें सजातीय मानकर उनके समीप आ बैठते हैं। छोटे-छोटे कृत्रिम अश्व, रथ, गज—बालक उनपर चढ़ते हैं तो वे वास्तविकके समान ही चलते, कूदते अथवा नाचते हैं।

चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ पर्वतीय छोटे अश्व आ गये हैं और गज भी बौने होते हैं, यह अयोध्याके राजसदनको देखे बिना सुरेन्द्र भी समझ नहीं सकते।

बालक अभी राजसदनके भीतर ही क्रीड़ा करते हैं, किन्तु महारानी कैकेयी अभीसे अपने कुमारोंको धनुष चढ़ाना, शर-सन्धान सिखलानेमें लग गयीं। नन्हीं धनुहियाँ स्वर्णकी और नन्हें बाण, किन्तु महारानी

बालकोंको लक्ष्यवेध सिखलानेमें तन्मय हो जाती हैं। यह ऐसी क्रीड़ा है कि इसमें सभी राजकुमार उत्साह दिखलाते हैं।

'यह मेरा सबसे बड़ा धनुर्धर !' महारानी कैकेयी कौसल्याजीसे कहती हैं—'लक्ष्मणको शीघ्र वास्तविक धनुष देना पड़ेगा। यह प्रतिदिन कई-कई धनुहियाँ तोड़ देता है। ज्या सज्ज करनेके लिए ऐसे झटकेसे धनुषको दबायेगा कि वह दुहरा ही हो जाता है।'

सभी कुमार लक्ष्यवेधमें निपुण हैं और सुशिक्षित बौने अश्वोंको प्राङ्गणमें ही नहीं दौड़ाते, अब एक-से-दूसरे सदन इन अश्वोंपर जाने लगे हैं। बौने गजोंको भी अपने ये आरोही प्रिय हैं। ये पीठपर बैठ जाते हैं तो गज इनके संकेतके अनुसार स्वयं चलने लगते हैं।

महाराजके सदनमें बालक कब कृत्रिम पक्षी या पशुसे खेल रहे हैं और कब वास्तविक पक्षी, पशु उनके समीप हैं या उसपर वे आरूढ़ हैं, यह पहिचान पाना कुशल लोगोंके लिए भी सरल नहीं रहा है।

'वत्स ! तुम्हारे गजने अभी कुछ खाया नहीं है।' महारानी अनेक बार भ्रममें पड़ जाती हैं।

'अम्ब ! यह तो व्रती है, नित्य-नित्य व्रत करता है।' शत्रुघ्न जब ताली बजाकर हँसते हैं, तब महारानीको पता लगता है कि वे कृत्रिम गजको वास्तविक समझ रही थीं।

राजकुमारोंके सब पशु-पक्षी, सब अश्व-गज, सब खिलौने—सभी मित्रोंके उपहार हैं। श्रीराम किसी सखाको सायङ्काल कोई अश्व या गज देकर हठ करते हैं—'तुम इसपर बैठकर घर जाओ।'

कोई बालक जो खिलौना चाहे, ले जाय, किन्तु ले क्यों जाय ? प्रातःकाल उठते ही उसे भागना है राजसदन। उसे कहाँ अपने घरमें दिनमें रहना है कि खिलौना घर ले जाय।

राजकुमार बालक हैं। बालक हैं अभी इनके सब सखा, किन्तु अभी-से सबमें बड़ोंका आदर, स्वच्छ रहनेकी प्रवृत्ति आ बसी है। इनके खेलमें, दौड़-धूपमें, चापल्यमें भी शिष्टता, सौजन्य, स्वच्छता है। श्रीराम तो खेलमें भी दूसरोंको ही सन्तुष्ट करनेमें लगे रहते हैं। सखाओंको, माताओंको सेवक-सेविकाओंको जैसे प्रसन्नता प्राप्त हो, वह श्रीरामकी प्रिय क्रीड़ा।

क्या खेलना है यह राम नहीं जानते। लक्ष्मण या भरत कहें वह खेल। क्या आहार करना, यह भी राम नहीं जानते। भाई या सखा जिसे प्रिय मानें वह रामका प्रिय आहार।

नन्हें बालक प्राङ्गणमें मल्लयुद्ध करते हैं कभी-कभी; किन्तु बड़ी कोमलतासे, सौहार्द्र भरे। महारानी कैकेयीने प्राङ्गणके एक कोनेमें बालकोंके लिए मल्लभूमि बनवा दी है। प्रतिदिन सेवक उसकी मृत्तिका सायङ्काल ही दुग्ध एवं सुरभिसे सिञ्चित कर देते हैं।

बालक दौड़ें, मल्लयुद्ध करें, झूलें या स्वर्णके क्रीड़ा-स्तम्भपर आधारके सहारे चढ़कर फिसलें, सेविकाएँ सावधान साथ रहती हैं, किन्तु महारानीको कहाँ सन्तोष होता है। स्वयं ये बालकोंके साथ दिनभर लगी रहती हैं। कन्दुक-क्रीड़ा हो या लक्ष्यवेध—महारानी कैकेयी शिक्षिका हो गयी हैं कुमारोंकी।

बालक थक जाते हैं। इनके कमल मुखोंपर स्वेद-सीकर झलमल करने लगते हैं। श्रीराम और भरतके मुख श्रान्त होनेपर किञ्चिदरुणाभ अत्यन्त सुन्दर हो उठते हैं, किन्तु लक्ष्मण और शत्रुघ्नके मुख तो प्रफुल्ल पाटल वर्ण हो जाते हैं।

बालक कहाँ समझ पाते हैं कि इन्हें आतपमें नहीं दौड़ना चाहिए। इनके सुकोमल चरण-तल—ये तो उपानह भी उतार फेंकते हैं। अत्यन्त अरुण हो जाते हैं इनके पादतल। पावसमें भीगते रहेंगे और शीतऋतुमें भी क्रीड़ामें लगनेपर उपानह या चौतनी उतार फेंकेंगे। माताको बहुत सावधान रहना पड़ता है। सेविकाएँ इनकी क्रीड़ा देखनेमें मग्न होकर स्वयं अपनी सुध-बुध खो देती हैं। वे सावधान भी रहें तो बालक कहाँ उनकी सुनते हैं।

क्षत्रिय कुमार हैं। सहज स्वभावसे इन्हें शस्त्र प्रिय हैं। ये अवसर मिलते ही छुरिकाएं ही नहीं खड्ग तक उठा लेना चाहते हैं; किन्तु इतने अबोध बालकोंको शस्त्रोंके साथ तो क्रीड़ा नहीं करने दी जा सकती।

सब बालक समान समझदार नहीं होते। किसी बालकको गगनका शशि या कोई तारक लेनेकी धुन चढ़े तो वह चुपचाप रामके कानमें कह देगा और तब श्रीराम मचलेंगे उसे लेनेको। कभी नहीं कहेंगे कि वह पदार्थ किसी औरको चाहिए। राम रूठेंगे और कभी कुछ पटक देंगे, कभी लगुड़से

भाण्ड फोड़ेंगे। महारानी कैकेयीको भी तब कौसल्याजी या सुमित्राजीको बुलाना पड़ता है। महारानी सुमित्रा ही हैं कि वे अद्‌भुत बातें करके रामको मना लेती हैं। वही कहती हैं—'उस गगनके तारकमें क्या धरा है। मेरा लाल उड़ता तारक लेगा।'

नन्हा खद्योत माता श्रीरामकी अँगुलीपर बैठा देंगी और तब राम उसे लिये जिस उमङ्गसे तारक माँगनेवाले सखाके समीप जायँगे—देखने ही योग्य होती है वह छटा।

———

कर्णवेध

—*—

महर्षि वशिष्ठने परम पावन हेमन्त ऋतुके प्रथम मास मार्गशीर्षमें कर्ण-वेधका मुहूर्त निश्चित किया। यह मुहूर्त तो शरदागममें ही निश्चित हो गया, क्योंकि स्वर्णकारवर्गके प्रधानको धातु-शोधन करके सूचिका निर्माणका अवसर तो मिलना ही चाहिए था और राजकीय भिषक् भी समय चाहते। उन्हें भी तो कुमारोंकी कर्णपल्लीपर लगानेके लिए औषधीय तैलोंका पहिले परीक्षण कर लेना था। औषधीय तैल प्राचीन उत्तम होते हैं। पितामहके द्वारा निर्मित तैल अनेक हैं उनके समीप, किन्तु उनका परीक्षण आवश्यक लगा उन्हें।

औषधीय रसोंमें स्वर्णकारने अपनी अष्टधातु निर्मित तप्त सूचिकाएँ शीतल करना प्रारम्भ किया और वे उज्ज्वलसे उज्ज्वलतम होती गयीं। कितनी औषधियाँ कहाँ-कहाँसे मँगायीं उसने—धातुशोधक औषधियोंका उससे अधिक विशद ज्ञान किसे हो सकता है। उसे अपनी कुशलतापर गर्व है—उचित गर्व है, क्योंकि उसकी सूचिकाएँ अश्व-जानुका भेदन कर सकती हैं इतनी लाघव गतिसे कि सूचिका-वेधकी पीड़ाका अश्व अनुभव ही न कर सकें।

महाभिषक्ने व्रणारोपक तैलोंका बार-बार परीक्षण किया। पुनः-पुनः अपने इस सम्बन्धके ज्ञानको स्मरण किया। सब जानते हैं कि सुरभिषक् अश्विनीकुमार राजकुमारोंके कर्ण-वेधके समय स्वयं उपस्थित रहेंगे। चक्रवर्ती महाराजने उन्हें आमन्त्रित न भी किया होता तो भी यह सेवाका अवसर वे त्यागनेवाले नहीं थे, किन्तु उन्हें तो केवल उपस्थित रहकर पूजा-ग्रहण करना है। अयोध्याके महाभिषक् उनकी श्रद्धा, सम्मान सहित पूजा करेंगे, किन्तु अपना स्वत्व तो नहीं दे सकते। चिकित्सा प्रत्यक्ष शास्त्र है और महाभिषक्को इस शास्त्रका ज्ञान सुर-वैद्योंसे अल्प नहीं है। कोई औषधि ऐसी नहीं जो सुर-वैद्योंको प्राप्त हो और चक्रवर्ती सम्राट्के भिषक्के लिए अनुपलब्ध रह जाय।

महाराजने सभी सम्बन्धियोंको आमन्त्रित किया। कुमारोंके मातुल पधारे नाना प्रकारके उपहार लेकर। अयोध्याके ही नहीं सम्पूर्ण देशके कलाकारोंमें स्पर्धा चलने लगी थी कि किसके द्वारा निर्मित खिलौना या शिक्षित पक्षी अथवा पशु राजकुमारोंकी दृष्टिको आकृष्ट कर सकेगा।

देवाराधन, पितृ-तर्पण आदि तो होने ही थे। गगन सुर-विमानोंसे आच्छन्न, अनवरत झरती पुष्प-वृष्टि, किन्तु शीघ्र सुरोंने विमान विदा किये और वे सामान्य मानव रूप धारण करके सेवकोंमें मिलने लगे, क्योंकि विमानोंमें रहनेपर तो अयोध्याका कौशेय महामण्डप महोत्सव देखनेका सुयोग प्राप्त नहीं होने देता।

अरुण वर्ण, प्रवाल-महामाणिकोंकी झालरोंसे सजा महामण्डप और आज तो सेवकों, सेविकाओं, नागरिकों तकने अरुण वस्त्र धारण किये हैं। मण्डपमें केवल कदली स्तम्भ, कुश, आम्रपल्लव जैसे उपकरण ही हरित हैं और दुग्ध, दधि प्रभृति श्वेत, अन्यथा आज सम्पूर्ण सज्जा अरुण है। जैसे अनुराग उमड़ा पड़ रहा है दिशाओंमें।

श्रीचक्रवर्ती महाराज अपनी तीनों महारानियोंके साथ कुमारोंको अङ्कमें लिये पूजनमें लगे हैं। ऋषियोंकी वेद-ध्वनि वाद्योंकी ध्वनिके साथ गूंज रही है। उठ रही है यज्ञीय कुण्डसे सुरभित धूम्र कुण्डलियां। पूजन समाप्त हुआ और वाद्य-ध्वनि शान्त हो गयी। मण्डपमें शिक्षित मयूर नृत्य करने लगे, पक्षी चहकने लगे। कुमारोंके सम्मुख राशि-राशि रत्न-क्रीडनक;

किन्तु चारों राजकुमार तो किसी ओर देखते ही नहीं। श्रीराम पिताके अङ्कमें महाराजके ही मुखकी ओर देखने लगे हैं। इनके तीनों अनुज इनकी ओर देखते हैं।

स्वर्णकारने अनेक स्वर्ण-सम्पुट निकाले एकके पश्चात् एक और अन्तमें उनमें से रत्न-सम्पुटमें रखीं परम सुकोमल आस्तरणपर चार सूचियाँ—हीरक भी इतना निर्मल नहीं होता। जैसे चन्द्रकी चार रश्मियाँ वहाँ स्थिर सुप्त हों।

स्वर्णकारका, सूचियोंका पूजन कराके महर्षिने भिषक्-श्रेष्ठका पूजन किया। उन्होंने अपने उपकरण अपने समीप रखे और सम्मुख विराजमान सुरवैद्य द्वयको मस्तक झुकाया।

महाराजके अङ्कसे श्रीरामको अपने अङ्कमें लेकर भिषक्ने तनिक-तनिक कर्णपल्लियाँ खींची। नैसर्गिक छिद्र—सूर्य रश्मियाँ पार होती हों, वह शिशुकर्णका पारदर्शी छिद्र देख लेना था उन्हें, किन्तु श्रीरामके कर्णोंमें तो पारदर्शी चर्मसे वह आच्छादित नहीं है। यहाँ तो छिद्र प्रथमसे विद्यमान है! तब कर्ण-वेध कैसा? उन्होंने महर्षिकी ओर देखा।

'आप अपना कर्तव्य पूर्ण करें!' महर्षिने आदेश दिया—'हम सबको कर्तव्य ही पूर्ण करना है। उसकी आवश्यकता है या नहीं, यह विवेचन करनेका अधिकार शास्त्र हमें नहीं देता।'

'मैं आज्ञा पालन कर रहा हूँ देव!' महाभिषक्ने स्वर्ण-शलाकासे दोनों कर्ण-पल्लियोंपर छिद्र स्थान लाक्षाद्रवसे अङ्कित किया। इन्दीवर दलपर जैसे वीर वधूटी शिशु सो रहे हों।

'वत्स! कर्णपल्लीका स्पर्श मत करना!' महर्षिने श्रीरामके मुखकी ओर देखकर सस्नेह कहा—'अभी कई दिनों तक कर्णपल्ली अस्पृश्य रहेगी।'

शिशु श्रीराम, किन्तु ये और इनके अनुज तो अभीसे महर्षिका आदेश समझने और ऐसी निष्ठा-पूर्वक मानने लगे हैं कि कोई वृद्ध भी इतनी सावधानी न रख सके। महर्षिने आदेश दे दिया तो अब शिशुका हाथ पकड़ने—वारित करनेकी आवश्यकता कहाँ रही।

अवश्य तीनों अनुज उत्सुक हुए। तीनों ही चाहते थे कि माताओंके अङ्कसे उठकर अग्रजकी कर्णपल्लीपर चमकती नन्हीं लाल बूंदको देख लें।

महारानी कौसल्याने तो अपने अङ्कमें मचलते लक्ष्मणको पुचकारा—'वह रक्त नहीं है। वह तो लाक्षाद्रव है। यह अलक्तक जैसा मेरे पदनखमें लगा है। अभी तुम्हारी कर्णपल्लीपर भी लगेगा। तुम इतने उत्सुक क्यों हो ? महर्षिने आज्ञा दी है कि किसीकी कर्णपल्लीका स्पर्श न वह स्वयं करेगा और न तुम लोग करोगे।'

भरतकी कर्णपल्लीपर लाक्षाद्रव लगाया गया तो श्रीराम पिताके अङ्कसे उतर पड़े। अनुजकी कर्णपल्लीका स्पर्श तो उन्होंने नहीं किया, किन्तु कर्णपल्लीके समीप मुख ले जाकर फूँक मारने लगे।

'वत्स ! यह शीतल द्रव है !' भिषक्‌ने ही कहा—'इससे जैसे तुम्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, तुम्हारे अनुजको भी कष्ट नहीं हो रहा है।'

श्रीराम संकुचित होकर मुड़े और पिताकी क्रोड़ीमें बैठ गये। भिषक् श्रेष्ठने जब चारों राजकुमारोंकी कर्णपल्लियाँ चिह्नित कर लीं, उन्होंने पुनः श्रीरामको अङ्कमें लिया। इतने क्षण लाक्षाद्रवको शुष्क हो जानेके लिए पर्याप्त थे। अब उन्होंने चन्द्र धवल सूचिका उठायी। उसे औषधीय रससे आर्द्र किया। कर्णमें छिद्र कहाँ करना था। लाक्षाद्रवके बिन्दुसे जो नैसर्गिक छिद्र ढक गया था, उसमें से केवल सूचिका पार कर देना था। सूचिका पार करके, सूत्रमें ग्रन्थि देकर, औषधीय तैल लगा देनेमें महा-भिषक्‌को कठिनाईसे एक क्षण लगा।

एक क्षण—किन्तु यह क्षण भी महाराजको, महारानियोंको, दूसरे लोगोंको कितना कठिन लगा ! प्रायः सबके नेत्र बन्द हो गये थे। महा-भिषक् कदाचित् ही छिद्र कर पाते यदि उन्हें सचमुच ही छिद्र करना होता। उनके कर तो कर्णपल्ली निरीक्षणके समय ही कम्पित हो रहे थे, किन्तु वहाँ नैसर्गिक छिद्र देखकर स्वस्थ हो गये वे।

ऋषिगणोंका मन्त्रपाठ चलता रहा। चलता रहा नारियोंका मङ्गल गान। शिशुओंका कर्ण-वेध सम्पन्न हो गया। महाभिषक्‌ने एक-एकको क्रमशः अङ्कमें लिया और पृथक-पृथक सूचिका कर्णपल्लीमें पार करके सूत्र-ग्रन्थन किया। औषधीय तैल लगाया। यह सब चार क्षणमें पूर्ण कर दिया। अब तो प्रतिदिन राजसदन आकर उन्हें कुमारोंकी कर्णपल्लियोंपर

औषधीय तैल प्रातः-सायं लगा देना है। दशम दिन महोत्सव होगा सूत्र-मोचनका और तब सूत्रके स्थानपर स्वर्णकार स्वर्णके सूक्ष्म सूत्र पहिना देगा।

चारमें से किसी कुमारने किञ्चित भी आकुलता नहीं प्रकट की। अवश्य वे एक-दूसरेकी कर्णपल्लीमें बँधे सूत्रको निकटसे देखलेनेको उत्सुक थे। महर्षिने कर्ण-पल्लियोंका स्पर्श निषिद्ध कर दिया था, किन्तु जैसे ही माताओंने अङ्कसे उठनेका अवसर दिया, उन्होंने सबसे पहिले एकत्र होकर निकट सिर ले जाकर पूछा—'पीड़ा है ?'

'पीड़ा ?' राजकुमारोंने पीड़ाका नाम ही सुना है अब तक। पीड़ा होती क्या है, इन्हें पता नहीं, अतः ये तो हँसकर खेलनेमें लग गये।

'मेरे रामके कर्णोंमें अब रत्नकुण्डल झलमलायेंगे।' महारानी कैकेयीने अभीसे अनेक कुण्डल, अनेक वर्णोंके, अनेक आकारोंके बनवा लिये हैं। सभी महारानियोंमें यही उमङ्ग है, किन्तु अभी तो कुण्डलोंकी बात दूर है। सूत्र-मोचनके पश्चात् स्वर्ण-सूत्र, वह क्रमशः प्रति दस दिनपर तनिक मोटा होता जायगा। कुण्डलका क्रम भी आवेगा तो शिशुओंकी सुकुमार कर्णपल्ली नन्हेसे, भारहीन प्राय मौक्तिक कुण्डलोंका भार ही तो सँभाल सकती हैं।

कुमार-क्रीड़ा

—※—

अयोध्याके नागरिकोंका आनन्द शत-सहस्र गुणित हो उठा, जब चक्रवर्ती सम्राट्के कुमार राजसदनसे बाहर क्रीड़ाके लिए निकलने लगे। कितनी आकांक्षा थी सबकी कि कुमार उनके गृह, उनके आपण स्थान तक भी कभी पधारें। अब उस अभिलाषाके पुष्पित, फलित होनेका अवसर आ गया।

चरणोंमें स्वर्ण-रत्न-खचित उपानह, कटिमें कौशेय कछनी, स्कन्धपर दुकूल, कण्ठमें मौक्तिक माला, वनमाला, भुजाओंमें रत्नाङ्गद, कलाइयोंमें कङ्कण, अञ्जन रञ्जित खञ्जन मञ्जु विशाल दृग, तिलक भूषित भाल, कर्णोंमें रत्न कुण्डल, घुँघराली-सघन-सुकोमल अलकें, मस्तक मणि-रत्न खचित कुलहियोंसे मनोरम, करोंमें छोटे-छोटे धनुष और चमकते वाण। अभी ये परम सुकुमार इस योग्य कहाँ हैं कि कटिपर तूणीर धारण कर सकें। अभी तो सेवक इनके साथ निषङ्ग लिये चलते हैं, जब ये सरयू-पुलिनपर लक्ष्य-वेधकी क्रीड़ा करना चाहते हैं।

प्राय: एक ही रथमें चारों कुमार निकलते हैं। सेवक, मन्त्री, पुत्र साथ होते हैं और राजसदनसे बाहर आते ही अनेक रथ साथ हो जाते हैं। नगरके सभी बालक तो इनके साथ ही रहना चाहते हैं।

कोई श्रेष्ठि ऐसा नहीं कि राजकुमारोंका रथ निकले और वह सम्मुख करबद्ध न मिले। यह वर्ग तो प्रभातसे प्रतीक्षा ही करता रहता है और बड़े राजकुमार श्रीराम शील-सिन्धु हैं। ये पथमें किसीके अञ्जलि बाँधे सम्मुख मिलते ही सारथिसे कह देते हैं—'भद्र! रथ रोक लो! हम इन महानुभावका सदन—इनका आपणक देखेंगे।'

रथ प्राय: प्रतिदिन सरयूतट तक- रिक्त जाता है। अनुजों और सखाओंके साथ श्रीराम किसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दें? एकसे दूसरी दूकानको देखते, देव मन्दिरोंमें वन्दन करते ही ये पहुँच पाते हैं सरयू तट। सर्वांग अङ्गराग खचित, नागरिकोंकी मालाएँ, मन्दिरोंका प्रसाद-तिलक, देवप्रसादकी मालाएँ—नागरिक बालकोंको राजकुमार मालाएँ अपने कण्ठसे उतारकर वितरित करते चलते हैं।

चक्रवर्ती महाराजके सेवक, मन्त्री साथ चलते हैं—'राजकुमार जिस वस्तुको लेना चाहें, पूरा निष्क्रय दिया जाय! यह आज्ञा है, किन्तु वणिक कहाँ इसे स्वीकार करते हैं। उनका एक ही स्वर है—'हमारे पिता-पितामहकी परम्परासे प्राप्त सम्पत्ति सम्राट्का प्रसाद है। हमारा भाग्य ऐसा कहाँ कि महाराजाधिराजके कुमारोंकी अल्प सेवा भी कर सकें। कोई छुद्र उपहार तक भी राजकुमार स्वयं पधारनेपर स्वीकार न करें। ऐसा अपराध तो हमारा नहीं माना जाना चाहिए।'

वस्त्र, आभूषण, मिष्ठान्न, पुष्पसार, मालाएँ आदि सबके व्यापारी हैं। राजकुमार चाहे जब चाहे जिसकी प्रार्थनापर उसके यहाँ जा खड़े होते हैं और बालक अब चाहे जितना अस्वीकार करें, वह अपना श्रेष्ठतम उपहार राजसदन भेजेगा ही। मन्त्री प्रबन्ध कर देते हैं कि उसे निष्क्रय न कहकर राजकीय पारितोषिक अनेक गुणित प्राप्त हो जाय।

नगरके जो क्षत्रिय बालक हैं, सब राजकुमारोंके सखा ही हैं और सबका ही आग्रह—'राजकुमार आज उनके सदन पधारें।'

'आज अपने सखाओंको ले आना!' माताएँ, पिता बालकोंसे बार-बार आग्रह करते हैं। बालक जब श्रीरामका कर पकड़ लेते हैं—राम तो शैशवसे सङ्कोचीनाथ हैं। सब सखाओंका आग्रह प्रतिदिन भले न रखा जा सके, कुछका तो रखना ही पड़ता है।

सभी अयोध्याके सदन राजकुमारोंके अपने ही सदन हैं। सबकी गृह-स्वामिनी अपनी माता जैसी ही हैं। अन्तर इतना ही है कि इन सदनोंमें अत्यधिक समादर, बहुत अधिक उल्लाससे सत्कार होता है। राजकुमार चाहे जितने संकोची हों, कुछ आहार ग्रहण किये बिना वहाँसे कैसे चले जा सकते हैं।

राजकुमार जिस सदन, जिस आपण, जिस दिन पधारें वहाँ महारानियाँ तक अमित उपहार भेजेंगी ही। अयोध्यामें उस दिन उस सदनके सौभाग्यकी चर्चा चलती रहती है।

राजकुमारोंको कम अवकाश मिलता है सरयू-पुलिनपर क्रीड़ा करनेका। वसन्त और ग्रीष्ममें सायङ्काल तथा शीत ऋतुओंमें प्रभातके पश्चात् यह अवसर प्राप्त होता है। इसमें भी जानेके समय और लौटनेके समय भी बहुत-सा समय नागरिकोंका सत्कार स्वीकार करनेमें, उनके भवनोंमें जानेमें लगता ही है।

सखा-समूह तो एक दिन पहिलेसे आग्रह करता है—'कल मेरे गृह अवश्य चलना है।'

सरयू-पुलिनको राजसेवक स्वच्छ समतल करें, यह आवश्यकता कभी नहीं हुई। पता नहीं कब सुर अथवा नागरिक उसे स्वच्छ, सम कर जाते हैं। सुकोमल रेणुका-जैसे रत्नोंके कण चमकते हों उसमें और सुरभित सुकुमार पुष्पोंकी राशि-राशि जहाँ-तहाँ।

रथोंसे उतरकर बालक क्रीड़ा करते हैं। राजसेवक सहायता करने साथ आते हैं। वन पशुओंका समूह आ जाता है इस समय और राजसेवकों द्वारा रेखाङ्कित स्थानपर ऐसे पङ्क्तिबद्ध खड़ा रहता है, जैसे सुशिक्षित हो। केवल पक्षी बार-बार उड़ते हैं, चहकते हैं।

बालक कभी उपानह, उत्तरीय, कुलहियाँ कहीं उतार देते हैं अथवा गिरा देते हैं। दौड़-धूप, कलरव, आनन्दका अपार पारावार उमड़ पड़ता है पुलिनपर।

कन्दुक-क्रीड़ा हो अथवा दूसरी कोई प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ा हो, दल सुनिश्चित है। श्रीरामके साथ लक्ष्मण और भरतके साथ शत्रुघ्न। शेष सखाओंका भी निश्चय है कि कौन किस दलमें रहेगा। केवल तब जब दल विभाजन नहीं होता, एकाकी बालकको ही शेष सबको छिपनेपर ढूंढ़ना होता है, क्रीड़ाका क्रम परिवर्तित होता है।

प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ाओंमें श्रीरामके दलके सब बालक पूरे उत्साहसे खेलते हैं। पूरे उत्साहसे ही दूसरे दलके बालक भी खेलते हैं और अपने दलको विजयी बनानेका प्रयत्न करते हैं। लक्ष्मण सबसे अधिक उत्साहमें रहते हैं, किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न इसी प्रयत्नमें रहते हैं कि उनके अग्रज विजयी हों। लेकिन ऐसा होता कदाचित् ही है। श्रीराम खेलते ही ऐसे हैं कि भरतका दल पराजित होते-होते अन्तमें विजयी हो जाता है। कन्दुक क्रीड़ामें श्रीराम भरतके अनुकूल कन्दुक देने लगते हैं। दूसरे खेलोंमें भी यही करते हैं।

जहाँ तक छिपनेकी बात है, श्रीराम छिप नहीं पाते। जिस किसी कुञ्जमें छिपेंगे मयूर तथा दूसरे पक्षी वहीं एकत्र हो जायँगे। वैसे कोई सखा उनको स्पर्श करना नहीं चाहता, किन्तु वे तो स्वयं स्पर्शमें आ जाते हैं और जब उन्हें ढूँढ़ना हो, वे सीधे भरतको ढूँढ़ लेंगे।

भरत कितना भी प्रयत्न करें, कितना भी प्रयत्न करें लक्ष्मण कि श्रीरामका दल विजयी हो, विजय भरतके दलकी ही होती है और पराजित होकर भी श्रीराम विजयीके उल्लाससे भरतको अङ्कमाल देते हैं।

रेणु-सनी अलकें, मिटे-पुँछे अङ्गराग, अरुणमुखोंपर झलकते श्रम-सीकर, प्रायः मौक्तिक मालाएँ टूटी-बिखरी पुलिनपर—अद्भुत छटा।

परस्पर नियुद्ध (बाहुयुद्ध) चलता है, अथवा अश्वक्रीड़ा होती है लक्ष्यवेधकी स्पर्धा भी चलती है।

बालक अत्यन्त सुकुमार हैं। सेवक केवल प्रार्थना कर सकते हैं, बार-बार प्रार्थना करते हैं—'राजकुमार! अब आपके सखा श्रान्त हो रहे हैं। अब राजसदन लौटनेका समय हो गया।'

अनेक बारकी प्रार्थनापर, सायङ्काल अन्धकार होने लगे तब और प्रभातमें जब आतपमें प्रखरता आ जाय, रेणुका उष्ण होने लगे, तब कहीं श्रीराम लौटना स्वीकार करते हैं।

'चारों राजकुमार अत्यन्त सरल हैं।' बालकोंमें सब अपने माता-पितासे प्रत्येक गृहमें प्राय: एक ही बात कहते हैं—'श्रीराम सबसे अधिक मुझसे स्नेह करते हैं और भरत तो स्नेहकी मूर्ति ही हैं।'

'लक्ष्मण सदा इसी प्रयत्नमें रहते हैं कि मुझे क्रीड़ामें सबसे अधिक सुविधा प्राप्त हो।' सब बालकोंका अनुभव है—'कोई रेतपर भी गिरे तो लक्ष्मण देखने दौड़ आते हैं कि उसे कहीं आघात तो नहीं लगा। कन्दुक लगनेपर भी वे सखाके अङ्ग देखकर मानते हैं।'

'छोटे राजकुमार शत्रुघ्नको क्रीड़ामें कोई सुअवसर नहीं चाहिए।' बालकोंका अनुभव है—'जो कोई जैसा कहे, शत्रुघ्न उसीकी बात मान लेते हैं। अपनेको प्राप्त सुविधा समीपके सखाके पक्षमें वे छोड़ते ही रहते हैं।'

बालक्रीड़ा; किन्तु अयोध्याके बालकोंकी क्रीड़ामें स्पर्धा है—विवाद बहिष्कृत हो गया है। परस्पर सम्मान-दान है—झगड़ेका स्वप्न भी स्थान नहीं पाता। फलत: कोई कभी रूठेगा भी, यह कल्पना ही किसीके मनमें नहीं उठती।

मकरोद्धार

* * *

अगाध सलिला सरयू पावसमें ही होती हैं। यह पुण्य सरिता निर्मल-जला स्नान सुयोग्या ही रहती हैं वसन्त एवं ग्रीष्ममें। शरदागमसे ही इन स्वच्छ जलामें केवल मत्स्य-विहार चलता है। सरयू दिव्य-रूपा हैं। अतः श्रीरामकी सन्निधिमें ही इनका सहज निर्मल, निसर्ग सुखद स्वरूप प्रकट रहता है। श्रीरामके वियोगमें तो ये त्रेतामें ही आविला एवं कच्छप-गर्भा हो गयी थीं, पीछे भी ऐसी रहें तो क्या आश्चर्य। इनका रजत पुलिन तक श्रीरामकी सन्निधि न प्राप्त हो तो धूसर हो उठता है।

चक्रवर्ती महाराजके कुमार अल्पवयस्क हैं, सुकुमार हैं, किन्तु राज-कुमार हैं और राजकुमारोंके लिए दूसरी विद्याओंके समान सन्तरणका ज्ञान भी आवश्यक है। अतः वसन्तके द्वितीय माससे ग्रीष्मान्त तक कुमारोंको सरयू-स्नानकी अनुमति पितासे प्राप्त हो गयी है। अब राजकुमार प्रातः सायं दोनों समय सरयू-स्नान करने लगे हैं। राजकुमारोंके साथ इनके सखा भी स्नानका सुयोग प्राप्त करते हैं।

श्रीराम अपने अनुजों तथा सखाओंके साथ रथोंमें बैठे आते हैं। पुलिनपर उत्तरीय, कुलहियाँ, वनमाला आदि उतारकर जलमें प्रवेश करते हैं। सन्तरण निपुण सेवक कुमारोंको सन्तरण-शिक्षा देनेके लिए तथा सुरक्षाकी दृष्टिसे सावधान जलमें समीप ही रहते हैं।

राजकुमारोंमें किसीको भी सन्तरण-शिक्षा पूरे सप्ताह भी नहीं देनी पड़ी। एक बार शिक्षकोंने समझाया और कुमार जलपर उस पद्धतिसे तैर चले। यह तो शिक्षकोंने विलम्ब किया अभ्यासकी दृष्टिसे कि सन्तरणकी एक पद्धतिको एक दिनमें सिखलाया। उदर एवं वक्षके सहारे, पीठके बल, पार्श्वसे, खड़े-खड़े, केवल करोंसे अथवा केवल पदके सहारे मण्डूकप्लुति, मत्स्य सन्तरण, मकर-पद्धति, निस्पन्द-जलासन प्रभृति पद्धतियोंको कुमारोंने प्रथम शिक्षणमें ही ग्रहण कर लिया। शिक्षकोंको केवल दर्शक रहना था। सखा बालकोंका शिक्षण राजकुमार ही करने लगे।

शत-शत बालक सरयूके निर्मल जलमें कर-चरण उछालते सन्तरण करते हैं। कमल जैसे अरुण-सुकुमार कर-चरण, उत्फुल्ल श्रीमुख, उच्छलित बिन्दु, बालकोंका हास्य और प्रसन्न कोलाहल गूँजता है। परस्पर एक-दूसरे को करोंसे जल उछाल कर सींचते हैं। भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण भी दूसरे बालकोंके साथ श्रीरामका अङ्ग-घर्षण करने लगते हैं अथवा उनपर जल डालते हैं। श्रीराम तो अनुजोंका ही नहीं, किसी भी सखाका अङ्ग घर्षण करने लगते हैं।

कटिसे कुछ ही ऊपर तक है यहाँ सरयूकी धारा। निर्मल तलदर्शी जल। सहस्र-सहस्र छोटी बड़ी मछलियाँ आ जाती हैं और वे बालकोंके अङ्गोंके घुले अङ्गरागका पान करनेके लिए परस्पर एक दूसरीके ऊपर उछलती हैं। किसी भी बालकके पाद-तल अथवा अङ्गको जब उनमें-से कोई अपना दन्तहीन मुख लगाती है, एक गुदगुदी होती है। बालक उछल पड़ता है और सखाओंके साथ स्वयं भी हँसता है खुलकर।

सरयूकी धारा निष्कल्मष—निरुपद्रव है यहाँ। न सिवार है और न खरनाल कमल हैं। कच्छप-मण्डूक तक नहीं। केवल रङ्ग-विरङ्गी मछलियाँ हैं और वह भी बहुत बड़ी नहीं हैं। बालकोंके विनोदका ही साधन हैं वे। सेवक तटके समीप ही खड़े रहते हैं। बालकोंको क्रीड़ामें उन्हें व्याघात बनना नहीं है और यहाँ किसी भी आशङ्काका कोई कारण नहीं है।

प्रायः सभी बालक सन्तरण-निपुण हो गये हैं। अब वे धाराकी ओर कुछ दूरी तक तैरकर चले जाते हैं और फिर पुलिनपर निकलकर दौड़ते आते हैं पूर्व स्थानपर जलमें छलांग लगाने। राजकुमारोंको यह क्रीड़ा प्रिय है।

जल पड़नेसे अरुणाभ लोचन अलकोंसे झरते बिन्दु, सम्पूर्ण आर्द्र श्रीअङ्ग, कटि-नितम्बसे चिपके भीगे कौशेय वस्त्र, अङ्गराग धुले परम मनोहर अङ्गोंकी शोभा सेवक अपलक देखते हैं। उन्हें अपने शरीरका स्मरण ही नहीं रह जाता। अब तो वे तब सावधान होते हैं जब राजकुमार स्वयं जलसे निकलते हैं स्नान समाप्त करके। कुमारोंके अङ्ग-लाञ्छन, वस्त्र-परिवर्तनादिमें सेवकोंको सहायताका स्मरण तब होता है।

'रामभद्र ! देर तक सन्तरण करने मत जाओ !' सेवकोंमें जो वृद्ध थे, प्रधान थे, अनुभवी थे, उन्होंने पुकारा।

सरयूमें आगे कुछ दूरीपर एक ह्रद था, किन्तु इतनी दूर था कि बालकोंके वहाँ तक जानेकी सम्भावना नहीं थी। श्रीराम प्रवाहकी ओर आज कुछ अधिक ही दूर अकेले सन्तरण करते चले गये। वे थोड़ी दूर जाकर पुलिनपर निकलेंगे और दौड़ आवेंगे, यही आशा थी, किन्तु वहाँ जलमें खड़े होनेके पश्चात् जब वे पुन: आगे जाने लगे तो सेवकने पुकारा।

'मेरे पद पकड़कर यह जलचर मुझे ले जा रहा है।' श्रीरामने उच्च स्वरमें कहा—'सम्भवत: मकर है।'

स्वरमें कोई विह्वलता, भय अथवा आतुरता नहीं। जैसे यह भी सन्तरण-क्रीड़ाका ही कोई अङ्ग हो। श्रीराम तो इसे भी विनोद मान रहे हैं, ऐसा स्वर।

'मकर!' एक साथ सेवकों तथा बालकोंने चीत्कार किया। अनेक सेवकोंने जलसे निकलकर तटसे अस्त्र उठाए और दौड़े। बालकोंको यह भी स्मरण नहीं आया कि जलसे निकल कर वे शीघ्र वहाँ पहुँच सकते हैं। वे जलमें ही पूरे वेगसे सन्तरण करते बढ़े।

किसीको अवकाश नहीं था दूसरेकी ओर ध्यान देनेका। यदि कोई देख पाता—गगनसे सुरोंने, सिद्धोंने देखा कि भरत, शत्रुघ्न बालकोंके आगे बढ़े जा रहे हैं और उनसे भी आगे बढ़े जा रहे हैं लक्ष्मण। अरुण-लोचन, प्रतप्त ताम्र-मुख लक्ष्मणने प्रवाहकी ओर छलांग लगायी और दो हाथ तैरते न तैरते उनके मुखसे हुंकार निकली।

लक्ष्मणकी हुंकार—बालक लक्ष्मणकी हुंकार नहीं, ऐसी हुंकार कि सिद्ध-सुर सब काँप उठे। ऐसे सङ्कटमें भी सेवकोंने चौंककर पीछे देखा—'यह इतनी भयङ्कर हुंकार!'

बालकों तथा सेवकोंके आर्तनादसे ही श्रीराम चौंक गये—'तो यह विनोद नहीं है। यह मकर कोई दुरभिप्राय रखता है। यह भयप्रद हो सकता है!'

लक्ष्मणकी हुंकारके साथ भरतने पूरे वेगसे आगे बढ़कर लक्ष्मणके पृष्ठ देशपर कर रखा। लक्ष्मणका ध्यान उस कर-स्पर्शकी ओर जा नहीं सकता था, किन्तु तभी श्रीरामका गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा—'लक्ष्मण!'

श्रीराम जलमें खड़े हो गये थे और अपना वाम पाद उन्होंने मकरके ऊपर रखकर उसे बलपूर्वक दबा दिया था। यह करके लक्ष्मणकी ओर देखकर उन्होंने पुकारा था। लक्ष्मणका आवेश शिथिल पड़ गया था।

'मकर!' सेवक तब तक दौड़ते वहाँ समीप पहुँच चुके थे शस्त्र उठाये।

'वह तो अब नहीं है!' श्रीरामने जलमें अपने चरणोंकी ओर देखा और सेवक जलमें कूदें, इससे पूर्व ही तटकी ओर चल पड़े।

सब बालक अब सावधान हुए। सब जलसे निकलकर पुलिनपर श्रीरामकी ओर दौड़े। सबने—अनुजोंने, सखाओंने, सेवकों तकने श्रीरामका वह दक्षिण पाद देखा ध्यान पूर्वक। कोई आघात नहीं, केवल चिह्नमात्र मकरके पकड़नेका।

सेवकोंका समूह जलमें कूद पड़ा। दूर तक सरयूके प्रवाहको उन्होंने प्रायः मथ डाला, किन्तु उन्हें मकर तो क्या, कोई कच्छप भी नहीं मिला।

बालकोंके सरयू-स्नानमें कोई व्याघात नहीं हुआ, क्योंकि जब भी चक्रवर्ती महाराजने कुलगुरुसे इस दुर्घटनाका समाचार निवेदन किया, उन सर्वज्ञने दो क्षण नेत्र निमीलित रखे और फिर कह दिया—'राजन्! भयकी कोई बात नहीं है। आपके कुमार भुवन-भयहारी हैं। इनको भय उपस्थित करनेकी शक्ति ही सृष्टिमें नहीं है। कोई शप्त प्राणी आपके ज्येष्ठ कुमारके पाद-स्पर्शसे परित्राण प्राप्त कर गया, इसमें आशङ्काके लिए कारण नहीं है।'

महर्षिने आश्वस्त कर दिया, अतः आशङ्का किसीके भी मनमें स्थान नहीं प्राप्त कर सकी।

स्वर्णिम कपि

विश्वनाथ सदाशिवको कैलासमें न रहना रुच रहा था और न समाधिमें बैठनेकी इच्छा थी। वे भगवान् भूतनाथ जबसे भुशुण्डिको अयोध्या पहुँचा गये थे, उन्हें भी अयोध्याका आकर्षण अपनी ओर खींच रहा था। वे भी अयोध्यानाथके दूर्वादल श्याम श्रीरामकी झाँकीके लिए अत्यन्त आतुर थे। दूसरे उनका तो सहज स्वभाव है अधिकारी प्राणीको श्रीरघुनाथके चरणों तक पहुँचाना। अतः वे एक दिन अञ्जना शिखरके समीप पहुँचे और एकान्तमें केशरी-किशोरसे मिलकर बोले—'तुम्हारे आराध्य अयोध्यामें अवतीर्ण हो चुके। तुम अब यहाँ कब तक रहना चाहते हो?'

'आपका अनुग्रह जब तक मुझे उन चरणों तक पहुँचा नहीं देता।' श्रीपवनकुमारने पद-वन्दना की—'कोई कपि चक्रवर्ती सम्राट्के कुमारके समीप स्वयं पहुँचनेकी धृष्टता भी करे तो राजसेवक उसे दूरसे ही मार भगावेंगे।'

'तुम अभी मेरे साथ चलो।' शङ्कर बाबा तो आये ही इसी अभिप्रायसे थे। ये श्री आञ्जनेय उनके ही अंश हैं।[1] ये श्रीरामके समीप रहें तो स्वयंके रहने जैसा सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

हर और हनुमान दोनोंको अयोध्या पहुँचनेमें विलम्ब नहीं लगना था। दोनों आकाश-मार्गसे सरयूके पार वनमें उतरे, किन्तु जब इन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया, भगवान् उमाकान्त मदारी बन चुके थे और उनके साथ एक छोटा स्वर्णिम कपि था रस्सीमें बँधा।

डमरूका डिम्-डिम् घोष, कपिकी क्रीड़ाने शीघ्र नगरके बालकोंको

---

१. 'आञ्जनेयकी आत्मकथा'में हनुमानजीके शिवांशसे उत्पन्न होनेकी कथा आ चुकी है।

आकृष्ट किया। एक बालकने ही दौड़कर श्रीरामको सुनाया—'नगरमें एक मदारी आया है। उसका कपि स्वर्णपीत है, अत्यन्त कोमल रोम और ऐसी क्रीड़ा दिखलाता है, ऐसे पदोंसे चिपककर आ बैठता है कि आप बहुत प्रसन्न होंगे उसे देखकर!'

श्रीरामने पितासे कहा—'आपकी अनुमति हो तो मैं अनुजोंके साथ कपि-क्रीड़ा देख आऊँ।'

'उसे यहीं बुला लेते हैं!' महाराजने कहा और राजसेवक भेज दिया।

मदारी आया। उसने भूपतिको, कुलगुरुको अद्भुत ढङ्गसे मस्तक झुकाया और उसका कपि तो सभी गुरुजनोंके चरणोंमें सिर रख आया। उसने चारों राजकुमारोंकी चरण-वन्दना की और श्रीरामके पदोंसे सटकर बैठ गया।

मदारीने आज्ञा पाकर डमरू बजाना प्रारम्भ किया। कपि कुलाँचें लेने लगा। उसने अनेक योगासन—कठिनतम आसन दिखलाये और मदारीके कहनेपर जब वह नासिकापर कर रखकर प्राणायामका अभिनय करने लगा राजकुमार खुलकर हँस पड़े।

मदारीका डमरू बजता रहा और कपि क्रीड़ाका प्रदर्शन करता रहा। बालक सबसे आगे खड़े थे। सहसा श्रीराम मुड़े और पिताके अङ्कमें जा बैठे। लक्ष्मण छायाके समान अग्रजके साथ लगे रहनेके शैशवसे अभ्यासी हैं। रामने महाराजसे कहा—'आप मदारीसे कपि मुझे दिला दें।'

'वत्स! वह मदारीको बहुत प्रिय होगा।' महाराज सङ्कोचमें पड़ गये। किसी कलाजीवीको उसका पशु कितना प्रिय होता है, यह वे जानते हैं। ऐसा प्रस्ताव करना भी उचित नहीं। सम्राट्का प्रस्ताव ही पर्याप्त बड़ा दबाव होता है। राम महाराजको प्राणके समान प्रिय। प्रायः कभी कुछ न माँगनेवाले। आज कैसे इनका अनुरोध महाराज अस्वीकार करें? शिथिल कण्ठसे कहा—'वह किसी भी निष्क्रयमें कदाचित ही कपिको देना स्वीकार करेगा।'

'मैं पूछता हूँ!' लक्ष्मणने सोत्साह कहा और महाराजके उत्तरकी प्रतीक्षाके बिना दौड़ गये। बालकपर तो कोई मर्यादा—बन्धन होता नहीं।

मदारीके समीप जाकर उन्होंने कहा—'मदारी ! हमारे अग्रज तुम्हारा कपि चाहते हैं। तुम कपि उन्हें दे दो ! तुम जो भी कपिका निष्क्रय चाहो, पिताश्री तुमको अवश्य दे देंगे।'

'अच्छा राजकुमार !' मदारीने डमरू बजाना बन्द किया और लक्ष्मणकी ओर देखकर सस्मित बोला—'आप अपने अग्रजको ले आइये। वे पहिले कपिको लेकर नृत्य कराके देख तो लें !'

लक्ष्मण फिर दौड़े और अग्रजके समीप जाकर बोले—'आप चलो। मदारी आपको कपि देनेके लिए बुलाता है।'

श्रीराम पिताके अङ्कसे उतरे और छोटे भाईके साथ दौड़ आये। महाराजने मन ही मन मदारीके औदार्यकी प्रशंसा की। वे उसे जो वह निष्क्रय माँगे दे देनेको प्रस्तुत ही थे। यह कोई समस्या नहीं थी। उसने राजकुमारका प्रस्ताव स्वीकार करके सिंहासनका अकल्पित सम्मान किया था।

कपिने लक्ष्मणके चरणोंपर फिर सिर रखा और श्रीरामके दक्षिण पादको दोनों करोंसे पकड़कर बैठ गया। मदारीने रस्सी बढ़ा दी श्रीरामकी ओर—'राजकुमार इसे नचाकर देख लें।'

श्रीरामने वह रज्जु हाथमें नहीं ली। रज्जु भूमिपर गिर पड़ी। वे कपिके समीप बैठ गये और उसके कण्ठसे रज्जु खोलने लगे। लक्ष्मणने प्रसन्न होकर ताली बजायी—'आर्य उचित करते हैं। बेचारा कपि बन्धनसे कष्ट पाता होगा।'

'राजकुमार ! इसे खोल देंगे तो यह भाग जायगा।' किसी प्रौढ़ने आशङ्का प्रकट की। किसने कहा यह बात ? इसे न श्रीरामने देखना चाहा, न लक्ष्मणने ही। श्रीरामका स्वभाव बन्धन देना नहीं है। ये बन्धन-मुक्त करनेवाले पाशछेत्ता हैं।

लक्ष्मणनें कपिके मस्तकपर कर रखकर कहा—'आर्य तुझे बन्धन-मुक्त कर रहे हैं। तू भागना मत।'

कपिने लक्ष्मणके मुखकी ओर मुख उठाकर देखा और वह श्रीरामके पदोंसे और चिपक गया। उसकी कण्ठमें बँधी रज्जु खोलकर श्रीराम खड़े हुए। ताली बजाकर उन्होंने कपिसे कहा—'अब तू नृत्य कर !'

कपि उछलने, कूदने लगा। उसने फिर अनेक आसन दिखलाये। सबका यह सन्देह शीघ्र दूर हो गया कि कपि रज्जुके संकेतके अनुसार कार्य करता है। महाराजके मन्त्रियों तकने कहा—'यह नन्हा कपि तो बालकोंकी बात समझता है।'

बालकोंमें-से कोई भी कपिको किसीके समीप जानेका आदेश देता था और वह जिसके पास जानेको कहता था, कपि उसीके समीप जाकर उसके पदोंसे सटकर बैठ जाता था।

'महामन्त्रीके कन्धेपर बैठ जाओ!' किसी बालकने आदेश दिया। कपिने बालककी ओर देखा और सुमन्त्रके पदोंके पास जा बैठा। लक्ष्मण प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'आर्यका कपि अशिष्ट नहीं है।'

'यह तो हम सबका है।' श्रीराम कहाँ कुछ अपना बनाकर रखते हैं। सभी बालकोंका वह कपि हो गया था। सबके उचित आदेश मानने लगा था।

'मैं इसे जननीके समीप ले जाऊँ?' श्रीरामने महाराजसे आज्ञा माँगी।

'अवश्य ले जाओ।' महाराजने प्रसन्न-मुख आज्ञा दी।

'मदारी!' अब तक तो सबका ध्यान कपिकी ओर, उसकी क्रीड़ाकी ओर था। अब जब कपिको लेकर बालक राजभवनमें भीतर जाने लगे, महाराजने मदारीको पुकारा, किन्तु अब वहाँ मदारी कहाँ था। राजसेवक भेजे गये। महाराजको खेद हुआ कि कहीं मदारी खिन्न होकर, अपने कपिके वियोगसे दुःखी होकर न चला गया हो।

दूर दूर तक अश्वारोही राजसेवकोंको ढूँढ़नेपर भी मदारी नहीं मिला तो महाराजने कुलगुरुके चरणोंमें प्रार्थना की। सर्वज्ञ महर्षिने सस्मित कहा—'राजेन्द्र! आप जानते हैं कि सुर आपके मित्र हैं। उनमें कभी कोई किसी वेशमें आपके राजकुमारोंको प्रसन्न करने आ जाय, इसके लिए आप चिन्ता क्यों करें!'

सुर नहीं चाहते कि उन्हें धरापर पहिचान लिया जाय तो महाराज ही क्यों आग्रह करते।

राजकुमारोंके साथ कपि राजसदनमें गया। उसने सभी रानियोंकी

पद-वन्दना की। वह राजकुमारोंके साथ रहने लगा। रात्रिमें भी वह श्रीरामकी शैय्याके नीचे सो जाता था।

महारानियाँ कपिसे बहुत प्रसन्न थीं। वह कभी तो किसीको दाँत दिखाकर डराता नहीं। कभी किसीके कन्धेपर नहीं चढ़ता। कहीं कुछ उठाता-तोड़ता नहीं। कहीं अस्वच्छता नहीं फैलाता। वह भवनपर, स्तम्भोंपर चढ़ता-फुदकता है, यदि इससे राजकुमार प्रसन्न हों। उपवनमें राजकुमारोंके संकेतपर पक्व फल तोड़कर उन्हें देता है। सरयूमें उनको स्नानके समय सन्तरण करके प्रसन्न करता है।

कपिमें एक ही विशेषता निकली, वह कुछ खाद्य दो तो लेकर सूँघकर भूमिमें छोड़ देता है। राजकुमारोंमें कोई जब तक फल या मिष्ठान्नको मुख न लगा दे, वह उसे खाता ही नहीं। किसीके करसे वह कुछ छीनेगा, इसकी तो सम्भावना ही नहीं।

'तुम अब किष्किन्धा चले जाओ सुग्रीवके समीप।' एक दिन एकान्तमें श्रीरामने कपिसे कहा—'हम वहीं आवेंगे।'

अयोध्यामें कपि केवल कुछ मास रहा। सहसा उसके कहीं चले जानेसे सबको आश्चर्य हुआ—'श्रीरामसे इतना हिला-मिला कपि चला कैसे गया?'

श्रीराम कपिके जानेसे उदास नहीं हुए। उन्होंने कपिकी खोज नहीं की, अतः उसका कोई व्यापक अन्वेषण नहीं हुआ। अनेकोंको कपिका जाना ही उचित लगा। राजकुमार कपिके साथ सदा तो लगे नहीं रह सकते थे।

उपनयन

अयोध्याके राजकुमार सात वर्षके हो गये। उत्तम विधि यही है कि ब्राह्मण कुमारका उपनयन संस्कार पाँचसे सात वर्षकी वयमें, क्षत्रियका सातसे नौ वर्ष और वैश्य बालकका नौसे द्वादश वर्षकी वयमें कर दिया जाय। इसके पश्चात् तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है।

महर्षि वशिष्ठने शरदागममें ही निश्चित कर दिया कि वैशाख मासमें राजकुमारोंका उपनयन होगा। उपनयनके उपयुक्त मास शीतकालका प्रारम्भ अथवा वसन्त ही हुआ करता है, क्योंकि ब्रह्मचारी बालकको क्रमशः बढ़ते शीत अथवा ग्रीष्मको सहन करनेका अभ्यास होता है। इसमें भी वसन्त अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि ग्रीष्म एवं पावसमें अनाच्छादित रहनेका अभ्यस्त शरीर सरलतासे शीत सहन कर लेता है।

कैकय, दक्षिण-कोसल, सौमित्रादि सभी देशोंके सम्बन्धी-जन आये हैं। सामन्त नरपति आये हैं और देवता भी आये हैं। महाराज दशरथके कुमार उपनीत होकर भिक्षाटन करेंगे। उनकी झोलियोंमें भिक्षा प्रदानका सौभाग्य क्या छोटा है। सबने महीने पूर्वसे योजना बनाना प्रारम्भ किया था कि वह भिक्षा-झोलीमें क्या अर्पित करेगा।

नापित श्रेष्ठको पुनः राजकुमारोंका मुण्डन करना था। कर्तव्य चाहे जितना निष्ठुर हो, उसका पालन तो करना ही पड़ता है। प्रारम्भिक पूजन-तर्पणादि करके चारों कुमारोंने क्रमशः मुण्डन कराया। इनके मस्तक शिखा-शोभित हुए।

केशरपीत मुण्डित मस्तक। स्नानके अनन्तर कौशेय कटिसूत्र त्यागकर सविधि मौञ्जी-मेखला धारण की कुमारोंने और कौपीन लगायी।

महर्षि वशिष्ठ ऋषिगणोंके साथ कुमारोंसे आजकी विधियाँ सम्पन्न करा रहे थे। सस्वर मन्त्रपाठ चल रहा था। चारों ही कुमार इस प्रकार निर्दिष्ट क्रियाएँ सम्पन्न कर रहे थे जैसे सदासे वे इन क्रियाओंको करते आये हैं।

कुशास्तरण, अग्निका पर्युक्षण, समित् हवन, मृगचर्म धारण, दण्डाच्छेय प्रभृति समस्त क्रिया सविधि सम्पन्न हुई। महर्षि वशिष्ठने दक्षिण कर्णमें तीन बार क्रमशः चारों कुमारोंको गायत्रीका उपदेश किया। श्रीराम और उनके अनुजोंके महर्षि सविधि आचार्य हो गये।

रघुकुलगुरु महर्षि—उनके इन नूतन शिष्योंको किसी उपदेशकी आवश्यकता नहीं। इन्होंने शैशवमें भी कभी कोई प्रमाद नहीं किया, किन्तु जो विधि है, उसका पालन तो किया ही जाना चाहिए। अतः महर्षिने उपनीत ब्रह्मचारीके कर्तव्योंका उपदेश किया—'भद्र ! तुम लोग तीनों समय स्नान करके गायत्रीका जप करना। अग्निकी अर्चनामें तथा स्वाध्यायमें प्रमाद मत करना। संयम पूर्वक रहना।'

ब्रह्मचारियोंने आचार्यका उपदेश 'ओम्' कहकर स्वीकार किया। 'भद्र ! तुम लोग भिक्षा ले आओ !' अन्तमें महर्षिने अनुमति दी और आदेश किया—'कहीं भी व्यर्थ बातचीत मत करना। किसी क्रीड़ामें मत लगना। किसीसे भी विनोद मत करना।'

ये आदेश विधिके अङ्ग हैं, अतः दुहराये जाने थे। मुण्डित मस्तक हरिद्रापीत, क्योंकि ब्रह्मचारी केशरका उपयोग नहीं करता। कटिमें मौञ्जी मेखलामें लगी वल्कल कौपीन वाम कक्षमें मृगचर्म और वाम करमें पलाश-दण्ड। नवीन पीत यज्ञोपवीतधारी, बद्ध गोखुराकृति शिखाएँ, दक्षिण करमें झोली लिये चारों नूतन ब्रह्मचारियोंकी शोभा वर्णन अशक्य है। दैत्येन्द्र बलिकी यज्ञशालामें सम्भवतः ऐसे ही तेजस्वी ब्रह्मचारी वामनको देखकर आचार्य शुक्र तक ससंभ्रम उठ खड़े हुए थे।

'भवति ! भिक्षां देहि।' नियमतः माता कौसल्याको भिक्षादानका प्रथम सौभाग्य मिलना था। महारानीने अपने चारों कुमारोंकी झोलियाँ रत्नोंसे परिपूर्ण करदीं।

ये ब्रह्मचारी यदि अब बार-बार झोलियाँ महर्षिके सम्मुख रिक्त न कर दिया करें तो इनकी झोलियाँ तो प्रथम ही भर दी गयीं। जिसके सम्मुख ये झोली फैलावेंगे, वह उस झोलीको किञ्चित् भी अपूर्ण रहने देगा ? आज किसीको इस सम्मानसे कैसे वञ्चित किया जा सकता है कि उसने उपनीत राजकुमारोंकी झोलीमें भिक्षा डाली है।

'महाराजको मेरी एक विशेष सेवा करनी है।' महर्षि वशिष्ठने बीचमें ही महाराजसे कहा—'सेवकोंको, मन्त्रियोंको आदेश करदें कि कुमारों-की भिक्षा झोलीमें प्राप्त रत्न-मणि, आभरणादि मेरे प्रसादरूपमें समस्त नगरजनों एवं आगतोंको वितरण करें। हम ब्राह्मणोंके आश्रममें तो ये पाषाण-खण्ड अनुपयोगी होते हैं।'

प्रत्येकको—सेवकों तकको सम्मानित करना है। ब्रह्मचारीको सबसे भिक्षा लेनी है। सबका सन्तोष सम्पादन करना है। सभीके हृदय पता नहीं कबसे उमङ्गमें हैं, कबसे इस दिनकी प्रतीक्षामें हैं और उपनीत ब्रह्मचारीकी झोलीमें भिक्षामें प्राप्त पदार्थ तो आचार्यके ही होते हैं। महर्षि यदि तत्काल वितरणका आदेश न देते, प्राङ्गणका मण्डप उनकी महती राशिसे किसीके भी खड़े रहनेके योग्य भी नहीं रह जाता।

विलम्ब लगा—विलम्ब लगना था भिक्षाटन पूर्ण होनेमें। चारों कुमारोंको प्रत्येकके सम्मुख जाना था। प्रत्येक उनकी झोलियाँ भर देता था और उन्हें आचार्यके सम्मुख रिक्त करने लौटना पड़ता था। सुकुमार राजकुमार, श्रमसे सर्वथा अपरिचित और भरी झोलियाँ रत्न, स्वर्णसे भरी झोलियाँ बार-बार ढोकर आचार्यके सम्मुख लाना था उन्हें। ब्रह्मचारी किसीकी सहायता नहीं ले सकता। उसे अपना कार्य स्वयं करना चाहिए। राजसेवक, सखा, स्वजन, विप्रगण—कोई सहायक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

माताओंका हृदय व्याकुल होता है। महर्षिको भी यह श्रम कुमारोंके लिए अधिक लगता है, किन्तु चारों कुमार प्रसन्न हैं। उमङ्गमें हैं और झोली लानेमें तथा किसीके सम्मुख पहुँचनेमें इनकी पदगति शिथिल नहीं हुई है। मुख कमल अरुण हो उठे हैं और स्वेदकण झलमला आये हैं, किन्तु उत्साहमें हैं ये। इनके उत्साहको भङ्ग नहीं किया जा सकता।

'राजन्! शासकको अनेक अप्रिय कर्तव्योंका पालन करना पड़ता है।' महर्षिने चक्रवर्ती महाराजको अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि देखकर उन्हें कुछ कहनेका अवकाश नहीं दिया—'जिस सम्पत्ति—जिस पदार्थका कोई स्वामी न हो, कोई उसे स्वीकार न करता हो, वह राजकोषमें जाती है, क्योंकि राजकोष राजाका नहीं है। वह तो राज्यकी सम्पूर्ण प्रजाकी सेवाके लिए सुरक्षित निधि है।'

सम्पूर्ण नगरजन, समस्त आगत नवीन ब्रह्मचारियोंकी झोली भर रहे थे। सुर एवं सुराङ्गनाएँ भी नागरिकोंमें सम्मिलित हो गये थे इस अवसर पर और उनमें महालक्ष्मी, भगवती अन्नपूर्णा नहीं होंगी, कौन कह सकता था। भिक्षा झोलियोंसे रत्न ही नहीं अलभ्य निधियाँ निकल रही थीं। दुर्लभतम रत्न, अमित प्रभाव पदार्थ और राजसेवक महर्षिके प्रसाद स्वरूप पदार्थोंका वितरण करनें लगे तो कोई भी दो रत्न या अञ्जलिभर मणियाँ लेनेको प्रस्तुत नहीं था। महर्षिका प्रसाद—इस पावन अवसरका प्रसाद मानकर कोई एक वस्तु ही स्वीकार की जा सकती थी। महर्षिके नवीन शिष्य जो राशि-राशि पदार्थ उनके सम्मुख एकत्र करते जा रहे थे, वह ढेरी राजसेवक वितरण करनेमें असमर्थ थे। उसके गृहीता ही उपलब्ध नहीं थे। चक्रवर्ती महाराज यही प्रार्थना करना चाहते थे अपने कुलगुरुसे, किन्तु महर्षिने प्रार्थनाका अवसर ही नहीं दिया।

सब जानते हैं कि महर्षि वशिष्ठके आश्रममें कामधेनुकी नन्दिनी रक्तोज्वल कर्बरा नन्दिनी है। वह सुरधेनु क्षणार्धमें नवीन सृष्टि करनेमें समर्थ है। लोकपाल कुबेर और देवराज इन्द्र भी महर्षिको कुछ देनेकी स्पृहा नहीं कर सकते। उन्हें कोई क्या देगा। वे परम वीतराग—निखिलैश्वर्य जिनके चरण चूमनेको सदा समुत्सुक हों—वे अत्यन्त विरक्त। श्रीराम और उनके अनुजोंके आचार्य होनेका गौरव उनका ही अधिकार है।

महर्षिने कृपापूर्वक कुछ स्वल्पांश भिक्षा झोलियोंसे प्राप्त पदार्थोंका अपने आश्रम भेजनेकी अनुमति दे दी। महर्षिके ही अनुरोधपर उपस्थित ऋषि-मुनियोंने, विप्रवर्गने भी कुछ सेवा स्वीकार करली। इन तापस विरक्तोंको थोड़े दक्षिणावर्त शङ्ख, कुछ पावन प्रभाववाले पदार्थ ही तो दिये जा सकते थे।

दिनके चतुर्थ प्रहरमें कुमारोंने भिक्षाटन समाप्त किया। ब्रह्मचारियोंको आज उपोषित रहना था। आहार तो उन्हें सायङ्काल गुरु-गृहमें ग्रहण करना था। भिक्षाटनके पश्चात् शेष विधियाँ महर्षिने शीघ्र पूर्ण करदीं।

ऋषिगण, विप्रवर्गको आज महाराजका अतिथि होना था, किन्तु महर्षिको तो अपने इन नूतन अन्तेवासियोंके साथ अपने आश्रम जाना था।

महर्षिने रथ स्वीकार नहीं किया। गुरुकुल योजन तक दूर हो तो ब्रह्म-चारीको वाहन ग्रहण नहीं करना चाहिए। महर्षि अपने शिष्योंके साथ राजसदनसे पैदल विदा हुए। उनके साथ उनके आश्रमके ब्रह्मचारियोंका समूह चला।

———

गुरुकुलवास

सुरधेनु नन्दिनीने गुरुकुलमें पहिले स्वागत किया था श्रीरघुनाथ एवं उनके छोटे भाइयोंका। वह हुंकार करती आश्रमद्वारपर ही मिली थी। और जैसे ही नवीन ब्रह्मचारियोंने उसके सम्मुख प्रणिपात किया, उसने उनके सिर सूंघे और उसके स्तनोंसे दुग्ध झरने लगा। नन्दिनीने चारों कुमारोंके समीपका अश्वाजिन तथा मृगचर्म मुखसे पकड़ा क्रमशः और दूर झटक दिया। उसी समय उसने अद्भुत कोमल, परम मनोरम चर्म प्रकट किये।

'आयुष्मन्! तुम सबको नन्दिनीका प्रसाद ग्रहण करना चाहिए!' महर्षिने सस्मित अनुमति दे दी। ब्रह्मचारी वेदिकापर अश्वाजिन आस्तृत करके रात्रि-शयन करता है। ऐणेयाजिन उसका उत्तरीय होता है, किन्तु नन्दिनीने जो अजिन प्रकट किये इन कुमारोंके लिए वे किसी भी दुकूलसे अधिक सुस्पर्श एवं सुरम्य थे। वे अजिन केवल इसलिए थे कि शास्त्रकी मर्यादा सुरक्षित रहे।

महर्षि वशिष्ठके आश्रमके अन्तेवासी कभी भिक्षाटन करने जाते नहीं थे। जिसके आश्रममें पूजित, सत्कृत कामधेनु हो, उसके यहाँ भिक्षाटन कोई क्यों करे? अब तो नन्दिनीने अद्भुत सुस्वादु कन्द, फल प्रकट करते रहनेका क्रम बना लिया। वह ऐसे-ऐसे पदार्थ प्रकट करने लगी, जिसकी

सुरभि, स्वाद सुरोंको भी सुदुर्लभ हो। महर्षि और उनकी पत्नी त्रिभुवन वन्दनीया परम सती अरुन्धती देवीका अपरिमित वात्सल्य इन राजकुमार ब्रह्मचारियोंपर और नन्दिनीके असीम उपहार। चारों भाइयोंको अनुभवका अवसर ही नहीं आया कि पिताके राजसदन तथा ऋषिके आश्रममें सुख-सुविधाकी दृष्टिसे अन्तर क्या है।

'चारों अत्यन्त अल्पाहारी हैं!' महर्षिसे उनकी पत्नी कहती थीं बार-बार—'आप जानते ही हैं कि राम कितने सङ्कोची हैं। उनके अनुज उनसे भी अधिक सङ्कोच करते हैं। आप इन्हें आदेश दे दें कि ये आहार तो उदरपूर्ति भरको कर लिया करें!'

'वत्स! ब्रह्मचारीको पर्याप्त भोजन करना चाहिए!' महर्षिने अनेक बार कहा—'तुम्हारी गुरुमाताका वात्सल्य तुम्हें तुष्ट करना है और नन्दिनी मेरी भी वन्दनीया है। उसके प्रसादका आदर किया जाना चाहिए।'

नन्दिनी कामधेनु है। वह सम्पूर्ण सृष्टिको तृप्त करनेमें समर्थ—उसे स्वयं तृण चरनेकी कोई बाध्यता तो है नहीं। उस दिव्य-देहाका विनोद है तृण चरना, किन्तु जबसे चारों कुमार आश्रममें आये उसे वनकी ओर जानेकी इच्छा ही नहीं हुई। वह इनके ही आस-पास घूमने लगी। उनका बछड़ा तो इन चारों भाइयोंको सूँघ-सूँघकर पूरे दिन कूदता-उत्सव मनाता और रात्रिमें भी नन्दिनी चारों भाइयोंकी शयन-वेदिकाओंके समीप ही अपने बछड़ेके साथ शयन करने लगी।

सबसे अद्भुत बात थी कि महर्षि वशिष्ठकी विधवा पुत्रवधू परम तपस्विनी अदृश्यन्ती जो पुरुषमात्रके लिए, स्वयं महर्षि तकके लिए अदृश्य रहती थीं, इन कुमारोंके लिए सदा प्रत्यक्ष रहीं। ये प्रातः सायं उनकी भी पद-वन्दना करने पहुँचते तो उनका वात्सल्य-विभोर आशीर्वाद प्राप्त होता था।

कुछ कठिनाई थी देवी अदृश्यन्तीके पुत्र, महर्षिके पौत्र पराशरजीके साथ। वे स्वीकार ही नहीं करना चाहते थे कि वे इन कुमारोंके प्रणम्य हैं। उनका कहना था—'पिता होते तो आप उन्हें गुरु-पुत्र कहकर अग्रजकी भाँति प्रणाम कर सकते थे, किन्तु मैं..............!'

लेकिन मर्यादा पुरुषोत्तम और उनके अनुज कैसे स्वीकार कर लें कि ये शक्ति-पुत्र पूज्य नहीं हैं। ब्राह्मण कुमार जन्मना पूज्य होता है और जो

मातृगर्भसे ही ऋचाका शुद्ध-स्पष्ट पाठ करनेमें समर्थ हैं, जिनकी उग्रतर तपस्याने सुरोंको भी सशङ्क कर दिया था, साम्ब शिव जिनको कुमार कार्तिकेयके समान अपना अङ्कधन स्वीकार कर चुके वे त्रिभुवन वन्दनीय प्रणम्य नहीं हैं। पराशरजीका सङ्कोच कैसे मान लें ये कुमार।

गुरुकुलमें आये अन्तेवासीको क्षौर, तैल, अङ्गराग, आभरण, उपानह, छत्रादि वर्जित हैं, किन्तु सानुज श्रीरामको तो इनकी आवश्यकता ही नहीं है। इनकी सहज स्निग्ध अलकें अब कुछ हीं तो बढ़ सकती हैं। इनके श्रीअङ्गकी शोभा—अङ्गराग, आभरण ही उससे भूषित होते हैं। इन्हें कहाँ कहीं वनमें कुश-समित लेने जाना है और चक्रवर्ती महाराज दशरथके सखा—महाराजके अनुग्रहसे पोषित रक्षित सुरेन्द्र क्या इतने प्रमत्त हो सकते हैं कि महाराजके कुमार आतपमें निकलें और मेघ छाया करते न चलें ?

ब्रह्मचारीका कर्तव्य है गुरु सेवा, संयम और अध्ययन। इसमें-से गुरुसेवाके लिए कोई अवसर नहीं है। बहुत अनुग्रह पूर्वक महर्षि इन कुमारोंको रात्रि-शयनके पूर्व—कुछ क्षण पाद-संवाहनका अवसर देते हैं वह भी इसलिए देते हैं कि कुमारोंको अत्यन्त मनोव्यथा होगी यह अवसर न दिया जाय तो। कुमारोंने पाद-संवाहनके लिए जैसे ही हाथ बढ़ाये—महर्षि आग्रह करने लगते हैं कि वे शयन करें। इनके सुकुमार कर क्या श्रान्त होने योग्य हैं।

कलशमें जल आनयन, आश्रम-मार्जन एवं उपलेपन, कुश-समित् आहरण—ये थोड़ेसे कार्य होते हैं गुरुसेवाके, किन्तु इनके करनेका कोई अवसर नहीं है। सहाध्यायी समयसे पूर्व ही इन्हें कर लेते हैं। वे कुछ क्षण विलम्बित भीं हो जायँ तो भी क्या लाभ ? उस दिन कुमार भरतने कलश उठाना चाहा था सरयू-जल लानेके लिए। सहाध्यायी दौड़ पड़े, किन्तु उनसे पूर्व नन्दिनीने हुंकार की और कलश जलपूर्ण हो गया। एक दिन छोटे कुमारने मार्जनी उठायी। नन्दिनीकी हुंकार सुनकर महर्षिने देखा और सस्मित कहा—'वत्स ! आश्रम तो नन्दिनीकी इच्छाने स्वच्छ कर दिया।'

आश्रमके तरु फल-भारसे झुके हैं। पुष्पोंसे लदी हैं लताएँ और सहाध्यायी कुश-समिध पर्याप्तसे अधिक ही ले आते हैं। इन चारों कुमारोंकी

कुछ ही बढ़ी केशराशिपर मालाएँ सजा देते हैं। पता नहीं कितना पुष्प-श्रृङ्गार करनेकी इच्छा है उनके मनमें, किन्तु ब्रह्मचारी श्रृङ्गार तो धारण नहीं कर सकता। यह इतना करनेकी अनुमति भी महर्षिने कृपा पूर्वक ही दे दी है।

'आप इन सुकुमारोंको श्रान्त करा डालते हैं।' देवी अरुन्धतीने उलाहना दिया अनेक बार—'ब्रह्ममुहूर्तसे रात्रिके प्रथम प्रहर तक आप इन्हें तनिक भी तो अवकाश नहीं देते।'

'मैं विवश हूँ देवि!' महर्षिको इतना उल्लसित उनके सम्पूर्ण जीवनमें देवी अरुन्धतीने इन्हीं दिनों देखा है। वे कहते हैं—'गुरुको ज्ञान-खल नहीं होना चाहिए। अन्तेवासी जब प्रथमका अधीत स्मरण कर ले और नवीन अध्ययनके लिए उपस्थित हो तो उसे विलम्बित करना अपराध है। उसके क्षण अमूल्य होते हैं। मेरी कठिनाई यह है कि मैं उतनी त्वरा नहीं कर पाता हूँ, जितनी आवश्यक है। मैं जानता हूँ—इन्हें अध्यापन करनेकी शक्ति मेरे पिता भगवान् कमलासन एवं साक्षात् भवानीनाथमें भी नहीं है। मुझे अपना अधीत पाठ सुनाना है, किन्तु उसमें मैं ही मन्थर गति सिद्ध हो रहा हूँ।

प्रात:कालीन सन्ध्या-हवनके पश्चात् महर्षि श्रुतिके मन्त्र बोलने लगते हैं। प्रथम दिन ही श्रीरामने मन्त्रोंका जटा और माला पाठ सुनाया यह कहकर—'आप एवं ऋषिगणोंसे मैंने इस प्रकारकी पाठ-पद्धति सुनी है।'

'मैंने भी पाठ-पद्धति श्रीचरणोंसे सुनी है।' भरतने शिखा और रेखा पाठ सुना दिया। लक्ष्मणको ध्वज, दण्ड तथा शत्रुघ्नको रथ एवं घन पाठ सुनानेका अवसर मिल गया। चारों कुमार श्रुतिके अष्टविध पद-पाठके[1] पारङ्गत हैं, सस्वर, शुद्ध पाठ इनके कण्ठसे निकलते हैं, यह प्रथम दिन ही सिद्ध हो गया।

मूल संहिताओंका पाठ चार दिनमें ही समाप्त हो गया। उसे पाठ ही कहना उपयुक्त है। अध्यापन इसे कैसे कहेंगे कि महर्षि धाराप्रवाह पाठ करते चले गये। उनके दूसरे अन्तेवासियोंके लिए जहाँ मन्त्रोंका ठीक श्रवण भी कठिन था, चारों भाइयोंने उनको स्मरण कर लिया।

---

१. 'जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥'

उपवेद, कल्पसूत्र, गृह्यसूत्र, शुल्वसूत्र, धर्मसूत्र और सभी दर्शनोंके सूत्रोंका ही पाठ सुनाया महर्षिने। उनकी व्याख्या तो कोई अन्तेवासी इन कुमारोंसे कभी सुनकर सीख सकता था।

मध्याह्न सन्ध्या करके महर्षि फलाहार कर लेते तब चारों कुमार सहाध्यायियोंके साथ आहार ग्रहण करते थे। इतना ही अवकाश मिलता था महर्षिको। इसके अनन्तर वे लेटे-लेटे ही इतिहास, पुराण सुनाने लगते थे।

दिनका चतुर्थ प्रहर राजकुमारोंका व्यावहारिक शिक्षाका समय था। इसमें महर्षि प्रायः दर्शक ही रहते थे। आश्रमके दूसरे छात्र इस समय प्रयोग-स्थलपर उपकरणोंके साथ अत्यन्त उत्साहसे प्रस्तुत रहते थे। राज-कुमारोंमें कभी एक और कभी दूसरे उस दिन सुने हुए धनुर्वेद, स्थापत्यवेद, आयुर्वेद प्रभृतिके सूत्रोंको प्रयोगके क्षेत्रमें साकार करते थे। एक दिन भी तो इनमें-से किसीको कुछ बतलाना नहीं पड़ा। ये तो दूसरे अन्तेवासियोंके शिक्षक बन गये प्रारम्भसे।

इन प्रयोगोंमें नवीन-नवीन प्रक्रियाएँ, नवीन स्थापनाएँ ये कुमार प्रतिदिन करते चलते हैं। ये प्रयोगोंको सुगमसे सुगमतर तो बना ही देते हैं, विद्याओंके रहस्योंको उद्घाटित करते हुए उनका भण्डार भरते चलते हैं।

'कोई महर्षि—उत्कट तपस्वी भी उद्भावित न कर सके ऐसी विद्याएँ और इतनी सुगमतासे, इतनी शीघ्र !' सहाध्यायियोंका आश्चर्य-सम्मान दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। उनमें बार-बार प्रत्येक कहता है—'हमारा सौभाग्य कि हम अपनेको इनका सहपाठी कह सकते हैं। भगवती वीणापाणि भी इनसे कुछ शिक्षण ही ले सकती हैं। दूसरा कोई भी इतना सम्यक् इतनी सुगम विधिसे कैसे सिखला सकता है, जैसे ये हमें सिखलाते हैं।'

'इनका शील—अकल्पनीय है यह विनम्रता !' क्षत्रिय राजकुमार कहते हैं—इनका हस्तलाघव, स्फूर्ति, प्रयोग-कुशलता सुनी भी नहीं गयी और ये चक्रवर्ती महाराजके कुमार होकर सामन्त-पुत्रोंको भी सम्मान देते हैं। हमको इसलिए सम्मानित करते हैं कि हम इनसे प्रथम गुरुकुलमें आये।'

उस दिन कुमार शत्रुघ्नने धनुष उठाया। अध्यापनके समय महर्षिने कहा था—'वितस्ति वाणोंका सन्धान सुरोंमें भी कुछ ही कर पाते हैं। पृथ्वी

पर चक्रवर्ती नरेश तुम्हारे पिता, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र तथा उनके भागिनेय पुत्र परशुराम ही इनके प्रयोगमें कुशल हैं। ये नन्हें वाण निकटका लक्ष्य-वेध करते हैं। धनुष-दण्डका स्पर्श करते नहीं, ज्याके सहारे ही चलते हैं।' प्रयोगकालमें शत्रुघ्नने धनुष लेकर कहा—'गुरुदेव ! सम्भवत: ये वाण इस प्रकार चलते होंगे।' चकित देखते रह गये छात्र एवं महर्षि स्वयं। छोटे कुमारने झड़ी लगादी वाणोंकी।

'देव ! आपका आशीर्वाद अशक्यको भी शक्य कर देता है।' श्रीरामने मस्तक झुकाया। महर्षिने कह दिया—'वत्स ! जानता हूँ कि जो प्रयोग अनुज कर सकता है, उसमें उसके अग्रज अक्षम नहीं होंगे।'

कुमार लक्ष्मणने प्रयोगकालमें योग-दर्शनके मन:संयमको साकार करना प्रारम्भ किया था। सम्भवत: वे सिद्धेश्वरोंके लिए दुर्लभ सिद्धियोंको भी मूर्त करने जा रहे थे। महर्षिने वारित किया—'वत्स ! सिद्धियाँ प्रतिबन्ध मानी जाती हैं, अत: इनका प्रदर्शन प्रशस्त नहीं है।'

सायङ्कालीन सन्ध्यादिके पश्चात् प्रारम्भ होता है कलाओंका अध्ययन। महर्षि वशिष्ठ इस पक्षमें नहीं हैं कि उनके अन्तेवासी कलाओंके सक्रिय अभ्यासमें अधिक रुचि लें। महर्षि कहते हैं—'यह विलासिता है।' अत: कलाओंके वे केवल मूल सूत्र सुना देते हैं। पहिले महर्षि उनकी व्याख्या कर देते थे, किन्तु अब तो व्याख्या राजकुमारोंमें ही कोई करते हैं और जहाँ महर्षि अनुमति देते हैं, कोई कुमार उपकरणोंका व्यवहार करके प्रयोग पद्धतिका किञ्चित् प्रदर्शन कर देते हैं। ऐसे प्रयोग मानों सुरशिल्पी विश्व-कर्मा एवं दानवशिल्पी मय इनके ही शिष्य रहे हों।

केवल चौंसठ दिन अध्ययनके। कुछ अतिरिक्त दिन भी लगे, किन्तु वे अनध्यायके दिन थे। पावस प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही राजकुमारोंका अध्ययन पूर्ण हो गया। देवशयनी एकादशीसे पूर्व वसन्तके द्वितीय मासमें गुरुकुल आये इन अद्भुत अन्तेवासी चतुष्टयका वेद, वेदाङ्ग दर्शन, इतिहास, पुराण, स्मृति, कला आदिका सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त हो गया और समावर्तनका मुहूर्त भी निश्चित् हो गया।

———

समावर्तन

अयोध्यामें महोत्सव तो होना ही था। राजकुमार केवल दो महीनेसे कुछ ही अधिक दिनोंपर गुरुगृहसे लौटनेवाले थे, किन्तु लग रहा था कि युगों-के पश्चात् लौटनेवाले हैं। गुरुगृहमें भी वे अयोध्याके पार्श्वमें ही थे। महाराज, मन्त्रीगण, नागरिकवर्गके लिए तो महर्षि वशिष्ठका आश्रम कभी अप्रेश्य रहा नहीं। अवश्य राजकुमारोंके अध्ययनमें व्याघात न हो, इसका विचार करना पड़ता था, अतः अयोध्याके लोगोंको, महाराजको भी महर्षिके आश्रम बार-बार आनेसे अपनेको स्वतः रोके रहना था। लेकिन आज राजकुमार लौटनेवाले हैं, अयोध्यामें परमोत्सव प्रारम्भ हो गया है।

महर्षि वशिष्ठके आश्रममें भी महोत्सव है। बहुत विचित्र है वहाँका महोत्सव। राजकुमार कहीं दूर नहीं जायँगे। देवी अरुन्धती तथा आश्रमके अन्तेवासियोंके सत्कारके लिए राजसदन सदा पलकें बिछाये रहता है, किन्तु हृदय मथित हो रहा है इस विचारसे ही कि ये आश्रमसे चले जायँगे और फिर भी इनके समावर्तनकी प्रस्तुतिमें सब पूरी तत्परतासे जुटे हैं।

देवी अरुन्धती स्वयं माल्यग्रन्थन, उद्वर्तनकी प्रस्तुतिमें लगी हैं। कोई नहीं देखता कि नन्दिनी ब्रह्ममुहूर्तसे ही हुंकार कर रही है और उसने सुर-दुर्लभ उद्वर्तन, अङ्गराग, माल्य, आभरण, वस्त्रादिकी राशि लगा दी है। नन्दिनीके बछड़ेको आज चारों भाइयोंको सूंघनेसे तृप्ति ही नहीं हो रही है।

गम्भीर हैं केवल रघुकुलगुरु महर्षि। उन्हें कोई निर्देश नहीं देना है। उनकी अर्धाङ्गिनी तथा अन्तेवासियोंने अनेकोंके समावर्तन-संस्कारोंमें सहयोग किया है। सब इसबार हार्दिक उल्लाससे लगे हैं। इस अवसरपर किसीको सेवा-वञ्चित नहीं किया जा सकता।

'राजन् ! कुमारोंको समावर्तनके समय वस्त्रालङ्कार देनेका प्रथम स्वत्व उनकी गुरुमाताका है।' महर्षिने दो दिन पूर्व ही महाराजसे कहा था— 'वशिष्ठ निष्परिग्रह दरिद्र ब्राह्मण हैं, किन्तु नन्दिनी इस सुयोगमें सेवा चाहती है। अतः राजसदनसे तथा नागरिकोंकी ओरसे कुमारोंका सत्कार उनके आपकी राजसभामें पधारनेपर होगा। केवल राजकीय रथ जायगा उन्हें लेने।'

अयोध्याके राजसदनसे कुछ नहीं जाना था। जिनके आश्रममें सुपूजित नन्दिनी है, उन सृष्टिकर्ताके साक्षात् सुतको कोई सम्राट् दक्षिणा क्या देगा ? अतः यह प्रश्न उठना ही नहीं था। महाराजने साश्रुनेत्र, गद्गद् स्वरमें कहा—'राजकुमार और यह जन भी सदासे श्रीचरणोंका प्रसाद भोजी ही है। भुवन वन्दनीया गुरुमाताका वात्सल्य कुमारोंने प्राप्त किया, यह उनका परम सौभाग्य और यह कुल ही सुरधेनु नन्दिनीका प्रसाद है, उनका आशीर्वाद, उनकी अनुकम्पा कुमारोंको श्रीचरणोंकी कृपासे ही उपलब्ध हुई है।'

श्रीरामने सानुज ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर सहाध्यायियोंके द्वारा प्रस्तुत उदुम्बरकी सुवासित दन्तधावन स्वीकार किया। उद्वर्तन पूर्वक स्नान हुआ। जटा-सम्मार्जनका प्रश्न ही नहीं था। दो मासमें केश बढ़ते ही कितने और उन्हें सहाध्यायी सदा करोंसे व्यवस्थित करते रहे थे। केवल विधि-निर्वाहके लिए केश-सम्मार्जन हुआ। अवश्य उस सघन, कुञ्चित, सुकोमल, भ्रमर-कृष्ण केशराशिने आज तैल-सिञ्चन प्राप्त किया।

सविधि स्नान, मेखला-विसर्जन होते ही अन्तेवासियोंने राजकुमारोंके अश्वाजिन, ऐणेयाजिन, जलपात्रादि ले लिये। ये रघुकुलके राजकुमार यदि खिन्न न होते तो इनके उपयोगकी वस्तुएँ प्रसाद रूपमें प्राप्त करके जनलोकके महातापस ही नहीं, सृष्टिकर्ता भी अपनेको परिपूत मानते, किन्तु ये मर्यादाके परम पालक खिन्न होंगे, इस विचारसे ब्राह्मण कुमारोंने अनुरोध ही नहीं किया। इनके उपयोगकी वस्तुएँ क्षत्रिय अन्तेवासियोंका ही स्वत्व बनीं।

कौशेय वस्त्र धारण करके जब चारों भाइयोंने उष्णीष एवं उत्तरीय स्वीकार किया, सहाध्यायियोंने इनके अंग-अंगमें अलङ्कार सज्जित कर

दिये। अनेक रङ्गोंके अङ्गरागसे श्रीअङ्ग इनके सजानेमें उनकी कला कृतार्थ हुई। देवी अरुन्धतीने कुंकुम तिलक लगाये और उनपर अक्षत शोभित हुए।

'वत्स ! तुम सबका मङ्गल हो। समस्त श्रुतियाँ और श्रोत्रज्ञान तुम चारों भाइयोंको तत्काल अध्ययनके समान उपस्थित रहें।' महर्षिने अन्तमें आशीर्वाद देकर अन्तिम उपदेशकी विधि सम्पन्न की—'स्वाध्यायमें प्रमाद मत करना। प्रतिदिन नियमपूर्वक सन्ध्या, तर्पण एवं जप करना। सुर, गौ, विप्रोंकी सेवा तथा अतिथिका सत्कार करना। मेरे जो उत्तम आचरण हैं, उन्हींका अनुकरण करना। मुझमें यदि कहीं कोई च्युति दीखी हो तो उसको मत ग्रहण करना।'

महामन्त्री सुमन्त्र रथ आश्रम-द्वारपर खड़ा किये प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीक्षा कर रहे थे स्वयं महाराज, किन्तु श्रीराम बद्धाञ्जलि महर्षिके सम्मुख मस्तक झुकाये खड़े थे। उनके तीनों अनुज खड़े थे अपने अग्रजके पीछे।

गुरु-दक्षिणा—लेकिन महर्षि वशिष्ठके आश्रमकी तो यह परम्परा ही नहीं है। महर्षिसे गुरु-दक्षिणा माँगनेको कहनेका कोई साहस नहीं करता। इन्हें कोई क्या देगा ? जहाँ सुरपति भी अपनेको कङ्गाल अनुभव करे, वहाँ कोई कैसे साहस करे दक्षिणाकी चर्चा भी करनेका। श्रीराम भी कुछ बोलते नहीं हैं, किन्तु ऐसे खड़े हैं जैसे अभी कुछ शेष है।

'वत्स रामभद्र ! मैं तुम्हारी तथा तुम्हारे अनुजोंकी सेवासे सन्तुष्ट हूँ। सन्तुष्ट हैं तुम्हारी गुरुमाता और देख ही रहे हो कि नन्दिनी परम सन्तुष्ट है,' किन्तु महर्षिने तनिक रुककर अत्यन्त गम्भीर कण्ठसे कहा—'वशिष्ठ अवश्य तुमसे गुरुदक्षिणा माँगेगा। तुम्हारे सम्पूर्ण यज्ञोंका आचार्यत्व इसीका स्वत्व रहे और अपने इस रूपसे इसके हृदयमें सदा बने रहनेका वचन दो।'

श्रीरघुनाथने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया भाइयोंके साथ। गुरुदेवको शब्दोंके द्वारा तो स्वीकृति नहीं दी जा सकती थी। महर्षिने ही चारों भाइयोंको उठाया और ले जाकर रथपर बैठाया।

———

वैराग्य

* * *

विद्याका फल विवेक है। जो विद्या व्यक्तिको विवेकशील नहीं बनाती, वह तो मस्तिष्कका व्यर्थ भार है।

विवेक बुद्धिके अनुसार होता है। यदि बुद्धि रजसा-तमसाच्छन्न नहीं है, यदि उसमें बद्धमूल दुराग्रह—पूर्वाग्रह नहीं हैं तो निर्मल बुद्धिमें उदित विवेक वैराग्य न उत्पन्न करे, ऐसा हो नहीं सकता।

संसारका समस्त व्यवहार अज्ञानसे चलता है। व्यवहार ही अज्ञानमें है। ज्ञानस्वरूप परमार्थ सत्तामें तो व्यवहार ही नहीं है। ज्ञानकी अन्तिम भूमिकामें और योगकी समाधिमें भी व्यवहार नहीं है। सन्त प्रायः निवृत्ति-निरत ही होते हैं।

शास्त्र वहिर्मुखताका समर्थक किसी प्रकार नहीं है और अन्त-र्मुखताके परिपाकमें व्यवहार शक्य नहीं है। शुद्ध विवेक व्यवहार-मात्रके प्रति विरक्त कर देता है।

जहाँ तक श्रीरामके अनुजोंकी बात थी, उनकी स्थिति भिन्न थी। उन्हें साधनकी परम सिद्धि श्रीराम प्रत्यक्ष प्राप्त थे। शत्रुघ्नकुमारने तो अपनेको सेवक—दास होनेका भी अधिकारी नहीं माना। उनकी निष्ठा दासानुदासकी। वे भरतके मौन अनुगामी बने रहकर कृतकृत्य थे। भरत और लक्ष्मणको श्रीरामकी सेवामें अपनी कृतार्थता समझमें आगयी थी।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उन्हें लोकके लिए मर्यादा स्थापित करनी है। लोक मर्यादा यह नहीं होनी चाहिए कि शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करके पुरुष भोगमें, संग्रहमें अथवा व्यवहारमें लगे। लोक-मर्यादा यह होनी चाहिए कि शास्त्र-ज्ञान व्यक्तिको प्रबुद्ध विवेक दे। उसे संसारकी—संसारके भोगोंकी निःसारताका ज्ञान हो। उसे भोगोंमें रोग एवं दुःख स्पष्ट दीखे और उसे इन भोगोंसे वैराग्य हो। इस उचित मर्यादाका स्थापन मर्यादापुरुषोत्तम ही न करें तो कौन करेगा।

गुरुगृह-निवासका काल तो अध्ययनकाल था। छात्रका एकमात्र कर्तव्य है—सम्पूर्ण मनसे अध्ययन। यह ऐसा है जैसे भोजनके समय उदर-पूर्ति तक भोजन किया जाता है, किन्तु भोजनके पश्चात् उदरस्थ आहारको पचना चाहिए। उसे शरीरका रस-रक्त बनना चाहिए। अन्यथा वह उदरका भार—रोग बनकर रहेगा। इसी प्रकार अध्ययनकालमें गृहीत विद्याको हमारे मस्तिष्कका भार नहीं बना रहना चाहिए। तब तो वह रोग—पतनका कारण बनेगी। दैत्य, दानव, राक्षसोंमें भी बड़े विद्वान हुए हैं। अधीत विद्या जब मनन, निदिध्यासनके द्वारा अपने विचारका अङ्ग बन जाती है, तब वह अभ्युदय निःश्रेयसका हेतु होती है।

गुरुगृहमें अध्ययन चल रहा था। ब्राह्ममुहूर्तसे शयनकाल तक अध्ययन। कभी गुरुके द्वारा श्रवण और कभी सहाध्यायीमें किसीसे चर्चा। गुरुगृहसे लौटते ही मनन प्रारम्भ हुआ। फलतः श्रीरामके प्रबुद्ध विवेकने उनमें वैराग्य जागृत कर दिया। वे वस्त्र, आभरण, आहार, क्रीड़ादि सबके प्रति उदासीन होगये।

वैराग्यका अर्थ कर्तव्यके प्रति प्रमाद नहीं है। श्रीरामने किसी भी कर्तव्यके प्रति किञ्चित भी प्रमाद नहीं किया। ब्राह्ममुहूर्तमें शैय्या त्याग करके वे नित्यकर्म, सन्ध्या, तर्पण, हवन करते रहे। गुरुजनोंकी पद-वन्दना, गौओंका दर्शन-सत्कार, सुर-सेवामें कोई च्युति नहीं हुई, किन्तु निद्रा अत्यल्प होगयी। आहार घट गया और उसमें भी अनेक प्रतिबन्ध स्वयं लगा लिये। प्रातराश समाप्त होगया। रात्रि-शयनसे पूर्व गो-दुग्धका पान विदा होगये। मध्याह्नके आहारमें भी केवल फल रह गये।

'शरीरपर अङ्गराग लगाना श्रीराम स्वीकार नहीं करते।' सेवक-सेविकाओंने महारानियोंसे रुदन करते हुए कहा।

'बड़े राजकुमारने आभरण-धारण त्याग दिया है।' वृद्ध सेवक दुःखी थे कि उनका भी अनुरोध कुमार स्वीकार नहीं करते।

'श्रीराम उन्मर्दनका अवसर ही नहीं देते!' वृद्धा धात्रीने महारानी कौसल्यासे कहा—'उन्होंने तैल-स्पर्श तक अस्वीकार कर दिया है। उनकी अलकें रूक्ष देखकर मेरा हृदय फटता है।'

'महारानी क्या ज्येष्ठ कुमारको अभीसे तापस बनाना चाहती हैं।

महामन्त्री सुमन्त्रने कौसल्याजीको उलाहना दिया—'कुमार इस पावसमें भी त्रिकाल सरयू-स्नान करने जाते हैं।'

'महामन्त्री समझते थे कि तपस्विनी बड़ी महारानीने पुत्रको किसी व्रतकी प्रेरणा दी होगी। लेकिन महारानी स्वयं अत्यन्त दुःखी थीं। उनके राम उनके यहाँ आहार-ग्रहण करने आते हैं अनेक बार आग्रह करनेपर तो भी व्यञ्जनोंमें-से कुछ स्वीकार नहीं करते। वे केवल मुख जूठा करके उठ जाते हैं और जो दो-चार ग्रास मुखमें भी डालते हैं, लगता है कि उसके स्वादके प्रति उदासीन—स्वादका जैसे पता ही न रहता हो।

'मातः! राजस आहार मनको प्रमत्त करते हैं।' बड़ी विनम्रता-पूर्वक, किन्तु स्थिर दृढ़ स्वरमें रामकी अस्वीकृति अनुरोधका अवसर ही नहीं देती—'आहार सात्विक, सुपाच्य और स्वास्थ्यकर ही उचित है। पवित्र, पथ्य एवं अत्यल्पायाससे प्रस्तुत आहार ही सात्विक होता है। आहारका तात्पर्य जीवन-धारण है। स्वाद लोलुपता तो प्रमाद होगी।'

'मातः! अङ्गराग, उन्मर्दन, आभरण, पुष्पमाल्य, तैल तो विलासिता हैं!' महारानी कैकेयी तक श्रीरामका मुख देखती रह जाती हैं। उनका अनुरोध भी राम अपने ढङ्गसे अस्वीकार कर देते हैं—'आपका पुत्र संयमपर स्थिर रह सके, ऐसा आशीर्वाद दें आप। जीवनके लिए ये पदार्थ आवश्यक होते तो मुनिकुमार क्यों इनका उपयोग नहीं करते? जीवनका चरमलक्ष्य प्राप्त करनेमें ये सहायक तो नहीं हैं मातः?'

'भरत! लक्ष्मण! शत्रुघ्न! तुम लोग मेरा आदेश सुनो।' महारानी सुमित्राने श्रीरामसे कुछ नहीं कहा। उन्होंने तीनों पुत्रोंको सीधे आदेश दिया—'तुम तीनों इस समय ज्येष्ठ भ्राताका अनुकरण मत करो। राम जो कर रहे हैं, वह उनके लिए स्वाभाविक तो है, किन्तु असामयिक है और उसमें स्थैर्य सम्भव नहीं है। तुम तीनों अनुकरण करके उन्हें व्यथित करोगे।'

'किन्तु माँ.................' लक्ष्मणने कुछ कहना चाहा।

'नहीं वत्स! श्रीराम क्या कर रहे हैं, मैं जानती हूँ।' महारानी बोलीं—'तुमने अग्निपर चढ़े दूधको उफनते देखा है? उसमें उफान तब तक आता है, जब तक वह सुपक्व नहीं होजाता। तुम्हारे अग्रज महामति हैं, महासत्व हैं। उनमें यह उफान अधिक नहीं टिकेगा। अन्तर्मुखताकी

प्रथम प्रतिक्रिया वैराग्यका उफान है, किन्तु उसका परिपाक समत्वमें स्थिति है। श्रीराम अधिक समय अपरिपक्व मध्यस्थितिमें नहीं रह सकते। हमारे कुलगुरु उन्हें ऐसे रहने देंगे।'

'मातः! तब तक हम भी..............' भरतने कुछ कहना चाहा।

'वत्स! तुम यह तो नहीं चाहते हो कि तुम्हारे पिता अभी तपोवन चले जायँ?' महारानी सुमित्राने अचानक ऐसी बात कही कि तीनों राजकुमार चौंक उठे—'तुम चारों भाई अभीसे विरक्त बनने लगोगे तो महाराजमें वैराग्य नहीं जागेगा? उनमें वैराग्य जगेगा तो कोई रोक सकेगा उनको? राम जैसे रहते हैं इन दिनों उससे हम सबको या महाराजको कम व्यथा है? तुम तीनों राजकुमारोंकी भाँति रहो और थोड़े दिनों प्रतीक्षा करो, यह मेरा आदेश है।'

तीनों कुमारोंको बहुत मन मारकर माताका आदेश स्वीकार करना पड़ा। राजभवनमें और पूरे नगरमें लोग व्यथित होरहे थे। सबको भोगोंसे अरुचि होने लगी थी। नागरिक तक असज्ज, अनाभरण रहने लगे।

श्रीरामके सम्बन्धमें प्रतिदिन नयी-नयी बातें नगरमें फैलने लगीं—'राम भूमि-शयन करते हैं, केवल कुशास्तरणपर।' 'राम भवनमें प्रायः उत्तरीय-हीन अनावृत, आभरणहीन रहते हैं।' 'रामने मौन धारण कर लिया है।' 'राम एकाहार करते हैं और वह भी केवल फल।'

नगरमें तो यहाँ तक चर्चा उठने लगी कि—'राम तपोवन जानेवाले हैं।'

श्रीरामने सचमुच भाइयोंसे, सखाओंसे भी मिलना प्रायः बन्द कर दिया था। वे बहुत कम बोलते थे—अत्यन्त आवश्यक होनेपर गिने चुने शब्द। उन्होंने व्रत प्रारम्भ किया था। प्रायः गुमसुम बैठे रहते और कुछ चिन्तन करते ध्यानस्थ रहते थे। उनका श्रीअङ्ग क्षीण होने लगा था। उनकी मुख-श्रीमें वैराग्यकी उदासीनता स्थिर होने लगी थी।

महाराजा दशरथने अनेक सेवक नियुक्त कर रखे थे जो श्रीरामका समाचार थोड़ी-थोड़ी देरमें महाराजको देते रहते थे। ये सेवक प्रायः ऐसे समाचार देते थे—'श्रीरामने अपने सदनकी समस्त सामग्री अमुकको दान कर दी।'

महाराज तत्काल रामके सदनको पुनः आवश्यक उपकरण भेजनेकी

व्यवस्थामें स्वयं लग जाते थे। यह क्रम चलता ही रहता था। यद्यपि पता था कि उस सामग्रीका उपयोग श्रीराम करेंगे नहीं।

'भगवन् ! सम्पत्ति तो अनर्थोंका स्थान है। भोग सभी दुःखयोनि हैं। इन्हींमें प्रमत्त होकर व्यक्ति जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है।' किसी भी याचकके आनेपर श्रीराम उसका सादर पूजन करके कहते थे—'सुख तो अपरिग्रहमें, त्यागमें है। सुखका मूल सन्तोष है। आप दुःखोंको आमन्त्रित करनेके लिए क्यों सम्पत्तिकी कामना करते हैं?'

यह कहकर खिन्न मनसे आगतको वे अपने गृहकी समस्त सम्पत्ति दे देते थे। सच बात है, जो अनन्त परमानन्द देनेमें समर्थ है और देनेको उद्यत है, उसके समीप जाकर भी व्यक्ति तुच्छ सम्पत्ति ही माँगे तो उस उदारचक्र-चूड़ामणिको खेद ही तो होगा।

समावर्तनके पश्चात् राजकुमारोंको सुसज्ज भवन दे दिये थे महाराजने, किन्तु रामने तो अपने भवनको तपोवन बना रखा था। इससे सभी व्यथित थे। प्रजा चिन्तित थी। महारानियोंकी तथा महाराजकी चिन्ता कोई समझ सकता है। महाराजने कुलगुरुके श्रीचरणोंमें उपस्थित होकर प्रार्थना की।

'राजन् ! मैंने सुन लिया है।' महर्षि वशिष्ठने कहा—'श्रीरामका वैराग्य उनके निर्मल अन्तःकरणके प्रबुद्ध विवेकका परिचायक है। मैं समयकी प्रतीक्षा कर रहा था। दूसरे काम, क्रोधादि आवेशोंके समान वैराग्यका भी आवेश होता है। आवेशकी प्रबलतामें उपदेश ग्रहणकी क्षमता व्यक्तिमें नहीं होती। आवेशका वेग शिथिल हो या उसके परिपाकका अवसर आजाय तब बुद्धि विचार-ग्रहण क्षम होती है। मैं आज ही श्रीरामके समीप पहुँच रहा हूँ। चिन्ताका कोई कारण नहीं है।'

महाराज सन्तुष्ट चित्त लौट आये। महर्षि रथमें पधारे। श्रीरामके भवन-द्वार पहुँचकर उन्होंने समाचार भेजा अपने आगमनका। श्रीराम दौड़े आये और प्रणिपातके अनन्तर अञ्जलि बाँधकर कमल लोचनोंमें अश्रु भरे बोले 'आपका यह शिष्य इतना अयोग्य होगया है कि इसके सदनको अपने श्रीचरणोंसे पवित्र करनेमें भी आपको सम्वाद भेजकर प्रवेश करना पड़े?'

महर्षिने हृदयसे लगाया श्रीरामको। सस्मित बोले—'ब्राह्मणको

किसी क्षत्रियके सदनमें प्रवेशकी अनुमति चक्रवर्ती महाराजके राज्यमें आवश्यक नहीं है, किन्तु जब शिष्य भी अनवसर वीतराग होकर साधनोन्मुख बनने लगे—अनधिकार, असमयके साधकके सम्बन्धमें कैसे निश्चय किया जा सकता है कि वह कब क्या करेगा ? किस समय कैसी स्थितिमें होगा ? अतः उसके गृहमें प्रवेशसे पूर्व तो सूचना देनी ही चाहिए ।'

महर्षिने श्रीरामकी वर्तमान स्थितिपर यह प्रथम आघात किया मिलते ही । श्रीरामने भवनमें ले जाकर गुरुदेवको उत्तम आसनपर बैठाया, अर्घ्य, पाद्य आदिसे विधिपूर्वक इष्टदेवके समान पूजन करके प्रणिपात किया ।

'आज यह भवन पवित्र हुआ ।' महर्षिका पादोदक पूरे भवनमें सिञ्चित करके उनके चरणोंको अङ्कमें लेकर संवाहन करते हुए श्रीराम गद्‌-गद कण्ठ बोले—'आज पधारकर गुरुदेवने मुझे कृतार्थ किया । प्रमादवश ही मैं अबतक श्रीचरणोंमें उपस्थित नहीं हुआ । अब आज्ञा देकर अनुगृहीत करें ।'

'राम ! तुमने यह ऋषिकुमारोचित वैराग्यका वरण क्यों किया है ?' महर्षिने ही प्रश्न किया ।

'श्रीचरणोंके सान्निध्यमें रहकर मैंने जो कुछ अध्ययन किया, उस समस्त शिक्षाका सार मेरी समझमें यही आया कि मनुष्य जीवनका परम लक्ष्य है आत्मज्ञानकी उपलब्धि और उसमें बाधक है भोगेच्छा—देहासक्ति ।' श्रीरामने बहुत विस्तारपूर्वक वैराग्यका निरूपण करके कहा—'परिग्रह केवल चिन्ता और कष्ट देता है । भोगोंका त्याग किये बिना व्यक्ति अन्तर्मुख हो नहीं पाता । बहिर्मुखता संसारमें संसरणके संस्कार जुटाती ही रहेगी ।'

'वत्स ! वशिष्ठ प्रसन्न हुआ तुम्हारे विवेकसे !' महर्षिने श्रीरामके निरूपणका अनुमोदन करके कहा—'किन्तु भोग और त्याग, परिग्रह और अपरिग्रह—दोनों व्यवहार-कालकी सापेक्षिक वृत्तियाँ हैं । यह व्यवहार—दृश्य जगत मात्र संकल्पमात्र है । यह स्वप्नके समान अतथ्य है ।'

'वत्स ! त्याग संकल्पपूर्वक किया जाता है । अर्थात् त्यागमें कर्तृत्वका अभिमान बना ही रहेगा और कर्तृत्वाभिमान व्यक्तिमें होता है । व्यक्तित्व-का बोध हुए बिना ज्ञान कैसा ?' महर्षिने समझाना प्रारम्भ किया—'कष्ट

सभी विवश होकर सहते हैं। अभावमें सबको तितीक्षा करनी पड़ती है। प्रतिकूल परिस्थिति स्वयं उत्पन्न करके सहन करनेका नाम ही तो तप है ? जब स्वयं तप-त्याग किया जाता है तो उसमें गौरव-बुद्धि होती है। फलत: उस तप-त्यागमें कष्ट नहीं होता। इसीलिए ऐसी उग्रतम तपस्या भी भोगके —कामके आक्रमणको सम्हाल नहीं पाती। तुमको उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं है।'

'भगवन् !' श्रीराम चौंके, उनकी विचार-सरणीको झटका लगा— 'तपस्याकी महत्ता नहीं है ?'

'हे वत्स ! वशिष्ठ कैसे कहेगा कि तपमें शक्ति नहीं है।' महर्षिने शान्तस्वरमें समझाया—'किन्तु तप धर्म-पुरुषार्थका साधन है। उससे अनन्त शक्ति प्राप्त होती है, यह सत्य होनेपर भी सत्य यह है कि तप सिद्धियाँ और शक्ति ही देता है। वह भोगका, सुखका, क्रोधका भी वेग प्राय: सह नहीं पाता। काम और क्रोध दोनों उसे नष्ट कर देते हैं। नष्ट न हो तब भी वह अनन्त आनन्द--आत्मज्ञान देनेमें असमर्थ है।'

'मैं आपकी शरण हूँ !' श्रीरामने महर्षिके चरणोंपर मस्तक रखा— 'अपने इस शिष्यको आप प्रकाश प्रदान करें।'

'मैं आया ही इसीलिए हूँ।' महर्षिने कहना प्रारम्भ किया—'पक्षी हो या विरक्त, जलसे पृथक रहनेवाले हंसको भी शरीर निर्वाहके लिए जलका ही आश्रय लेना पड़ता है। नीर-क्षीर विवेक निपुण हंससे भी धन्य है वह पद्म जो जलमें रहकर भी जलसे असंस्पृष्ट रहता है।'

'वत्स ! तप एवं त्याग कठिन नहीं है। कठिन है सुख-समृद्धि एवं सम्मानको सहन कर लेना। इनमें रहकर भी इनसे अनासक्त रहना। इनके वशवर्ती न होकर इन्हें वशवर्ती रखना।' महर्षिने स्वयं ही अपने सूत्रकी व्याख्या की—'तितीक्षा केवल दु:खको चिन्ता-विलाप रहित होकर सहलेने-का नाम नहीं है। शीत एवं उष्णता दोनोंको सहन करलेना जैसे तितीक्षा है, उसी प्रकार सुख-दु:ख दोनोंको सहन कर लेनेकी शक्तिका नाम तितीक्षा है। जो ऐसी तितीक्षामें समर्थ है, जो भोग एवं सम्मानको निरपेक्ष सह सकता है, उसे पराजित करनेकी शक्ति सुरेन्द्रके समीप भी नहीं है। उसका समत्व मायाका कोई चाकचिक्य भङ्ग नहीं कर सकता।'

उस दिन महर्षि इतना सूत्र देकर विदा हो गये। दूसरे दिनसे श्रीराम स्वयं महर्षिके आश्रम जाने लगे। क्रमशः उनमें परिवर्तन आने लगा। राजकीय रथमें ही वे प्रथम दिन भी महर्षिके समीप गये। नागरिकोंने देखा कि क्रमशः श्रीरामने सुन्दर दुकूल, अङ्गराग, आभूषण धारण करना प्रारम्भ कर दिया है।

भाइयोंकी, माताओंकी, महाराजकी, मन्त्रियोंकी, प्रजाकी चिन्ता दूर हुई। सबको सन्तोष हुआ। श्रीराम कुछ दिन और यदि प्रातःसे सायङ्काल तक गुरुगृह ही रहते हैं, वहीं आहार-ग्रहण करते हैं तो यह चिन्ताकी बात नहीं थी।

'मेरी बात तो रामने हँसकर टाल दी थी।' महारानी कैकेयी महाराजसे कहती थीं—'किन्तु अब अपनी गुरुपत्नीकी बात टालना तो सम्भव नहीं उनके लिए और वहाँ महर्षिके आश्रमपर इस कुलके सदा सानुकूल रहनेवाली सुरधेनु नन्दिनी है। सेवकोंने समाचार दिया है कि वह रामके लिए मध्याह्नमें दिव्य भोज्य नित्य प्रकट करती है। उसके प्रसादका तिरस्कार तो महर्षि भी नहीं कर पाते। वत्स रामभद्रका वहाँ जाते रहना ही उपयुक्त है।'

'दृश्य जगत् सङ्कल्पमात्र है। भले यह मेरे पिता चतुर्मुख सृष्टिकर्ताका सङ्कल्प हो, सर्वेश्वर तो सबके अन्तरमें है। अतः इस सङ्कल्पको—इस सृष्टिके बिलासको महत्ता नहीं दी जानी चाहिए।' महर्षि श्रीरामको नाना प्रकारके दृष्टान्त, उपाख्यानोंमें वहाँ आश्रममें प्रतिदिन समझा रहे थे—'तत्त्व एक अद्वय, देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न है। देश, काल, वस्तु प्रतीतिमात्र हैं। व्यावहारिक हैं। इनके व्यवहारमें कहीं भी अतिवादी न होकर समत्वमें स्थित रहना ही पूर्णता है।'

'प्राप्त परिस्थितिका उपयुक्ततम उपयोग किया जाना चाहिए।' श्रीराम प्रतिदिन अपना मनन गुरुदेवको निवेदन कर दिया करते थे—'अव्यग्र रहकर कर्तव्य पालन ही व्यावहारिक जीवनका आदर्श है।'

'वत्स ! अब तुम्हारा विवेक परिपक्व हो चुका। उसमें अब आवेशके उफान नहीं आवेंगे।' अन्तमें महर्षिने आशीर्वाद दिया इस आदेशके साथ—

कर्तव्यरूपसे जब ऐसे अवसर आते हैं, जिनमें प्रमादकी अत्यधिक सम्भावना रहती है, जैसे नरपति एवं राजकुमारोंके लिए आखेट, तो उन्हें आत्म-परीक्षणकी निकषा मानकर उनकी चुनौती स्वीकार की जानी चाहिए। तुम चक्रवर्ती महाराजके ज्येष्ठ कुमार हो। अपने उचित गौरव एवं भोगोंका उपयोग करते हुए कर्तव्य पालन करो।'

श्रीरामके जीवनकी दिशा सुनिश्चित होगयी। गुरुदेवने विदा करते कह दिया था—'राज्यसे पूर्व त्याग एवं तपकी अभिरुचि सकारण थी वत्स! वह भविष्यकी सूचक है, किन्तु उसका अवसर उपस्थित होने दो। वशिष्ठका शिष्य उसे भी सम्पूर्ण शौर्यके साथ झेल लेगा।'

आखेट-क्रीड़ा–निषाद मित्र

आखेट व्यसन तो है, किन्तु वह शासकका पवित्र कर्तव्य भी है। आखेट व्यसन बनता है तो व्यर्थ वन्य-पशुओंकी हत्या होती है, किन्तु आखेट सर्वथा न हो तो वनमें व्यवस्था नहीं बनी रहेगी।

आखेट आवश्यक है जिससे अपने यूथसे निष्कासित यूथ-जीवी वृद्ध पशु स्वयंकी यन्त्रणासे परित्राण प्राप्त करें और चिढ़चिड़े होनेके कारण दूसरोंके लिए आतङ्क न बने रहें।

आखेट आवश्यक है जिससे तृण-जीवी वन्य-पशुओंकी संख्या नियन्त्रित रहे। वे इतना तृणाभाव न उत्पन्न कर दें कि उनकी जाति ही आहारके अभावमें नष्ट होजाय अथवा वे वन्य-मानव ग्रामोंकी कृषि समाप्त करके मनुष्योंको ही न उजाड़ दें।

महाराज दशरथके हाथसे भूलसे जबसे श्रवणकुमारकी मृत्यु हुई थी, उन्होंने आखेट लगभग त्याग ही दिया था। इससे अयोध्याके सीमान्त वनोंमें भी वन-पशुओंकी संख्या आतङ्ककी सीमाका स्पर्श करने लगी थी। इस दीर्घकालमें यूथ-वहिष्कृत, वृद्ध, अकेले पड़े वार्धक्यकी यन्त्रणा भोगते वन्य-पशु बहुत बढ़ गये थे। राज्यके वन-विभागके अधिकारियोंने इधर महाराजका ध्यान आकर्षित किया।

महासेनापतिने सुझाया—'राजकुमारोंको चल लक्ष्य-वेधके लिए आखेट करना चाहिए। इससे सङ्कटमें त्वरित निर्णयका भी उन्हें अभ्यास होगा।'

कुलगुरुने श्रीरामको आखेटके आवश्यक कर्तव्यका संकेत अपने उपदेशमें कर ही दिया था। अत: श्रीरामने ही पितासे अनुमति माँगी—'भाइयोंके साथ मैं आखेट करने जाना चाहता हूँ।'

महाराजने अनुभवी वृद्ध आखेट सहायक देने चाहे, किन्तु उनके साथ आखेटका कोई अर्थ ही नहीं था। वनवासीजनोंके तो बालक अब भी केवल लाठीसे व्याघ्रको खदेड़ देते हैं। अत: यदि कोई वृद्ध वनवासी साथ है तो उसका अनुभव ही आखेटको इतना निरापद कर देगा कि आखेट न होकर वह पशु-हत्या मात्र होगी। अत: राजकुमारोंने इसे स्वीकार नहीं किया।

श्रृङ्गबेरपुरके निषादराज अनुभवी थे। अयोध्याके सिंहासनके भक्त थे। उनके राजकुमार गुहको आखेटमें साथ रखनेका प्रस्ताव महामन्त्री सुमन्त्रने किया। महाराजने और राजकुमारोंने भी इसे स्वीकार कर लिया।

गुह आये और श्रीरामने उन्हें सखा बना लिया। श्रीराम तो अपनाकर त्यागना, भूलना जानते नहीं और गुहने रामको देखा तो वे देखते ही सदासदाके लिए रामके होगये। श्रीराम उन्हें सखा कहें, गुहने तो अपनेको उनके श्रीचरणोंपर उत्सर्ग कर दिया। वे दास होगये बिना मूल्यके।

न हाँका और न मचान। कोई और सेवक सहायक नहीं। आखेट व्यसन-पूर्तिके लिए नहीं था कि सब सुख-सुविधाकी व्यवस्था साथ चलती। निर्णय होगया कि राजकुमार और निषादकुमार गुह अश्वारोही रहेंगे।

मध्याह्नका आहार स्वयं साथ ले जायँगे और सायङ्काल अवश्य लौट आया करेंगे। वनका अनुभव प्राप्त करना था कुमारोंको।

दिनके आखेटके उपयुक्त ग्रीष्म ऋतु नहीं हुआ करती। ग्रीष्ममें तो वनपशु आतप-पीड़ित कहीं छिपे रहते हैं। वे जल पीने और आहारकी खोजमें रात्रिमें निकलते हैं। ग्रीष्म-रात्रि आखेटकी ऋतु है। दिनके आखेटकी ऋतु शीतकाल है। विशेषतः शिशिर, क्योंकि उस समय पशु रात्रिके शीतसे कातर गुहाओं एवं कुञ्जोंमें छिपे रहते हैं। वे दिनमें आहारकी खोजमें निकलते हैं।

शिशिरके आखेटमें प्रचण्ड सूर्य-तापका, प्रखर लूका भय नहीं था। राजकुमार वनमें पिपासा-पीड़ित होकर चाहे जैसा जल पी लेंगे, यह सम्भावना भी नहीं थी। इस ऋतुके आखेटका एक ही दोष है, मादा पशु गर्भिणी हो सकती है। राजकुमारोंको, गुहको भी बार-बार सावधान कर दिया गया कि वे मादा-पशुको लक्ष्य न बनायें।

शरीरपर कसा रत्न जटित स्वर्ण-कवच, मस्तकपर शिरस्त्राण, चरणोंमें आखेट-उपानह, पीठपर बँधे त्रोण, कटिसे लटकती तलवारें, स्कन्धपर धनुष, हाथोंमें भल्ल, अश्वारूढ़ चारों राजकुमार और निषादराज-तनय गुह। माताओंने मस्तकपर रोलीका तिलक करके अक्षत लगा दिया है। वीरवेशमें सजे जब ये अश्वारोही राजभवनसे निकले, शङ्खकी मङ्गल ध्वनि, विप्रोंके स्वस्ति पाठसे दिशाएँ गूँजने लगीं। पुरवधुओंने भवनोंके ऊपरसे लाजा, अक्षत, दूर्वा, पुष्पकी वर्षा की इनके ऊपर। महाराज स्वयं नगरके बाहर तक रथारूढ़ आये। सरयू-तटपर कुलगुरुने आशीर्वाद दिया।

प्रातराश करके ही चारों कुमार निकले थे। अनेक सूचनाएँ महामन्त्रीने वनके सम्बन्धमें पहिलेसे एकत्र कर रखी थीं। माताओंने शीघ्र लौटनेके आदेश दिये थे। महाराजने निषादराजके कुमारसे पृथक कहा था—'प्रथम दिन कुमारोंको केवल वन-दर्शन करा लाना है। कोई आखेट मिले ही, यह आवश्यक नहीं है। इन्हें श्रान्त मत होने देना और बहुत गहनकी ओर मत ले जाना।'

महाराज बहुत-सी सूचनाएँ आखेट सम्बन्धी अपने अनुभवकी देना चाहते थे, किन्तु गुहने कहा—'महाराज हम निषादोंका तो वन ही भवन है।

पिताके साथ शैशवसे मैं वनमें जाता हूँ। कुमारोंको कोई कष्ट नहीं होगा और गुह उनके लिए जीवन दे सके तो इसका जीवन धन्य हो जायगा, यह मेरे पिताश्रीने मुझे भली प्रकार समझा दिया है।'

महाराज जानते थे कि उनके आखेट-सहायक निषादराज वनके महान अनुभवी हैं। उनके कुमार जा रहे हैं राजकुमारोंके साथ। अतः चिन्ताका कारण नहीं है, किन्तु प्रीति कातर होती है थोड़े आदेश उन्होंने दिये और राजकुमारोंको विदा करते हुए कहा—'वत्स रामभद्र ! तुम चारों भाई वनमें निषादराजके कुमारका निर्देश-पालन करना। ये तुम्हारे अग्रचर और अग्रणी रहेंगे। इनकी वर्जनाओं तथा संकेतोंका उल्लङ्घन मत करना।'

'लक्षण उत्तम हैं, वायु हमारे सम्मुखसे पृष्ठ देशकी ओर चल रही है। गुहने वनमें प्रवेश करते ही कहा—'अन्यथा हमें वायुकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिए दूर तक जाना पड़ता। वन-पशु वायुमें हमारे शरीरोंकी गन्ध पाकर सावधान हो सकते थे।'

गुहने सरयू-तट पहुँचे वन-पशुओंके उस मार्गको जिससे वे जल पीने आते थे, शीघ्र ढूंढ़ लिया और वहाँ अश्वसे उतर पड़े। चारों राजकुमार उनके संकेतसे नीचे आगये। गुहने बतलाया—'वनमें अपने नेत्रोंको, कर्णको और नासिकाको बहुत सतर्क रखना पड़ता है। कुमारोंको कुछ दूर पदोंसे चलना चाहिए। इससे वन-पशुओंके पद-चिह्न तथा दूसरे संकेत समझनेका अवसर मिलेगा उन्हें।'

गुहने धूलिमें पड़े पद-चिह्नोंको दिखलाना प्रारम्भ किया—'ये पद-चिह्न हाथियोंके हैं। आखेटमें गज अवध्य है, अतः इनके चिह्नोंसे हमें हट जाना है। ये दूसरे पशुओंके पद-चिह्न मिटाते चलते हैं, किन्तु गज बहुत पहिले इधरसे निकले हैं। इनके पद-चिह्नोंपर दूसरे पशुओंके पद-चिह्न हैं।'

'ये पद-चिह्न शशकके हैं, ये मृगोंके और यह चीतलके। यह चिह्न सिंहनीके पदोंका है।' राजकुमारोंने आखेट-शास्त्र पढ़ा था, किन्तु अपने इस निषाद कुमार मित्रका अनुभव उन्हें चकित कर रहा था।

'हम इसका अनुगमन करें।' लक्ष्मणने कहा—'इसके साथ इसका सहचर भी तो होगा।'

'नहीं कुमार !' गुहने अस्वीकार कर दिया—'यह गर्भवती है। आप ध्यान पूर्वक देखें, इसके पदोंकी दूरी कम है और चिह्न गहरे हैं। इसका अर्थ है कि यह शिथिल पदोंसे धीरे-धीरे गयी है। हिंस्र पशुओंमें मादा गर्भवती होनेपर प्रायः नरसे पृथक होजाती है और साथ भी रहे तो नर उसका तथा उसके होनेवाले शिशुओंका संरक्षक होता है। वह भी अवध्य है इस समय।'

'अरे !' सहसा गुह चौंककर खड़े होगये। वे वन-पशुओंके मलको देखकर बतला रहे थे कि पशु कितने समय पूर्व गया होगा। उनके मूत्र-चिह्न देख लेते थे। सामान्य मानव न देख सके, ऐसे तृण देखकर कह रहे थे कि वह किस वनपशुने चरा हो सकता है और कितने काल पूर्व चरा गया है। एक कण्टकयुक्त झाड़ीके समीप वे सहसा खड़े होगये—'कुमार ! ये रोम वृद्ध व्याघ्रके हैं।'

झाड़ीके काँटोंमें दो-चार केश उलझे थे। सामान्यतः उनपर किसीकी दृष्टि ही नहीं जा सकती थी। राजकुमार समीप आ गये। श्रीरामने पूछा—'रोम व्याघ्रके तो लगते हैं, किन्तु वह वृद्ध है, यह कैसे समझ लिया मित्र ?'

'व्याघ्र तृणोंमें तथा सघन झाड़ियोंमें तो छिपता है, किन्तु कण्टक झाड़ियोंसे दूर रहता है।' गुहने बतलाया—'यह इस कण्टक झाड़ीमें प्रविष्ट होकर बैठा होगा और आखेटके लिए कूदा होगा। व्याघ्र ऐसा तभी करता है जब उसमें आखेट-पशुके पीछे दूर तक दौड़नेकी क्षमता न रह जाय। हम कुछ और चलें तो प्रमाण मिल जायगा, वैसे इसके रोमोंका वर्ण ही इसे वृद्ध सूचित करनेको पर्याप्त है, किन्तु कुमारोंको अभी रोमके वर्ण द्वारा पशुकी आयुका ज्ञान कर लेनेमें कठिनाई होगी।'

थोड़ी दूर जानेपर गुहने सबको दिखलाया—'वृद्ध व्याघ्र आखेट नहीं पा सका है। वह यहाँसे शिथिल पद आगे गया है। मृगके पद-चिह्न उसकी पूरी छलांगके हैं, किन्तु यह मृग भी वध्य है।'

'मृग वध्य क्यों है मित्र ?' भरतजीने जिज्ञासा की।

'कुमार ! मृग यूथजीवी पशु है। एकाकी तब होता है जब यूथ बहिष्कृत हो।' गुहने भूमिकी ओर दिखलाया—'हिंस्र पशु आक्रमण करे

तो मृग एकाकी भाग सकता है, किन्तु इतने बड़े पद-चिह्न बालमृग या मृगीके नहीं होते और तरुण मृग प्राण-भयके समय इतनी छोटी छलांग नहीं लेगा। शृङ्ग भार पीड़ित यह यूथ बहिष्कृत वृद्ध मृग होना चाहिए।'

कुछ पद बढ़ते ही गुहने सावधान किया—'अश्व हम यहाँ बाँध नहीं सकते। इन्हें निरापद स्थानपर मैं छोड़ आता हूँ। कुमार यहाँ सर्वथा नीरव रहेंगे। वृद्ध व्याघ्र कहीं समीप हो सकता है। छींक, खाँसी भी वर्जित है आखेटमें।'

व्याघ्रके पद-चिह्न लुप्त होगये थे। इसका अर्थ था कि वह मार्ग छोड़कर तृणोंपर होता कहीं चला गया था। सघन झाड़ियोंमें अश्व जा नहीं सकते थे। उन्हें छोड़ देनेपर कोई हिंसक पशु उन्हें आखेट बना सकता था। गुह पाँचों अश्व लेकर पीछे लौटे।

गुहके चले जानेपर सचमुच एक झाड़ीसे बहुत बड़ा भयङ्कर व्याघ्र निकला। उसके स्वर्णपीत शरीरपर काली धारियाँ चमक रही थीं। श्रीराम मुग्ध दृष्टिसे उसे देखते रह गये।

आखेटके नियमानुसार मुख्य व्यक्तिको आखेटका प्रथम अवसर दिया जाता है। उसका लक्ष्य सफल न हो तब दूसरे आघात करते हैं। आखेटके प्रथम दिनका यह प्रथम आखेट—इसे स्वत्व माना जाना चाहिए अग्रजका। व्याघ्र श्रीरामकी दिशासे ही निकला है, किन्तु श्रीरामने तो न धनुषको ज्या सज्ज किया, न कोशसे खड्ग निकाला और न भल्ल उठाया। वे तो दो पद व्याघ्रकी ओर बढ़कर उसे ऐसे मुग्ध देख रहे हैं जैसे वह कोई पालतू पशु हो।

तीनों भाइयोंने धनुष ज्या सज्ज करके वाण चढ़ा लिये। तीनों चकित हैं कि उनके अग्रज शस्त्र क्यों नहीं उठाते। क्रूर पशु पिछले पद मोड़कर उछलनेको प्रस्तुत बैठ चुका है और उसके नेत्रोंमें हिंसा तथा लोभ स्पष्ट है। वह तनिक-तनिक पूँछ हिलाने लगा है।

व्याघ्र श्रीरामके ठीक सम्मुख न होता तो भाइयोंके वाण छूट चुके होते। पशु कब उछलेगा और अग्रज क्या चाहते हैं, इसे भी वे समझ नहीं पाते थे। व्याघ्र उछला। उसने श्रीरामको लक्ष्य करके ही छलांग लगायी थी, किन्तु उसी त्वरासे श्रीरामके पीछेसे एक भल्ल आया और व्याघ्रका

वक्ष फोड़ता उसके पीठ तक निकल गया। अत्यन्त बलिष्ठ भुजाओंने भल्ल पकड़े हुए ही व्याघ्रको पटक दिया पीठके बल। निषादकुमार गुहको चारों कुमारोंने तब देखा जब वे व्याघ्रके वक्षपर पद रखकर अपना भल्ल खींच रहे थे।

'कुमार इतने असावधान क्यों हैं ?' रक्ताक्त भल्ल और व्याघ्र रक्त-रञ्जित दक्षिण पाद शौर्यमूर्ति गुहने घूमकर श्रीरामकी ओर देखा और उपालम्भ दिया—'धनुष तक ज्या सज्ज नहीं किया गया !'

'मित्र ! तुमने ही तो कहा था प्रथम आखेटका स्वत्व ज्येष्ठको होता है।' श्रीरामने सरल भोलेपनसे कहा—'आखेटमें तुम हमारे अग्रणी हो। वयमें ज्येष्ठ हो। यह तुम्हारा स्वत्व नहीं था ?'

'राजकुमार क्या सोचते हैं कि हिंस्र पशु प्रतीक्षा करता है कि वह जिसका स्वत्व है, वही आकर उसका वध करे ?' गह हँस पड़ा अपने सखाके भोलेपनपर।

'कम-से-कम इसने तो प्रतीक्षा की ही।' श्रीरामने उसी भोलेपन-से कह दिया—'नहीं की क्या ?'

दूरसे व्याघ्रको देखकर गुह दौड़े आये थे। अब उन्होंने कह दिया—'राजकुमार पैदल नहीं चलेंगे। मैं अश्व ले आता हूँ। वे निकट ही ऊँचे टीलेपर हैं।'

किसीके उत्तरकी अपेक्षा किये बिना गुह दौड़ गये। वे अश्वारूढ़ ही आये अश्वोंको लेकर और अब उनका अश्व आगे चलने लगा। उन्होंने निषादोंका तीक्ष्ण काष्ठ-छेदक शस्त्र दक्षिण करमें ले लिया। नीचे तक झुकी शाखाएँ, लताएँ काटते वे राजकुमारोंके लिए मार्ग प्रशस्त करते जारहे थे।

'वह मृग आपका लक्ष्य है।' गुहने दूरसे श्रीरामको एकाकी कृष्णमृग दिखलाया।

'वह तृण तो चरता नहीं और निराश जैसा खड़ा है !' श्रीरामको दया आगयी।

'आप देखते हैं कि उसके शृङ्ग कितने बड़े हैं।' गुहने समझाया—'शृङ्ग-भारसे सिर झुकाते ही सन्तुलन नष्ट होनेसे वह गिर पड़ेगा। वृद्ध

होनेसे यूथ-वहिष्कृत है। अब लताओंके वे पत्र ही उसके आहार हैं, जिन्हें मुख उठाकर पा सके। सम्भवत: व्याघ्रने इसीको दौड़ाया था। श्रान्त दीखता है।'

'यह वध्य क्यों है ?' भरतने शङ्का की। श्रीरामने अब तक धनुष ज्या सज्ज कर लिया था।

'इसलिए कि वृद्ध है। तृण चरनेमें असमर्थ है।' गुहने कहा--'अब वार्धक्यकी यातना भोग रहा है। कोई न कोई हिंसक पशु उसे मार ही देगा। व्याघ्र बहुत वृद्ध न होता तो यह बच नहीं पाता और तब इसे कष्ट-पूर्वक मरना पड़ता। इसका चर्म नष्ट होजाता। कोई तापस उसे उपयोग करले, इस सौभाग्यसे भी वञ्चित होजाता यह।'

श्रीरामने वाण छोड़ दिया था। रामका वाण तो अमोघ होता है। प्रथम आखेट भी किया उन्होंने दया-प्रेरित होकर।

महामन्त्रीने वनके सम्बन्धमें ठीक सूचना दी थी। वनमें आखेटके लिए पवित्र माने जानेवाले वध्य पशु बढ़ गये थे। सभी राजकुमारोंने आखेट किया।

मध्याह्न स्नान निर्झरमें करके सन्ध्या की कुमारोंने और वहीं आहार किया वनके पत्रोंको पात्र बनाकर। वनके कपियोंको तथा शशक आदि छुद्र पशुओंको उनका प्रसाद प्राप्त हुआ।

दिनके चतुर्थ प्रहरमें राजकुमार अश्वोंके पीछे आखेट किये गये पशुओंको लादे लौटे। सरयू-तटपर ही उन्हें प्रतीक्षा करते राजसेवक मिल गये। नगरसे बाहर ही मिले स्वयं महाराज। राजकुमारोंने अश्वोंका त्याग किया। अपने आखेट पिताके सम्मुख रखे।

'तात ! इनमें कोई आखेट-निषिद्ध पशु तो नहीं है ?' श्रीरामने उत्साह पूर्वक एक-एक पशुको दिखलाया। किसका आखेट किसने किया और कैसे किया है, यह विस्तार पूर्वक बतलाया।

'वत्स ! तुमने राजकुमारोंको प्रथम आखेट कराया है।' महाराजने सुप्रसन्न कहा—'ये पशु और इनके चर्म तुम्हारे हैं। इनके शरीरके भार तुल्य रत्न-स्वर्णराशि लेकर इन्हें कुमारोंको दे दो। अपने प्रथम आखेटकी स्मृति ये रखना चाहेंगे।'

'ये मृत पशु कुमारोंके हैं और यह जन उनका नहीं है ?' गुहने कोई पुरस्कार-निष्क्रय स्वीकार नहीं किया--'मेरा परम सौभाग्य कि मैं सेवाका अवसर पाता रहूँ।'

'तात ! यह ऐणेयाजिन तो कुलगुरुकी सेवासे सार्थक होगा !' श्रीरामने अपने प्रथम आखेटकी ओर संकेत किया।

'इनके चर्म उपयोगी बनाने पड़ते हैं वत्स !' महाराजने स्नेहपूर्वक कहा—'महामन्त्री निपुण चर्मकारोंको अभी ये पशु दे देंगे। वे इनका चर्म उपयोगी बना देंगे तब तुम लोग इन्हें गुरुदेवको तथा दूसरे ऋषियोंको अर्पित कर सकोगे।'

राजकुमारोंके प्रथम सफल आखेटके उपलक्षमें देव-मन्दिरोंमें विशेष अर्चन, हवनकी व्यवस्था थी। ब्राह्मणोंका सत्कार होना था।

राजकुमार पिताके साथ रथपर राजभवन पधारे। गुह्ने विदा ली दूसरे प्रभातमें आजानेका वचन देकर। श्रीरामको स्वयं माताओंको अपने आखेट दिखलाने थे, आखेट-विवरण सुनाना था। अत: आखेटमें मारे गये पशुओंको एकबार अन्त:पुर तक भेजनेकी व्यवस्था महामन्त्रीने की।

महारानियोंने तो उन मृत पशुओंके शवका भी सत्कार किया उनपर कुंकुम-पुष्प चढ़ाकर। उनके साथ स्वर्ण-रत्नकी न्यौछावर मिली चर्मकार-वर्गको और चर्म उपयोगी बनाकर लानेपर तो पारितोषिक प्राप्त होना ही था।

राजकुमारोंकी यह मृगया-क्रीड़ा प्रतिदिन नहीं चलती थी, किन्तु प्रारम्भमें वह एक दिनके अन्तरसे चलती रही। वनमें शीघ्र ही कुमारोंको दूरतक जाना पड़ने लगा। वन-पशुओंके उत्पात शमित होगये। अब आखेट योग्य पावन पशुओंका अन्वेषण श्रम तथा समय लेने लगा।

आखेट व्यसन तो था नहीं। उसकी आवश्यकता समाप्त हुई तो पावसके प्रारम्भमें यह क्रीड़ा बन्द होगयी। ग्रीष्ममें कुमारोंने रात्रि-आखेट भी पर्याप्त किया था। रात्रि-निवास वनमें, वृक्षपर या अश्व-पृष्ठपर करनेको, अन्धकारमें वन-भ्रमणके अभ्यासी होगये वे।

व्यवस्थामें योगदान

अयोध्या तथा आसपासके जनपदोंकी व्यवस्थामें श्रीरामने भाइयोंके साथ राजकीय उच्च कर्मचारियोंको सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया और यह इतने सहज ढंगसे हुआ कि किसीको भी अनुभव नहीं हुआ कि शासन-व्यवस्थामें कोई नया परिवर्तन होरहा है, अथवा राजकुमारोंने किसी प्रशासनिक अधिकारका उपयोग प्रारम्भ किया है।

आखेटके लिए वनमें जानेपर वन्य जातियोंके लोग, उनके प्रधान नहीं मिलेंगे, यह सम्भव नहीं था। निषादराजके कुमार गुह तो उन लोगोंके अपने युवराज थे। फलतः गुहके माध्यमसे उन्होंने निवेदन प्रारम्भ किया कि चक्रवर्ती महाराजके कुमार उनकी पल्लीको भी श्रीचरणोंसे पवित्र करें।

आखेटके समय गुहका निर्देश ही मानना था। अनेक समय गुह किसी वन्य किरात, कोल या निषाद पल्लीके समीप मध्याह्न विश्रामका सुझाव देते थे। इसके भी कारण थे। वनमें जलकी सुविधा सर्वत्र नहीं हुआ करती। जहाँ होती है, वहाँ आवास अशक्य ही न हो तो वन्य जातियाँ अपनी झोपड़ियाँ बना लेती हैं। आखेटमें जब अन्धाधुन्ध पशु-हत्या नहीं करनी थी, वृद्ध, असमर्थ पशु मारने थे अथवा वन्य जातियोंके उत्पीडक, तो उनका पता विना वनवासियोंके सहयोगके कैसे लगता।

राजकुमार किसी वन्य जातिकी पल्लीके समीप सघन वृक्षके नीचे पहुँच जाते तो वनवासी स्वभावतः उनके सत्कारमें लग जाते थे और श्रीराम प्रायः लक्ष्मणसे कह देते थे—'चुपचाप इन लोगोंकी पल्लीके चतुर्दिक एक चक्कर लगा आओ।'

वहाँ जलकी सुविधा कैसी है, पार्श्वके वनमें ईंधन, फल, कन्दादि हैं या नहीं हैं, यह देखकर पता लग जाता था। गुहसे और उन वनवासियोंसे पूछकर बहुत कुछ जान लिया जाता था। श्रीराम यदि पूछते थे—'यहाँ नवनीत मिल सकेगा?' तो पल्लीका कोई कैसे समझ सकता था कि राजकुमारको नवनीत नहीं चाहिए। वे जानना चाहते हैं कि पल्लीमें दुग्ध देनेवाले पशुओंकी स्थिति क्या है।

'तात ! विवर्धिनी किरात पल्लीके समीपका जलस्रोत क्षीण होरहा है।' नगरमें आकर पितासे अथवा महामन्त्रीसे श्रीरघुनाथ कहते—'आपकी अनुमति हो तो वहाँसे अर्ध योजनपर जो निर्झर है, उसकी जल-धारा उस पल्ली तक पहुँचा देनेकी व्यवस्था करवा दूँ।'

कहीं किसी पल्लीके लिए उत्तम वृषभ भिजवाना था, कहीं कुछ गायें, अन्न अथवा वस्त्र भेजने थे। कहीं समीपके वनमें कन्द या नीवार विशेषके बीज-वपनकी व्यवस्था कर देनी थी। उस पल्लीके लोगोंको तो ये कार्य सम्पन्न होजानेपर पता लगता था कि उनके लिए यह व्यवस्था राजकुमारके आदेशसे हुई है।

अनेक वन्य-जातियोंके ग्रामों तकके दुर्गम मार्ग राजकुमारके संकेतसे सुगम बनाये गये। अनेक विकट नालोंपर सेतु निर्मित किये शासनने बिना किसी आवेदनके। अनेक कुण्ड, वापी, सरोवर स्वच्छ कराये गये अथवा गहरे कराये गये। बहुतसे स्थानोंपर विशाल विश्राम गृहोंका निर्माण प्रारम्भ होगया।

वन्य पल्लियोंकी व्यवस्था देखनेके क्रममें श्रीराम नगरके समीपके जनपदोंमें भी जाने लगे। भाइयोंकी सहमति सदा प्राप्त थी। महाराजसे प्रातः प्रार्थना करते—'आज आखेटका विराम दिवस है। आप आज्ञा दें तो हम लोग अश्वोंको थोड़ी दूर तक घुमा लावें।'

अश्वारोहण कुमारोंके लिए आवश्यक दैनिक व्यायाम तो था ही, चक्रवर्ती महाराजको यह भी प्रिय था कि उनके कुमार प्रजाके सीधे सम्पर्कमें आवें। स्वयं महाराज ऐसी यात्रा करें तो बहुत-सी व्यवस्था करनी पड़ती थी। उसमें प्रजाको स्वाभाविक स्थितिमें देख पाना कठिन था। महाराज तो राज-कर्मचारियोंके साथ ही यात्रा करते, किन्तु राजकुमार प्रातः अथवा सायं भ्रमणके लिए निकले तो सेवकोंका साथ जाना अनावश्यक था और राजकुमार किसी भी जनपदमें सहसा पहुँच सकते थे।

समीपके जनपदोंके साथ नगरके उद्यान, देवस्थान, वीथियाँ, उपवन, पुष्पोद्यान निरीक्षणका क्रम स्वतः प्रारम्भ होगया। किस स्थानको अधिक सुशोभित, प्रजाके लिए सुविधापूर्ण कैसे किया जा सकता है, यह यदि कोई बुद्धिमान सोचने ही लगेगा तो उसे स्वर्गके नन्दन काननमें भी कुछ करने योग्य मिल जायगा। अयोध्या-नरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथने

कभी प्रमाद नहीं किया था और न उनके कर्मचारी प्रमत्त थे, किन्तु श्रीराम अनुजोंको लेकर निकलते थे और अनेक नवीन योजनाएँ ले आते थे ।

'तात ! देवालयोंके पार्श्वमें पद्म-सरसी बनवा दूँ ?' इस प्रकार कहीं सघन तमाल रोपित करने थे, कहीं मौलिश्री अथवा राजकदम्ब । तुलसी-कानन, विल्व होने ही चाहिए देव मन्दिरोंके समीप । किसी सरोवरको स्वच्छ करना था और किसीके सोपान पुनर्निर्मित कराने थे ।

अमुककी गजशालाके लिए उत्तम गजकी व्यवस्था करनी थी और अमुककी अश्वशाला श्यामकर्णके बिना श्रीहीन लगती थी । अमुक आपणमें विक्रम शिथिल था, अतः उसकी वस्तुओंका क्रय राजकोषसे कर लिया जाना चाहिए । अमुक कला-जीवियोंके लिए उचित सहायकोंकी व्यवस्था कर देनी है ।

श्रीरामकी दृष्टिसे जैसे नगरके—ग्राम्य जनपदोंके सार्वजनिक स्थान, देव मन्दिर तो छूटने ही नहीं थे, व्यक्तियोंके अपने सदन, पशु-शालाएँ भी नहीं छूटती थीं और वहाँ जो अभाव स्वयं गृहपतिको कभी नहीं दीखा, राजकुमार उसे देख लेते थे । उसे पूर्ण करा देते थे बिना किसी सूचनाके ।

अनेक बार श्रीराम भाइयोंको पृथक-पृथक कार्योंके लिए अथवा निरीक्षण करने भेज देते थे । भैषज्यशालाएँ, संगीत-गोष्ठियाँ, विहारोपवनसे लेकर नागरिकोंके निजी रसोई घर तक राजकुमारोंके लिए तो अवरुद्ध थे नहीं । वे एक साथ या एकाकी किसी गृहमें कभी पहुँच सकते थे—'मातः ! आज प्रातराश यहीं करना है !' धन्य होजाता वह गृह जहाँ कोई राजकुमार किसी दिन इस प्रकार पहुँच जाते । गृहपति अथवा गृहस्वामिनी कैसे समझ सकती थी कि उसका उद्यान, भवन अनेक अभावोंसे युक्त लगा राजकुमारको और वे जब इसे अपना सदन कहकर यहाँ पधारे—यहाँ जो सज्जा कराना चाहेंगे, जो उपकरण लाना चाहेंगे, उन्हें कहाँ किसीका वारण सुनना है ।

'वत्स ! प्रजाके अभियोग तुम सुनकर वहीं निर्णय दे सकते हो ।' महाराजने प्रसन्न मन श्रीरामसे कह दिया—'केवल जटिल प्रश्न राजसभाके निर्णयके लिए छोड़ देना ।'

'राजकुमार ! जलाशयोंके पार्श्व आवागमनके प्रायः अयोग्य बने रहते हैं ।' प्रजाके अभियोग थे और जटिल थे—'राज-कर्मचारी सप्ताहमें एक दिन तो आकर वहाँसे शासनका भाग उठा ले जाया करें !'

'सप्ताहमें एक दिन ?' प्रत्येक ऋतुमें फल होते हैं। आपके पूज्य पिताके पुण्य प्रभावसे उद्यानोंमें भी पर्वतोंके समान मणियाँ प्रकट होजाती है। सरिताओंमें मुक्ता मिलते हैं और पशुओंकी **वृद्धि** तो सदा चलती है। उनका गोरस है। आपणमें भेजे गये शाक, फलादिका निष्क्रय है। नागरिकोंका अभियोग है—'सीधे जानेपर कोषाध्यक्ष कुछ स्वीकार नहीं करते और न राजसदनके कर्मचारी स्वीकार करते। तब जलाशयोंके तट तो राज-कर्मचारी स्वच्छ करते रहें।'

'वे स्वच्छ रहेंगे, यदि आप सब केवल समयपर अपना देय उनके तटपर रखें।' श्रीराम समझानेका प्रयत्न करते हैं। 'आप यदि देयसे अधिक वहाँ रखेंगे तो उसे शासन कैसे स्वीकार कर सकता है।'

प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्पादनका षष्ठमांश राज्य-करके रूपमें निकटतम जलाशयके समीप रख दे, यह नियम है। वहाँ केवल मुद्राएँ ही नहीं रखी जातीं। अन्न, वस्त्र, स्वर्ण तो लोग रखते ही हैं, अब पशु भी बाँध देते हैं। राज-कर्मचारियोंके आगमनका पता लगनेपर मधु, घृतादि रस द्रव्य भी धर आते हैं।

'कुमार परिग्रहको प्रोत्साहित कर रहे हैं।' वृद्धजन निःसंकोच आक्षेप कर देते हैं—'जितनेसे हमारा सुख-पूर्वक निर्वाह होजाता है, उतना हमारा स्वत्व है। हमारे अभावकी एवं आवश्यकताकी पूर्तिमें जब प्रशासन किञ्चित भी प्रमाद नहीं करता, हम अतिरिक्त उत्पादनके संग्रहका श्रम एवं सुरक्षाकी चिन्ता करें, यह भार हमपर क्यों डालता है ?'

स्पष्ट था कि नागरिक षष्ठमांशसे पर्याप्त अधिक द्रव्य जलाशयोंके तटपर रख आते थे और महाराजकें निपुण कर्मचारी उत्पादनका अनुमान करके केवल षष्ठमांश उठा ले जाते थे। शेष जिसका है, वह लेजाय; यह वे चाहते थे।

अभावग्रस्त असन्तुष्ट प्रजाकी समस्याओंसे भिन्न भले हों सन्तुष्ट, अपरिग्रहप्रिय, श्रमशील, प्रचुर उत्पादक प्रजाकी समस्याएँ, किन्तु वे कम जटिल कहाँ थीं। उन्हें वितरित कर देनेको कहना सरल नहीं था। कहाँ था कोई अभावग्रस्त जो उसे स्वीकार करता।

'आप सब अपने सदनको ही मेरा स्वीकार करलें!' श्रीरामके समीप एक ही समाधान था—'मेरे द्रव्यके सञ्चयका श्रम भी करें मेरे प्रियके लिए। कोई महायज्ञ उपस्थित होनेपर शासन उसका उपयोग कर लेगा।'

'ये गृह और इनके निवासी तो कुमारके ही हैं।' नागरिक भावभरी प्रार्थना करते आराध्यसे—'महाराज युग युग जीवित रहें ! शीघ्र वे महायज्ञ प्रारम्भ करें।'

महायज्ञोंका यह क्रम तो श्रीरामने अपने सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् प्रारम्भ किया।

महर्षि विश्वामित्र आये

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ दिनके प्रथम प्रहरके अन्तमें राजसभामें सिंहासनपर विराजमान हुए ही थे कि द्वारपालने समाचार दिया—'ऋषि विश्वामित्र महाराजसे साक्षात्कार करने पधारे हैं।'

'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र !' अच्छी बात यह थी रघुकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ उस समय राजसभामें ही थे। वे सबसे पहिले अपने आसनसे उठे। उन्होंने महाराजसे कहा—'ब्रह्मर्षि पहिले राजर्षि रहे हैं, अतः ऋषिगणोंके साथ सेनापतियोंको भी उनका स्वागत करना चाहिए।'

महर्षि वशिष्ठके साथ वामदेव, जाबालि आदि सभी उपस्थित ऋषिगण उठे। सभी मन्त्री और सेनापति महाराजके साथ होगये। महाराज शीघ्रतापूर्वक द्वारपर पहुँचे। शंख-ध्वनि, विप्रोंका मन्त्रपाठ एक क्षणको विरमित हुआ जब महाराजने दण्डवत भूमिमें पड़कर प्रणिपात किया—'यह ऐक्ष्वाकु अज-तनय दशरथ श्रीचरणोंमें प्रणत है।'

विश्वामित्रजीने महाराजको उठाया। वशिष्ठजीने उन्हें अङ्कमाल दी। दूसरे सभी ऋषियोंने उनकी वन्दना की। मन्त्रपाठ, वाद्यध्वनिके स्वागतके मध्य महाराज विश्वामित्रजीको राजसभामें ले आये। वहाँ रत्न-सिंहासनपर मृगचर्म आस्तृत करके उन्हें विराजमान कराके महाराजने उनके चरण धोये। उस पादोदकसे पूरी राजसभा सिञ्चित हुई और उसे राजसदन सिञ्चित करनेको भेज दिया गया।

अर्घ्य, पाद्य, चन्दन-माल्य, धूप-दीपादिसे पूजा करके महाराजने कहा—'आज मेरे जन्मजन्मान्तरके पुण्योंका उदय हुआ है। आज मेरे

पितर परितृप्त हुए। आज मुझपर भगवान् जनार्दनकी कृपाका अवतरण हुआ कि आपके चरण-दर्शनका सौभाग्य मिला। आज आपका पादोदक पाकर मैं निष्कलुष होगया। आपने जैसे इतनी अहेतुकी कृपा की है, वैसे ही राजसदन पधारकर अपना प्रसाद प्राप्त करनेका भाग्य अन्त:पुरवासियों तथा राजकुमारोंको भी प्रदान करें।'

'राजन्! नियम यह है कि अर्थी अतिथि अपनी याचना-पूर्ति होनेपर ही आहार ग्रहण करता है।' विश्वामित्रजीने कहा—'मैं आप सत्यसन्ध, परमोदारके समीप याचक होकर आया हूँ।'

'भगवन्! इससे महान सौभाग्य दशरथका और क्या होगा।' महाराजने अञ्जलि बाँधकर भक्ति-विभोर स्वरमें कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य, समस्त कोष, सारी सेना, पूरा अन्त:पुर, मैं स्वयं और मेरे सब पुत्र आपके हैं। मैं अपना मस्तक भी देकर सेवा कर सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊँगा।'

'रघुकुलकी परम्पराके अनुरूप आपका वचन है।' विश्वामित्रने शान्त स्वरमें कहा—'विवश होकर ही मैं आपके समीप याचना करने आया हूँ।'

'आप आज्ञा करें!' महाराजने कहा—'मैं अपना सर्वस्व देकर उसे पूर्ण करूँगा।'

'राजन्! आप सत्यनिष्ठ हैं और परमोदार हैं। इस वंशमें कोई ऐसा कृपण या कापुरुष नहीं हुआ जो आगत तपस्वीको निराश कर दे।' विश्वामित्रने फिर कहा—'आप तो महादानी प्रख्यात हैं। मुझे आपके औदार्यपर भरोसा न होता तो मैं तपोवन छोड़कर अयोध्या नहीं आता।'

'भगवन् मैंने वचन दिया है।' महाराजने कहा—'धर्म और सत्यसे महान कुछ नहीं है। आप आज्ञा करें।'

'मुझे हिमालयमें अपनी तपोभूमि कौशिकीके तटपर तपस्या करना प्रिय है। लोकमें और परलोकमें भी मेरी कोई स्पृहा नहीं है।' विश्वामित्रजीने कहना प्रारम्भ किया—'किन्तु मैंने एक पार्वण यज्ञका संकल्प किया और गंगातटपर सिद्धाश्रम आगया। वह अनादि पुण्यस्थली मुझे प्रिय लगी। वहाँ पहिलेसे बहुतसे तपस्वी मुनिगण रहते थे। सबने मुझे सहयोग दिया।'

महर्षि वशिष्ठ प्रारम्भसे ही चौंक गये थे—'ऐसी क्या समस्या है जो विश्वामित्रजी नहीं सुलझा पाते। सृष्टिमें इनके लिए दुर्लभ, दुर्गम, अलभ्य, अशक्य तो कुछ है नहीं। तब ये कहना क्या चाहते हैं।'

मन्त्रियोंको, ऋषियोंको भी आश्चर्य था—विश्वामित्रजी और याचना?

'लेकिन मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं होपाता है। जब पर्वपर हम लोग यज्ञारम्भ करते हैं, राक्षस आकर अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा करके यज्ञ स्थान भ्रष्ट कर देते हैं।' विश्वामित्रजीने कहा—'आपके कुलगुरुके सम्मुख ही मैंने शस्त्रन्यास किया। कोई यज्ञदीक्षित ऋषि अस्त्र लेकर असुर-संहार करे, यह उचित नहीं है। शाप देकर भी मैं उन सबको भस्म कर सकता हूँ, किन्तु अनेक बार इसी प्रकार मेरा तप नष्ट होचुका है। अतः मैं आपके समीप आया हूँ। यज्ञ-विघ्न करनेवाले राक्षसोंके नायक दूसरे किसीसे भी अवध्य हैं। अब उनकी मृत्युका समय आगया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामके करोंसे ही उनकी मृत्यु-विहित है। अतः मैं रामकी याचना करता हूँ।'

'श्रीरामकी याचना?' महाराज दशरथ तो सुनते ही लगभग मूर्च्छित होगये। बड़े कातर कण्ठसे उन्होंने कहा—'भगवन्! वृद्धावस्थामें मुझे चार पुत्र प्राप्त हुए। चारों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और उनमें भी राम तो मेरे प्राण हैं, अभी तो राम पूरे सोलह वर्षके भी नहीं हुए। ये बालक हैं, कोई युद्ध विशारद नहीं और न शत्रुके बलाबलको जानते हैं।'

'राजन्! कमललोचन रामके प्रभावको मैं जानता हूँ। आपके कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ जानते हैं और दूसरे तपोधन जानते हैं। आप इनके प्रभावको नहीं जानते। आप तो इन्हें अपना सुकुमार पुत्र मात्र जानते हैं।' विश्वामित्र गम्भीर होकर बोले—'आप किसी प्रकारका भय मत करें। मैं इनकी रक्षाका दायित्व लेता हूँ। इनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। इनका बहुत मंगल होगा।'

महर्षि वशिष्ठ सन्तुष्ट होगये। जब विश्वामित्रजी रक्षाका दायित्व लेते हैं तब सृष्टिमें अनिष्ट करनेकी शक्ति किसमें है। ब्रह्मर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके भाइयोंके साथ श्रीराम पिताके समीप बैठे थे। विश्वामित्रजी बात कर रहे थे महाराजसे, किन्तु उनकी अपलक दृष्टि श्रीरामके मुखपर

लगी थी। महर्षि वशिष्ठने श्रीरामकी ओर देखा तो उन शील-सिन्धुने किञ्चित मस्तक झुका दिया। यह उनकी स्वीकृति थी विश्वामित्रजीके साथ जानेकी।

'मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ।' महाराजने कातर प्रार्थना की—'वृद्ध होगया फिर भी मरणपर्यन्त युद्ध करूँगा। आप श्रीरामको ले जाना चाहते हैं तो मुझे ससैन्य साथ चलनेकी अनुमति दें।'

'राजन्! वे राक्षस नायक हैं मारीच और सुबाहु। लङ्काधिप राक्षसराज रावणके वे अनुचर हैं। रावण स्वयं नहीं आता, उसने अपने इन सेवकोंको हमारे उत्पीडनके लिए नियुक्त कर रखा है।' विश्वामित्रजीने अब सङ्कटका स्वरूप स्पष्ट किया—'आप अयोध्याकी सेना लेकर चलेंगे तो दशग्रीव भी ससैन्य आ धमकेगा। श्रीराम बालक हैं, अतः उनके जानेसे आतङ्क नहीं फैलेगा। वे उन दुष्ट असुरोंको समाप्त कर देंगे। रावणको आनेका अवसर नहीं मिलेगा।'

'मैं युद्धमें अब इस वार्धक्यमें मायावी दशग्रीवको पराजित कर सकूँगा, इसकी आशा मुझे नहीं है।' महाराजने स्पष्ट कहा—'उस क्रूरसे शत्रुता करना बुद्धिमानी नहीं है। मैं उसके अनुचरोंके विरुद्ध युद्ध करने अपने पुत्रोंको नहीं भेज सकता। आप मुझे क्षमा··· ·····।'

महाराज दशरथकी बात पूरी नहीं हुई। विश्वामित्रजी क्रुद्ध होउठे और सिंहासनसे उठकर खड़े होगये। उनकी भृकुटि कठोर होगयी। उन्होंने अत्यन्त उग्र स्वरसे कहा—'पहिले प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे भङ्ग कर रहे हो? तुम ऐसा कर नहीं सकते।'

'ब्रह्मर्षि!' रघुकुलगुरु वशिष्ठजी अत्यन्त सशङ्क होउठे। उन्होंने विश्वामित्रका उठकर हाथ पकड़ा और आसनपर बैठाया। अनुरोधके स्वरमें कहा—'आप मुझे भी कुछ समय अवश्य देंगे। अन्ततः मैं रघुकुलका पुरोहित हूँ। महाराज और श्रीराम भी मेरे शिष्य हैं।'

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने वशिष्ठकी ओर देखा और फिर श्रीरामकी ओर देखा। उन पद्मपलाश लोचनोंसे दृष्टि मिलते ही विश्वामित्रकी कठोर भृकुटि सीधी होगयी। उनका रोषसे तमकता मुख सहज होगया। वे सहज स्वरमें बोले—'अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके यदि आप सुखी होते हों तो मैं लौट जाऊँगा, किन्तु विश्व सदा कहेगा कि रघुकुलका प्रथम नरेश दशरथ

था जिसके यहाँसे तपस्वी अतिथि निराश लौट गया और उस नरेशने तपस्वीको वचन देकर उसका मोहवश पालन नहीं किया।'

'राजन्! आप अपनी प्रतिज्ञाको भङ्ग करके धर्मको नष्ट मत करो!' अब महर्षि वशिष्ठ बोले--'श्रीराम अस्त्रज्ञ हों या न हों, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिसके रक्षक हैं, उसका त्रिभुवनके सब राक्षस मिलकर भी क्या बिगाड़ लेंगे? आपको पता नहीं है कि अमित तेजा कृशाश्वने अपने सब अस्त्र विश्वामित्रजीको दे दिये हैं। सुप्रभाके भी सब अस्त्र इनके समीप हैं। देवताओं तथा असुरोंके समीप भी कोई ऐसा दिव्यास्त्र नहीं जो इन्हें उपलब्ध न हो। त्रिलोकीमें अभूतपूर्व अस्त्रज्ञ विश्वामित्रजी हैं। इनके समान अस्त्रज्ञ आगे भी नहीं होगा। इनके रक्षणमें रामको क्या भय है? ये राक्षसोंका वध स्वयं करनेमें समर्थ हैं, किन्तु आपके पुत्रका हित करने आये हैं।'

महाराज दशरथके लिए अपने कुलगुरुकी आज्ञाको टाल देना सम्भव नहीं था। उन्होंने अत्यन्त कातरभावसे कुलगुरुकी ओर देखा।

'आप कुछ क्षण मुझे क्षमा करें।' महर्षिने विश्वामित्रजीसे कहा। उनके संकेतके अनुसार महाराज उनके पीछे एकान्त मन्त्रणा कक्षमें चले गये।

●

विश्वामित्रका परिचय

'महाराज गाधिसे अमित तेजा महर्षि ऋचीकने उनकी पुत्रीकी याचना की। ऋचीक जन्मजात तपस्वी एवं परम संयमी थे, किन्तु अब वार्धक्यमें पितरोंने दर्शन देकर उनसे कहा था--'वत्स! अपने पश्चात् हमें पिण्डदान करनेवाला भी तो उत्पन्न करो।'

महाराज गाधिके कोई पुत्र नहीं था। एकमात्र कन्या वृद्ध तपस्वीको विवाह देना कोई पिता नहीं चाहेगा, किन्तु ऋचीक जैसे महातापसको रुष्ट करनेका साहस तो सुरेन्द्र भी नहीं कर सकते थे। महाराज गाधिने एक मार्ग

निकाला। वे बोले—'महर्षि ! हम तो कन्याका कुशिक (प्रतिदान) लेनेवाले हैं, अत: एक सहस्र श्यामकर्ण अश्व हमें कन्याके बदले चाहिए।'

'अच्छी बात।' ऋचीकके लिए यह कोई समस्या नहीं जान पड़ी। वे जलाधिप वरुणके समीप चले गये और उनसे सहस्र श्यामकर्ण अश्व ले आये। महाराज गाधिको अपनी कन्या उन्हें विवाह देनी पड़ी।

'राजन् ! विवाह भोगके लिए नहीं होता। वह होता है सन्तानकी प्राप्तिके लिए।' महर्षि वशिष्ठने मन्त्रणा कक्षमें महाराज दशरथको लेजाकर सुनाना प्रारम्भ किया था—'महर्षि ऋचीक राजकन्या सत्यवतीसे विवाह करके वहीं समीप वनमें आश्रम बनाकर रहने लगे। दीर्घकाल तक वे तपस्या करते रहे।'

'भगवन् ! आपके समान अमित तेजा पतिको प्राप्त करके भी मैं अपुत्रा हूँ।' एक दिन सत्यवतीने महर्षिसे प्रार्थना की—'मेरे कोई भाई भी नहीं है।'

महर्षिके मनमें इस प्रार्थनासे भी किसी कामोपभोगकी कल्पना नहीं उठी। वे तत्काल अपने यज्ञीयकुण्डके समीप बैठ गये। उन्होंने हविष्य खीरको दो पत्र-पुटकोंमें रखकर उन्हें अभिमन्त्रित किया और दोनों पत्र-पुटक पत्नीको देकर बतला दिया कि कौनसा उनकी पत्नीके लिए है और कौनसा पत्नीकी माताके लिए।

महर्षि कुश-फलादि लेने वनमें चले गये। पुत्रीसे मिलने सत्यवतीके पिता महाराज गाधि पत्नीके साथ तपोवन आये थे। सत्यवतीने माताके समीप दोनों पत्र-द्रोण लेजाकर अपने पतिकी आज्ञा सुना दी।

'वत्से ! तुम्हारे पतिने अवश्य तुम्हारे लिए श्रेष्ठ मन्त्रोंसे तुम्हारे चरु (खीर)को अभिमन्त्रित किया होगा।' माताके मनमें लोभ आया। उसने पुत्रीसे कहा—'तुम्हें तो तपस्वी पुत्र चाहिए और तुम्हारे भाईको शासक होना है। अत: यदि तुम स्वीकार करो तो हम परस्पर इन पत्र-पुटकोंको परिवर्तित कर लें।'

सत्यवतीने माताकी बात स्वीकार कर ली। जब महर्षि ऋचीक आश्रम लौटे तो सत्यवतीने डरते-डरते बतला दिया कि माताके साथ चरु-परिवर्तित करके उसने खा लिया है।

'तुमने अनर्थ कर दिया।' पत्नीकी बात सुनकर महर्षिने खेदपूर्वक कहा—'अब तुम्हारा भाई तो ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होगा, किन्तु तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधर होगा।'

'ऐसा तो नहीं होना चाहिए!' सत्यवतीने पतिके चरण व्याकुल होकर पकड़ लिये—'आपका पुत्र घोर दण्डधर हो, यह अत्यन्त अयशकी बात है।'

'मैं प्रयत्न करता हूँ।' खिन्नमना ऋचीकने कहा—'मन्त्रोंके प्रभावको व्यर्थ नहीं किया जा सकता। केवल यह सम्भव है कि वह प्रभाव सुप्त रहे और तुम्हारे पुत्रमें प्रकट न होकर पौत्रमें प्रकट हो।'

महर्षि ऋचीकका प्रयत्न आंशिक ही सफल हुआ। उनके पुत्र महर्षि जमदग्नि शान्त स्वभाव, वेदज्ञ, तपस्वी तो हुए, किन्तु अत्यन्त असहिष्णु हुए और जमदग्निके पुत्र परशुरामजीको तो संसार जानता है। जमदग्निजीके मातुल ये गाधि-नन्दन विश्वामित्रजी अस्त्र-ज्ञानमें परशुरामसे बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं।

'विश्वामित्र जब नरेश थे, ससैन्य मेरे तपोवनके समीप पधारे तो मैंने नन्दिनीकी कृपासे इनका राज्योचित आतिथ्य किया।' महर्षि वशिष्ठजीने महाराज दशरथको वह पूरी कथा सुनायी—'नन्दिनी माँगनेपर नहीं मिली तो विश्वामित्र उसे बलपूर्वक हरण करके लेजाने लगे।'

'राजन्! विश्वामित्रजी अब महर्षि होगये हैं, किन्तु महर्षि ऋचीकके मन्त्र-प्रभावसे उत्पन्न इन दिव्यदेहीमें प्रचण्ड क्षत्रिय स्वभाव है, ये जो करना चाहते हैं, उसमें सृष्टिकर्ताके नियमोंकी बाधा भी इन्हें सहन नहीं है।' महर्षि वशिष्ठने कहा—'विश्वामित्र केवल नन्दिनीको पानेके प्रयत्नमें विफल हुए, किन्तु उनकी यह प्रतिद्वन्द्विता मुझे बहुत मँहगी पड़ी।'

महाराज कुलगुरुका मुख देखने लगे। महर्षि वशिष्ठने कहा—'नन्दिनीको प्राप्त करनेमें जब विश्वामित्र विफल हुए तो उनको भ्रम होगया कि मेरे तपोबलसे वे पराजित हुए हैं। वे तपस्यामें लग गये।'

'राजन्! सुरपति इन्द्रको सशङ्क कर देनेवाली तपस्या कोई ऋषि भी

जीवनमें एक ही बार कर पाता है।' महर्षि वशिष्ठ अत्यन्त श्रद्धा भरे स्वरमें कह रहे थे—'किन्तु विश्वामित्रजीके लिए पराजय—विफलता नामकी वस्तु तो जैसे बनी ही नहीं है। उनकी तपस्यासे सशङ्क इन्द्रने अप्सरा श्रेष्ठ मेनकाको उनके आश्रम भेजा। इन्द्र सफल होगये। मेनका ऋषिको सम्मोहित करनेमें सफल होगयी। तपस्वी तप-त्यागकर भोगमें लग गया। मेनकाके गर्भसे एक कन्या हुई शकुन्तला।'

'विश्वामित्रको जब मेनका नवजात पुत्री देने लगी, जैसे तपस्वीका मोहमुग्ध मानस जाग गया। नवजात कन्याको वनमें त्यागकर वे पुनः तपमें लग गये। केवल तपस्थली परिवर्तित कर ली उन्होंने।' वशिष्ठजीने बतलाया—'मेरे प्रति इनके मनमें स्पर्धा तो थी ही। आपके पूर्वज त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए यज्ञ कराना जब मैंने अस्वीकार कर दिया तो वे मेरे पुत्रके समीप गये, किन्तु पुत्रने उन्हें गुरुकी अवज्ञा करनेवाला मानकर चाण्डाल होनेका शाप दे दिया। प्रशप्त चाण्डालसे कौन यज्ञ कराता ? किन्तु जब त्रिशंकु विश्वामित्रकी शरण गया तो विश्वामित्रने अपने तपोबलसे उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया, वहाँ स्वर्गमें चाण्डालका रहना सम्भव नहीं था। देवताओंने उसे नीचे गिरा दिया, किन्तु विश्वामित्र पराजित नहीं हुए, अपनी तपस्याकी शक्तिसे त्रिशंकुको आकल्प अन्तरिक्षमें स्थिर करके वहाँ उसके लिए नित्य स्वर्ग निर्मित कर दिया।'

'त्रिशंकुके पुत्र आपके पूर्वज हरिश्चन्द्रको लेकर तो मेरा विश्वामित्रके साथ अनेक वर्षों तक संघर्ष हुआ।' वशिष्ठजीने बतलाया—'हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको सन्तानकी बलि देनेका वचन देकर पुत्र प्राप्त किया था, किन्तु पुत्रके मोहवश होकर वचनका पालन नहीं कर रहे थे। बार-बार बहाना बना रहे थे। बड़े होनेपर उनका पुत्र रोहित वनमें भाग गया। वरुणके कोपसे जलोदर होगया हरिश्चन्द्रको। कई वर्षोंके पश्चात् रोहित लौटा भी तो अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको क्रय करके लेता आया। अब मैं राजपुत्रके स्थानपर ब्राह्मणपुत्रकी बलि दी जाय, ऐसा प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकता था, किन्तु विश्वामित्रने इस पुरुषमेधका अध्वर्यु होना स्वीकार कर लिया। मैंने विरोध किया। हम दोनों पक्षी बनकर गगनमें संघर्ष करने लगे। अनेक वर्षों तक यह युद्ध चला। अन्ततः मुझे विश्वामित्रसे

पराजित होजाना पड़ा। उन्होंने भी स्वीकार कर लिया कि वे केवल यह यज्ञ करावेंगे। मैं ऐक्ष्वाकु कुलका पुरोहित बना रहूँगा। उनका प्रचण्ड तेज मैंने देखा। उन्होंने वरुणको सन्तुष्ट करके हरिश्चन्द्रको रोगमुक्त भी कर दिया और शुन:शेपकी रक्षा भी कर ली। उनका अकल्पित औदार्य—क्रीत दास बने शुन:शेपको उन्होंने अपना पुत्र बना लिया।'

'इस प्रकार तीसरी बार भी तपस्याका व्यय होजानेपर विश्वामित्र-का मानस न श्रान्त हुआ, न निराश। वे पुन: तपमें लग गये और देवताओंके सब दुर्लभ अस्त्र-शस्त्र इन्होंने प्राप्त कर लिये। भगवान् शिवसे पाशुपत तथा अन्य दिव्यास्त्र पाये। सब लेकर मुझपर आक्रमण किया, किन्तु शस्त्रबलका अर्थ है क्षात्रबल और उसे ब्रह्मबलसे पराजित होना ही पड़ता है। इस बार विश्वामित्रका भ्रम दूर होगया। वे समझ गये कि वे मेरे तपोबलसे नहीं, ब्रह्मबलसे पराजित होरहे हैं।' वशिष्ठजीने कहा—'विश्वामित्रने तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका निश्चय किया।'

'तपस्या करके भगवान् ब्रह्माको इन्होंने सन्तुष्ट कर लिया, किन्तु ब्राह्मणत्व तो क्षमा, दया, कृपादि सद्‌गुणोंका पुञ्जीभाव है। अन्तरमें ये सद्‌गुण न हों तो तप करके वरदानमें उसे कैसे पाया जा सकता है।' वशिष्ठजीने उत्साहपूर्वक कहा—'भगवान् ब्रह्माने जब ब्राह्मणत्वका वरदान देना अस्वीकार कर दिया तो विश्वामित्रने दूसरी सृष्टि करके उसका ब्रह्मा बननेका संकल्प कर लिया। आप जानते हो कि अन्न, वृक्ष, लता, पशु-पक्षी आदिमें अनेक वर्ग हैं जो विश्वामित्रजीके सृजन हैं। ये तो वृक्षमें मनुष्य फला करें, ऐसी व्यवस्था करने जारहे थे, किन्तु सृष्टिकर्ताने आकर अनुनय की तो सृष्टिकर्मसे विरत हुए। सृष्टिकर्तापर भी अनुग्रह किया इन्होंने।'

'विश्वामित्रजीने अन्तत: शस्त्रन्यास किया और क्षमा धारण की। जिस दिन यह किया, मुझे इस त्रिलोकीके अद्वितीय अकल्पनीय तपस्वीको ब्रह्मर्षि स्वीकार करना पड़ा, किन्तु' वशिष्ठजीने शिथिल स्वरमें कहा—'उस समय तक विश्वामित्रको रुष्ट करके मैं अपने सब पुत्र खो चुका था। विश्वामित्रने एक राक्षसको लगा दिया था और मेरे सौ पुत्र वह खा गया। मैं विश्वामित्रके तप:तेजसे रक्षित उस राक्षसका कुछ बिगाड़ नहीं सका।'

'विश्वामित्र कहते हैं कि आप वचन-भङ्ग करेंगे तो वे आश्रम लौट जायँगे, किन्तु इसका इतना ही अर्थ है कि वे शाप नहीं देंगे।' महर्षि वशिष्ठने अन्तमें चेतावनी दी—'इससे आपके सब पुण्य तो नष्ट हो ही जायँगे और यह आश्वासन कहाँ है कि विश्वामित्र राक्षसोंको अथवा रावणको ही अपने संकल्प बलसे अयोध्याके विनाशमें नहीं लगा देंगे। आप परशुरामजीके प्रचण्डपराक्रमको जानते हैं। उनका कोई प्रतिकार है आपके या मेरे पास ? वे क्षत्रियोंके अकारण शत्रु जब सुनेंगे कि उनके पिताके श्रद्धेय मातुलको वचन देकर आपने निराश लौटा दिया है, वे शान्त बैठे रहेंगे ?'

महाराज दशरथका मुख भयपीत होगया। शरीर स्वेदसे भीगने लगा। नेत्रोंके सम्मुख अन्धकार छा गया। वे थरथर काँपते बोलनेमें भी असमर्थ होगये। इसी समय वशिष्ठजीने स्थिर दृढ़ स्वरमें कहा—'श्रीरामके लिए क्या भय है ? त्रिशंकुके लिए नवीन स्वर्ग और धरापर नवीन सृष्टि करनेमें समर्थ महातापस, सृष्टिके अश्रुतपूर्व अद्वितीय अस्त्रज्ञ विश्वामित्र जिसके संरक्षक हों, वह कैसा भी हो, उसे कहीं कोई भय सम्भव है ? अत: मेरा आदेश है कि आप श्रीरामको विश्वामित्रजीके साथ भेजें।'

'मैंने श्रीचरणोंका आदेश स्वप्नमें भी नहीं टाला है।' महाराजने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'मैं आदेशका पालन करूँगा, किन्तु लक्ष्मण रहेंगे श्रीरामके बिना ?'

'वे अग्रजके साथ जायँगे !' महर्षि आसनसे उठ खड़े हुए। उनके पीछे महाराज भी राजसभामें शिथिल गतिसे आये।

ब्रह्मर्षिके साथ

'आप अब अपने श्रीचरणोंसे राजसदनको पवित्र करें।' महर्षि वशिष्ठने राजसभामें पहुँचते ही विश्वामित्रजीसे प्रार्थना भरे स्वरमें कहा—'अयोध्या नरेशको आपके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त होना चाहिए। आप

आहार-ग्रहण करके किञ्चित् विश्राम करलें। श्रीरामको भी लक्ष्मणके साथ भोजन करके माताओंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेका अवसर दें। दोनों राजकुमार इसके अनन्तर आपका अनुगमन करेंगे।'

'चक्रवर्ती महाराजका अक्षय यश भुवनको पवित्र करेगा!' ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सुप्रसन्न राजसदनके अन्तःपुरमें जानेके लिए उठे। महर्षि वशिष्ठको उनका साथ देना था।

सानुज श्रीरामने माताओंको प्रणाम किया। प्राणप्रिय पुत्रोंको ऋषिके साथ राक्षसोंसे संग्राम करने जानेको भेजना बहुत दारुण, अत्यन्त दुःखद है, किन्तु क्षत्राणी तो पुत्र उत्पन्न ही करती है युद्धमें सहर्ष भेजनेके लिए। सभीको रघुकुल-गुरुमें अगाध आस्था है। अतः महारानियोंने आशीर्वाद दिया अङ्कसे लगाकर। भरत-शत्रुघ्नने श्रीरामकी पद-वन्दना की।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका इष्टदेवके समान राजसदनमें सत्कार हुआ, किन्तु वे आज ही प्रस्थान कर देना चाहते थे, अतः शीघ्र गमनोद्यत होगये। पुत्रों, मन्त्रियों तथा कुलगुरुके साथ महाराज सरयू-तट तक ब्रह्मर्षिके साथ आये।

महाराज चाहते थे कि विश्वामित्रजी राजकुमारोंके साथ रथके द्वारा यात्रा करें, किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उनका तर्क उचित था—'राजन्! दशग्रीवको सम्वाद भी मिले तो वह यह क्यों समझें कि उसके अनुचरोंके वधमें आपने सहयोग किया है। राजकुमार मेरे साथ मेरे आश्रम जायँ और राक्षसवध इनकी बालक्रीड़ा बनी रहे।'

ये ऋषि-मुनि सर्वज्ञ होते हैं। साथ ही परोक्षवादी होते हैं। इनकी बात चुपचाप मान लेनेमें ही मनुष्यका मङ्गल होता है। विश्वामित्रजी क्यों कहें कि राम-लक्ष्मणको वनमें पैदल चलते रहनेका पूर्वाभ्यास वे कराना चाहते हैं।

पुत्रोंको सरयू तटपर ब्रह्मर्षिको सौंपनेसे पूर्व हृदयसे लगाकर साश्रुनेत्र महाराजने उनका मस्तक सूंघा और आदेश दिया—'वत्स! तुम दोनों भाई ब्रह्मर्षिको अपने कुलगुरुके समान ही आदर देना। अबसे ये तुम्हारे गुरु तथा पिता भी हैं। इनकी प्रत्येक आज्ञाका बिना संकोच पालन करना।'

महाराजने विश्वामित्रजीके चरणोंमें दण्डवत प्रणिपात करके अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'ये दोनों अभी अबोध बालक हैं। अब आपही इनके

पिता हैं। इनसे प्रमादवश, बालचापल्यवश कोई त्रुटि होजाय तो आप उसे क्षमा करेंगे। ये अभी सर्वथा अनुभव रहित हैं और मेरे तथा पूरे राजकुलके प्राण हैं। अब हम सबका जीवन आपके करोंमें, आपकी कृपापर आश्रित है।'

'राजन्! आप किसी प्रकारकी शङ्का मत करें। विश्वामित्रजीने आश्वासन दिया—'इनका कल्याण होगा। ये आपके यशको उज्ज्वल करके आपके चरणोंमें प्रणाम करेंगे। विश्वामित्र अपने नेत्रगोलकोंके समान इन्हें मानेगा।'

राजसदनसे चलते समय ही ब्राह्मणोंके साथ महर्षि वशिष्ठने मङ्गल-पाठ किया था। सरयू-तटपर श्रीराम-लक्ष्मणने पिताको, कुलगुरुको, ब्राह्मणोंको पुनः प्रणाम किया। भाइयोंको अङ्कमाल दी। दोनों महर्षि मिले परस्पर। स्वस्तिपाठ एवं आशीर्वाद लेकर विश्वामित्रजीके साथ दोनों भाई अयोध्यासे चले।

मस्तकोंपर राजकुमारोंके योग्य मुकुट नहीं थे। ऋषिकी सेवामें जाते समय यह उचित नहीं था। घुंघराली काली अलकोंमें पुष्पमाल्य सजे थे। ललाटपर कुंकुम-तिलकपर अक्षतके दाने चिपके थे। कुटिल भृकुटि, विशाल मनोहर लोचन, कर्णोंमें झलमलाते रत्नकुण्डल, कम्बुकण्ठोंमें मौक्तिक मालाएँ, वनमाला, उत्तरीय। पीठपर कसे त्रोण, वाम स्कन्धपर धनुष, कटिमें पीतपट—दोनों भाइयोंकी अद्‌भुत छटा।

प्रस्थान करते ही कपिला सम्मुख बछड़ेको दुग्धपान कराती मिली। नीलकण्ठने अपने स्वरसे आकर्षित करके दर्शन दिया। मृग-माला मिली यात्राके प्रारम्भमें ही दाहिनी ओर और नकुल तथा लोमड़ीने भी बार-बार दर्शन दिया। विजय-मङ्गलकी सूचना देते क्षेमकरी (श्वेत चील) मँडराती दक्षिण मण्डल लेती दाहिने गयी और काक दाहिने शस्य श्यामला भूमिमें बोलता दृष्टि पड़ा।

महर्षि विश्वामित्रने सरयूके दक्षिण-तटसे यात्रा प्रारम्भ की। प्रलम्ब सुगठित काय, रजत श्मश्रु-केश, तपस्यासे गोधूम वर्ण हुआ गौर शरीर। महर्षि वशिष्ठका शरीर भी भव्य एवं तेजोमय था, किन्तु उसमें एक सौम्य वात्सल्य था और विश्वामित्रके तेजमें एक ऐसा दुर्धर्ष भाव था कि उनके श्रीमुखकी ओर दूसरे ऋषि-मुनि भी देख नहीं पाते थे।

विश्वामित्रजीमें सहजता थी। वे जिसके अपने थे, उसके हृदयसे अपने थे और जिसका विरोध करते थे, उसे सह नहीं सकते थे। श्रीराम-लक्ष्मणपर उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा था। उनका हृदय गद्गद था—'कितने शीलसिन्धु कि माता-पिता, राजभवनका सुख सब छोडकर एक अपरिचित तपस्वीके हितके लिए उसके साथ चल देनेमें किञ्चित् भी संकोच नहीं।'

अब विश्वामित्रको लगता था कि परमसुकुमारके साथ उन्होंने निष्ठुर व्यवहार किया है। इनके ये पाटलदल मृदुल चरण क्या वन-भूमिमें चलने योग्य हैं! इन्हें रथसे ही ले जाना था, किन्तु इन्होंने तो उपानह भी धारण नहीं किया?

अब विश्वामित्रजी प्रयत्न करने लगे कि दोनों भाइयोंका मन ऊबे नहीं। इनको कष्ट न हो। वे भूल ही गये कि धरित्री स्वयं सचिन्त है। पथमें कोमल मृदुल तृण उग आये हैं और उनपर नन्हे पुष्प झूम रहे हैं। मानो पृथ्वीने इनके लिए पुष्प-पाँवड़े बिछाये हों। गगनमें मेघ छाये हैं। आतपका कष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

महर्षिने होनेवाले शकुनोंको दिखलाकर उनका फल बतलाना प्रारम्भ किया। प्राचीन कथाएँ सुनाते चलने लगे। लेकिन कथाओंका क्रम बीच बीचमें टूटता रहता था। वनके छोटे-बड़े पशु जैसे सब मार्गके दोनों ओर आगये थे। पथके पार्श्व-वृक्षोंपर पक्षियोंके समूह एकत्र थे। वृक्ष-फल-भारसे झुके थे और लताएँ पुष्पगुच्छोंसे। श्रीराम या लक्ष्मण कभी किसी वृक्षका, कभी किसी पशु या पक्षीका नाम पूछते थे। वे कभी कोई पुष्प लेने अथवा किसी पशु या पक्षीको देखने थोड़ी दूर दौड़ जाते थे। महर्षि विश्वामित्रके हृदयमें जो वात्सल्य उमड रहा था, उसे परितृप्त—परिपुष्ट किया जाना चाहिए था और वह किया जारहा था।

जब दोनों राजकुमारोंमें कोई किसी पशु या पक्षीको देखने अथवा पुष्पगुच्छ या किसलय लेने थोड़ी दूर चले जाते थे, तब ऋषि रुककर स्नेहपूर्वक पुकार लेते थे—'वत्स! वनमें कंण्टक, कुश अथवा कठोर कंकड़ियां हो सकती हैं।'

'देव यह भल्लूक!' कभी कोई रीछ, कपि या गज समीप आजाता था कोई फल, कन्दका उपहार अर्पित करने और श्रीराम महर्षिसे पूछते थे।

'इसका स्नेहोपहार स्वीकार करलो वत्स !' महर्षि उस उपहारको देखकर कह देते थे—'ऐसे कन्द, ये फल हम वनवासियोंको भी अलभ्य होते हैं। इनके प्रभावका वर्णन बहुत सुना जाता है, किन्तु ये इतने दुर्गम स्थलों पर होते हैं कि इनको ये वन्यपशु ही प्राप्त कर पाते हैं।'

'आर्य ! यह मृगी शावक !' श्रीलक्ष्मण कभी अपने पदोंसे आकर सट गये मृग-शिशुको और कभी केहरी-शावकको स्नेहपूर्वक अङ्कमें उठाकर अग्रजको दिखलाते थे। उनकी माताएँ साथ-साथ चलने लगती थीं।

'ये परमसुकुमार मेरे कारण श्रान्त होरहे हैं। इनके अरुण अधर सूखे जारहे हैं !' विश्वामित्रजी क्षण-क्षणपर घूमकर श्रीरामके मुखको देखते जाते थे। उन्होंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि अयोध्यासे उनका सिद्धाश्रम इतनी दूर है और वहाँ तक पहुँचनेमें श्रम होता है। अब उनके लिए यह दूरी अनन्त लगने लगी थी। दो कोस चलते-न-चलते तो उन महातापसके लिए असह्य होगया इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मणको पैदल ले जाना।

'वत्स ! तुम दोनों यहाँ सरयूमें आचमन करो !' नवीन सृष्टि करनेमें जो समर्थ है, उस महातापसके लिए ऐसी समस्या सृष्टिमें क्या हो सकती है जिसका समाधान उसके समीप न हो। विश्वामित्रजीने निश्चय कर लिया—इन सुकुमार राजकुमारोंको पथ-श्रम, क्षुधा-पिपासासे सदाके लिए छुटकारा दे दिया जाना चाहिए और इन्हें सुरक्षित किया जाना चाहिए।

'देव ?' श्रीरामने महर्षिकी ओर देखा। अनुजका मुख भी देख लिया। उन्हे पिपासा नहीं है और भाईको भी नहीं है, तब यहाँ कोई तीर्थ है ?

'वत्स ! मैं तुम दोनोंको सुरोंके लिए भी दुर्लभ दो विद्याएँ दे रहा हूँ।' महर्षिने बतलाया—'आचमन करके इन्हें ग्रहण करो। मार्गमें चलते हुए इन स्तोत्रोंका थोड़ा-सा पाठ कर लेना। फिर केवल एक बार इनका जप पर्याप्त होगा। जप करते ही ये सक्रिय होजाएँगी।'

श्रीरामने भाईकी ओर देखा। दोनों भाइयोंने सरयू-जलसे हस्त-चरण प्रक्षालित करके मार्जन एवं आचमन किया। महर्षि भाव-विभोर

होगये इस श्रद्धापर। दोनों कुमारोंमें-से किसीने तो नहीं पूछा कि महर्षि जो विद्या देने जारहे हैं, उनका प्रभाव क्या है? वह किस उपयोगमें आवेगी? महर्षि श्रद्धेय हैं, अतः इनकी आज्ञाका पालन किया जाना चाहिए।

'वत्स! इनमें-से यह प्रथम विद्या बला नामसे प्रसिद्ध है।' महर्षिने मन्त्रोपदेशसे पूर्व स्वयं प्रभाव बतलाया—'इसके जपसे क्षुधा-पिपासाका कष्ट नहीं होता। लगी हुई पिपासा एवं क्षुधा परितृप्त होजाती है। पथ-श्रम नहीं होता और शरीर-बलका क्षय नहीं होता। शक्ति, कान्ति यथावत् बनी रहती है।'

'यह जगत अध्यात्माश्रित, अधिदेव चालित, अधिभूत है।' महर्षिने समझाया—'अतः किसी प्रभावको पूर्णतः प्राप्त करनेके लिए अध्यात्म अर्थात् कर्ताकी दृढ़ आस्था, अधिदेव-शक्तिको प्रेरित करेगा।'

'यह अधिभूत पदार्थ है।' महर्षिने एक क्षुप उखाड़कर दोनों भाइयों-को दिखलाया—'इस औषधिका नाम भी बला है। इसका मूल विशेष गुणकारी है। मूलको मुखमें रखकर आस्थासहित मन्त्र-जप करनेसे पूरा प्रभाव प्राप्त होता है। आधिभौतिक वस्तु अल्पप्राण होती है। आधिदैवत शक्ति महाप्राण और अध्यात्म तो सर्वाधार है ही।'

'यह अतिबला है।' महर्षिने दूसरा क्षुप दिखलाया—'इसके पत्र उपयोगमें विशेष गुणकारी हैं। इसका मन्त्र ग्रहण करो। इसका उपयोग शरीरकी क्षीण हुई शक्तिको, तेजको अत्यधिक बढ़ा देता है। इसके उपयोगकर्ताको निद्राके समय और असावधान रहनेपर भी कोई आक्रान्त नहीं कर सकता। वह ग्रह, भूत-प्रेत, यक्ष-गन्धर्वादि मानवके लिए अदृश्य बाधाओंसे रक्षित होजाता है। तुम दोनों इन विद्याओंका पाठ करते चलो।'

दोनों भाइयोंने विधिपूर्वक विद्या-ग्रहण किया। औषधि मुखमें रख-कर पाठ करते चलने लगे। स्वभावतः अब उनके प्रश्न बन्द होगये। महर्षि स्वयं उन्हें अनेक उपाख्यान सुनाते जा रहे थे।

सूर्यास्तसे पहिले ही विश्वामित्रजीने एक स्वच्छ, सुरक्षित-वृक्षोंसे थोड़ी दूरका स्थान चुन लिया। वहीं दोनों राजकुमारोंके साथ सरयू-स्नान करके सायं-सन्ध्या की।

इतनी देरमें तो वहाँ गजोंने किसलय एवं पुष्पोंसे लदी शाखाओंका ढेर कर दिया। लक्ष्मणने त्वरा की, किन्तु श्रीरामने महर्षिके लिए पल्लव-शय्या स्वयं सज्जित की। विश्वामित्रजीके बहुत आग्रह करनेपर दोनों कुमार उनका पाद-संवाहन करनेके पश्चात् ही अपने पल्लव-तल्पोंपर शयन करने गये।

आवश्यकता नहीं थी। दोनों कुमार विद्याके प्रभावसे सुरक्षित थे, किन्तु महर्षिका स्नेह कैसे मान जाता। जैसे ही दोनों कुमार निद्रित हुए, वे स्वयं उठकर बैठ गये और पूरी रात्रि सावधान जागृत रहे। निद्रित श्रीरामके मुखचन्द्रका अपलक दर्शन इस प्रकार क्या अल्प-पुण्यको प्राप्त हो सकता है।

ब्रह्ममुहूर्त सबको उठ जाना ही था। स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजनके पश्चात् यात्रा प्रारम्भ हुई। अब महर्षि कुछ निश्चिन्त होगये थे। दोनों कुमार विद्याके प्रभावसे श्रान्तिसे, क्षुधा-पिपासासे पीड़ित नहीं होंगे, यह आश्वासन था।

'देव! यहाँ तो अत्यन्त निर्मल जल है!' दोनों कोई सरोवर, निर्झर देखकर अथवा सरयूकी धाराके ही दीखनेपर पूछते—'हम यहाँ स्नान करें?'

जल ही तीर्थ है। रघुकुल कुमारोंका यह स्थान स्थान पर स्नानकी रुचि महर्षिको प्रिय लगी, किन्तु वे ऐसी अनुमति कैसे दे सकते थे। वे चले जारहे थे। पथ-श्रमका भय नहीं रहा तो यात्रा लम्बी चली। सरयू-गंगाके संगमपर वहाँके ऋषियोंने आगे आकर महर्षिका स्वागत किया। उनके यहाँ रात्रि-विश्राम हुआ। उनकी महर्षिके प्रति असीम श्रद्धा—उन्होंने बड़े उल्लाससे महर्षिके साथ राजकुमारोंका आतिथ्य किया वहाँ।

ताड़का-त्राण

अद्भुत नहीं लगता आपको कि दोनों परिपूर्णावतारोंने भूभार-हरणका कार्य स्त्री-वधसे प्रारम्भ किया ? मर्यादापुरुषोत्तमको भी प्रथम बाणका लक्ष्य ताड़का मिली और श्रीकृष्णने पूतनासे श्रीगणेश किया। लेकिन क्रम ही यही है, क्योंकि जीव आत्मोद्धारके लिए साधन प्रारम्भ करेगा तो राग-द्वेष; काम-क्रोधके संहार-क्रमसे अन्तमें अविद्या-नाश तक पहुँचेगा, किन्तु जब जीवोंपर अनुग्रह करके परमात्मा सक्रिय होगा तो वह पहिला आघात जड़पर—अविद्यापर ही करेगा। अविद्याके कच्चे-बच्चे भी वह मिटावेगा, किन्तु सबसे पहिले मरेगी अविद्या।

गंगा-सरयूके संगमपर प्रातःकृत्य सम्पन्न करके, वहाँके ऋषियोंसे बिदा लेकर वहीं महर्षि विश्वामित्रजीने नौकाके द्वारा राजकुमारों सहित गंगा पार किया। दूसरा कोई होता तो ऋषिगण उसे रोकते। उसे वे सम्मति देते कि गंगाके इसी तटसे सिद्धाश्रमके सम्मुख तक जाकर तब गंगा पार करना। वे स्वयं यही करते थे, किन्तु अमित तेजा विश्वामित्रजीसे कोई अपरिचित तो था नहीं। महर्षि जैसे ही नौकापर बैठे, उन्हें प्रणाम करके लौटते ऋषियोंमें एक ही चर्चा थी,—'आज ताड़काका उद्धार निश्चित है। अब गंगाका यह तट निरापद होगया।'

यात्राकी दृष्टिसे गंगाका दूसरा तट अटपटा था। सुरसरिके प्रवाह-को प्राप्त करनेमें कठिनाई होती थी उधर। बहुत चौड़ा पुलिन प्रायः मिलता था। इस दूसरे तट पर ऊँचा कगार था। फल-पुष्पोंसे पूर्ण वन था। सुरसरिके दर्शन करते यात्रा सम्भव थी, किन्तु मध्यमें ताड़का वन भी तो पड़ता था। अतः विवश होकर यह मार्ग त्यागना पड़ता था। अब महर्षि विश्वामित्र इधरसे इतने सुकुमार राजकुमारोंको लेकर चले हैं तो ताड़काके सम्बन्धमें बिना कुछ सोचे चले होंगे ?

'वत्स रामभद्र ! अब तुम दोनों भाई बहुत सावधान चलोगे। देखते ही हो कि दीर्घकालीन आवागमनके अवरुद्ध होजानेसे पथ लुप्त होगया है।' महर्षिने गंगा पार होकर कुछ दूर जाते ही कहा—'धनुषोंको ज्यासज्ज

करलो और दक्षिण करोंमें उत्तम वाण त्रोणसे निकालकर ग्रहण करो। अपने दिव्यास्त्र ज्ञानको स्मरण करलो !'

'यहाँ कोई संकट सम्भाव्य है देव ?' श्रीरामका प्रश्न स्वाभाविक था, क्योंकि मार्ग लुप्त है तो नीचे सावधानी पूर्वक देखते चलनेकी चेतावनी तो उचित है, किन्तु मार्ग अन्ततः किसी आतङ्कके कारण ही तो अवरुद्ध होगा। धनुषको ज्यासज्य करनेकी आज्ञा अकारण तो नहीं होगी।

'महायज्ञ मणिभद्रने तपस्या करके सृष्टिकर्ताको सन्तुष्ट करके उनसे सन्तानकी याचना की।' महर्षि विश्वामित्रने चलते-चलते कथा-प्रारम्भ कर दी। उनके आदेशानुसार श्रीराम-लक्ष्मणने धनुष ज्यासज्य कर लिया था और दक्षिण करोंमें स्वर्ण पुंख-शर ले लिये थे। 'सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उसे कन्या होनेका वरदान दिया। इस वरदानके प्रभावसे जो पुत्री हुई, अतिविशाल देह यक्षोंमें भी वह अत्यन्त दीर्घाकार थी, अतः उसका नाम ताड़का पड़ा। दानव श्रेष्ठ जम्भके पुत्र सुन्दसे उसका विवाह हुआ। उसके दो पुत्र हुए मारीच और सुबाहु।'

'देवासुर संग्रामके समय महर्षि अगस्त्यने समुद्र-पान करके देवताओं-की सहायता की।' महर्षि गंगा-किनारे कगारके ऊपरके मार्गसे चलते हुए कथा सुना रहे थे—'समुद्र-गर्भमें छिपे रहने वाले असुरोंको विवश होकर देवताओंसे युद्ध करना पड़ा। सुन्द और उपसुन्द मोहिनी रूपधारी विष्णुकी मायासे मोहित होकर उस मोहिनीको दोनोंमें कौन वरण करेगा, इस प्रतिस्पर्धामें परस्पर लड़कर मर गये। उन्हें वरदान था कि दूसरा कोई उन्हें मार नहीं सकेगा। वे परस्पर ही लड़कर मर सकते हैं। इस नारीको मैं वरण करूँगा, यह काम दोनोंमें जागा। काम आया तो विवाद हुआ और एक दूसरेको प्राणोंके समान माननेवाले भाई परस्पर लड़कर मर गये।'

'सुन्द-उपसुन्दके मर जानेपर देवताओंने शेष असुरोंका संहार प्रारम्भ किया। अतः दैत्य-दानव भागकर पाताल चले गये।' महर्षिने इस कथाका उपसंहार किया—'पतिके मरनेसे क्रुद्ध पूतना पुत्रोंके साथ महर्षि अगस्त्यको मारने दौड़ी तो उन्होंने तीनोंको राक्षस होजानेका शाप दे दिया। महर्षि अगस्त्यके तेजसे संतप्त तीनों उनके आश्रमसे भागे। इन्होंने राक्षसाधिप रावणकी शरण ग्रहण की। दशग्रीवने ताड़काको पुत्रोंके साथ यहाँ वनमें

नियुक्त कर दिया। इसके दोनों पुत्र तो दूर रहते हैं बहुतसे राक्षसोंके साथ, किन्तु ताड़का इसी वनमें रहती है। मलद एवं करुष देशकी सीमा-का यह वन उसने प्राणिहीन कर दिया है। दो कोस तक इस वनमें कोई प्रवेश नहीं करता। यह जनवर्जित क्षेत्र होगया है।'

अब यात्राका ढंग परिवर्तित होगया था। दोनों भाइयोंने धनुष चढ़ाकर वामहस्तमें ले लिया था और दाहिने करोंमें वाण थे। अब वे पशु-पक्षी या पुष्पोंको देखनेका कुतूहल त्याग चुके थे। वैसे भी अब इस प्रदेशमें पशु थे भी तो केवल गिलहरी जैसे क्षुद्र पशु। पक्षी भी अधिक नहीं थे, दोनों भाई अब गम्भीर होगये थे और ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीने कथा बन्द करके मार्गको देखना प्रारम्भ कर दिया था। अब वे राजकुमारोंको ऊँची-नीची भूमिसे सावधान करते चलने लगे थे।

कुछ स्थानोंपर मार्ग लताओं अथवा कण्टक क्षुपोंसे अवरुद्ध था। वहाँ घूमकर जानेको विवश होना पड़ता था। अन्ततः विश्वामित्रजीने कगारके ऊपरसे चलनेका मार्ग त्याग दिया। वे एक सुगम स्थान देखकर गंगा-तटपर उतरे और जलके सहारे आर्द्र भूमिपर चलने लगे।

किसी भी सरिताके जलके सहारे चलना चाहे जितना सुखद लगे, सरल नहीं होता। विशेषतः जिधर कगार होता है, उधर अनेक स्थानों पर मार्ग ही नहीं होता। इस प्रकार चलनेमें नाले प्रायः मिलते हैं और गंगाके कगारोंके नीचे कंकड़ भरे हैं। महर्षिने यह मार्ग भी उचित नहीं माना। वे पुनः कगारपर आये और वनमें जिधरसे जाना सुगम दीखता, उधरसे चलने लगे। बहुत दिनोंसे--बहुत वर्षोंसे जिस ओर कोई मनुष्य न आया हो, वह वन सघन होजाता है और उसमें घूम-फिरकर ही पथ निकालना पड़ता है। ताड़काके इस वनमें मृग जैसे पशु भी नहीं बचे थे। इससे यह वन बहुत सघन तथा दुर्गम होगया था।

ताड़काने एक ऊँचे स्थानपर गुफाको अपना निवास बना रखा था। उसने आस-पास वनके प्राणियोंको खा डाला था। इससे अब उसे आहारके लिए दूर तक जाना पड़ता था और वनमें भी सतर्क दृष्टि रखनी पड़ती थी, क्योंकि बचे-खुचे पशु उससे सावधान होगये थे। वे छिपकर ही अपना आहार ढूंढ़ने निकलते थे।

अपने आहारके अन्वेषणके लिए वनपर सतर्क दृष्टि रखनेवाली ताड़काको दूर वनमें उज्ज्वल जटा-श्मश्रु एक ऋषि-दृष्टि पड़ा। महर्षि विश्वामित्र इतनी दूर थे कि उन्हें वह पहिचान नहीं सकती थी। यदि उसने पहिचान लिया होता तो आक्रमणका साहस कभी नहीं करती। उसने और उसके पुत्रोंने भी सिद्धाश्रममें महर्षि विश्वामित्रके आश्रममें रहने वाले किसी तपस्वीको वनमें एकाकी पाकर भी कभी मारनेका साहस नहीं किया था। वैसे महर्षिने उन्हें कह रखा था कि कोई समिधा, कुश या फल लेने वनमें दूर न जायँ।

'अब ये दाढ़ी-जटावाले मेरे वनमें भी आनेका साहस करने लगे ?' ताड़काने महर्षिके पीछे चल रहे राम-लक्ष्मणको वृक्ष-लताओंकी ओटके कारण देखा ही नहीं। उसे तो इधर-उधर चलते महर्षि ही दीखे। क्षुधातुर थी और उसके वनमें कोई मुनि घुसे यह उसे असह्य था। उसे लगता था कि ये ऋषि-मुनि चाहे जहाँ कुटिया बनाकर अधिकार कर लेते हैं। यहाँ गंगाका तट है ही। कोई मुनि आश्रम बना बैठा तो उसे हटाना कठिन होजायगा। क्रोधसे उन्मत्तप्राय वह पूरे वेगसे आकाशमें उछली।

वनमें जैसे प्रचण्ड झंझावात आगया। लताएँ झूलने लगीं। वृक्षोंकी शाखाएँ वायु-वेगसे टूटने लगीं। धूलिके साथ पत्ते, पुष्प उड़ने लगे। पूर्व दिशाका आकाश अन्धकारसे छा गया। केश बिखेरे कज्जल कृष्णवर्ण पर्वताकार ताड़का आकाशसे प्रलयमेघके समान उड़ी आरही थी। उसके चीत्कारसे दिशाएं गूंज रही थीं।

श्रीराम और लक्ष्मणने भी चौंककर पूर्व दिशाके गगनकी ओर देखा। अपने आप दाहिने हाथने धनुषपर वाण चढ़ा दिया और प्रत्यञ्चा खिंच गयी, किन्तु श्रीराम ठिठक गये—'यह तो नारी है !'

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने रामकी इस हिचकको लक्षित कर लिया। उन्होंने उच्चस्वरमें ललकारा—'प्रजोत्पीडक कोई हो, उसे मार देना उचित है। वत्स रामभद्र ! इस राक्षसीको मार दो !'

होगया—महर्षिका आदेश होगया तब उसके सम्बन्धमें अब राम विचार क्यों करें ? धनुषसे वाण छूट गया और ऐसे ताड़काके मध्य वक्ष-पर पड़ा जैसे इन्द्रका वज्र पड़ा हो किसी पर्वतपर। राक्षसी ताड़काका हृदय फट गया। वह चीत्कार करती घूमकर गंगाके प्रवाहमें ही गिरी !

'धन्य ताड़का !' महर्षिके मुखसे निकला—'अधम राक्षसी होकर भी तुझे अन्त समयमें भगवत्पदी जाह्नवीकी प्राप्ति हुई ।'

महर्षि कई क्षण सुरसरिके उस स्थानको जहाँके अतल जलमें ताड़काका शरीर लुप्त हुआ था, देखते न रह जाते तो उन्होंने देख लिया होता कि ताड़काको सुरसरिके पावनकारी प्रभावकी आवश्यकता अपने उद्धारके लिए नहीं थी। गंगामें देहके गिरनेसे पूर्व ही उसके शरीरसे एक ज्योति निकली थी और वह श्रीराम-लक्ष्मणकी परिक्रमा करके श्रीरामके चरणोंमें लीन होगयी थी।

महर्षिने जब सुरसरिके प्रवाहसे दृष्टि हटायी और पीछे घूमे तो राम और लक्ष्मणने भी धनुषकी ज्या उतार दी थी। धनुष कन्धोंपर चले गये थे और वाण त्रोणमें। महर्षिने दोनों भुजाएँ फैलाकर श्रीरामको खींचकर हृदयसे लगा लिया। कुछ क्षणों तक वे रोमांञ्चित शरीर रामको हृदयसे लगाये, उनकी अलकें अपने अश्रुओंसे आर्द्र करते नीरव, निस्पंद खड़े रहे।

●

दिव्यास्त्र-दान

वस्तु अधिकारीको ही दी जाती है, क्योंकि यदि अनधिकारी द्वारा वस्तुका दुरुपयोग हो तो उसे वह वस्तु देनेवाले दाताको भी दोष-भागी होना पड़ता है। महर्षि विश्वामित्रने उग्रतम तपस्या करके कृशाश्व तथा सुप्रभासे दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। ऐसे दिव्यास्त्र कि उनमें-से कोई एक प्रलय कर सकता था। सुरों एवं असुरोंमें भी किसी एकके समीप इतने दिव्यास्त्र एक साथ नहीं थे। उनमें-से एक एक जिनके समीप थे, वे अजेय थे। दो चार जिसे प्राप्त थे वे दशग्रीव, इन्द्रजित आदि त्रिभुवनमें अद्वितीय योधा माने जाते थे। ऐसे सब दिव्यास्त्र एक साथ विश्वामित्रजीको प्राप्त थे और उनका अब कोई उपयोग विश्वामित्रके लिए नहीं था।

विश्वामित्र तो शस्त्र-न्यास करके ब्रह्मर्षि होगये थे, किन्तु इन दिव्यास्त्रोंको किसे दे देवें ? इनको धारण करनेकी क्षमता हो और इनको पाकर भी मदोन्मत्त होकर इनका दुरुपयोग न करे, ऐसा पुरुष कौन था पृथ्वीपर ? अब तक विश्वामित्रको ऐसा कोई पुरुष दीखा नहीं था।

आज ब्रह्मर्षिके हृदयने पुकारा—'ये हैं वे पुरुष ! ये सम्मुख खड़े पद्मपलाश लोचन इन्दीवर सुन्दर और तप्त काञ्चन गौर दशरथ-नन्दन ! ताड़का जैसी प्रचण्ड राक्षसी जिनके एक ही वाणसे समाप्त होगयी। साधारण वाण—कोई दिव्यास्त्र नहीं, किन्तु ताड़काको तड़पनेका अवकाश भी नहीं मिला। सुरसरिके प्रवाहमें उसका शरीर पड़ा और लुप्त होगया। एकबार भी जलमें हलचल नहीं दीखी। इतनी प्रचण्ड शक्ति है इन इन्दीवर सुन्दरकी कोमल दीखती भुजाओंमें।'

'ये मर्यादा पुरुषोत्तम, जन्मसे शास्त्र-मर्यादाके नैष्ठिक पालक, किन्तु आदेश सुनते ही इनके करोंसे वाण छूट गया।' महर्षि जानते थे कि शास्त्रनिष्ठ, धर्मतत्परके लिए तनिक भी शास्त्र-मर्यादासे स्खलन कितना असमञ्जसमें डालनेवाला होता है, किन्तु श्रीरामने गुरु-आज्ञाका अविलम्ब पालन किया। अब इनसे उत्तम अधिकारी दिव्यास्त्रोंका कहाँ मिलना है।

'वत्स ! हम गङ्गातट चलेंगे।' विश्वामित्रजीने स्वस्थ होते ही कहा और वनसे सुरसरिके कगारकी ओर चल पड़े। कगारसे नीचे उतरकर प्रवाहके समीप तटपर खड़े होकर उन्होंने आदेश दिया—'तुम लोग कर-चरण प्रक्षालित करके मार्जन करो और आचमन कर आओ।'

श्रीराम और लक्ष्मणने चुपचाप आज्ञाका पालन किया। जब वे आचमन करके आगये तब महर्षिने स्नेहपूर्वक कहा—'अब प्राणायाम करके एकाग्रचित्त होकर मैं जो दिव्यास्त्र दे रहा हूँ, इनको दोनों भाई ग्रहण करो। ये दिव्यास्त्र कठिन तप करके भी प्राप्त करना सन्दिग्ध रहता है। इनमें-से अनेक ऐसे हैं कि उनकी शक्तिकी सीमा नहीं है। उनका प्रभाव अमोघ है। उनका कोई प्रतिकार भगवान् प्रलयङ्करके समीप भी नहीं है। मैं आश्वस्त हूँ कि तुम दोनों भाइयोंमें किसीके द्वारा उनमें-से किसीका कभी दुरुपयोग नहीं हो सकता।'

स्वयं महर्षिने भी मार्जन-आचमन किया और प्राणायाम करके शान्तचित्त बैठ गये। अब उनके मुखसे परावाणीमें दिव्यास्त्रोंके मन्त्र बोले जाने लगे—परावाणी तो प्रकट होती है और उसका प्रभाव ही अमोघ है।

शाप और वरदानको सत्य, सफल करनेवाली परावाणी। दिव्यास्त्र सामान्यवाणीके मन्त्रोच्चारणसे तो प्रकट नहीं हुआ करते।

धर्मचक्र, कालचक्र, पाशुपतास्त्र, नारायणास्त्र, भार्गवास्त्र, ब्रह्मास्त्र, मानवास्त्र, वज्र—उत्तराभिमुख महर्षि लगातार दिव्यास्त्रोंके मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे और मन्त्र देवता—ज्योतिर्देह, असह्यतेजा अस्त्रदेवता प्रकट होते जारहे थे। पूर्वाभिमुख राम-लक्ष्मण शान्त, गम्भीर विनम्र बैठे मन्त्रोंको ग्रहण कर रहे थे। इन श्रुतधरोंको एकबार मन्त्रोंका श्रवण ही पर्याप्त है।

देवताओंको भी आश्चर्य हुआ जब महर्षिने सम्मोहनास्त्र, जृम्भणास्त्र आदिके पश्चात् इषीकास्त्र दिया। यह दिव्यास्त्र तो केवल भगवान् नारायणके समीप है। इसका धारण ?

कोई प्रश्न नहीं उठा। सभी दिव्यास्त्रोंके देवता करबद्ध श्रीराम-लक्ष्मणसे बोले—'हम अब आपके सेवक हैं। हमें आज्ञा करें।'

'आप सब हम दोनोंके मनमें निवास करें!' श्रीरामने आदेश किया—'स्मरण करतेपर अपना प्रभाव प्रकट करें।'

आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र प्रभृति दिव्यास्त्र तो साधारण अस्त्र थे इन दिव्यास्त्रोंके सम्मुख और उन्हें राम-लक्ष्मणने गुरुगृहमें शिक्षा कालमें ही प्राप्त कर लिया था। इन अतवर्य प्रभाव दिव्यास्त्रोंको प्राप्त करके भी दोनों भाइयोंमें किसीके मुखपर गर्वकी एक रेखा नहीं आयी। कोई ऐसा उल्लास चिह्न भी नहीं जैसे कोई महती उपलब्धि हुई है।

'भगवन्! इन दिव्यास्त्रोंकी उपसंहार विधि भी तो होगी ?' श्रीरामने देखा कि महर्षि सब दिव्यास्त्र देकर शान्त होगये हैं, तब पूछा। अस्त्र प्रयोग ही हो सकता हो, उसके प्रभावको समेटा न जा सके तो वह अस्त्र-ज्ञान अपूर्ण है। अस्त्र प्रयोगके पश्चात् प्रतिपक्षी भयभीत होकर भाग सकता है। शरणमें आ सकता है। कोई देवता या ब्राह्मण अथवा शत्रु-पक्षकी कोई नारी, शिशु बीचमें आकर रक्षाकी पुकार कर सकते हैं। अनेक अवसर हो सकते हैं जब प्रयुक्त दिव्यास्त्रको निष्क्रिय कर देना आवश्यक होजाय। अतः अस्त्रका उपसंहार तो आना ही चाहिए।

'हे वत्स!' महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए श्रीरामके प्रश्नसे। उन्होंने दिव्यास्त्र देनेके लिए उचित विवेकशील अधिकारी चुना है।

अब महर्षिके मुखसे उसी परावाणीमें अस्त्रोंके उपसंहारक मन्त्र प्रकट होने लगे।

'वत्स ! आज बहुत विलम्ब होगया।' महर्षिने कहा—'अतः आज हम लोग रात्रि-विश्राम यहीं करेंगे।'

मध्याह्न स्नान-सन्ध्या करके वनमें आगे बढ़नेपर ताड़का मिली थी। उसे समाप्त करके इस अस्त्र-दानमें पर्याप्त अधिक समय लग गया। अब सायंकालीन स्नान एवं सन्ध्याका समय होचुका था। ताड़काके परित्राणके पश्चात् वन निरापद होगया था। उसमें हिंसक दूसरे पशु तो थे ही नहीं।

सुरसरि-स्नान करके वहीं सन्ध्यादिसे निवृत्त होनेपर वही तृण-पल्लव तल्पका निर्माण हुआ और रात्रि-विश्रामकी व्यवस्था बन गयी।

मख-रक्षा

अनेक बार भूमि या स्थान बोलता है। किसी स्थानपर पहुँचते ही उसका प्रफुल्लकारी अथवा अवसन्न करने वाला प्रभाव मनपर पड़ता है। कहीं जी चाहता है शान्त बैठे रहें, कहीं कुछ गायनकी इच्छा होती है और कहींसे शीघ्र भागजानेको मन आतुर हो उठता है। ऐसा ही अद्‌भुत प्रभाव लक्षित किया राम-लक्ष्मणने गङ्गा-तटपर चलते हुए एक वनमें प्रवेश करते ही। विचित्र शान्त प्रभाव, मानो पत्ते-पत्तेसे सात्विकता झर रही हो। पद उठानेको जी नहीं चाहता था। इच्छा होती थी कि बैठ जाओ और तप करो।

'भगवन् ! यह दिव्य क्षेत्र कौन-सा है ?' श्रीरामने पूछा—'इस भूमिमें ऐसा पावनकारी प्रभाव कैसे आया ? यहाँ तो कण-कण जैसे शान्ति, तप, सात्विकताका प्रभाव बिखेर रहा है।'

'हम सिद्धाश्रमकी सीमामें आगये वत्स !' विश्वामित्रजीने सस्नेह कहा—'स्वयं भगवान् वामनने यहाँ तप किया था। उन आदि पुरुषके तपसे पावन यह सिद्धस्थली सिद्धाश्रम नामसे विख्यात हुई। प्रथम कल्पके

सतयुगसे ही यह तपस्वियों, साधकोंकी साधना-भूमि रही और वामन भगवान्‌की तपोभूमि बननेके पश्चात् तो यहाँ तपस्वियोंकी परम्परा कभी उच्छिन्न नहीं हुई।'

'पंक्तिबद्ध अतल गम्भीर यज्ञकुण्ड हैं यहाँ। कोई नहीं जानता कि कबसे व्रतनिष्ठ वनवासियोंके द्वारा उन कुण्डोंमें भगवान् हव्यवाह आहुति प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु ब्रह्मर्षिके स्वरमें खिन्नता आगयी—'अब अधम असुर इस अनादि यज्ञस्थलीको अपवित्र करते हैं।'

यज्ञधूम-धूसर लता-वृक्ष पत्रावली दीखने लगी। मृगोंने आकर आत्मीयके समान महर्षिके साथ श्रीराम-लक्ष्मणको भी सूंघा और साथ चलने लगे। थोड़ी ही देरमें तो चरती ऋषियोंकी यज्ञधेनुका समूह हम्बा रव करता समीप दौड़ आया।

अचानक सम्मुख शङ्खनाद उठा। विश्वामित्रजीने श्रीरामकी ओर देखा—'वत्स! सिद्धाश्रममें सब तपस्वी रहते हैं। श्रुतिके तत्वज्ञ संयमी विप्रगण, किन्तु आज तुम दोनों भाई यहाँ अतिथि हो और अतिथि पूज्य होता है। अव्यग्र तुम दोनोंको यहाँके तपस्वियोंका पूजन स्वीकार करना चाहिए।'

संकोचीनाथ श्रीरामने मस्तक झुका लिया। महर्षि विश्वामित्र इस सिद्धाश्रमके कुलपति हैं इस समय। इन लोक-विश्रुत तपस्वीका पूजन-सत्कार सभीके लिए श्रेयस्कर है, किन्तु तपस्वियोंके द्वारा अर्घ्य-पाद्यादि दिया जाय और उसे स्वीकार करना पड़े—अत्यन्त संकोचकी बात थी श्रीरामके लिए। लेकिन महर्षि आज्ञा दे चुके थे। शास्त्रीय विधि भी यही कहती है। संकोच चाहे जितना हो, स्वीकार करना था वह सत्कार और सिद्धाश्रमके तपस्वियोंने तो पूरे उत्साहसे मन्त्रपाठ करते हुए सविधि पूजन किया—ऐसा पूजन जैसे स्वयं यज्ञपुरुष उनके मध्य आगये हों हव्य-वाह अग्निदेवके साथ और उनका पूजन करना हो।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने आश्रममें पहुँचते ही उसी दिन अगले दिनसे होने वाले अपने यज्ञानुष्ठानका पूर्व कृत्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने उस दिन उपवास किया। पञ्चगव्य प्राशन करके देह शुद्धि की और आसनपर बैठे रहकर रात्रि-जागरण किया गायत्री-जप करते हुए।

महर्षिने श्रीरामको आज्ञा दे दी थी स्वयं नियम-ग्रहणसे पूर्व—'वत्स रामभद्र! अनुजके साथ तुम कन्द, फल ग्रहण करके रात्रि-विश्राम करो।

कुलसे भाईके साथ तुम्हें सतर्क रहना है। मैं सात दिन मौन रहूँगा, क्योंकि अनुष्ठान कालमें बोलना वर्जित है। तुम्हें कठिनाई नहीं होगी। आश्रमके वृद्ध महात्मा तुम्हें जो पूछोगे, उचित सूचना देते रहेंगे।'

जैसे सब कार्य यन्त्र-चालित होरहा हो, ऐसा सुनियन्त्रित और नीरव। कोई भी आवश्यक मन्त्रपाठके अतिरिक्त कुछ बोलता नहीं था। सबको ज्ञात था कि उसे कब क्या करना है। कब कहाँसे क्या वस्तु लानी है, किसे देनी है और स्वयं क्या कृत्य सम्पन्न करना है।

रात्रि-विश्राम करके श्रीराम रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें भाईके साथ उठे तो उनके साथ दो अपेक्षाकृत तरुण तापस होगये। उन्होंने बिना एक शब्द बोले प्रातःकालीन कृत्योंमें दोनों भाइयोंका मार्ग दर्शन किया।

गङ्गास्नान करके, सन्ध्या-तर्पणादिसे निवृत्त होकर दोनों भाइयोंने त्राण धारण किया और धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी। मुनिगण यज्ञीय कुण्डोंके समीप बैठ चुके थे। वे प्रारम्भिक पूजनोंमें लग गये थे। सस्वर मन्त्रपाठका स्वर दिशाओंको पवित्र कर रहा था।

'राक्षस कौन है? कैसे हैं वे? किधरसे आते हैं?' श्रीरामने एक वृद्ध महात्माके समीप जाकर प्रणाम करके पूछा।

'वत्स! आज शुक्लपक्षकी दशमी है। ये प्रारम्भिक अनुष्ठान पाँच दिन चलेंगे। मुख्य यज्ञ पूर्णिमाको होगा।' वृद्ध महात्माने कहा—'यह मत पूछो कि राक्षस कैसे हैं और किधरसे आते हैं। वे कामरूप होते हैं। चाहे जिस रूपसे और चाहे जिस दिशासे आ सकते हैं। तुम दोनों भाइयों-को अब छै दिन-रात अप्रमत्त रहकर यज्ञकी रक्षा करना है। यज्ञमें विघ्न डालनेका, स्थान को अपवित्र करने का जो कोई प्रयत्न करे, वह मनुष्य, पशु-पक्षी, देवता किसी रूपमें हो, उसको अविलम्ब मार दो। मायावी राक्षस साधु, ब्राह्मण, गौ, देवतादि कोई रूप धारण करके आ सकते हैं, अतः किसी रूपको देखकर भ्रान्त मत होना!'

'वैसे अब तक राक्षस अपने वास्तविक रूपमें ही आते रहे हैं।' महात्माने बतलाया—'उनके पहुँचनेसे पूर्व दुर्गन्धसे दिशाएँ भर उठती हैं। प्रचण्ड झञ्झावात चलता है। धूलि छा जाती है। कज्जल कृष्णवर्ण, पर्वताकार, रक्त केश, भयङ्कर मुख, विकराल दंष्ट्रा, आयुध-हस्त वे प्रायः चिल्लाते हुए दक्षिण दिशाकी ओरसे गगन-पथसे ही प्रलयकालीन

घटाके समान अब तक आये हैं। लेकिन मायावी राक्षस सदा ऐसा ही करेंगे इसका कोई निश्चय नहीं है, अतः तुम कोई पूर्व लक्षण मनमें रखकर प्रमाद मत करना।'

लक्ष्मणको ताड़काका आकस्मिक आक्रमण और आकृति स्मरण आगयी। पुत्र एवं अनुगतोंका स्वरूप कैसा होगा, वे बहुत कुछ समझ गये, किन्तु वृद्ध तापसकी बात महत्वपूर्ण थी। मायावी लोगोंका क्या ठिकाना कि वे कब, किस रूपमें, किस अभिनयके साथ आ धमकें। अतएव अत्यन्त सावधान रहना था।

शतशः पंक्तिबद्ध हवनकुण्डोंके चारों ओर अनेक आकारकी वेदियाँ बनी थीं और उनपर नानाप्रकारके मण्डल बनाकर पूजन चल रहा था। सुगन्धित धूपसे सुरभित वायुमण्डल और वेद-मन्त्रोंके सस्वर पाठसे पावन आश्रम, किन्तु राम-लक्ष्मणको पूजनकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। दोनों भाइयोंको गगन तथा चतुर्दिक सावधान दृष्टि रखनी थी। वे प्रत्येक पशु-पक्षी, यहाँ तक कि तितलियोंको भी ध्यानपूर्वक देखते थे— 'कहीं इस वेशमें मायावी राक्षस तो नहीं आ रहा है ?'

महर्षि विश्वामित्रके आश्रममें प्रायः नैष्ठिक ब्रह्मचारी तपस्वी थे। कुछ एकाकी वृद्ध वानप्रस्थ थे। सब संयमी, वेदज्ञ, व्रतधर। उनमें-से कुछ थोड़े आश्रम परिचर्या तथा गायों, वृषभोंकी सेवापर नियुक्त थे। वे अपेक्षाकृत तरुण थे। शेष सभी उज्ज्वल श्मश्रुकेश, वलीपलित काय, तेजस्वी वृद्ध यज्ञकुण्डोंके समीप नाना प्रकारकी पूजन क्रियाओंमें लगे थे।

पाँच दिन-रात अविराम यह क्रम चलता रहा। केवल प्रातः-मध्याह्न सन्ध्याके समय तपस्वीगण स्नान-सन्ध्यामें लगते थे और वह भी दो दलोंमें। एक दल जब आह्निक कर्म पूरा करके आजाता था, तब दूसरा जाता था। क्षुधा-पिपासा, निद्रा-तंद्रा, आलस्यका प्रवेश ही आश्रममें उस समय निषिद्ध था।

श्रीराम और लक्ष्मण भी बारी-बारीसे अपने आह्निक कृत्य सम्पन्न करते थे। महर्षि विश्वामित्रकी दी हुई विद्या महर्षिकी सेवामें सार्थक होरही थी। विद्याके प्रभावसे पिपासा-क्षुधा या आलस्यका नाम नहीं था और न श्रान्ति थी। धनुष चढ़ाये सतत सावधान दोनों राजकुमार विस्तीर्ण यज्ञस्थलीके चारों ओर घूमते रहे पाँच दिन-रात। निर्विघ्न बीत गया इतना समय।

'वत्स ! कल विशेष सावधान रहना है तुम दोनोंको।' वृद्ध महात्माने सायंकाल ही सचेत किया—'कल भगवान् हव्यवाहको आहुतियाँ प्राप्त होंगी। यज्ञानुष्ठानका कल अन्तिम दिन है और राक्षस अमावस्या तथा पूर्णिमाके पर्वपर यज्ञीय-धूम्र देखकर ही प्राय: उत्पात करते आते हैं।'

प्रात: सूर्योदयके साथ आवाहन करते ही कुण्डोंमें अग्निदेवकी निर्धूम उज्ज्वल लपटें उठने लगीं। मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा'की ध्वनिसे वातावरण गूँजने लगा। वल्कल कौपीन, कृष्णमृग-चर्म उत्तरीय ऋषिगण दत्तचित्त आहुति देनेमें लग गये। सुगन्धित धूम्रकी कुण्डलियाँ मानो गगनमें उठती सुरोंको सुपोषण देने आतुर बढ़ने लगीं।

सहसा वातावरण अत्यन्त अपवित्र दुर्गन्धसे भर उठा। जैसे विष्ठा, सड़े मांस, पीब आदिका अपार अम्बार कहीं आसपास उँड़ेल दिया हो। श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंके भ्रूमण्डल कठोर होगये। धनुषपर चढ़े वाण ज्याके खींचनेसे श्रवणके समीप पहुँच गये।

प्रचण्ड वात्याचक्र मानो दक्षिण पूर्वसे बढ़ा आरहा हो। ऐसी धूलि, अन्धड़ और क्षण भरमें तो भयानक कोलाहल गगनमें गूँजने लगा। ऐसा कोलाहल कि उसमें कुछ सुनायी नहीं पड़ता था। जैसे शतसहस्र केहरी, गजयूथ दहाड़ते-चिग्घाड़ते दौड़े आरहे हों।

श्रीराम और लक्ष्मणकी भी दृष्टि दक्षिण गगनकी ओर ही लगी थी। आकाश असंख्य काले, भयानक राक्षसोंसे जैसे भर जानेवाला हो। प्रलयकी घटाके समान वह राक्षसोंका दल उमड़ता आरहा था। पलक झपकनेके विलम्बमें अनर्थ हो सकता है। ऋषियोंके यज्ञकुण्डमें यदि ये नैकषेय एक भी रक्त या किसी अपवित्र वस्तुका छींटा डाल सके, यज्ञ ही नष्ट हो जायगा। ये यहाँ गगन तक पहुँच भी जायें तो इनको मारनेसे इनका रक्त, इनके शव ही यज्ञको भ्रष्ट कर देंगे।

श्रीरामने धनुषपर एक बिना फर (नोंक)का वाण चढ़ा रखा था। वे किसीका भी वध नहीं करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि राक्षसोंके अग्रणीको दूर—बहुत दूर फेंक दिया जाय। इससे राक्षस डरकर भाग जायँ तो किसीको मारना न पड़े। राक्षसोंका दल उमड़ता आरहा था। उनके आगे उनका दलपति मारीच बढ़ा आरहा था। श्रीरामने मानवास्त्रका स्मरण करके वह बिना नोंकका वाण छोड़ दिया। राक्षसोंके सम्मुखसे मारीच ऐसे अदृश्य होगया जैसे कभी वहाँ था ही नहीं। मानवास्त्र सकरुण अस्त्र

है। वह हत्या नहीं करता। मारीच सौ योजन दूर समुद्री द्वीपमें गिरा था और उसकी मूर्च्छा दूर होनेमें कई दिन लगने थे।

राक्षसोंकी गति कुण्ठित नहीं हुई। उनकी गर्जना उग्रतर हो उठी। मारीचके अदृश्य होते ही उसका भाई सुबाहु आगे बढ़ा। युद्ध करनेका, सामान्य वाणोंके व्यवहारका अवसर ही नहीं था। राक्षस गगनमें वात्या-चक्रकी गतिसे बढ़ते-दौड़ते आरहे थे। उन्हें यज्ञस्थलसे दूर ही रोककर भगा देना या मार देना था। श्रीरामने आग्नेयास्त्रका मन्त्र स्मरण किया और उनका धनुषपर चढ़ा वाण छूट गया।

गगनसे वज्रपात होते हम सबने देखा है। कोई कड़क नहीं, एक प्रचण्ड ज्योति रेखा झपट पड़ी और राक्षसोंके दलके आगे गर्जना करता बढ़ा आता पर्वताकार त्रिशूल हस्त सुबाहु ऐसे भस्म होगया मानो प्रज्वलित अग्निमें नन्हा रुईका फाया पड़ गया हो। कोई चीत्कार नहीं, कोई तड़पन नहीं। पता नहीं उसके शरीरकी मुट्ठी भर भस्म गगनमें बिखरकर कहाँ अदृश्य होगयी।

लक्ष्मणको अग्रजने क्या किया, यह देखनेका समय नहीं था। उन्होंने सुबाहुपर प्रयुक्त आग्नेयास्त्रकी भास्वर रेखा देखी और उसी पल समझ लिया कि इतनी विशाल राक्षसोंकी सेनामें एक एकको लक्ष्य बनाना ठीक नहीं है। ऐसा करने पर तो बहुत राक्षस यज्ञस्थल तक पहुँचनेका अवकाश पाजाएँगे। बड़े भाईने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया था, छोटेने वायव्यास्त्र स्मरण करके वाण छोड़ दिया। घोर घटा जैसे प्रबल वायुके थपेड़ोंमें अदृश्य होजाती है, पलक झपकतेमें राक्षस वाहिनी अदृश्य होगयी। प्रलयकालीन मारुतके वेगमें वे राक्षस उड़े, परस्पर टकराते और उनके शरीरोंके चिथड़े उड़ गये। आश्रमसे बहुत दूर—योजनों दूर दण्डकारण्यके एक भागमें रक्त एवं मांस-खण्डोंकी वर्षा होगयी थी।

आकाश निर्मल होगया। दुर्गन्ध, आँधी, धूलि, कोलाहलका चिह्न तक नहीं। वेदोंके मन्त्रोंका सस्वर पाठ, 'स्वाहा'का स्वस्थ स्वर और यज्ञीय धूम्रकी सुरभि दिशाओंको पवित्र कर रही थी। श्रीराम और लक्ष्मणने धनुषपर दूसरे वाण चढ़ा लिये थे। वे सावधान प्रतीक्षा कर रहे थे कि प्रतिरक्षामें कोई यज्ञ-विघ्न बननेका उत्साह रखने वाला शेष हो तो

उसे भी देखलें, किन्तु अब तो अरण्यमें वहाँ आस-पास दशग्रीवके अनुचरोंमें कोई एक भी शेष नहीं रहा था।

यज्ञकुण्डपर बैठे महर्षि विश्वामित्र तथा दूसरे ऋषियोंका ध्यान भी इस ओर नहीं गया। वे एकाग्रचित्त मन्त्रपाठमें लगे रहे और यज्ञकुण्डोंमें आहुतियाँ पड़ती रहीं। पलभरको अपवित्र गन्धका झोंका आया था, कुछ कोलाहल हुआ था और सब शान्त होगया था।

केवल पशु चौंके थे और आश्रम-सेवामें नियुक्त तरुण तापस चौंके थे असह्य दुर्गन्ध आयी थी और राक्षसोंका कोलाहल सुन पड़ा था। पशुओंने कान-पूंछ उठाये, किन्तु उन्हें भी भागनेका अवसर नहीं मिला था। तरुण-तापस तो नभकी ओर देर तक देखते रहे थे। वे समझ नहीं पारहे थे कि उस गरजती, कड़कती आती राक्षस-सेनाका अन्ततः हुआ क्या? कोई युद्ध तो हुआ नहीं था। दोनों राजकुमार धनुषपर वाण चढ़ाये पूर्ववत् स्वस्थ खड़े थे।

यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हुआ। दिनके तृतीय प्रहरमें पूर्णाहुतिके अनन्तर महर्षि विश्वामित्र अपने आसनसे उठे और लगभग दौड़ते आकर श्रीराम तथा लक्ष्मणको उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उत्थित-रोम-काया कम्प-विह्वल, स्वेदस्नात होरही थी। नेत्रोंकी वारि-धारा दोनों भाइयोंकी अलकोंको सींच रही थी। बहुत देर तक महर्षिके कण्ठसे कोई शब्द नहीं निकला।

यज्ञकी पूर्णाहुति हुई वैसे ही दोनों भाइयोंने वाण त्रोणमें डाले और धनुषसे ज्या उतारकर सम्भवतः महर्षिको प्रणिपात करने जाने वाले थे, किन्तु तब तक तो महर्षिने स्वयं दौड़कर दोनोंको हृदयसे लगा लिया था।

ऋषियोंका सम्पूर्ण समुदाय वहीं आगया था। यज्ञीय कलशोंके जलसे वे मन्त्रपाठ पूर्वक दोनों भाइयोंका अभिषेक कर रहे थे। उन निष्काम तापसोंने आशीर्वादोंकी—वरदानोंकी झड़ी लगा रखी थी। प्रत्येकका विह्वल कंठ—'मेरी सब साधना, समस्त तप, सारे यज्ञानुष्ठानोंके फलसे दोनों कुमार सुखी रहें, विजयी रहें सर्वत्र और नित्य यशस्वी रहें!'

दिनके तृतीय प्रहरान्तमें किसी प्रकार यह उत्साह कुछ शिथिल हुआ। छै दिन और पाँच रात्रियों तक सभी अनाहार, निर्जल, अनिद्र, अप्रमत्त लगे रहे थे। सबको ही महर्षि विश्वामित्रके समान ही लग रहा

था कि सुकुमार राजकुमारोंको तत्काल कुछ आहार ग्रहण करके विश्राम करना चाहिए।

यज्ञीय पञ्चामृत एवं प्रसाद परमपावन आहार बनना था उस दिन सबका। सायं-स्नान, सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर रात्रिके प्रथम प्रहरकी सत्संग गोष्ठी आज स्थगित रहनी थी। सबको विश्राम करना था। यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण होचुका था और अवभृथ-स्नान तो सदा पूर्णाहुतिके पश्चात् दूसरे दिन होता है।

अवभृथ-स्नान महोत्सव प्रारम्भ हुआ था दिनके द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें, क्योंकि प्रथम प्रहर तो सदा ही उपासनामें लग जाता है। ऋषि-आश्रमका अवभृथ-स्नान आश्रमके ही उपयुक्त था। शङ्ख-ध्वनि, वेदपाठ और यज्ञीय भस्म, गोमय तथा वाराहोद्धृत मृत्तिका लेपके साथ सुरसरि स्नान हुआ सबका। तपस्वियोंकी विशाल जटाएँ शुष्क होनेमें भी समय लेती हैं।

कल यज्ञकी पूर्णाहुतिके पश्चात् किसीने श्रीराम या लक्ष्मणसे कुछ नहीं पूछा था। सबको लगता था कि ये परम सुकुमार अत्यन्त श्रान्त हैं। इन्हें शीघ्र विश्राम-मिलना चाहिए। आश्रम-सेवामें नियुक्त तरुण तापसोंने भी कुछ अधिक विवरण नहीं दिया। उनमें किसीने श्रीराम या लक्ष्मण को शरसन्धान करते देखा ही नहीं था। उनका विवरण था—'राक्षस दल सदाकी भाँति गर्जना करता पूरे वेगसे दौड़ता आरहा था। अकस्मात् एक क्षणको दिशाएँ प्रचण्ड तेजसे जल उठीं और राक्षस अदृश्य होगये।

दूसरे दिन अवभृथ स्नानने ही अधिकांश समय ले लिया। सायं कृत्यके पश्चात् रात्रिके प्रथम प्रहरमें मुनि-मण्डल एकत्र बैठा तब महर्षि विश्वामित्रने स्नेहपूर्वक पूछा—'वत्स रामभद्र! तुमने राक्षसोंपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया था?'

'केवल एकपर।' श्रीरामने मस्तक झुकाकर कहा—'मैंने उनमें प्रथमपर मानवास्त्र प्रयुक्त किया। वह कहाँ गया, पता नहीं, किन्तु उसके अदृश्य होनेपर भी जब राक्षस दल रुका नहीं, भागा नहीं तो मुझे उनके द्वितीय अग्रणीको भस्म कर देना पड़ा।'

'देव! मैंने वायव्यास्त्र प्रयोग किया था।' लक्ष्मणने मस्तक झुकाकर निवेदन किया—'उस अस्त्रसे उड़े राक्षस फिर लौटेंगे।'

'इनके शरीरके कण कण उड़ गये होंगे।' विश्वामित्रने गम्भीर होकर कहा—'उनमेंसे केवल वह जीवित होगा जिसपर वत्स रामभद्रने मानवास्त्र-का प्रयोग किया था, किन्तु लौटनेका साहस वह भी नहीं जुटा सकेगा जीवनमें।'

'इतने राक्षसोंकी हत्या होगयी ?' श्रीरामके कमलदल लोचन वारि-पूरित हो उठे—'भगवन्! हम दोनोंने अनस्त्रज्ञ राक्षसों पर दिव्यास्त्र प्रयोग करके पाप किया है ?'

'वत्स श्रीराम!' विश्वामित्रजीने रामको खींचकर हृदयसे लगाया। महर्षिका स्वर गद्गद होगया। सभी तपस्वी ऋषि-मुनि इस सरलता, धर्म श्रद्धासे विभोर होकर एक साथ बोल उठे—'धन्य! धन्य रघुवंश! धन्य धर्म-श्रद्धा वत्स!'

'धर्मकी रक्षाके लिए, गो-विप्र एवं देवस्थानको, स्त्रीके प्राण एवं सतीत्वको बचानेके लिए आततायीके विरुद्ध किया गया प्रयत्न अधर्म नहीं होता।' वेदमाता गायत्रीके द्रष्टा, सृष्टि-समर्थ, तापस शिरोमणि ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने व्यवस्था दी—'राम! मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारे और तुम्हारे अनुजोंके अन्तरको अधर्म कभी स्पर्श नहीं करेगा। तुम्हारा जो स्मरण करेंगे उनके हृदयको भी अधर्म कलुषित नहीं कर सकेगा। तुम जो कहोगे और करोगे, वही धर्म होगा। मायावी, अधर्मी, लोकोत्पीडक राक्षसोंके विरुद्ध दिव्यास्त्रका प्रयोग उचित था। इसमें किसी भी प्रकार मर्यादा का अतिक्रमण नहीं हुआ।'

निमिवंश

अब तीसरे दिन नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर जब मुनि-मण्डल एकत्र बैठा, सबका हृदय इसी आशङ्कासे व्यथित था कि अयोध्याके ये राजकुमार विदा मांगेंगे। इनको जिस कार्यसे लाया गया, पूर्ण होगया वह। अब इनको तपोवनमें रोकना उचित नहीं, किन्तु इनके चले जानेकी सम्भावनासे ही हृदय मथित होने लगता है।

महर्षि विश्वामित्रने एक बार ऋषि-मण्डलकी ओर देखा। उन सर्वज्ञ-से किसीका भाव कहाँ छिपा रहता है। स्वयं उनके भी हृदयकी तो यही स्थिति है। उन्होंने कुछ सोचा और कथा-प्रारम्भ करदी।

'वत्स रामभद्र! तुम्हारे कुलपुरुष इक्ष्वाकुके ही पुत्र थे निमि। उन्हेंोंने अपनी राजधानी हिमालयके पद-प्रान्तमें बनाई। उनको इच्छा महा-यज्ञ करनेकी थी। कुलगुरु वशिष्ठजीसे उन्होंने प्रार्थना की। सृष्टिकर्ताके मानसपुत्र तुम्हारे कुलगुरुने देवराज इन्द्रके यज्ञमें ऋत्विक होना स्वीकार करलिया था, अतः निमिको अपने लौटनेकी प्रतीक्षा करनेको कहकर वे इन्द्रका यज्ञ कराने अमरावती चले गये।'

महर्षि ने कहा—'राम तुम जानते ही हो कि देवताओंका दिन मानवके छै मासके बराबर होता है। परमतत्वज्ञ निमिको लगा कि उत्तम सङ्कल्पको विलम्बित नहीं किया जाना चाहिए। जीवनका भरोसा नहीं है। अतः उन्होंने महर्षि गौतमको पुरोहित बनाकर यज्ञ-प्रारम्भ कर दिया।'

महर्षि वशिष्ठ जब देवधानीसे लौटे, निमिका यज्ञ चल रहा था। निमिने दूसरा पुरोहित वरण कर लिया, इससे क्रोधमें आकर वशिष्ठजीने शाप दे दिया—'अपनेको पण्डित माननेवाले अभिमानी निमिका देहपात होजाय।'

निमिने भी शाप दिया—'क्रोधवश तथ्यको न समझकर निरपराधको शाप देनेवाले आपकी भी मृत्यु होजाय।'

'श्रीराम! तुमने सुना ही होगा कि तपोधन परम समर्थ महर्षि वशिष्ठने योगका आश्रय लेकर देहत्याग कर दिया।' विश्वामित्रजीने बतलाया—'महर्षिने मित्र एं वरुणके सम्मिलित अंशसे वर्तमान शरीर प्राप्त किया और पूर्वानुभवके कारण क्रोध न करनेका दृढ़ व्रत ले लिया। तुम्हारे कुलगुरुकी अक्रोधवृत्ति एवं क्षमा अश्रुतपूर्व है।'

महर्षि वशिष्ठके शापसे निमिका शरीर भी छूट गया, किन्तु निमिने जिन्हें पुरोहित बनाया था वे परमशैव महर्षि गौतम असाधारण तेजस्वी हैं। उन्होंने अपने तप एवं मन्त्र-बलसे देवताओंको यज्ञमें प्रत्यक्ष प्रकट होनेको बाध्य किया। जब इन्द्रादि सब देवता उपस्थित होगये, परम ऋषि गौतम-ने कहा—'आप सब मेरे यजमानको जीवित करदें।'

महर्षि गौतम की अवमानना करना सुरोंके लिए सरल नहीं था। इन्द्र-को स्वर्गसे सुधा लाकर निमिको जीवित करना पड़ता। गौतमने दृढ़ता-पूर्वक कह दिया था--'मेरा यजमान दूसरा जन्म नहीं ग्रहण करेगा।'

यम, इन्द्र, वरुण आदि लोकपाल ही नहीं, स्वयं ब्रह्माजी भी निमिको दूसरा जन्म देनेका कर्म-विधान करनेमें असमर्थ होगये। प्रलयङ्कर शिवके परमप्रिय भक्तकी वाणीको व्यर्थ कैसे किया जा सकता था, किन्तु स्वयं निमिने बाधा दी। उन्होंने अपने सूक्ष्म-शरीरमें ही स्थित रहते कह दिया—'स्थूल शरीरका आश्रय जीवको शोक, मोह और भय देने वाला है, अत: मैं अब स्थूलदेह ग्रहण करना नहीं चाहता।'

'जीव तो त्रिदेह समन्वित ही रहता है।' कर्म-नियन्ता धमराजने आपत्ति की—'स्थूलदेह त्यागके समय जो आतिवाहिक देह मिलता है, जो आपको मिला है, वह तो अल्पस्थायी है। उसको अधिक जीवन मिल नहीं सकता। कारण देह अविद्या, सूक्ष्म-देहाश्रित है और सूक्ष्म-देह भी किसी आवरण देहके बिना टिक नहीं सकता। आप पना मर्त्य शरीर स्वीकार नहीं करना चाहते और नरकका यातनादेह आप जैसे धर्मप्राणको देनेकी चर्चा भी अपराध है। तब आप भोगदेह स्वीकार करके देवलोकमें निवास करेंगे ?'

'किसी दिव्य लोकके भोगमें मेरी कोई रुचि नहीं है।' निमिने स्वर्ग जाना भी स्वीकार नहीं किया।

'तब आप मनुष्योंके नेत्र-पलकोंके उन्मीलनके अधिदेवता होकर उनकी पलकोंमें निवास करें।' देवराज इन्द्रने एक प्रस्ताव किया। क्योंकि देवता मोक्ष दे नहीं सकते और निमिने सभी भोगलोक अस्वीकार कर दिये थे। निमिने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्हें आधिदैवतरूप देकर देवता स्वर्ग चले गये।

'मैं ऐसा पुरोहित बना कि यजमानका वंश ही समाप्त होगया।' महर्षि गौतम इसे कैसे सह लेते ? निमिके कोई सन्तान नहीं थी। गौतमने ऋषियोंसे कहा—'आदिकल्पमें नि:सन्तान वेनके शरीरका मन्थन करके ऋषियोंने ही तो पृथुको प्रकट किया था। यजमान निमिका देह तो प्राप्त ही है। इस देहसे इनका वंशधर हम क्यों प्राप्त नहीं कर सकते ?'

गौतमके नेतृत्वमें ऋषियोंने निमिके शरीरका मन्थन प्रारम्भ किया। इस मन्थनसे एक परम सुन्दर कुमारकी उत्पत्ति हुई। माता-पिताके देह-

संयोगके बिना उत्पन्न होनेसे उनका नाम विदेह पड़ा। वह स्वयं उत्पन्न हुआ था और सन्तान उत्पन्न करनेवाला था, अतः उसका दूसरा नाम जनक पड़ गया। मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसे मिथिल कहा गया। इसीने मिथिला नगर बसाया। इस कुलमें आगे उत्पन्न होनेवालोंकी उपाधिही जनक और विदेह बन गयी।

उन नरेश मिथिलके पुत्र हुए उदावसु, उनके नन्दिवर्धन और उनके पुत्र सुकेतु। इन राजा सुकेतुके पुत्र हुए देवरात। निमिसे छठवीं पीढीमें उत्पन्न महाराज देवरातको भगवान् शङ्करने अपना सकललोक विख्यात धनुष पिनाक दे दिया था।

देवरातके पुत्र हुए बृहद्रथ, उनके सुधृति और सुधृतिके धृष्टकेतु। इस बातको स्मरण रखना चाहिए कि इस निमिवंशमें पुरोहित तथा आचार्य दो होगये। महायोगी, परमज्ञानी याज्ञवल्क्य इस कुलके ज्ञानोपदेष्टा आचार्य होगये। उनकी कृपासे इस कुलमें उत्पन्न होनेवाले सभी नरेश केवल नामसे ही नहीं, वस्तुतः भी विदेह हुए। वे राज्य-पालन करते हुए भी आत्मज्ञानी तथा देहासक्ति रहित होते रहे।

धृष्टकेतुके पुत्र हर्यश्व, उनके मरु, उनके प्रतीपक और प्रतीपकके पुत्र हुए कृतिरथ। कृतिरथके देवमीढ, उनके विश्रुत और उनके पुत्र महाधृति हुए। महाधृतिके पुत्र कृतिरात, उनके महारोमा, उनके स्वर्णरोमा और उनके पुत्र हुए ह्रस्वरोमा।

महाराज ह्रस्वरोमा जनकको दो पुत्र हुए सीरध्वज एवं कुशध्वज। इनमें-से कुशध्वज तो अब सांकाश्य नरेश हैं और मिथिलाके सिंहासनपर इस समय महाराज सीरध्वज विराजमान हैं। मिथिलाके इन तत्वज्ञ नरेशका दर्शन करने बड़े-बड़े तपस्वी, ऋषि-मुनि भी मिथिला जाते हैं।'

महर्षि विश्वामित्रने इस प्रकार निमिवंशका संक्षिप्त वर्णन सुनाया।

पिनाक

'विश्व विख्यात शिव-धनुषका क्या हुआ भगवन् ?' पूछा श्रीरामने ; किन्तु लक्ष्मणकी भी उत्सुकता उस धनुषके सम्बन्धमें थी। 'वह किन विशेषताओंके कारण विश्वविख्यात है ?'

उत्तम धनुर्धरके लिए विश्व-विख्यात धनुषके प्रति उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने यह उत्कण्ठा जागृत करनेके लिए ही तो निमि-वंशकी कथा प्रारम्भ की थी। वे बोले—'वत्स ! उस पावन धनुष पिनाककी कथा भी पवित्र है। उसे धारण करनेके कारण भगवान् गङ्गाधरका नाम पिनाकी पड़ गया।'

'दानवेन्द्र मयके तीन पुत्रोंने पितासे तीन नगर प्राप्त किये। ये मायामय नगर थे। उनमें-से एक स्वर्णका, दूसरा रजतका और तीसरा लोहका था। ये नगर गगनमें, पृथ्वीपर, गिरिशिखरपर, जलमें—कहीं भी उतर सकते थे। अपने अधिपतिकी इच्छानुसार ये अत्यन्त तीव्र वेगसे चलते थे। इनपर किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रभाव नहीं पड़ता था।

मय-पुत्रोंने तप करके ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया था कि उनके नगर सहस्र वर्षके पश्चात् एक मुहूर्तको परस्पर मिलें और तभी परम पुरुष स्वयं उन नगरोंपर प्रहार करें तो वे नष्ट हों।

इच्छागामी दुर्भेद्य नगरोंको पाकर दानव मदान्ध होगये। उन्होंने दैत्य-दानवोंको अपने नगरोंमें बसा लिया और पृथ्वीपर तथा स्वर्गमें संहार करने लगे। वे अपने नगरोंको धरा या लोकपालोंके पुर, ग्राम, उद्यान, तपोवन आदिके ऊपर चाहे जहाँ उतारकर वहाँके भवन, वृक्ष ध्वस्त कर देते थे। वहाँके सभी प्राणी नगरोंके नीचे पिसकर मर जाते थे।

तीन पुरोंके स्वामी होनेसे मयके तीनों पुत्र त्रिपुर कहे जाने लगे। उनके अत्याचारसे पीड़ित होकर देवता, प्रजापति भगवान् शङ्करकी शरणमें गये। शिवने सुरोंको अभयदान दिया और त्रिपुरसे युद्धके लिए उपयुक्त रथ, धनुष आदि उपकरण प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी।

विश्वकर्माने पृथ्वी, द्यौ, सूर्य, चन्द्रादि सम्पूर्ण तत्वोंका सार लेकर रुद्रके लिए रथ प्रस्तुत किया और पर्वतोंके सार तत्वसे पिनाक नामक धनुषका निर्माण किया। शिवने उस रथमें बैठकर पिनाक हाथमें लिया और उन कालात्माने जब तीनों नगर एक हुए, प्रहार करके उन्हें भस्म कर दिया। त्रिपुरको भस्म करनेके कारण ही शिवका नाम त्रिपुरारि हुआ।[1]

त्रिपुरको भस्म करके भगवान् नील-लोहितने निमिकी छठी पीढ़ीमें उत्पन्न महाराज देवराज देवरातको अपना वह पिनाक धनुष प्रसाद स्वरूप दे दिया। महाराज भी शिवके अनुग्रह एवं आशीर्वादके प्रभावसे ही उसे कैलाससे मिथिला ला सके। तभीसे वह धनुष मिथिलामें है और मिथिलाका राजकुल आराध्यकी भांति उसकी नित्य पूजा करता है।'

महर्षि विश्वामित्रका यह विवरण श्रीराम-लक्ष्मणके लिए अत्यन्त विस्मयकी बात थी कि कोई धनुष केवल पूजित होता है। उसका कोई उपयोग नहीं रहा है। भगवान् शंकरने उसे दिया प्रसाद स्वरूप, यह तो ठीक, किन्तु प्रसादमें जब धनुष है उसे परित्रायक होना चाहिए।

विश्वामित्रजीने दोनों भाइयोंके मुखपर इस विस्मयको लक्षित कर लिया। वे बोले—'वत्स! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित पिनाक सामान्य भौतिक वस्तु नहीं है। चिद्घनवपु भगवान् चन्द्रमौलिके उपकरण भी चिन्मय ही होते हैं। अतः धनुष भी जड़तत्व नहीं है। वह जड़ दीखता हुआ भी चेतन है—चैतन्यघन है।

वह धनुष इसलिए भी अद्भुत है कि उसका रूप देखनेवालेके अनुरूप दीखता है। किसीको वह अत्यन्त मनोरम दृष्टि पड़ता है तो किसीको महाभयानक। वह इतना विशाल है कि उसके आकारका दूसरा धनुष सृष्टिमें नहीं बना। लेकिन वह क्योंकि चेतन है, कोई नहीं कह सकता कि वह किसीके लिए कभी लघु नहीं होजायगा। पर्वतोंके सारको लेकर निर्मित पिनाक सुमेरुसे भी अधिक भारी है, किन्तु अपने आकारके समान ही उसका भार भी किसीके लिए अल्प नहीं होगा, ऐसा कैसे कहा जा सकता है।'

---

१ 'शिवचरित' में त्रिपुर-नाशकी कथा विस्तारपूर्वक आचुकी है।

लोकमें तो प्रवाद है कि राजा जनकका वह धनुष वीरोंको देखकर भयङ्कर और भारी होजाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसा होता हो, क्योंकि त्रिभुवनगुरु नीलकण्ठके चेतन धनुषका स्वभाव अपने स्वामीके समान ही तो होगा। भगवान् सदाशिव आशुतोष हैं, किन्तु अहंकारकी गन्ध भी उन्हें असह्य है।

वैसे भी वह धनुष सृष्टिकी दर्शनीय वस्तुओंमें-से है। वह विशाल और अकल्पनीय भारी तो है ही, अत्यन्त मनोरम भी है। इतना दिव्य कान्त कि अब तब कोई रत्न-पारखी नहीं समझ सका कि वह किस भागमें किस रत्नका सार रखता है। उसके पूरे भागसे इन्द्र धनुष जैसी आभा झलमलाती रहती है। जैसे सभी रत्नोंको निष्पेषित करके उसका निर्माण हुआ हो।

धनुषके अनुरूप ही उसकी ज्या है—पर्याप्त मोटी, किन्तु ज्योतिर्मयी। वह न स्वर्ण की है, न तान्तव। उसके सम्बन्धमें कोई अनुमान किया नहीं जा सकता। दानवेन्द्र मय अनेक बार उसके दर्शन कर गये है। वे दानव विश्वकर्मा भी अपने प्रतिस्पर्धी सुर-शिल्पीकी इस कलाको पुष्पाञ्जलि ही अर्पित करते हैं। इसलिए भी कि वह उनके आराध्यका आयुध है।

धनुषके समान ही उसके रखनेकी मञ्जूषा तथा उसका शृङ्गार भी दर्शनीय है। मिथिला-नरेशोंकी परम्परागत श्रद्धाने उसे अलंकृत किया है। एक सम्पन्न राजकुल दीर्घ परम्परासे जिसे सम्मान देता आरहा है, उसकी साज-सज्जाकी कल्पना दूरसे नहीं की जासकती। कोई नवीन नरेश मिथिलाके सिंहासनपर ऐसा नहीं आया, जिसने पिनाकको सुशोभित, भूषित करनेके लिए राज्यके निपुणतम शिल्पियोंको लगाने तथा सुदुर्लभ रत्नोंका उपयोग करनेमें तनिक भी प्रमाद किया हो।'

भूमिजा कन्या

'अब तक कभी किसीके लिए वह चिन्मय धनुष लघु अथवा अल्प-भारका हुआ देव ?' श्रीरामने अनुजकी उत्सुकता लक्षित करके पूछा। धनुषकी कला, साज-सज्जामें चक्रवर्ती महाराज दशरथके कुमारोंकी कोई रुचि नहीं थी। उनके पिताके अन्त:पुरमें सुरदुर्लभ रत्न-मणियोंके निर्माण थे। विश्वकर्माकी कला उनके लिए अपरिचित नहीं थी। उनकी रुचि धनुषमें थी—विश्वके सर्वश्रेष्ठ कहे जानेवाले उस धनुषमें।

'कोई साक्षी तो नहीं है, किन्तु कहा जाता है कि ऐसा एक बार हुआ है। वर्तमान महाराज सीरध्वज जनकके ही समय हुआ है।' महर्षिने कहा—'हुआ है उनकी भूमिजा कन्याके लिए।'

'भूमिजा कन्या ?' श्रीरामने जिज्ञासा की। यह प्रश्न करते समय श्रीराम किञ्चित् चौंके हैं, यह दूसरा कोई लक्षित करे या न करे, महर्षि विश्वामित्रने लक्षित कर लिया।

'परमतत्व शक्ति समन्वित होकर ही तो जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयका कारण है।' ऋषि-मुनि कब तत्वविवेचन करने लगेंगे, कोई ठिकाना नहीं रहता। महर्षि विश्वामित्रने प्रश्नका सीधा उत्तर देनेके स्थानपर तत्वविवेचन प्रारम्भ कर दिया, किन्तु संक्षिप्त—'जब परात्पर पुरुष अवतीर्ण हुए तो उनकी अभिन्न पराशक्तिको भी धरापर कहीं आना ही चाहिए।'

महर्षिका स्वर फिर सामान्य होगया। वे अपने कथा-प्रवाहको अटूट रखते कहने लगे—'राक्षसाधिप दशग्रीव ब्रह्माजीका वरदान प्राप्त करके मदान्ध होगया है। उसने अपने चर भेज दिये कि दण्डकारण्य-वासी मुनिगण भी उसे कर दें।'

रावणका तर्क है—'दानवेन्द्र मयने जो प्रदेश अपनी पुत्रीके दहेज में दिया है, उसमें जो कोई भी उसकी अनुमति बिना बसा है, उसे निकल जाना चाहिए वहाँसे अथवा कर देते रहना चाहिए।'

'ऋषि-मुनियोंसे कर ?' श्रीरामकी भृकुटि कठोर होगयी। लक्ष्मणके नेत्रोंमें अरुणिमा आयी—'दुष्ट राक्षस चाहते हैं कि अरण्य भी तपस्वियोंके लिए उन्मुक्त न रहें ?'

'लङ्काधिपके चर महर्षि अगस्त्यके आश्रम पहुँचे । उन्होंने अपने स्वामीका सन्देश सुनाया ।' विश्वामित्रजी ऐसे तटस्थ स्वरमें बोल रहे थे जैसे सामान्य कथा सुना रहे हों । अगस्त्याश्रम ही सबसे निकट पड़ता है लङ्कासे भारत आनेपर ।

'हम तपस्वियोंके समीप स्वर्णपुरी लङ्काके स्वामीको देने योग्य क्या है ?' महर्षि अगस्त्यने कहा—'वल्कल , मृगचर्म भी तो उन्हींके अरण्यके हैं । लेकिन दशग्रीव और उनके अनुचर मांसाशी-रक्तपायी हैं । हम उनके अनुरूप कर देंगे ।'

महर्षि अगस्त्य विन्ध्यसे दक्षिण बसे तपस्वियोंकी आशा हैं । वे वैदिक धर्मके , देवभूमि भारतकी अखण्डताके प्रतीक हैं । उन्होंने एक क्षणमें निश्चय कर लिया कर देनेका और खुलकर हँसे--'हम तपस्वी बार बार शाप या वरदान नहीं दिया करते । इसी प्रकार एक ही बार हम लङ्काधिपको कर देकर ऐसा परितुष्ट कर देंगे कि उन्हें पुनः कर-याचना अनावश्यक प्रतीत हो ।

महर्षिने एक घट मँगाया और उसमें अपनी उरु कण्टक-विद्ध करके थोड़ा रक्त डाला । महर्षिके आदेशपर उनके यहाँ रहनेवाले सहस्रशः तपस्वियोंने रक्त डाला उस कलशमें । अन्तमें उस तापस-रक्त पूर्ण मृत्कलशको आच्छादित करके रावणके अनुचरोंको देते हुए अगस्त्यने कहा—'लङ्केश्वरको यह हमारा कर देकर कहना कि इस कलशसे सम्पूर्ण राक्षसवंशकी विनाशिका शक्ति उत्पन्न होगी ।'

लङ्कासे आये चर बहुत डर गये । वे आगे किसी आश्रम जानेका साहस नहीं कर सके । उन्होंने अविलम्ब लङ्का लौटना उचित समझा । दशग्रीवके सम्मुख कलश रखकर उन्होंने अगस्त्यकी बात सुनादी । त्रिलोक भयङ्कर रावण भी काँप उठा । देर तक वह उस कलशको घूरता रहा । अन्तमें उसने आदेश दिया--'इस कलशको लङ्कासे दूर उत्तर ले जाकर कहीं निर्जन प्रदेश में बहुत नीचे गाड़ दो ।'

'एक प्रवाद और सुना जाता है वत्स !' महर्षि विश्वामित्रने कहा—'भारतभूमिसे सौ योजन दूर लङ्कामें—वहाँ भी दशग्रीवके अन्तःपुरमें सुरोंका

भी प्रवेश नहीं है। वहाँके सम्बन्धमें जो प्रवाद है, उसके सत्यके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जासकता, किन्तु प्रवाद मैं सुना देता हूँ।'

'दशग्रीवने वह कलश एकबार उठाया। उसे लगा कि राक्षस कलशको लेजाकर कहीं गाड़दें, यह अधिक सुरक्षित नहीं है। अतः राक्षसोंको रोककर कलश वह अपने अन्तःपुरमें ले गया और बहुत सुरक्षित रखकर अपनी पट्ट-महिषी मन्दोदरीको उसने चेतावनी दी—'इस कलशको कोई कभी भी खोले नहीं।'

'क्या है इसमें?' मन्दोदरीने पूछा।

'ऐसा महाविष कि उससे समस्त राक्षसकुल नष्ट हो सकता है।' दशग्रीवने यह नहीं कहा कि प्रशप्त तपस्वियों का रक्त है। वह जानता था कि उनकी ऐसी प्रवृत्तियोंका मन्दोदरी विरोध करती है। पट्टमहिषीको वह असन्तुष्ट नहीं करना चाहता था।

'विलासी रावणने नाग, गन्धर्व, दत्य, दानवादिकी सैकड़ों कन्या-ओंका अपहरण किया था। बहुतोंके अभिभावकोंने स्वयं अपनी पुत्रियाँ उसे दी थीं। ऐसे बहु-पत्नी वालेसे प्रधान महिषीकी उपेक्षा नहीं होगी ऐसा असम्भव है। दशग्रीवकी दीर्घकालीन उपेक्षासे अत्यन्त क्षुब्ध मय-तनयाने सोचा—'ऐसे उपेक्षित जीवनसे मरण उत्तम है।'

मन्दोदरीको उस कलशकी स्मृति आयी जिसे दशग्रीव विषपूर्ण कहकर सुरक्षित रख गया था। मन्दोदरीने कलश निकाला, खोला। उसमें दुर्गन्धित कोई पदार्थ था, किन्तु वह तो मरणोद्यता थी। उसने वह पदार्थ पी लिया।

राक्षसियाँ गर्भ धारणके पश्चात् तत्काल अथवा इच्छानुसार प्रसवमें समर्थ होती हैं। कलशका दुर्गन्धित पदार्थ पीते ही मन्दोदरीने समझ लिया कि वह गर्भवती होगयी है। यह गर्भ उसके पतिका नहीं था। इस ग्लानिसे तत्काल उसने गर्भका त्याग कर दिया। केवल एक मांस-पिण्ड प्रकट हुआ था उसके गर्भसे। ग्लानिके कारण उसने उस मांस-पिण्डको उसी कलशमें डालकर बन्द कर दिया और सेवक बुलाकर आदेश दिया—'यह कलश त्रिकूटके पूरे क्षेत्रसे कहीं बहुत दूर लेजाकर भूमिमें ऐसे ही बिना खोले गाड़ आओ।'

'यह प्रवाद सत्य हो तो भी और असत्य हो तो भी, परिणाम एक ही हुआ।' महर्षि विश्वामित्रने कहा—'उस घड़ेमें ऋषियोंका रक्त रहा हो अथवा मन्दोदरीके उदरमें पहुँचकर बना हुआ मांस-पिण्ड, उसे दशग्रीबके आदेशसे या मन्दोदरीके आदेशसे राक्षस-सेवक लङ्कासे ले आकर महाराज जनकके राज्यमें निर्जन प्रदेशमें गाड़ गये। प्रदेश अत्यन्त निर्जन था, अतः बहुत गहरे गाड़नेकी भी सावधानी उन्हें प्रतीत न हुई।

इस प्रकार उत्पीडनसे प्राप्त प्रशप्त तापस-रक्त जहाँ भूमिमें गड़ा हो, वहाँ दुर्भिक्ष तो पड़ना ही चाहिए। महाराज जनकके राज्यमें अकाल पड़ा। उस जल-बहुल-, नदी-बहुल, सर-बहुल प्रदेशमें दुष्काल! सरोवर सूख गये। सरिताओंमें जल अत्यल्प रह गया, किन्तु जैसे मेघ उधरका मार्ग ही भूल गये हों। इन्द्रके लिए उस ओर देखना भी अप्रिय था।

प्रजा भागने लगी। वृक्षोंको छाल और पत्ते तक लोगोंकी उदर-ज्वालामें समाप्त होगये। ऐसी अवस्थामें कन्दमूलकी चर्चा व्यर्थ है। इस अवस्थासे अत्यन्त दुःखी महाराज जनक—वर्तमान सीरध्वज जनकने अपने गुरु परमयोगी याज्ञवल्क्यकी शरण ली। उन्होंने गुरुसे कहा—'भगवन्! पता नहीं मेरे किस पापसे प्रजा पीडित होरही है। मैंने ऐसा क्या दुष्कर्म किया है? मुझसे कहाँ क्या अपराध बना है कि मेरे देशमें ही दुष्काल जमकर बैठ गया है? मैं जैसे भी हो, इसको दूर करना चाहता हूँ। मेरे प्राणान्त प्रायश्चित्तसे भी यदि प्रजाका कष्ट दूर हो, यहाँ वर्षा हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।'

'राजन्! आपका कोई पाप या अपराध नहीं है। आपके तो जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंके उदयका काल उपस्थित हो रहा है!' तत्वज्ञ शिरोमणि परमयोगी महर्षि याज्ञवल्क्यने कुछ देर ध्यान किया और नेत्र खोलनेपर बोले—'बहुत बड़ी उपलब्धिके लिए कुछ तप आवश्यक होता है। कुछ कष्ट उठाना पड़ता है प्राणीको, तब उसको मङ्गलकी प्राप्ति होती है। इस दुष्कालके तपसे मिथिलाको महामङ्गलकी प्राप्ति होनी है। आपको केवल यज्ञकी प्रस्तुति करनी चाहिए। वृष्टि होगी और श्री, सम्पत्ति, आनन्दकी अभिवृद्धि होगी। आपकी भूमिमें 'सदाके लिए अकालका अन्त हो जानेवाला है।'

'महर्षि गौतम जबसे इन्द्रकी वञ्चनासे पत्नीको शाप देकर एकाकी हुए थे, वीतराग होगये थे। उनके पुत्र शतानन्दजी महाराज जनकका पौरोहित्य करने लगे थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने ही यज्ञस्थलीका निर्देश किया। वे महातापस राजा जनकके साथ रथमें बैठकर निकले और पर्याप्त अन्वेषणके पश्चात् एक विस्तृत, समतल भूमिको उन्होंने यज्ञके लिए स्वीकार किया।

'देशमें दुष्काल था। राजकीय कोष एवं अन्न भण्डार क्षुधातुर लोगोंकी सहायतामें बहुत कुछ समाप्त होगया था। अतः सगे-सम्बन्धियोंको आमन्त्रि तकरनेका प्रश्न नहीं था। दूरस्थ ऋषि-मुनियोंको भी आमन्त्रण नहीं दिया गया। महर्षि याज्ञवल्क्यका कहना था—'देवराज इन्द्र इतने प्रमत्त नहीं हो सकते कि महाराज विदेह जैसे तत्वज्ञकी आहुति प्राप्त हुए बिना वर्षा न हो। महाराजको यज्ञ कदाचित् ही करना पड़े। केवल यज्ञका सङ्कल्प और प्रारम्भिक आयोजन मात्र पर्याप्त होजाना चाहिए।'

'यज्ञके सङ्कल्पका भी अवसर नहीं आया। यज्ञ भूमिका निश्चय होनेपर प्रथम कार्य होता है भूमि-शोधन। यजमानको स्वर्ण लाङ्गलसे उस भूमिको जोतना पड़ता है। इसके पश्चात् यज्ञ-मण्डप एवं यज्ञमें सम्मिलित होनेवालोंके लिए, अतिथि-सेवक-विप्रवर्गादिके लिए आवास-निर्माणका कार्य प्रारम्भ होता हैं। महाराज जनकको केवल भूमि-कर्षणका प्रयत्नमात्र करना पड़ा।

'फाल्गुन मास प्रखर तापका मास नहीं होता है। महर्षि निर्दिष्ट शुभ मुहूर्तमें प्रातःकृत्य सम्पन्न करके, स्वर्णहल, वृषभादिके पूजनके पश्चात् महाराजने जैसे ही विप्रोंके स्वस्तिवाचनके मध्य हलकी मूठपर हाथ रखा, गगन मेघाच्छादित होगया। वायु शीतल बहने लगा। सहसा गगनसे महाराजके ऊपर सुरोंने सुमन-वृष्टि प्रारम्भ कर दी।

भूमि शोधनके लिये उसका कर्षण श्रमसाध्य कार्य है। सम्पूर्ण यज्ञभूमि जोतनी पड़ती है और यह कार्य यजमानको ही करना पड़ता है, किन्तु ऐसा कुछ करना नहीं पड़ा जनकको। उन्होंने केवल कुछ फेरे लगाये थे। उनके हलने वहाँ थोड़ी रेखाएँ खींची कि सहसा हलाग्र-सीत किसी वस्तुसे टकराया और लगा कि आकाशका मार्तण्ड वहाँ भूमिसे बाहर आनेवाला है। स्निग्ध प्रकाश, शीतल प्रकाश, किन्तु शतसहस्र चन्द्रोज्ज्वल फूटा भूमिसे।

'विप्रोंके मन्त्रपाठ, शङ्खध्वनिके शब्द गगनमें गूँजते देववाद्यों एवं जयनादमें तिरोहित होगये। अजस्र पुष्प वर्षा, साथ ही घनघटा उमड़ती छा गयी थी और अब वेगवती वर्षा प्रारम्भ होनेमें केवल क्षणोंका विलम्ब प्रतीत होरहा था।

'महाराज सीरध्वज जनकने चौंककर हल उठाकर दूर रखा और झुक गये उस स्थलको देखने जहाँसे वह प्रकाश होरहा था। वत्स रामभद्र!' महर्षि विश्वामित्रका भावविभोर स्वर सुनायी पड़ा—'इन्दिराने महर्षि भृगुको पिता बनाया था अपने आविर्भावके लिए। पराशक्तिने अपने प्रादुर्भावके लिए ऋषियोंके रक्तको निमित्त स्वीकार कर लिया तो क्या आश्चर्य! महाराज सीरध्वजके हलके सीत—हलाग्रसे राक्षसोंके द्वारा भूमिमें छिपाया वह ऋषि-रक्त पूर्ण कुम्भ फूट गया था।

'महाराज जनकने देखा कि वहाँ उनके हलाग्रसे बनी रेखामें एक अनन्त सौंदर्य, सौकुमार्यकी साक्षात् मूर्ति नवजात बालिका अपने नन्हें कर, चरण हिलाती महाराजकी ओर ही देख रही है। महाराजने उसे उल्लसित होकर अङ्कमें उठा लिया और आनन्द विह्वल पद चलते महारानीके समीप पहुँचे—'देवि! इस भूमिजा कन्याको सम्हालो! अब यह हमारी पुत्री है। यह हलके सीतसे प्रकट सीता।'

'राजन्! आप बालिका एवं राजमहिषीके साथ रथपर शीघ्र विराजमान हों!' महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'इस बालिकाका जातकर्म राजसदनमें होगा। अब सुरपतिको अवसर दें इस पावनधराकी सेवाका।'

महाराज जनकके रथमें बैठते-न बैठते वर्षा प्रारम्भ होगयी थी। फाल्गुन कृष्ण अष्टमी दिनके प्रथम प्रहरका वह मुहूर्त धन्य होगया जब सीरध्वज जनकने भूमिजा कन्या प्राप्त की।

धनुषोत्तोलन

'वत्स रामभद्र ! महाराज सीरध्वज जनकने यह भूमिजा कन्या फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको[1] कुम्भ राशि स्थित सूर्य तथा तुलाके चन्द्रमें विशाखा नक्षत्रमें प्राप्त की। कहते हैं कि भगवान् शिवका चिन्मय धनुष पिनाक उसके लिए लघु एवं अल्प भार बन गया था।' महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामके प्रश्नका उत्तर इतनी कथा सुनानेके अनन्तर दिया था।

सन्ध्यादि कृत्यके लिए सबको उठना था। रात्रिके प्रथम प्रहरमें यह तपस्वियोंका मण्डल पुनः एकत्र हुआ तो महर्षि विश्वामित्रने स्वयं प्रारम्भ किया—'वत्स ! स्वाभाविक है कि पिनाकके अल्प भार होनेके वृत्तको तुम जानना चाहो। मैंने जैसा सुना है, वही तुम्हें सुना रहा हूँ।'

'महाराज जनककी यह अयोनिजा कन्या जबसे प्रकट हुई, मिथिला जैसे सुर-मुनि सेविता आनन्दभूमि होगयी। शील, सौन्दर्य, सौकुमार्यकी वह साक्षात् अधिदेवता सभीके हृदयकी निधि है। उसके लिए शैशवमें भी परजन कोई नहीं था, किन्तु अत्यन्त संकोचशीला। सुना यह गया है कि वह अपने बाल्यकालमें भी चपलताको जानती ही नहीं थी। ऋषि-मुनियोंके द्वारा सुना है कि वह आराधनारूपा—आराधनामयी है। शैशवमें भी जैसे ध्यानस्था बैठी, लेटी रहती थी और जैसे ही पदोंसे चलने लगी, उसने अपनी अर्चनाके क्रमको प्रारम्भ कर दिया।'

महर्षि विश्वामित्र श्रीजनकनन्दिनीके वर्णनमें तन्मय होगये थे। श्रीराम एकाग्रचित्त सुन रहे थे और लक्ष्मणको लग रहा था कि उनकी

---

१. आजकाल वैशाख शुक्ल नवमीको श्रीजानकी जयन्ती मनायी जाती है, किन्तु सभी प्रसिद्ध पञ्चाङ्गोंमें फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको सीताष्टमी या जानकी जयन्ती अब भी लिखा जाता है। कल्पभेदसे दोनों आविर्भाव तिथियाँ हैं। मैंने पञ्चाङ्गोंके अनुसार ही आविर्भाव तिथि ली है। इसी पद्धतिसे 'श्रीकृष्ण-चरित'में भी श्रीराधाकी आविर्भाव तिथि पञ्चाङ्गोंके अनुसार कार्तिक कृष्ण अष्टमी ली है। ज्योतिषकी दृष्टिसे जीवनको देखते ग्रहस्थिति इस तिथिके अनुसार ही लगती है।

आराध्याका ही वर्णन किया जा रहा है। महर्षि इतने तन्मय न होते तो अनेक बार उनके मनमें निवेदन करनेकी इच्छा हुई—'उन महिमामयीके चरण-दर्शनका सौभाग्य मिल सकता है क्या ?'

'भगवान् शङ्करका धनुष जनक-राजकुलमें आराध्यका प्रतीक मानकर पूजित होता है।' महर्षिने अपने मूल-प्रसङ्गको पकड़ा—'उस पिनाककी परिचर्या स्वयं महारानी करती हैं। महाराज जनक नियमपूर्वक उसकी अर्चना करते हैं। लेकिन नारियोंकी विवशता है कि अपनी देव-सेवा उन्हें अपनी अपवित्रावस्थामें स्थगित रखनी पड़ती है और यह अवस्था प्रत्येक मासमें आती है। महारानी जनक पट्टमहिषी सुनयनाने ऐसी ही विवशताके समय अपनी इस बड़ी कन्यासे स्नेहपूर्वक कहा—'वत्से ! तुम्हारे पिता स्नान करके आह्निक कृत्यमें लगे हैं। उससे निवृत्त होते ही वे पिनाक-पूजन करेंगे। तुम आज धनुषकी मञ्जूषा स्वच्छ करके वहाँ पूजन-द्रव्य सज्जित करदो।'

बड़े उत्साहसे राज-नन्दिनीने माताका आदेश स्वीकार किया। उसने सब पूजन द्रव्य स्वयं प्रस्तुत किया और उसे लेकर धनुषके समीप गयी। जो जितने महान हैं, उनको प्रत्येक कर्म उतनी सावधानी पूर्वक करनेका सहज अभ्यास होता है। किसी कार्यको वे तुच्छ समझकर उपेक्षा-पूर्वक नहीं करना चाहते। सीताके तो स्वभावमें ही कभी प्रमाद नहीं सुना गया। उसने पिनाककी मञ्जूषा स्वच्छ करनी प्रारम्भ की तो उसे लगा कि धनुष जहाँ है, उसके अत्यन्त समीपका भाग बहुत कालसे स्वच्छ नहीं हुआ है। धनुषको हटाये बिना वह स्थान स्वच्छ नहीं किया जा सकता था। बालिकाने सहज भावसे धनुषको वामहस्तसे उठाये रखा और दाहिने करसे मञ्जूषा भली प्रकार स्वच्छ करदी।

भगवान् शिव आशुतोष भोलेनाथ हैं। उनका धनुष उन्हींकी प्रकृतिका होना चाहिए। सुकुमारी बालिकाकी सहज श्रद्धा—स्वाभाविकी रुचि देखकर वह अल्प भार, अल्पाकार, होगया होसकता था—हुआ होगा, ऐसा ही सब ऋषि-मुनि मानते हैं।

महाराज सीरध्वज पिनाक-पूजन करने पहुँचे तो परिचर्या-पदार्थ प्रतिदिनकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत, अधिक व्यवस्थित प्राप्त हुए। महाराज अनेक क्षण पिनाक और मञ्जूषाको चकित देखते रह गये। उस समय

पूजन करना था, वह श्रद्धा सहित उन्होंने किया। पूजन-समाप्त करके अन्त:पुरमें महारानीसे उन्होंने पूछा—'आज पिनाक-मञ्जूषाकी स्वच्छता किसने की है ? किसने पूजन-द्रव्य प्रस्तुत किये।'

'जीजीने' महाराज जनककी औरसपुत्री, सीताकी अनुजा बालिका उर्मिलाने उत्तर दिया—'माँ ने उन्हें भेजा था।'

'सीतासे कोई त्रुटि हुई ?' महारानीको आशङ्का हुई।

'वह है कहाँ ?' महाराजने इधर उधर देखा।

'अपनी पूजामें लगी होगी। बुलाऊँ उसे ?' उर्मिलाको उत्तरकी अपेक्षा नहीं थी। वह अपनी जीजीके सदा साथ लगी रहती है। जीजीपर प्राण देती है। उसकी अपार स्नेहशीला जीजीको पिता सम्भवत: डाँटेंगे, इस सम्भावनासे वह सावधान करने स्वयं दौड़ गयी।

'वत्से ! पिनाक मञ्जूषा तुमने स्वच्छ की ?' महाराज जनकने सविनय प्रणाम करती पुत्रीके मस्तकपर आशीर्वादका कर रखकर पूछा।

नन्हीं उर्मिलाको सन्तोष होगया। वह बड़ी बहिनके साथ लगी आयी थी। उसने बहिनसे कहा था—'जीजी ! डरना मत। पिताजी डाँटेंगे तो मैं उनसे झगड़ लूँगी। तुमको कभी मञ्जूषा स्वच्छ करना उन्होंने या माँने सिखलाया तो है नहीं। कोई त्रुटि हुई भी हो तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं है।'

'तू झगड़ना मत !' सीताने छोटी बहिनको मार्गमें बड़े स्नेहसे समझाया था—'माता-पितासे झगड़ते नहीं। उनका डाँटना बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होता है। तू जानती है कि पिता मुझे कभी डाँट नहीं पाते। वे तो इतने वत्सल हैं कि मुझे देखते ही आवश्यक निर्देश भी विस्मृत होजाते हैं।'

उर्मिलाको यह उपदेश उस समय गले नहीं उतरा। उसकी जीजीको कोई डाँटे—'माँ या पिता, यह कल्पना उसे असह्य है, किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ तो वह सन्तुष्ट होगयी।

'जी, पिताजी !' अल्पभाषिणी सीताने नन्हे अरुण करोंकी अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर पूछा—'कोई त्रुटि हुई ?'

'तुमने मञ्जूषा कैसे स्वच्छ की ?' महाराजने पुनः प्रश्न किया।

'मञ्जूषा धनुषके अत्यन्त समीप स्वच्छ नहीं थी। वहाँ धूलि पूजन-जलमें मिलकर मलिन रेखा बना रही थी। धनुषको उठाये बिना वह स्थान

किसी प्रकार स्वच्छ नहीं हो रहा था।' भोली राजकन्याने कहा—'अत: मैंने वाम करसे धनुष उठाकर दक्षिण करसे वह स्थान स्वच्छ किया। मैंने धनुष कहीं अन्यत्र नहीं रखा और मञ्जूषामें भी उसे यथास्थान ही स्थापित किया।'

'तुमने धनुष उठाया ?' महारानी सुनयनाने पुत्रीकी ओर सशङ्क-भावसे देखा।

'क्या हुआ उठाया तो।' अब उर्मिला आगे आगयी—'जीजीने अवज्ञापूर्वक धनुष नहीं उठाया होगा। यह अवज्ञा तो एक तृणकी भी नहीं करती और माँ! तुमने धनुष उठानेके लिए मना तो नहीं किया था ?'

'वत्से !' महाराज जनकने पुत्रीका वह वामहस्त अपने करोंमें लिया और उसे सहलाते हुए ध्यानपूर्वक देखने लगे।

'जीजी! तेरी भुजा पीड़ा देती है ?' अब उर्मिलाके ध्यानमें बात आयी—'ओह! उसकी इस छुई-मुई जैसी जीजीने इतना भारी धनुष एक हाथसे उठाकर जाने कितनी देर ऊपर धारण कर रखा था।

'पिताजी! धनुष तो अद्भुत है।' सीताने भोलेपनसे कहा—'वह देखनेमें विशाल और भारी लगता है, किन्तु वह तो मुझे भारी नहीं लगा। मुझे उसे उठाये रहनेमें कोई असुविधा नहीं हुई। मैंने तो उसकी ओर ठीक पुन: स्थापित करके ही देखा। मेरी दृष्टि मञ्जूषा स्वच्छ करनेमें लगी रही।'

'तुम कोई बड़ी वस्तु उठाया मत करो !' महाराजके नेत्रोंसे विन्दु टपकने लगे। पुत्रीको अङ्कसे लगाये वे अपलक उसकी वाम भुजाको देख रहे थे। उसका अरुण कमलका सुकुमार कर उन्हें आज बहुत लाल लग रहा था।

'देवि! सीताको पुन: धनुषके समीप नहीं जाना चाहिए।' महा-राजने अन्त:पुरसे प्रस्थानके पूर्व महाराज्ञीको आदेश देकर कहा—'आराध्य-की असीम अनुकम्पासे ही आज पुत्रीको हम सकुशल देख रहे हैं।'

'हाय! जीजीने इतना भारी धनुष उठा लिया था! वह हाथसे छूटकर गिर जाता तो ?' उर्मिला अब चौंकी और चीखकर बड़ी बहिनसे लिपटकर हिचकियाँ लेने लगी।

महारानी सुनयना तो मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट, स्तब्ध, अपलक अपनी कन्याको देख रही थीं। सीताको ही अनुजाको चुप कराना था स्नेह-पूर्वक और माताको भी सावधान करना था।

'महारानी सावधान हुईं तो उन्होंने महाराजके समीप सन्देश भेजा— 'आराध्यकी विशेष अर्चा होनी चाहिए। भगवान् पुरारिके पावन पिनाकने जो अकल्पित अनुकम्पा की है, उसका प्रतिदान तो सम्भव नहीं है, किन्तु उसका सविधि अभिषेक, पूजा तो आवश्यक है।'

महर्षि विश्वामित्र नेत्र बन्द किए यह वर्णन इस प्रकार कर रहे थे जैसे वे सर्वज्ञ अपने मनसे इस समय वहाँ उपस्थित रहे हों। महर्षि स्वयं पुलकित होरहे थे। उनके शरीरमें रोमाञ्च होरहा था।

'उसी दिन जनकपुरमें यह बात प्रसिद्ध होगयी कि श्रीजनक-नन्दिनी सीताने पिनाक उठाया।' वर्णनका उपसंहार करते महर्षिने कहा—'इसका अर्थ ही है कि चिन्मय पिनाक अल्पभार एवं अल्पाकार होगया था उस भूमिजा जनककन्याके लिए।'

जनककी प्रतिज्ञा

'अपनी जिस अयोनिजा कन्याने पिनाक उठा लिया, उसके उपयुक्त वर कहाँ मिलेगा।' महाराज जनक उस दिनके पूजन, ऋषि-सत्कारादिसे जैसे ही रिक्त हुए, उनके चित्तमें प्रश्न उठा।

भूमिजा सुता प्राणोंसे अधिक प्रिय थी महाराजको। उसका शील, सौन्दर्य अद्वितीय है, किन्तु इससे बड़ा अन्तर नहीं पड़ता था। उत्तम कुलका कोई पराक्रमी राजकुमार बहुत सुन्दर न भी हो तो कोई विशेष बात नहीं थी, किन्तु पुरुष भले रूपमें पत्नीके समान न हो, बल-पौरुषमें प्रबल न हो तो पुरुष ही किस बातका। भगवान् शिवका धनुष जिसने क्रीड़ा पूर्वक उठा लिया, उठाये रखा, उसके उपयुक्त पौरुष सम्पन्न पात्र ?—महाराजका मानस चिन्तित होउठा।

त्रिभुवनमें पिनाकको उठाकर धारण कर सकें ऐसे समर्थ पुरुष बहुत नहीं थे। जो थे, उनमें-से एक भी महाराजको अपनी पुत्रीके उपयुक्त नहीं

लग रहे थे और इसमें भी सन्देह ही था कि उनमें-से कितने सचमुच एक हाथपर कुछ क्षण भी शिव-धनुषको उठाये रख सकते थे।

जिनका वह धनुष था उन भगवान् चन्द्रमौलिकी आराधना की जासकती है, किन्तु उनका अटपटा वेश और उन्होंने तो कितनी कठिनतम तपस्याके पश्चात् श्रीगिरिराजनन्दिनीको ही स्वीकार किया था। श्रीहरिके साथ श्रीदेवी और भूदेवी पहिलेसे विद्यमान हैं। महाराज जनकके मनमें जैसे ही नारायणका स्मरण हुआ, उन्होंने मस्तक झुकाया श्रद्धासे। उनकी भूमिजा सुता श्रीवैकुण्ठनाथकी भी पुत्री ही हुई। भूदेवीके स्वामी भूमिजाको वात्सल्य ही दे सकते हैं।

सुरोंमें कोई समर्थ नहीं लगता था। असुरोंमें रावण, बलि, वाणासुर—लेकिन क्या कन्या असुरकुलमें देनी पड़ेगी? ये असुर भी पिनाक उठानेमें समर्थ ही हैं, ऐसा असन्दिग्धरूपसे तो कहा नहीं जासकता था।

असुर भगवान् नीलकण्ठके आराधक हैं। उन्हीं आशुतोषके आराधक हैं प्रचण्ड पराक्रम परशुराम—लेकिन परशुराम क्षत्रिय-द्रोही हैं और उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया है।

कन्याकी उत्पत्तिके साथ पिताको चिन्ता होजाती है। कन्या रूपवती गुणवती हो तो चिन्ता अधिक होती है। महाराज जनककी यह कन्या रूप-गुणमें तो स्वयं श्रीको भी लज्जित करनेवाली थी ही, अब पिनाक उठाकर जिस अकल्पनीय शक्तिका अपनेमें उसने परिचय दिया था, उसने महाराजके मनको अपार चिन्तामें डाल दिया था। ऐसी चिन्ता जिसका कहीं कोई समाधान नहीं सूझता था।

कन्याके लिए विशिष्ट वर चाहिए तो वह अकस्मात् तो प्राप्त नहीं होजायगा। उसके लिए पर्याप्त समय चाहिए अन्वेषणको। अतः महाराज तत्काल प्रयत्न करनेके पक्षमें होगये थे। महारानीसे अन्तःपुरमें अपनी चिन्ता व्यक्त की उन्होंने तो महारानीने कह दिया—'महाराज! आप ज्ञानियोंके भी उपदेष्टा हो। आपको मैं क्या सम्मति दूंगी। मैं इतना जानती हूँ कि सृष्टिकर्ताने सीताको प्रकट किया है तो अवश्य इसके उपयुक्त वर भी कहीं सृष्टिमें उसने बनाया होगा।'

'कन्याके उपयुक्त वर सृष्टिमें होगा अवश्य।' महाराज जनकने कहा—'यह सृष्टिका नियम है कि पुरुषके लिए नारी और नारीके लिए पुरुष अवश्य यहाँ आता है। यह तो हो सकता है कि पुरुषकी पूरिका

निर्मित न हुई हो, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़े, किन्तु नारीका पूरक न उत्पन्न हुआ हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अनेक बार ये परस्पर पूरक नहीं मिल पाते, तब वैवाहिक जीवन विषम, कष्टमय हो-जाता है। मनुष्यकी पूर्णता, जीवनकी प्रगति तभी होती है जब उसे वह नारी मिले जो उसीके लिए है—उसकी अनुपूरिका है। हमारी समस्या तो यह है कि पुत्री सीताका जो पूरक हो उसे हम कैसे ढूँढ़ !'

महाराजने मन्त्रियोंको, पुरोहितको और अपने आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्यको एकत्र करके अपनी समस्याका समाधान चाहा। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'राजन् ! पिनाकके कारण समस्या उत्पन्न हुई है तो कन्याके उपयुक्त पात्रका अन्वेषण पिनाक ही क्यों नहीं कर सकता ?'

'पिनाक चिन्मय है। वह कर सब कुछ सकता है।' महाराज जनकने श्रद्धासहित कहा—'किन्तु वह कैसे करेगा, इस विधिका श्रीचरण निर्देश करें।'

'पिनाक अन्वेषण नहीं करेगा।' महर्षिने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया—'पिनाकको अन्वेषणका माध्यम बनाया जा सकता है। कन्याने पिनाकको एक करसे उठा लिया था अतः उस धनुषको एक करसे भी उठा लेनेवाला समबल ही सिद्ध होगा।'

'हमें ऐसा प्रचण्ड पराक्रमी चाहिए जो धनुषको ज्यासज्ज करके भङ्ग करदे !' राजपुरोहित शतानन्दजीने उत्साह पूर्वक कहा।

'सचमुच हमें ऐसा ही पराक्रमी चाहिए।' महाराज जनकने स्वीकार कर लिया।

'आप घोषणा करा दें कि जो कोई भी पिनाकको ज्यासज्ज करके भङ्ग कर देगा, उसे आपकी ज्येष्ठ पुत्री वरण करेगी।' याज्ञवल्क्यजीने आदेश दे दिया।

'जब बल-परीक्षण स्वयंवर होता है, तब किसीको भी आमन्त्रित करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। जो अभीष्ट पौरुष प्रकट न कर सकता हो, उसे आमन्त्रित करना अपमानित करके शत्रु बनाना है। परीक्षणसे पूर्व ज्ञात नहीं हो सकता कि कौन अभीष्ट पौरुष प्रकट करनेमें समर्थ है। अतः ऐसे स्वयम्वरकी घोषणा ही करायी जाती हैं। घोषणा सुनकर जो

अपनेको उस परीक्षणमें सफल होने योग्य मानते हैं और कन्याके साथ विवाहके उत्सुक होते हैं, वे स्वयं आते हैं।

'महाराज जनकने वन्दियोंको आज्ञा दे दी कि वे नाना देशोंको जाकर उनकी घोषणा—उनकी प्रतिज्ञा प्रचारित करें। उन वन्दियोंको यात्राकी सुविधा, अश्व, रथादि दिये महाराजने।

जनकपुरपर सङ्कट

'अनुमानकी अपेक्षा अधिक शीघ्र जनकपुरमें अतिथियोंका आगमन आरम्भ होगया। महाराज सीरध्वजने ऐसी आशा नहीं की थी। वे विवेकनिधि परमतत्वज्ञ कैसे अनुमान कर सकते थे कि अज्ञानी प्राणी आशाकी छलनामें कितनी आत्मवञ्चना कर सकता है।

'महाराजकी भूमिजा कन्या अपने सौन्दर्य, सद्गुणके लिए लोकविख्यात हो चुकी थी। उसे प्राप्त करनेकी कामनाने वीरमानी युवकोंको ही नहीं, तरुणों और प्रौढ़ोंको भी उन्मत्त करके अन्धा बना दिया। वे यह देखना ही नहीं चाहते थे कि उनमें अपना बल-पौरुष कितना है। 'कदाचित भाग्य साथ दे जाय।' इस दुराशाको लेकर वे दौड़ पड़े थे। अपने तीव्रतम वाहनोंसे वे दौड़े थे। उनको एक ही आशङ्का थी—'कोई पहिले पहुँचकर उस पिनाकको तोड़ न दे।'

'स्वभावत: जो समीपके प्रदेशोंके थे, पहिले पहुँचे। वे भी पहिले पहुँचे जिनके समीप तीव्रगामी वाहन थे अथवा जो कहींसे भी ऐसे वाहनोंकी व्यवस्था कर सकें।

'महाराज जनकने आगतोंके आवासकी, आतिथ्यकी उत्तम व्यवस्था कर रखी थीं, किन्तु उनको आतिथ्यका अवसर कम ही मिला। जो आता था, एक ही धुन लिये आता था—'धनुष कहाँ है?' पहिले धनुष-दर्शन पीछे आतिथ्य।'

'धनुष प्रशस्त सुसज्जित रंगशालामें रख दिया गया था। कम लोग निकले जो पथश्रम दूर करनेके पश्चात् धनुष देखने गये। अधिक लोग सीधे धनुषके समीप पहुँचे ; किन्तु अधिक लोग उस धनुषका दर्शन करके बिना स्पर्श किए ही लौट गये।

'यह तो भगवान् शङ्करका लोकपूजित धनुष है !' अपनी पराजय कहाँ व्यक्ति स्वीकार करता है। हताश लोग ऐसी बातें करते थे जैसे उन्होंने घोषणा सुनी ही न हो—'इसको उठाने, तोड़नेकी चेष्टा करना अपराध है। जनककी घोषणा व्यक्तिको शिवापराधी बनानेवाली है।

'धनुष ऐसी मञ्जूषामें है कि उसे उठानेकी सुविधा ही नहीं है।' अनेक प्रकारके बहाने थे लोगोंके समीप—'धनुषको पहिले मञ्जूषासे बाहर जनकको रखवाना चाहिए।'

'धनुष मञ्जूषा पृष्ठसे लगा हो या भू-पृष्ठसे, उसे कोई बलिष्ठ कहाँसे पकड़े ?' बहानोंकी कमी नहीं थी—'उसे कोई अल्पवय पतली सुकुमार अंगुलियोंवाला ही पकड़ सकता है।'

'धनुष कहाँ है वहाँ ?' कुछ लोग क्रोधसे तमतमाते लौटते हुए बड़-बड़ाते जाते थे—'जनकने वीरोंके विनाशके लिए भयानक विषधर नाग रसातलसे आमन्त्रित कर लिया है और वह मञ्जूषामें धनुषाकार बैठा है। हम अन्धे नहीं हैं कि धनुष और सर्पका अन्तर न देख सकें। धनुष इतना प्रकाशपुञ्ज रखता है ? वह तो मणिधर नाग है। स्पर्श करते ही डस लेगा।'

'इस प्रकार धनुष-दर्शन करके जो निराश होते थे, उनके आतिथ्यका अवसर ही नहीं था। वे उसी समय क्रोधावेशमें अपने वाहनोंपर बैठकर लौट पड़ते थे।

'थोड़े ही दिनोंमें आनेवालोंकी संख्या घटने लगी। कुछ थोड़े लोग लौटते लोगोंसे विवरण प्राप्त करके मार्गसे भी लौट गये। कुछ इसलिए भी लौटे, क्योंकि वे किसी दूसरेको महान बलशाली मानते थे और पता लग गया कि वह असफल लौट चुका है। 'जब वही सफल नहीं हुआ तो वहाँ जाकर हम तो उपहासास्पद ही बनेंगे।' यह विवेक कुछ लोगोंको मध्यमार्गसे लौटा ले गया।

'बहुत थोड़े नरेश थे जहाँ महाराज जनकके वन्दीगण घोषणा करते नहीं पहुँचे थे। द्वेष अथवा उपेक्षाके कारण नहीं, इस कारण ऐसा किया

गया, क्योंकि वहाँ कोई उद्योग करने योग्य नहीं प्रतीत हुआ। ऐसे ही स्थानोंमें अयोध्या थी। महाराज दशरथ वृद्ध होचुके हैं और उनके सुकुमार सोलह वर्षसे भी कम वयके कुमारोंसे धनुष उठानेकी आशा कौन कर सकता था।

धीरे धीरे आगतोंकी संख्या घटने लगी। जब दैत्येन्द्र बलिके सहस्र-बाहु पुत्र वाणासुर और लङ्केश्वर दशग्रीव लौट गये, मानव नरेश किस आशापर दुस्साहस करते? अतः राजाओं या राजकुमारोंका आना सर्वथा बन्द होगया। तब तक यह प्रकट होचुका था कि अनेक दनुज तथा देवता भी मानव-वेशमें समय-समयपर आते रहे थे और विफल मनोरथ लौटे थे।

'यह मेरे आराध्यका धनुष है!' महा-मनस्वी सहस्रबाहुने धनुषकी परिक्रमा की। भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया। उसने भावक्षुब्ध स्वरमें कहा—'मैं किसी मानव कन्याका आकांक्षी नहीं हूँ। मेरी पत्नी पतिव्रता है और उसके लिए मैं सपत्नी लानेकी कल्पना नहीं कर सकता। आराध्यके धनुषका दर्शन करने मैं दूसरे समय आता तो जनक भयभीत होते। मैंने जनककी प्रतिज्ञाका सुयोग देखा पिनाक-दर्शनके लिए।'

'वाणासुर परोत्पीडक नहीं है। अकारण किसीको भी आतङ्कित करनेमें उसकी अभिरुचि नहीं हैं और वह दृढ़ संयमी एवं परम शिवभक्त न होता तो क्या भगवान् पुरारि उसके पुर-पालक बनकर शोणितपुरमें निवास करते?

'दशग्रीव धनुषको देखकर झल्ला उठा था—'इस लौह मञ्जूषामें इतना स्थान कहाँ है कि कोई भली प्रकार धनुषको पकड़ भी सके?'

'दुर्दम राक्षसाधिप न महाराज जनकका संकोच मानता और न मर्यादाकी उसे चिन्ता थी। वह पूरी मञ्जूषा उठाकर पटक देना चाहता था। कैलास उठानेमें समर्थ दशग्रीवसे मञ्जूषा नहीं उठी। यह स्पष्ट था। वह अपनी बीस भुजाएँ लगाकर देख चुका था, किन्तु भय था कि विफल होनेपर वह कोई उत्पात करेगा। उसका सम्मान सुरक्षित रह गया और उत्पातका अवसर उसे नहीं मिला, क्योंकि जब वह मञ्जूषा उठानेका प्रयत्न कर रहा था, उसे आकाशवाणीने सूचना दी कि लङ्कासे उसकी भगिनीका अपहरण दैत्य विद्युज्जिह्वने कर लिया है। दशग्रीवको जनकपुरसे उसी समय लङ्का प्रस्थान करना पड़ा और ऐसा करके वह प्रसन्न ही हुआ।

'पीड़ितोंके समान पराजित भी अपना एकत्व स्थापित कर लेते हैं। जनकपुरसे निराश होकर जो राजा एवं राजकुमार लौटे थे, वे अत्यन्त क्षुब्ध थे—'जनकने हम सबको अपमानित किया है। जो धनुष दशग्रीव और बाणासुर न उठा सकें, उसे प्रतिज्ञाका माध्यम बनाकर सभी भूपतिगणका उपहास किया गया है।'

पराजयकी झल्लाहटने सबको क्रुद्ध कर दिया। यद्यपि कोई प्रसिद्ध नरेश आगे नहीं आया, किन्तु संख्या-बल बहुत बड़ा बल होता है। जो देवता या असुर मानववेशमें जनकपुर आकर विफल हुए थे, वे प्रतिवाद करनेकी स्थितिमें नहीं थे। उनका सम्मान सुरक्षित था मौन रहनेमें। वे कुछ भी करते तो लोकमें प्रकट होजाता कि वे भी पराजित हुए हैं। जो थोड़े विख्यात शूर आये थे वे इतने हीन मानस नहीं थे कि अपनी पराजयको स्वीकार न करके किसी तुच्छतापर उतर आते। लेकिन ऐसी तुच्छतापर उतर आनेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी थी।

'सांकाश्य नरेश सुधन्वाने महाराज जनकसे उनकी पुत्री मांगी। धनुष उठानेमें वह असमर्थ होगया था। उसकी माँग स्वीकार करना सम्भव नहीं था। उसने दूसरे पराजितोंको उत्तेजित किया। उन सबका अग्रणी बना वह और उन सबकी सम्मिलित सेनाने जनकपुर पर घेरा डाल दिया।

एक कुशल थी कि राजधानीमें प्रवेशका साहस उनमें-से किसीने नहीं किया। वे परस्पर एक दूसरेके प्रति सशङ्क थे। उन्हें लगता था कि यदि राजधानीपर आक्रमण किया गया और जनक पराजित होगये तो जो नगरमें प्रथम प्रवेश करेगा, राजकन्याको वह प्राप्त कर लेगा। अतः नगरपर आक्रमण करनेकी योजना वे नहीं बना सके। उनमें इस विषयमें मतैक्य नहीं था कि आक्रमणमें कौन अग्रणी बने और कौन पीछेसे सहायता करे।

'उन सबको आशा थी कि नगरके घिरा रहनेसे सन्त्रस्त होकर जनक अपनी प्रतिज्ञा तोड़नेको प्रस्तुत हो जायँगे। तब उनसे कहा जासकेगा—'कन्याका तत्काल स्वयंवर करो। उसे हम लोगोंमे-से ही किसीका वरण करना है।'

'पूरे एक वर्ष तक वे जनकपुरको घेरे पड़े रहे। पुरीमें बाहरसे कोई पदार्थ ले जाने नहीं देते थे। पुरीसे न कोई बाहर जा सकता था और न

किसीको वे पुरीमें प्रविष्ट होने देते थे। अन्ततः किसी नगरकी सुरक्षित सामग्री कितने दिनों तक नागरिकोंका काम चला सकती है।

'वस्त्र, काष्ठ, अन्न, लवण, मधु, शर्करादि सभी पदार्थोंका अभाव नागरिकोंको उत्पीड़ित करने लगा। सहज वीतराग महाराज सीरध्वज-को प्रजाकी पीड़ासे बहुत चिन्ता हुई। महाराज न भोगाकांक्षी थे, न यशो-भिलाषा। उन्होंने अपनी कुल-परम्पराके अनुसार कोई बड़ी सेना कभी नहीं रखी। सेनाका व्यय प्रजापर उन्हें व्यर्थ भार लगता रहा था। उन्हें किसी-पर आक्रमण नहीं करना था और कोई राजसूय, अश्वमेध करने लगे तो कर देकर सत्कृत कर देनेमें किसी तत्वज्ञको कोई अवमानना प्रतीत नहीं हो सकती। कोई असुर-राज्य आसपास नहीं था जिसके अकारण आक्रमणका भय हो। अतः जनकपुरमें कोई बड़ी सेना नहीं थी। इस अकस्मात् आ धमकी विपत्तिसे बचनेके लिए महाराजने तपस्या प्रारम्भ की।

'पिताजी आजकल क्यों आहार-ग्रहण नहीं करते?' मातासे सीताने एक दिन पूछा। महाराज निर्जल व्रत कर रहे हैं, यह बात नागरिकोंसे और अन्तःपुरसे भी गुप्त ही रखी गयी थी। महाराज अहर्निशि अनिद्र रहकर जपमें लगे थे। वे महाशक्ति दुर्गाकी आराधना कर रहे थे सङ्कटसे परित्राणके लिए।

'वत्से! तेरे कारण नगर शत्रु सैनिकोंने वर्ष भरसे घेर रखा है।' महारानीने कहा—'तेरे पिता सुरोंसे सहायता प्राप्तिकी कामनासे तप कर रहे हैं।'

'सुरोंसे किस प्रकारकी सहायता अपेक्षित है पिताजीको?' भूमि-सुताकी भृकुटि तनिक कठोर होगयी—'शत्रुओंका संहार सुर कर देंगे। मैं प्रार्थना करूँ?'

'नहीं वत्से! इस प्रकार तो सभी सैनिक मारे जायँगे और इसमें तेरे पिताका अयश होगा।' महारानीने कहा—'युद्ध तो तेरे पिताको ही करना है, किन्तु उनके समीप पर्याप्त सैनिक नहीं हैं।'

'मैं प्रार्थना करूँगी कि सुर सैनिक देकर पिताजीकी सहायता करें।' बालिकाकी सरल वाणी महारानीको क्यों महत्वपूर्ण लगती। वे स्वयं भी तो यही प्रार्थना नित्य कर रही थीं।

'दूसरे दिन प्रातः जनकपुर दिव्य सैनिकोंसे भरा दीखा। महाराजने, नागरिकोंने भी समझा कि महाशक्तिकी प्रेरणासे सुरोंने सैनिक भेजे हैं। सैनिक सचमुच महाशक्तिकी प्रेरणासे ही प्रकट हुए थे।

'महाराज सीरध्वज अपने भाई कुशध्वजके साथ रथारूढ़ होकर उन सैनिकोंके साथ नगरसे निकले। युद्ध हुआ—बहुत विकट युद्ध, किन्तु सायंकालसे पूर्व ही समाप्त होगया। दिव्य सैनिक और उनके दिव्यायुध—मानव शूरोंके अस्त्र-शस्त्र भला उन विद्याधरोंका क्या बिगाड़ लेते? बहुत अधिक संहार नहीं हुआ। अवश्य प्रतिपक्षका अग्रणी सुधन्वा युद्धमें कुशध्वजके हाथों मारा गया। दूसरे सैनिकों एवं राजाओंमें मारे थोड़े गये, आहत अधिक हुए और वे भाग गये।

'जनकपुरकी विपत्ति दूर हुई तो वे दिव्य सैनिक जैसे प्रकट हुए थे, वैसे ही अदृश्य होगये। क्योंकि सुधन्वा सन्तानहीन था और उसके कोई भाई भी नहीं था, सांकाश्य राज्यका भार कुशध्वजको सम्हालना पड़ा।'

महर्षि विश्वामित्रने यह विस्तारपूर्वक सुनाया तो श्रीरामने पूछा—'भगवन्! उस शिव धनुषका क्या हुआ?'

'वत्स! वह पुनः अपने आराधना कक्षमें पहुँचा दिया गया।' महर्षि विश्वामित्रने कहा—'यदि तुम उसे देखना चाहो तो हम सब भी साथ चलेंगे। मिथिला यहाँसे बहुत दूर नहीं है। मेरी इच्छा है कि तुम उस महाधनुको देखो।'

महर्षिकी इच्छा ही आदेश थी। अतः चलना निश्चित होगया। एक दिन चलनेकी प्रस्तुतिमें लगा, क्योंकि अधिकांश तपस्वी साथ जानेको उद्यत थे।

जनकपुरकी ओर

आश्रमसे महर्षि विश्वामित्रजीने जब जनकपुरकी ओर प्रस्थान किया, उनके साथ इतने ऋषि-मुनि तपस्वी थे कि उन अपरिग्रही अत्यल्प सामग्री रखनेवाले लोगोंके लिए भी सौ शकट (बैलगाड़ियाँ) साथ लेनी पड़ी थीं। इन शकटोंमें जुड़े वृषभोंकी सेवाके लिए भी कुछ तरुण साधक साथ थे।

सिद्धाश्रममें अग्नि, आश्रम तथा गौओंकी सेवाके लिए तरुण ब्रह्मचारी साधकोंको छोड़ना अनिवार्य था, किन्तु जिनको भी वहाँ छोड़ा गया, वे शिथिल मनसे गुरु-आज्ञासे विवश होकर ही वहाँ रहे। अन्यथा श्रीराम-लक्ष्मणके साथ जानेको किसका चित्त व्याकुल नहीं होरहा था।

सानुज श्रीराम महर्षि विश्वामित्रजीका यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् केवल तीन दिन सिद्धाश्रम रहे थे। उसमें-से एक दिन अवभृथ-स्नान महोत्सवमें लग गया था। दूसरे दिन महर्षिने धनुषादिकी कथा सुनायी थी और तीसरा दिन यात्राकी प्रस्तुतिमें लगा था। चौथे दिन यात्रा प्रारम्भ हो गयी थी।

महर्षिने जब निमि वंशका वर्णन प्रारम्भ किया था, श्रीराम और लक्ष्मणको भी निमि-वंशके साथ सहानुभूति होगयी थी। श्रद्धा होगयी थी कहना अधिक उपयुक्त है। ऐसा पुण्यवंश कि उसमें तत्वज्ञानी देहासक्ति रहित नरेशोंकी परम्परा चल पड़ी। दोनों भाइयोंके ही मनमें महाराज सीरध्वजके दर्शनकी इच्छा हुई थी।

महर्षिने जब पिनाकका वर्णन किया, दोनों भाई तभी उस महाधनुषको देखनेके लिए उत्सुक होउठे थे और महाराज विदेहकी भूमिजा कन्या—श्रीराम स्वयं नहीं समझ पाते थे कि उनका हृदय—उनका स्थिर शान्त निर्मल हृदय क्यों उस राजकन्याको लेकर नाना कोमल भावनाएँ करने लगा है।

बड़ा क्रोध आया था लक्ष्मणको जब जनकपुर राजाओंके घेरेका वर्णन महर्षि कर रहे थे। बार बार उनके अधर फड़कते थे और दोनों भाइयोंका हृदय महाराज जनकके प्रति श्रद्धापूरित होउठा था। महाराज

तत्वज्ञ हैं। विदेह हैं और क्षत्रियोचित शौर्य है उनमें। उन्होंने अपने सङ्कटके समय भी किसीसे सहायताकी याचना नहीं की। अन्ततः कोई अश्वमेध यज्ञ करके चक्रवर्ती होता है तो जिनसे कर लेता है, उनकी रक्षा भी कर्तव्य होता है उसका। महाराज विदेह अयोध्यासे सहायता चाहते तो यह उनका स्वत्व था, किन्तु उन्होंने अपने गौरव, अपने स्वाभिमानकी रक्षा की।

दोनों ही राजकुमार श्रद्धेय मान चुके थे महाराज जनकको। उनके दर्शनोंको, त्रिलोकीके शूरोंको पराभव देनेवाले पिनाककी भी एक झलक देखनेको उत्सुक होउठे थे। स्पष्ट तो नहीं, किन्तु श्रीरामके हृदयमें कहीं एक और आशा भी अंकुरित होरही थी—'सम्भव है जनकराजतनयाकी भी एक झाँकी मिल जाय !'

महर्षिने तो जान-बूझकर वह कथा सुनायी थी। उन्होंने कहाँ इस बातको छिपाया। अन्तमें स्पष्ट कह दिया था—'मेरी इच्छा है कि तुम दोनों भाई पिनाकको देखो !'

यह ऋषियोंकी यात्रा थी। सब त्रिकाल सन्ध्या करनेवाले, तपस्वी, आराधक थे। मार्गमें भी वे मौन चलते थे अथवा कथा-सत्संग होता चलता था। यात्राका प्रथम विश्राम शोणभद्रके तटपर रात्रिमें हुआ। यह तो महाराज गाधिका राज्य था अर्थात् विश्वामित्रजीके पिताका राज्य। सिंहासनपर विश्वामित्रजीके पुत्र ही थे। राजाको समाचार नहीं दिया गया था। इसकी आवश्यकता भी नहीं थी और इससे जो औपचारिकता बढ़ती, वह विश्वामित्रजी तथा तपस्वियोंको भी प्रिय नहीं थी।

तपस्वी साधु पुरुषोंके सत्कारके लिए आज भी सर्व-सामान्य प्रस्तुत रहते हैं। वनमें पर्याप्त तृण थे वृषभोंके लिए और ग्रामजनोंकी श्रद्धाने कोई अभाव रहने नहीं दिया था। शरद ऋतुकी रात्रियाँ वैसे भी मनोरम होती हैं। अभी शरदका प्रथम मास था। वन सुरभित सुमनोंसे परिपूर्ण था। निर्मल नभकी धवल ज्योत्स्ना कौमुदी-महोत्सव मना रही थी। शोणनदके पुलिनपर सबने रात्रि विश्राम किया।

शोणमें सब समय अगाध जल नहीं रहा करता। महर्षि विश्वा-मित्रके साथके सब तपस्वियोंको और शकटोंको भी शोण पैरोंसे चलकर पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

शोणको पारकर यह यात्री दल गङ्गातट पहुँचा। अद्भुत है विष्णु-पदी भगवती सुरसरिकी महिमा। महर्षि विश्वामित्रका आश्रम सुरसरि-तट-पर ही था। केवल एक दिन यात्रा शोणके किनारे चली थी, किन्तु गङ्गाका प्रवाह दीखा तो तपस्वियोंको ऐसा लगा जैसे युगोंके पश्चात् इस ब्रह्मद्रवके दर्शन होरहे हैं, जहाँसे जलधाराके दर्शन हुए, वहीं सबने भूमिष्ठ होकर देव-नदीको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।

'वत्स रामभद्र! यह तुम्हारे पूर्वज महाराज भगीरथकी कीर्ति-पताका भुवन-पावनी भागीरथी हैं!' महर्षि विश्वामित्रने भाव विभोर होकर महाराज भगीरथ द्वारा गङ्गाके अवतरणकी कथा विस्तारपूर्वक सुनायी और उनका माहात्म्य सुनाया।

गङ्गातट पर पहुँचते ही वहाँके तीर्थ पुरोहित आ गये। रघुकुलके तीर्थ पुरोहितने आकर श्रीरामसे कहा--'वत्स! आप अपनेको अयोध्यामें ही समझो। श्रीचक्रवर्ती महाराजकी कृपासे यहाँ सब कुछ सुगम सुलभ है। कोई संकोच मत करो। जिसे जो दान-पुण्य करना हो, प्रसन्नतापूर्वक करो। यह हमारी परम्परा ही है कि हम पीछे राजधानीसे राजपुरुष द्वारा किया गया व्यय ले आते हैं।

'हमारे यजमानके राजकुमारोंके साथ आप सब पधारे हैं।' तीर्थ पुरोहितने महर्षि विश्वामित्रसे अनुरोध किया--'आज सभी ऋषियोंको श्रीराम लक्ष्मणका अतिथि रहना है।'

गङ्गास्नान पूजन और आगत विप्रोंको, याचकोंको विपुल दान किया राजकुमारोंने। रात्रि-विश्राम वहीं हुआ और सम्पूर्ण व्यवस्था अयोध्याके तीर्थ पुरोहितने बड़ी नम्रता तथा उत्साहपूर्वक की।

अहल्योद्धार

अद्भुत स्थान मिला गङ्गा-तटपर यात्रा करते हुए। श्रीरामने चकित होकर देखा और विश्वामित्रजीसे पूछा—'भगवन् ! लगता तो यह स्थान ऐसा है कि किसी ऋषिका आश्रम हो। यहाँ व्यवस्थित ढंगसे फलोंके वृक्ष लगे हैं। विल्व वन है। अर्क एवं तुलसीके वीरुध हैं। गङ्गा-तटपर होकर भी सरोवर है कमल पुष्पोंसे भरा और सुगन्धित पुष्पोंको भी व्यवस्था पूर्वक जैसे लगाया गया हो, किन्तु बहुत दिनोंसे परित्यक्त है यह स्थान। असिञ्चित, अव्यवस्थित दीख रहा है और सबसे अद्भुत बात कि इतने मधूर फलोंसे युक्त वृक्ष तथा पुष्पभार झुकी लताओंवाले इस स्थानमें कोई पशु, कोई पक्षी, तितली जैसी क्षुद्र प्राणी भी नहीं। यह प्राणीविहीन स्थान क्यों है ? किसका है यह स्थान ?'

'वत्स ! प्रत्येक युगमें धर्म-रक्षाका दायित्व मुख्य रूपसे सात ऋषियों-पर होता है। ये उस युगके सप्तर्षि कहे जाते हैं।' महर्षि विश्वामित्रने बतलाया—'वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं प्रजापति कश्यप, महर्षि अत्रि, तुम्हारे कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ, प्रचण्ड पराक्रम परशुरामजीके पिता जमदग्नि, महर्षि गौतम, महर्षि भरद्वाज और मैं।'

'इसमें-से प्रजापति कश्यप अब ब्रह्मलोक ही प्रायः रहते हैं और जमदग्निजी भी जनलोकमें रहने लगे हैं। महर्षि अत्रिका आश्रम चित्रकूट के समीप है, महर्षि भरद्वाज प्रयागमें त्रिवेणी तटपर निवास करते हैं। अपने कुलगुरुके आश्रम में तुम रहे हो और मेरा सिद्धाश्रम तुमने अभी देखा है। यह स्थान महर्षि गौतमका आश्रम है, किन्तु उनके द्वारा परित्यक्त एवं प्रशप्त।

निमिवंशके वर्णनमें महर्षि गौतमका वर्णन आया था। निमिने जिन अमित तेजाको महर्षि वशिष्ठके स्थानपर अपना पुरोहित वरण किया था, उन परम शिव-भक्तका यह आश्रम है। भला क्यों अपने ही आश्रमको उन्होंने शाप दिया होगा ? श्रीरामने पूछा नहीं, लेकिन उनके नेत्रोंमें प्रश्न स्पष्ट होउठा। विश्वामित्रजी भी श्रीरामको यहाँ साभिप्राय ही ले आये थे। अतः उन्होंने शापकी कथा सुनाना प्रारम्भ किया एक सघन मौलिश्री-की छायामें आसीन होकर।

'सृष्टिकर्ताने एक बार एकाग्र मनसे सृष्टिके सुकुमार सुन्दर तत्वोंको लेकर एक नारीका निर्माण किया। वह इतनी उज्ज्वल प्रभामयी थी कि दिनके प्रकाशमें उससे एक होजाती थी। तब उसे देखपाना कठिन होता था। 'अहनि लीयतेति अहल्या' दिनमें लीन होजानेके कारण उसका नाम अहल्या पड़ा। सभी लोकपाल उसे पानेको उत्सुक होउठे, किन्तु ब्रह्माजी उचित अधिकारीको उसे देना चाहते थे। परीक्षणके लिए उन्होंने महर्षि गौतमके समीप उसे थोड़े दिन सुरक्षित रखनेको दिया। एक वर्ष पीछे सृष्टि-कर्ताने माँगा तो गौतमने वह कन्या लौटा दी।

इतने दिनोंतक एक अकेले युवाके समीप ऐसी सुन्दरी कुमारी कन्या रही, लेकिन गौतमने उसके रूपकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह उन्हें केवल सुरक्षित रखनेको दी गयी थी। उसके आहार, सुविधा, सुरक्षाका उन्होंने पूरा ध्यान रखा। उनके इस कठिन संयमसे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उन्हींसे उस कन्याका विवाह कर दिया। उससे महर्षि गौतमके जो पुत्र हुए, वही शतानन्दजी इस समय महाराज सीरध्वजके कुलपुरोहित हैं।

देवलोक भोगलोक है। सब सद्गुणोंके साथ देवत्वका महान दुर्गुण है विलासिता और देवराजका अर्थ है विलासियोंका शिरोमणि। भोग-वासनाकी कोई सीमा नहीं है और देवयोनिके कर्मयोनि न होनेसे देवताओं-को अपने किसी कर्मका शुभ या अशुभ फल नहीं प्राप्त होता। इस निरंकुशताके कारण देवता तथा देवराज इन्द्र भी अनेक बार अकरणीय गर्हित कर्म कर बैठते हैं।

देवराज पुरन्दर पहिलेसे ही अहल्याके सौन्दर्यपर मुग्ध थे, किन्तु सृष्टिकर्ताने उन्हें वह कन्या दी नहीं। वह ऋषि-पत्नी बन गयी और पतिव्रता थी, किन्तु पुरन्दरको तो उनकी वासनाने अशान्त बना रखा था। अन्ततः इन्द्रने एक गर्हित अभिसन्धि की। शशिको भी उसमें सम्मि-लित कर लिया।

शारदीय रात्रि थी। गगन उज्ज्वल मेघोंमें ढके होनेसे प्रभातकालके निकट होनेका भ्रम सहज होता था। शशिने कुक्कुट बनकर महर्षि गौतमके उटजके समीप ध्वनि की। महर्षिने समझा कि ब्रह्ममुहूर्त होगया। वे आतुरता पूर्वक उठे। कमण्डलु आसनादि लेकर गङ्गा-स्नान करने चल पड़े।

'महर्षिकी अनुपस्थितिका इन्द्रने लाभ उठाया। वे स्वयं महर्षिका रूप धारण करके आश्रममें आगये। महर्षि-पत्नीके लिए इस कपटको जाननेका कोई उपाय नहीं था।

'महर्षि गौतमको मार्गमें ही अनुभव होगया कि रात्रि अधिक है और उनके साथ कोई छल किया गया है। वे त्वरित गतिसे लौटे। उन्हें देखते ही कुक्कुट बना शशि भागा। उसपर अपने मृगचर्मसे प्रहार करके ऋषिने शाप दिया—'तू सदा कलंकी रहेगा।'

'महर्षिका स्वर सुनते ही पुरन्दर भयभीत कुटियासे निकले। उन्होंने चरण पकड़ना चाहा, किन्तु गौतमने उन्हें शाप दिया—'तू कामकीट बन गया है। तेरे शरीरमें सहस्र भग हो जायँ और तेरा वृषण गिर पड़े।'

लज्जा, ग्लानि, वेदना पीड़ित इन्द्रने भगवान् शिवकी शरण ली। आशुतोषने वरदान देकर उनके शरीरमें प्रकट भगोंको नेत्र बना दिया। तबसे पुरन्दर सहस्राक्ष हैं। अश्विनीकुमारोने इन्द्रको अज-वृषण आरोपित किये।

'तू पाषाणी! तुझे स्वपति और परपति तकमें विवेक नहीं है!' भयसे थरथर काँपती अहल्याको महर्षिने शाप दिया—'तू पाषाणी हो जा! तेरे इस निवासाश्रमपर कोई प्राणी नहीं रहेगा।'

'मुझ अज्ञ निरपराधको क्षमा करें!' अहल्या आर्तनाद करती पतिके चरणोंपर गिरी और तत्काल पाषाणी होगयी। वह अन्तःप्राणा असहाय अबला अब भी उसी स्थितिमें पड़ी वर्षा, शीत, आतप सहती तपोनिरता है।

'क्षणार्ध-मन्यु महर्षि गौतमने पत्नीका आर्तनाद सुना और अपने चरणोंसे धड़ामसे गिरकर पाषाणी बनी उस असहायाको देखा। उन्हें दया आगयी। बोले—ऐसे ही तपोलग्ना रह! त्रेतामें पुरुषोत्तम दशरथ नन्दन श्रीराम होकर प्रकट होंगे, तब उनकी चरण-रजसे तू निष्पापा होकर अपने स्वरूपको प्राप्त होगी। तब मैं तुझे स्वीकार कर लूँगा।'

'महर्षि गौतम विरक्त होकर तभीसे परिव्राजक बन गये हैं। वे कब, कहाँ रहेंगे, कुछ ठिकाना नहीं है। अपने पुत्र शतानन्दको वे मिथिला-राजकुलका पौरोहित्य प्रदान कर गये थे।'

'वत्स रामभद्र ! तुम उस तपस्विनी पाषाणीभूता ऋषिपत्नीको देखो।' महर्षि विश्वामित्रने कथा-सुनानेके पश्चात् आसनसे उठते हुए कहा—'अपनी चरणरज देकर उसे इस दुस्सह स्थितिसे परित्राण प्रदान करो।'

'वन्दनीया महर्षि पत्नीको मैं ....।' श्रीरामने मस्तक झुका लिया। उनका श्रीमुख गम्भीर होगया। वे अत्यन्त संकोचमें पड़े खड़े रह गये।

'वत्स ! यह मेरा अनुरोध है। तुम दोनों भाइयोंको मिथिलाकी ओर लानेमें मेरा यह विशेष उद्‌देश्य था।' महर्षिने श्रीरामका दक्षिण कर पकड़ा और उन्हें ले चले—'तुम संकोच मत करो ! इसमें कोई अनौचित्य नहीं है। पतिके शापसे परित्राण देनेके लिए तुम इस तापसीको अपनी पद-रज प्रदान करो।'

महर्षिने ले जाकर श्रीरामको मूर्तिभूता अहल्याके समीप खड़ा कर दिया। वह सृष्टिकर्ताके करोंकी अनुपम कृति–स्फटिक पाषाणमें यदि प्रकाश भी होता तो भी कदाचित ऐसी मूर्ति बनती। घुटनोंके बल भूमिसे सिर टेके प्रणाम करती मुद्राकी वह मूर्ति—चरण तल भी सजीव ही लगते थे।

बड़े संकोचसे श्रीरामने दक्षिण चरण उठाया और उस मूर्तिके चरणोंका अंगुष्ठाग्रसे अत्यन्त सावधानीसे तनिक-सा स्पर्श करके झटपट चरण हटा लिया। साथ ही जैसे असीम ग्लानि हुई हो, कमल लोचन भर आये।

उस मूर्तिमें विद्युतगतिसे जीवन आया। वह उठे, सम्हले, इससे पूर्व तो श्रीरामने भूमिपर मस्तक रखा—'मातः ! यह इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम आपके श्रीचरणोंमें-प्रणत है।'

महर्षि विश्वामित्रने, साथके ऋषिगणने और गगनमें सुरोंने जय-जयकार किया। अहल्या तो अपलक देखती रह गयी कई क्षणों तक विनम्रताकी मूर्ति अपने पीताम्बर परिधान इन्दीवर दलाभिराम पद्म-पलाश लोचन उद्धारकर्ताको और जब चित्त कुछ स्वस्थ हुआ, अञ्जलि बाँधकर स्तुति करने लगी।

श्रीराम—संकोचीनाथ श्रीराम मस्तक झुकाये खड़े रहे। उन्हें इस संकोचसे परित्राण तो दिया महर्षि गौतमने। वे परिव्राजक अचानक उपस्थित होगये और जैसे कभी वियुक्त न हुए हों, इस प्रकार पत्नीसे बोले—'भद्रे'! विगतको विस्मृत कर दो! वर्तमानको सम्हालो! वर्तमानमें ये तुम्हारे भुवनाभिराम अतिथि सम्मुख हैं! इनका आतिथ्य करना है अभी।'

भोला केवट

आज भी नगरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें लोग परस्पर सहानुभूति अधिक रखते हैं और उनके सम्वाद शीघ्र फैलते हैं। निर्जन गौतमाश्रममें तुमुल जयध्वनि समीपके ग्रामोंके लिए कम कुतूहल वर्धक नहीं थी। उसीने सबका ध्यान आकृष्ट कर लिया।

'महर्षि गौतम अपने आश्रम आगये हैं।' शीघ्र समाचार फैला—'दीर्घकालसे पाषाणी बनी ऋषिपत्नी अहल्या श्रीदशरथ-नन्दन रामकी चरण-रजका स्पर्श होते ही मानवी होगयी हैं।'

'श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ महर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करके आये हैं। दोनों भाइयोंने असंख्य राक्षस खेल-खेलमें मार दिये हैं।' लोगोंमें श्रीराम-लक्ष्मणकी ही चर्चा चलने लगी।

महर्षि गौतमने पत्नीके साथ मुनि-मण्डलका और सानुज श्रीरामका आतिथ्य किया। उन्होंने अपना निश्चय प्रकट कर दिया कि वे पत्नीके साथ अब तपोलोकमें निवास करेंगे।

महर्षि गौतमका सत्कार स्वीकार करके वहाँसे विदा होनेमें पर्याप्त विलम्ब हुआ। अब थोड़ा ही आगे जाकर गङ्गा-पार करना था, क्योंकि रात्रि-विश्राम गङ्गा-पार जाकर विशाला नगरीमें करनेका विचार था।

निषाद-पल्लीका प्रमुख उपस्थित हुआ। उसने महर्षि विश्वामित्रके सम्मुख दूर पृथ्वीमें मस्तक रखा और अञ्जलि बाँधकर खड़ा होगया।

'हमें सुरसरि पार जाना है।' महर्षिने उससे कहा।

'भगवन् ! इस अधमका परम सौभाग्य कि आपके समान महर्षिकी सेवाका सौभाग्य मुझे मिला।' उस केवटने कहा—'कोई मल्लाह किसी तपस्वी ऋषि-मुनि अथवा ब्राह्मणको सरितापार करानेसे रात्रिमें भी कभी मना नहीं करता। शकट बड़ी नौकाओंपर चढ़ाये जारहे हैं और वृषभ तैरकर सुरसरि-पार कर लेंगे। उनके साथ मेरे स्वजन तैरते जायँगे।'

'किन्तु प्रभु !' वह हिचक कर चुप होगया।

'तुम्हें कुछ कहना है भद्र ?' महर्षि विश्वामित्रने पूछा।

'आपके साथमें दो राजकुमार हैं।' निषादने अञ्जलि बाँधे हुए ही कहा।

'इनको सुरसरि पार करानेका पारिश्रमिक तुम्हें मिलेगा।' महर्षिने उसे आश्वासन देना चाहा।

'मेरे स्वामी ! मैं इतनी धृष्टता नहीं कर सकता। आपके साथ कोई पूरी सेना भी हो तो मुझे पारिश्रमिक लेकर क्या नरकमें जाना है। मैं भले अधम जातिका हूँ, किन्तु जीवनको पवित्र करनेका ऐसा अवसर छोड़ दूँ, इतना बड़ा मूर्ख नहीं हूँ।' केवटने श्रीरामको अपलक देखते कहा—'मुझे क्षमा करें यह कहनेके लिए कि कोई भी किसी मूल्यपर अपने आजीविकाके साधनको ही नष्ट करना स्वीकार नहीं करता।'

'तुम्हारी आजीविकाके साधनके नष्ट होनेका क्या भय है ?' महर्षि विश्वामित्र तनिक चौंके !

'अभी सुना है कि इन सुन्दर श्याम कुमारने अपनी पदरजका स्पर्श देकर एक शिलाको मानवी बना दिया है।' केवटने भोलेपनसे पूछा—'मैंने सत्य नहीं सुना है प्रभु ?'

'भद्र ! सुना तो तुमने सत्य ही है।' महर्षि विश्वामित्रके समीप सब साथके ऋषि-मुनि आगये। सबको केवटकी बातमें कुछ विचित्रता लगी।

'मैं अविवेकी, अज्ञानी, अनपढ़ा साधारण निषाद हूँ।' उसने उसी प्रकार हाथ जोड़े हुए कहा—'मैं बहुत सोच-विचार तो कर नहीं सकता,

किन्तु इतना जानता हूँ कि पाषाणी शिलासे नौकाका काष्ठ कठोर नहीं होता। इनकी पद-रज स्पर्शसे यदि मेरी नौका भी कोई नारी बन जाय, मैं तो कहींका नहीं रहूँगा।'

लक्ष्मणने सहास्य अग्रजके मुखकी ओर देखा। ऋषियोंके अधरोंपर भी स्मित आगया। महर्षि विश्वामित्रने कहा—'लेकिन भद्र! हमें गङ्गा-पार तो करना है।'

'भगवन्! आप सबको पार ले जानेके लिए इस दासकी नौकाएँ घाटपर लगी हैं। आप तटपर पधारें। आप चाहें तो इन गौर कुमारको भी साथ लेलें;' किन्तु दृढ़ स्वरमें उसने कहा—'आप शाप देकर मेरे पूरे कुलको नष्ट कर दें या ये कुमार मेरा वध करें, मैं इन इन्दीवर सुन्दरको नौकापर नहीं बैठाऊँगा। आप आज्ञा दें तो मैं इन्हें अपने कन्धेपर बैठाकर अयोध्या पहुँचा आऊँगा।'

'तुम इन्हें कन्धेपर लेकर नौकापर बैठे रहो।' महर्षिने एक समाधान निकाला—'इनके चरणोंको नौकासे स्पर्श मत करने देना।'

'लेकिन चरण-रज झड़कर तो नौका पर गिर ही सकती है।' केवटको यह समाधान स्वीकार नहीं था।

'भद्र! तुम्हीं कोई मार्ग निकालो।' महर्षि विश्वामित्र जैसे तेजस्वी एक केवटसे अनुनयके स्वरमें बोल रहे थे—'हम इनको छोड़कर तो किसी प्रकार नहीं जासकते।'

'मैं समझता हूँ स्वामी! एक बार ये मिल जायँ तो कोई इन्हें अपने वशभर छोड़ना नहीं चाहेगा!' मल्लाहने क्षणभर सोचकर कहा—'ये अपना चरण मुझसे धुलवालें तो मैं इन्हें अङ्कमें लेकर नौकापर बैठा देसकता हूँ।'

'यह भी तो हो सकता है कि तुम किसी छोटे काष्ठ खण्डको इनके चरणतलके नीचे रखकर परीक्षा करलो!' अपेक्षाकृत एक तरुण तापसने कहा—'अथवा इनके अनुज इनका चरण-प्रक्षालन कर दें।'

'नहीं भगवन्!' निषादने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।' मार्गमें जाने कितने तृण और पाषाणोंपर इन्होंने पादक्षेप किया होगा, किन्तु एक ही शिला अब तक मानुषी हुई है। इसका अर्थ है कि इनकी चरण रजका प्रभाव कब, किस स्थितिमें, कितनी बड़ी वस्तुपर पड़ेगा, इसका कुछ

पता नहीं है। दूसरा कोई इनके चरण प्रक्षालित करेगा तो इतनी सावधानी रखेगा कि कोई रजकण कहीं लगा न रह जाय—इसपर मैं भरोसा नहीं कर सकता।'

'वत्स रामभद्र ! तुम इस महाभागको अपने पद-प्रक्षालनकी अनुमति दे दो !' महर्षिने गद्‌गद स्वरमें कहा—'बड़े कठिन तपके पश्चात् सम्पूर्ण त्रिलोकी और अपनेको भी अर्पित कर देनेके पश्चात् दैत्येन्द्र बलिको भगवान् वामनके पाद-प्रक्षालनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। किसीके भाव-शुद्ध अन्तरमें वैसो पावन श्रद्धा—उत्कण्ठा जाग उठे तो उसे वारित कैसे किया जा सकता है।'

'अच्छा भद्र ! तुम जल लाकर मेरे पद धोलो !' श्रीरामको अत्यन्त संकोचपूर्वक अनुमति देनी पड़ी। बड़ी अटपटी अनुमति—इतने ऋषि-मुनियों-की उपस्थितमें केवल एकके--वह भी जो अपनेको सब तपस्वियोंका अनुग्रह भाजन मानता हो उसके ही चरण धोये जानेकी अनुमति थी वह और उसे स्वयं यह अनुमति देनी पड़ी।

निषाद तो धन्य होगया। हर्ष-विह्वल लगभग नृत्य करता-सा दौड़ा गया। एक बड़े काष्ठ-पात्रमें जल ले आया तो उसके परिवारके स्त्री, बच्चे सब साथ आगये। उसके सब सम्बन्धी जन आगये। श्रीरामको एक उच्च भूमिपर बैठाकर उस पात्रके जलमें उनके दोनों चरण रख दिये उसने अत्यन्त कोमलतापूर्वक, बहुत ध्यानसे चरणतलकी एक एक रेखाएँ देखता हुआ चरण-प्रक्षालन करने लगा।

गगनसे देव दुन्दुभियोंका घोष होने लगा। कुसुम वर्षा होने लगी और अपने आप प्रायः सभी उपस्थित तपस्वियोंके मुखसे सस्वर पुरुषसूक्तके मन्त्र उच्चरित होने लगे; किन्तु उस निषादका कहीं अन्यत्र ध्यान नहीं था। उसके नेत्र श्रीरामके चरणोंपर टिके थे। उन्हीं चरणोंपर टिके थे निषाद कुलके उपस्थित नर-नारी और बाल वृद्ध सभीके नेत्र।

निषाद चरण धोता रहा—अत्यन्त सावधानीपूर्वक धोता रहा। देर तक धोता रहा। महर्षि विश्वामित्रके अनेक बार शीघ्रता करनेको कहनेपर जब उसने चरण-प्रक्षालन समाप्त किया, तब अपने ही उत्तरीयसे उन चरणोंको पोंछकर उस उत्तरीयपर ही रखता बोला—'आप कुछ क्षण इस

वस्त्रपर ही चरण रखे स्थिर बैठे रहें। अपने चरण उठाये तो मुझे इन्हें पुनः प्रक्षालित करना पड़ेगा।'

निषादने वह चरणोदक स्वयं पान किया। अपने स्वजनोंको दिया और तब चरणोदक पात्र पुत्रको देकर बोला—'अपने सबके घरोंमें इसे छिड़क दे। अब हमारी झोपड़ियाँ तीर्थ होजायँ। जो चाहें माँगे सबको दे आ इसे।'

इतना करके तब वह श्रीरामको अङ्कमें उठाकर नौकापर लेजाने लगा। उसका रोम-कण्टकित, तन स्वेद स्नात होरहा था। नेत्रोंसे अश्रुधारा चल रही थी। वह जैसे शीत कम्पित हो और उस मलिन वसन निषादके कण्ठमें भुजाएँ डालकर श्रीराम ऐसे उससे सटे थे जैसे कभी पिताके शरीरसे शैशवमें सट जाते थे।

निषादने सानुज श्रीरामको गङ्गापार किया। महर्षि विश्वामित्र जब उसी नौकासे प्रथम उतरकर पुलिनपर खड़े हुए, केवटने उनके सम्मुख दण्डवत प्रणिपात किया।

'भद्र !' महर्षिका स्नेह सिक्त स्वर गूँजा और उनकी आशीर्वाद देती भुजा फैल गयीं—'तुम जो चाहो माँग ले सकते हो।'

'जन्म जन्मके कङ्गालको आपके इन चरणोंकी कृपाने आज कुबेर बना दिया।' निषाद घुटनोंके बल हाथ जोड़े बैठा किसी प्रकार गद्गद् स्वर बोला—'मेरी सैकड़ों पीढ़ियोंको तार दिया प्रभुने। केवल यह प्रार्थना है कि यदि इधरसे लौटें तो इसी जनको सेवाका अवसर प्राप्त हो।

निषादको विदा करके सबने वहीं सायंकालीन स्नान-सन्ध्या किया। महर्षि विश्वामित्रके पधारनेका समाचार विशालापुरीमें पहिले पहुँच चुका था। पुरोहित एवं मन्त्रियोंके साथ वहाँके नरेश सुमति गङ्गा तट पर स्वागत करने आ पहुँचे। आग्रहपूर्वक रथोंमें बैठाकर वे इस पूरे समाजको नगरमें ले गये।

बड़े सौभाग्यसे गृहस्थको उत्तम अतिथिके सत्कारका अवसर प्राप्त होता है। राजा सुमतिको यह अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने पूरे उत्साहसे हार्दिक श्रद्धा एवं विनम्रतापूर्वक सबका आतिथ्य किया। वह रात्रि वहीं व्यतीत हुई।

राजा सुमति चाहते थे कि महर्षिगण एवं राजकुमारोंको रथोंके द्वारा जनकपुर भेज दें, किन्तु महर्षि विश्वामित्रने इसे स्वीकार नहीं किया। प्रातःकृत्य करके महर्षि विदा हुए। नगरसे पर्याप्त दूर तक नरेशने पहुँचाया।

मध्याह्नसे पूर्व ही यह समाज मिथिला पहुँच गया। नगरसे बाहर ही महर्षि विश्वामित्रने ऋषि आश्रमोंके पार्श्वमें जलकी सुविधा देखकर एक आम्रोद्यानमें शकट खड़े करनेका आदेश दिया। जनकपुरीके समीप शतशः मुनिगणोंके आश्रम थे। वे सभी महामुनि विश्वामित्रके आगमनका समाचार पाकर पुष्प-फलपाणि स्वागत करने आगये।

नगर दर्शन

अकस्मात् पहुँचे थे महर्षि विश्वामित्र मिथिलामें। ऋषि-मुनि किसीको पूर्व सूचना देकर कदाचित ही आते हैं। अपनी इच्छाके धनी इन आत्माराम आप्तकाम महापुरुषोंका पदार्पण मानवका सौभाग्य। लेकिन विश्वामित्रजी अनवसर नहीं आये थे। मिथिला-नरेश महायज्ञ कर रहे थे। वैसे भी उन परम तत्वज्ञ तथा उनके आचार्य याज्ञवल्क्यजीके सान्निध्यका प्रलोभन इतना बड़ा था कि मिथिलाका बहिर्भाग तपोधन, मुक्त एवं मुमुक्ष महात्माओंके आवाससे सदा पवित्र रहता था और इस समय तो यज्ञमें आमन्त्रित अनेक सुप्रसिद्ध ऋषि-मुनि आए हुए थे।

महर्षिने तपस्वियोंका यथाविधि सम्मान किया, साधु-साधकोंमें अधिक औपचारिकता नहीं होती। सब जानते थे कि एक विख्यात कुल-पति ऋषिको किसीके भी आश्रमकी अपेक्षा पृथक आवासमें सुविधा होती है। महर्षि विश्वामित्रके साथ जो शकट थे, मुनि-मण्डल था, वह इतना छोटा नहीं था कि किसी एकाकी तृण कुटीर वासीका अतिथि होसके। जनक-पुरीमें महाराज जनक अथवा महर्षि याज्ञवल्क्य ही आतिथ्य-समर्थ थे और महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज जनकके यज्ञमें आचार्य होकर उनके समीप थे।

जलका सुपास था। आम्रोपवनकी शीतल छाया थी और आस-पासके ऋषि-मुनियोंने कन्द, मूल, फलकी राशि अर्पित करदी थी प्रथम-सत्कारमें। महर्षि विश्वामित्र तथा उनके साथके तपस्वी इधर-उधर वृक्षोंकी छायामें सुविधानुसार बैठ गये। शकटोंसे खुले वृषभ तृण चरनेमें लग गये।

मध्याह्न स्नान, सन्ध्यादिके अनन्तर जब फलाहार करके महर्षि अल्प विश्राम कर चुके, श्रीराम सानुज समीप आकर बैठ गये। लक्ष्मणने अग्रजके मुखकी ओर देखा। उनके मनमें होरहा था—'जनकपुरीकी प्रशंसा है कि यह विवेकी लोगोंकी नगरी है। वीतराग, निस्पृह, केवल कर्तव्य पालनार्थ कर्म-तत्पर नागरिकोंका नगर कैसा होता होगा? इस नगरको एक दृष्टि देख तो आना चाहिए।'

अनुजकी साभिप्राय दृष्टिका तात्पर्य श्रीरामने समझ लिया। उन्होंने महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अञ्जलि बाँधली। इस शील, सौजन्य एवं शिष्टतापर मुग्ध महर्षि पुलकित बोले—'वत्स! बिना संकोच कहो कि क्या चाहते हो?'

'भगवन्! लक्ष्मण नगर-दर्शनको उत्सुक हैं।' श्रीरामने कहा—'अनुमति हो तो इन्हें ले जाऊँ। मैं शीघ्र इनको लेकर लौट आऊँगा।'

'तुम्हारे देखने योग्य है यह विदेहपुरी।' महर्षिने अनुमति दे दी। 'नगरके पुण्यात्मा नागरिकोंको तुम दोनों भाइयोंका दर्शन होना चाहिए। तुम जाओ। किसी प्रकार लौटनेमें त्वराकी आवश्यकता नहीं है।'

किसीको साथ भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी। कोई तपस्वी साथ होगा तो राजकुमारोंको संकोच होगा। अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंको किसी भी नगरमें न भटकनेका भय था न कोई सूचना आवश्यक थी। मिथिला तो निरापद शान्त नगरी थी।

पहिली ही दृष्टिमें मिथिलाने दोनों कुमारोंकी दृष्टिको आकृष्ट कर लिया। अयोध्याकी शोभाकी समता नहीं थी सृष्टिमें, किन्तु मिथिलाका आकर्षण भी कम नहीं था। अयोध्याके निर्माणमें, साज-सज्जामें जहाँ सौन्दर्य था, वहीं उस कलामें अपार वैभव एवं अजेय प्रभुत्वकी झलक सर्वत्र प्रकट थी; किन्तु मिथिलाका निर्माण, साज-सज्जा सर्वथा पृथक थी उससे। नगर सुसज्ज था किन्तु उस सज्जामें सौकुमार्य एवं सात्विकता

थी। उपमा ही देना हो तो कहना होगा कि अयोध्या साम्राज्ञी प्रतीत होती थीं और मिथिला स्वयम्वरोन्मुखी राजकन्या।

राजपथ, वीथियाँ, चतुरष्क, भवनद्वार सब सुसज्ज थे, किन्तु सर्वत्र वही सुकुमारता, वही सात्विकता। कहीं राजस-प्रदर्शनका एक बिन्दुतक नहीं था वहाँ। वैभव था—विराट् वैभव था, किन्तु रत्नखचित द्वारोंमें भी हंस, सरोज, कुसुम कलिकाएँ और देवकुमारियाँ अङ्कित थीं। केशरी तथा महावृषभ चित्राङ्कनमें भी स्थान नहीं पासके थे।

राजपथ तथा वीथियाँ, कौशेय पटोंके छाया-वितानोंसे, जो मुक्ता झालरोंसे सजे थे, अलंकृत थीं। पथपर सुकुमार सुमन एवं लाजाके चित्राङ्कन थे। द्वारोंपर, चतुरष्कोंपर मङ्गल कलश प्रदीप शोभित थे। सुरभि सिञ्चित थे पथ और गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था।

श्रीरामने सानुज नगरमें प्रवेश किया तो सर्वप्रथम बालकोंका समूह समीप दौड़ आया। यह समूह क्रमशः बढ़ता गया। बालकोंके लिए अपना पराया कहाँ होता है! उन्हें परिचय करते कितनी देर लगती है! कोई बालक दौड़ा आता था और श्रीराम या लक्ष्मणका कर पकड़कर कहने लगता था—'मेरा नाम जयध्वज है! मैं निमिवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरे पिता महाराजके कृपापात्र हैं। आप दोनों कहाँसे आये? क्या नाम है आप दोनोंका? कब आगये हमारे नगरमें? मैंने तो पहिले आपको नहीं देखा। आपके पिताश्री साथ आये हैं? कहाँ आवास लिया है आपने? मेरे भवन चलकर विराजें! मेरी माताजी बहुत प्रसन्न होंगी। मेरे पिताजी आप दोनोंका, आपके पिताश्री और सेवकोंका भी सत्कार करेंगे। आइये! मेरा भवन दूर नहीं है।'

'आयुष्मन्! आप दोनों धनुर्धर हैं, अतः क्षत्रिय लगते हैं!' कोई विप्रकुमार आजाते तो स्वयं अपना परिचय देते हुए अपने आश्रम चलनेका अनुरोध करते।

'आप दोनों राजकुमार हैं?' वैश्य बालकोंका आग्रह था—'आप अवश्य मेरे सदन पधारें। हमारे यहाँ अतिथिसे निष्क्रय नहीं लिया जाता। मेरे पिता आपको ऐसे अद्‌भुत रत्न एवं वस्त्र भेंट करेंगे कि आप दोनों प्रसन्न होंगे।'

देव-कुमारोंके समान सुन्दर, सुकुमार बालक। कोई पाटल गौर, कोई श्वेत, कोई स्वर्णपोत और कोई किञ्चित श्याम वर्ण। प्रलम्ववपु

अथवा कुछ खर्बकाय, कृश और स्थूल दोनों प्रकारके, किन्तु सुन्दर, स्वस्थ, सुप्रसन्न। सब रत्नाभरण भूषित, अङ्गराग एवं पुष्पमाल्य सज्जित, तिलकयुक्त भाल।

श्रीराम और लक्ष्मण विप्रकुमारोंको गोत्र एवं पिताका नाम लेकर ऐसे प्रणाम करते थे जैसे बालक न होकर वे कोई तरुण विप्र हों। अनेक राजकुमारोंको अङ्कमाल प्राप्त हुई। बहुतोंका कर एवं स्कन्ध स्पर्श करके उन्हें सत्कृत किया।

'मेरे भवन चलें! मेरा भवन तो देखलें!' बालक अपनी रुचिके अनुसार हाथ पकड़कर आग्रह करते थे। आप दोनों देवमन्दिरका दर्शन करेंगे? हमारे कुल देवताका मन्दिर है यहाँ।'

किसीको अपना पुष्पोद्यान दिखलाना था, किसीको फलोद्यान ओर किसीको अपना आपण। दोनों भाई नगर ही देखने तो आये थे। देव मन्दिरोंमें वे गये। किसीके भी भवनमें भीतर नहीं गये। नम्रतापूर्वक ही उन्होंने बालकोंको मना किया।

नागरिकोंमें मार्ग चलते लोगोंके पद रुकगये—'यह शोभा? कहाँसे पधारे थे?'

ब्राह्मणोंने आगे आकर आशीर्वाद दिया। स्वस्ति पाठ किया। अनेकोंने रथ, अश्व रोके—'आप दोनों कहाँ जायँगे? इसपर 'विराजें! हम पहुँचा देते हैं।'

'ये तो नगर देखने निकले हैं।' साथके पुरवासी बालक ही नाम, परिचय आदि उत्साह पूर्वक बतला रहे थे। श्रीरामको बहुत कम परिचय देना पड़ा।

'आप दोनों कुछ स्वीकार करनेका अनुग्रह करें!' वैश्य अञ्जलि बाँधे अपने पणकमें पधारनेकी प्रार्थना करते थे अथवा बहुमूल्य उपहार उठाये पथमें ही सम्मुख आजाते थे।

लोग भवनोंसे पथमें आगये। पथके दोनों ओरके भवनोंके गवाक्ष, छज्जे पुर-नारियोंसे भर उठे। वृद्धाएँ द्वारोंपर आखड़ी हुईं। भवनोंसे लाजा, दूर्वा, पुष्पके साथ केशरके सीकरोंकी वर्षा प्रारम्भ होगयी। जिधरसे निकल रहे थे, पथ एवं भवनोंपर-से भी आशीर्वादकी मङ्गल ध्वनि गूंजती चलती थी।

'महर्षि विश्वामित्रके साथ चक्रवर्ती महाराज दशरथके दो कुमार नगरमें आये हैं।' पूरे नगरमें चर्चा फैल गयी—'इन्दीवर सुन्दर श्रीराम और स्वर्ण गौर लक्ष्मण। मन्मथ इनके चरणोंमें बैठे तो बहुत कुरूप दीखेगा, इतना सौन्दर्य और ऐसे शीलसिन्धु कि दोनोंमें एकने भी तो किसी गवाक्षकी ओर दृष्टि नहीं उठायी।'

'दोनों कुमार बहुत विनयी हैं।' नागरिक नर-नारी परस्पर कह रहे थे—'महर्षिके साथ आये हैं, अतः कमलदलारुण चरणोंमें पद-त्राण तक नहीं। भला चक्रवर्ती सम्राटके कुमारोंको हमारे उपहार क्या आकर्षित करते; किन्तु गर्वका लेश तक नहीं। अत्यन्त विनयके साथ अस्वीकृति भी उनकी मिलती थी—'भद्र! हम अनुगृहीत हुए। अत्यन्त आकर्षक है आपका यह पदार्थ, किन्तु हमें क्षमा करें! हम महर्षिके साथ हैं और आप जानते हैं कि ऋषियोंको समीपस्थोंकी भी परिग्रह प्रवृत्ति अरुचिकर होती है।'

'आप सब अनुमति दें! अब विलम्ब होगा।' श्रीरामको बालकोंसे बार बार अनुरोध करना पड़ा—'सायं-सन्ध्यासे पर्याप्त पूर्व हमें महर्षिकी सेवामें उपस्थित होना चाहिए।'

'मेरा भवन भी देखलें।' बालकोंका अनुरोध टाला नहीं जा सकता था। उन्हें उनके पिता, माता अथवा गृहकी महिलाएँ भी प्रेरित कर रही थीं कि वे अपने इन नवीन मित्रोंको द्वार तक ले आवें तो इनके दर्शनका सुयोग प्राप्त हो।

'चक्रवर्ती महाराजके कुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ क्यों?' प्रश्न स्वाभाविक था। किसीने किसी बालकको पूछनेको प्रेरित किया। श्रीरामने बालकोंमें ही प्रश्नका उत्तर दिया और बालक अल्प विवरणसे तो मानते नहीं। वे पूछते ही गये—'कौन राक्षस थे महर्षिके यज्ञमें बाधा देनेवाले? कितने थे वे? उनका नायक कौन था? आपने सबको मार दिया?'

'महर्षि विश्वामित्र इन्हें अयोध्याके सम्राटसे अपने यज्ञकी रक्षा करनेके लिए माँग लाये।' श्रीरामके विवरणको जिन्होंने सुना, उनसे बात नगरमें फैल गयी—'दुर्दान्त दशग्रीवके अनुचर मारीच, सुबाहु, ताड़का और उनके साथके सहस्रशः राक्षसोंको दोनों भाइयोंने खेल-खेलमें मार दिया।'

ताड़का, सुबाहु, मारीच, बहुत परिचित नाम थे। अत्यन्त क्रूर, अजेय सुन चुके थे लोग इन राक्षसोंको और उन्हें इन परम सुकुमार कुमारोंने सरलतापूर्वक मार दिया ?

श्रीराम-लक्ष्मण जब नगरसे लौटे, नगरके बालक उनके साथ आम्रोपवनके समीप तक आकर तब लौटे। ऋषि-मुनियोंको देखकर संकोच-वश ही वे लौटे थे।

नगरमें दोनों अयोध्याके राजकुमारोंकी ही चर्चा थी और घरोंमें आज बालक प्रमुख होगये थे। वृद्धाएँ, वधुएँ, कुमारियाँ ही नहीं, पुरुष भी बालकोंको समीप बैठाकर बार बार अनेक प्रकारसे पूछ रहे थे दोनों कुमारोंके सम्बन्धमें और बालक इस प्रकार गर्वके साथ वर्णन कर रहे थे कि जैसे दोनों कुमार उनके अत्यन्त घनिष्ट मित्र हों और उनके सम्बन्धमें सब कुछ वे जानते ही हों।

महाराज जनकसे साक्षात्

विश्वामित्र जैसे महामुनिका आगमन सुनते ही महाराज जनक अपने आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्य, पुरोहित शतानन्दजी एवं अन्य ब्राह्मण तथा मन्त्रियोंको साथ लेकर स्वागत करने चल पड़े।

महाराजने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। याज्ञवल्क्यजीने अङ्कमाल दी। शतानन्दजीने पद वन्दना की। सब ययोचित रूपमें मिलकर जब बैठ गये, तब महाराजने कहा—'आपके आगमनसे पुरी पवित्र हुई। निमिकुल कृतार्थ हुआ और मेरा यज्ञ सफल होगया। अब श्रीचरण यदि बारह दिन विराजमान रहें तो अभिषवके दिन सभी देवता प्रकट होंगे। सबका दर्शन हो जायगा।'

'राजन्! देवताओंके दर्शन-मिलनमें मेरी कोई अधिक अभिरुचि नहीं है।' महर्षि विश्वामित्रने कहा—'मैं स्वर्गकाम नहीं हूँ और मोक्ष तो

अपना स्वरूप ही है; किन्तु मुझे शीघ्रता नहीं है। मेरे साथ आये ऋषिगण जैसा चाहेंगे, मैं वैसा कर लूँगा।'

अभी यह बातचीत आरम्भ ही हुई थी कि अनुजके साथ श्रीराम नगर-दर्शन करके लौट आये। दोनों भाइयोंको देखते ही महाराज जनक और उनके साथ आये लोग उठ खड़े हुए।

'वत्स! ज्ञानिओंके शिरोमणि महर्षि याज्ञवल्क्य और महर्षि गौतमके पुत्र ये शतानन्दजी तुम्हारे प्रणम्य हैं।' अपने पदोंमें प्रणत दोनों राजकुमारोंसे महर्षि विश्वामित्रजीने कहा—'महाराज सीरध्वज भी तुम्हारे प्रणतिपात्र हैं और विप्रगण भी।'

दोनों भाइयोंने सबको प्रणाम कर लिया, तब महाराज जनकने महर्षि विश्वामित्रसे पूछा—'ये तेज, रूप एवं शीलके साक्षात् स्वरूप दोनों भाई मुनि-तनय नहीं लगते हैं?'

'राजन्! अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ तनय श्रीराम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण मेरी याचनापर पिताकी आज्ञासे मेरे साथ मेरे यज्ञकी रक्षा करने आये थे।' महर्षिने परिचय देते हुए कहा—'आप जानते हैं कि दशग्रीवकी अनुचरी ताड़का अपने पुत्र सुबाहु एवं मारीचको साथ लेकर सिद्धाश्रमके समीप काननमें राक्षसोंकी भारी सेना लिये जमी थी और उसने भगवान् वामनकी तपस्थलीमें हम सबके लिए कोई यज्ञानुष्ठान असम्भव कर दिया था। दोनों भाइयोंकी शराग्निमें वे सब स्वाहा होगये। इन कुमारोंने सिद्धाश्रमको सर्वथा निरापद बना दिया है।'

ताड़का, मारीच और सुबाहुके उत्पातसे, उनकी शक्तिसे महाराज जनक अपरिचित नहीं थे। वे और उनके साथ आये ऋषि-मुनि तथा मन्त्री चकित देखते रह गये दोनों भाइयोंकी ओर—'इन परम सुकुमारोंने इतने विकट राक्षस मार दिये? इनके अङ्गोंपर तो कोई चिह्न नहीं कि इन्होंने कोई संग्राम कभी किया हो। अभी इनकी कङ्कण भूषित कलाइयोंपर धनुषको ज्यासज्ज करनेके चिह्नतक तो पूरे बने नहीं।

'आपके समीप भगवान् पुरारिका धनुष है, यह सुनकर ये दोनों भाई उसे देखने मेरे साथ यहाँ आगये हैं।' महर्षिने अत्यन्त संक्षिप्त परिचय देते कहा—'कल गौतमाश्रममें महाभागा अहल्या एवं महर्षि गौतमका इन्होंने अर्घ्य स्वीकार किया और रात्रि हम सबने विशालापुरीमें व्यतीत की।'

'मेरी तपस्विनी माताने अर्घ्य दिया इन्हें ?' शतानन्दजी बोल उठे—'मेरे परमपूजनीय पिताजी आश्रमपर आगये और मेरी माता शापमुक्ता... ।'

'आप आश्चर्य क्यों करते हैं ?' ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सस्मित बोले—'महर्षि गौतम सप्तर्षियोंमें होनेके कारण मेरे सखा हैं। आपकी माताको शाप देकर उन्हें जिस प्रकार शाप-निर्मुक्ता होनेका उन्होंने विधान किया था, उससे आप अपरिचित तो नहीं हैं। मैं वत्स रामभद्रको मिथिला ले ही इसलिए आया कि मार्गमें गौतमाश्रम पड़ता था।'

शतानन्दजीने साष्टाङ्ग भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया। वे हर्ष एवं श्रद्धाके आवेगमें बोल नहीं पारहे थे। विश्वामित्रजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया तो अश्रु-वर्षण करते गद्गद कण्ठ बोले—'भगवन् ! आपने मेरी माताको परित्राण दिलाकर मेरे हृदयका भारी भार दूर किया। मैं अत्यन्त उपकृत हुआ।'

'मैंने कोई उपकार नहीं किया—किसीपर नहीं।' महर्षि विश्वामित्र-ने शतानन्दजीको समीप बैठाकर कहा—'मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है।'

'वत्स रामभद्र ! जिन परात्पर पुरुषकी पद-रजसे मेरी माता शाप-विमुक्ता हुई, उसकी स्तुति करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ।' शतानन्दजीने तनिक स्वस्थ होकर कहा—'तुम दोनों भाई सामान्य राजकुमार होते तो भी धन्य थे जिन्हें ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जैसा संरक्षण प्राप्त हुआ।'

शतानन्दजीने लक्षित कर लिया था कि श्रीराम आरम्भसे अपनी प्रशंसाके कारण अत्यन्त संकुचित होरहे हैं और मस्तक झुकाये बैठे हैं। अतः उन्होंने महर्षि विश्वामित्रजीका परिचय देना प्रारम्भ किया। 'महाराज कुशके पुत्र कुशनाभ और उनके विख्यात पराक्रमी पुत्र हुए महाराज गाधि।' यहाँसे प्रारम्भ करके शतानन्दजीने विश्वामित्रजीके जन्म, तप तथा ब्रह्मर्षि पद-की प्राप्ति तकका पूरा चरित विस्तारपूर्वक सुनाया। श्रीराम लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न होकर यह चरित सुनते रहे।

'भगवन् ! चक्रवर्ती महाराज दशरथ मेरे सम्मान्य है। उनके कुमार मिथिला पधारें और आम्रोपवनमें वृक्षोंके नीचे रहें, यह मेरे लिए, राज्यके लिए लज्जाजनक होगा।' महाराज जनकने प्रार्थना की—'जानता हूँ कि आपको नगरमें असुविधा होगी, किन्तु मुझपर कृपा करके मुनिगणों-

के साथ नगरमें पधारें और मुझे अपने तथा चक्रवर्तीजीके इन कुमारोंका आतिथ्य करनेका सौभाग्य-भाजन बनावें।'

महाराजने नगरसे स्वागतके लिए चलते समय ही यह प्रार्थना करनेका निश्चय कर लिया था। राजभवनके समीप ही एक पूरा भवन व्यवस्थित करनेकी आज्ञा दे आये थे; किन्तु उस समय आशा नहीं थी कि यह प्रार्थना स्वीकार होगी। अब चक्रवर्ती नरेशके कुमारोंका परिचय पाकर तो यह अनिवार्य होगया था।

महर्षिने यह प्रार्थना स्वीकार करली, क्योंकि इसका औचित्य स्वतः सिद्ध था। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। महर्षिने शकटोंको चलानेकी आज्ञा दे दी।

नगरके आवास भवनमें राज-सेवकोंने बहुत शीघ्र राजकुमारोंके उपयुक्त व्यवस्था करदी। महाराजने साथ आकर महर्षि तथा साथके तपस्वियोंकी व्यवस्था स्वयं करायी। शकटके वृषभोंके लिए तृण-अन्नका प्रबन्ध कराया।

सायंकालीन स्नान-सन्ध्याका समय होचुका था, अतः महाराज जनकने विश्वामित्रजीको प्रणाम करके अनुमति ली। महाराजके साथ आये सभीको सन्ध्यादि तो करना ही था।

महाराज राजसदन लौटे तो नगरमें अहल्योद्धारका वृत्त भी प्रचारित होगया। श्रीराम-लक्ष्मणके अतुलनीय सौन्दर्य, राक्षस-संहारके अमित शौर्यके साथ इस अतर्क्य प्रभावकी गाथाने नर-नारी सबको चमत्कृत कर दिया। जनकपुरमें वह रात्रि सबके लिए जागरण-रात्रि बन गयी। अन्तःपुरोंमें, गोष्ठियोंमें, सभास्थलोंमें लोग रात्रिभर बैठे रह गये अयोध्याके राजकुमारोंकी चर्चामें मग्न। किसीको यह पता नहीं लगा कि क्षणदा कैसे क्षणके समान व्यतीत होगयी।

गुरु-सेवा

श्रीराम और लक्ष्मणने जबसे अयोध्यासे प्रस्थान किया, एक नियम बन गया है दोनों भाइयोंका। महर्षि विश्वामित्रकी सेवाको इन्होंने अपना दैनिक कार्य बना लिया। महर्षिके लिए, जल, कुश, समिधा, पुष्प और फल लाने थे प्रतिदिन। दोनों भाई सावधान थे इस सेवाके प्रति। यात्रामें भी वे कहीं रुकते ही देख लेते थे कि दूसरे दिन कुश पुष्पादि कहाँ उपलब्ध होंगे।

महर्षिके साथ जो तपस्वी थे वे नहीं चाहते थे कि ये राजकुमार कोई श्रम करें। महर्षिकी सेवा तो वे सदा करते ही रहते थे, किन्तु राजकुमारोंका आग्रह टाला भी नहीं जा सकता था। तपस्वियोंने महर्षिसे ही कहा—'ये सुकुमार राजकुमार कुश लाने अथवा वृक्षारोहण करके समिधा एकत्र करने योग्य नहीं हैं, ये जल आनयन और स्थानोपलेपनका भी आग्रह करते हैं।'

'वत्स ! तुम दोनों भाइयोंको हमारी मनःस्थितिका भी ध्यान रखना चाहिए।' महर्षि विश्वामित्रने स्नेहोपालम्भ दिया—'हमारे हृदय इस सम्भावनाको भी नहीं सह सकते कि तुम्हारे पंकज कर अथवा चरण कुशोंका स्पर्श करें। वृक्षारोहणका आग्रह मत करना। जलानयन, स्थानोपलेपनकी सेवा जिनका स्वत्व है, राजकुमारको उन्हें स्वत्वसे वञ्चित नहीं करना चाहिए।'

कठिनाईसे महर्षिने स्वीकार किया कि दोनों कुमार उनके लिए कुसुम ला दिया करेंगे देवार्चन करनेके लिए। इसके अतिरिक्त दोनों भाई रात्रि-शयनसे पूर्व महर्षिका पाद-संवाहन करने आजाते थे। महर्षि इसे किसी भी प्रकार रोक नहीं पाते थे।

सिद्धाश्रममें ही एक प्रेम-विवाद होगया था। दोनों भाई एक अत्यन्त वृद्ध तपस्वीके समीप उनका पादसंवाहन करने पहुँचे तो वे उठकर बैठ गये। उन्होंने स्नेहपूर्वक किन्तु दृढ़ स्वरमें कह दिया—'वत्स ! हम वनोंमें सेवा लेने नहीं, सेवा करने आये हैं। मैं अपनी और सभीकी बात कहता हूँ। तुम

दोनों भाइयोंमें-से कोई पादसंवाहनका आग्रह करेगा तो निद्रा त्यागकर सम्पूर्ण रात्रि ध्यानस्थ बैठे रहना हमारे लिए कठिन नहीं है। तुम दोनों भाइयोंको अपनी सेवा महर्षि तक ही सीमित रखनी चाहिए। अन्यथा तपस्वियोंको कष्ट होगा और सम्भव है वे आश्रम त्यागकर अन्यत्र चले जाना श्रेयस्कर मानें।

'भगवन् ! हमें क्षमा करें।' श्रीरामने उसी दिन क्षमा माँगली। 'हम ऐसी धृष्टता पुनः नहीं करेंगे।'

दूसरे तपस्वियोंको इससे सन्तोष हुआ, किन्तु महर्षि कैसे निषेध कर सकते थे। मनमें चाहे जितना संकोच हो, उन्हें इनकी सेवा स्वीकार करनी थी।

जनकपुरमें महाराज जनकने सावधान चतुर सेवक नियुक्त कर दिये थे, किन्तु दोनों भाइयोंने सायंकाल भवनमें पहुँचते ही पूछा था— 'पुष्पोद्यान कहाँ है ?'

'हम अर्चाके उपयुक्त पुष्प सेवामें उपस्थित कर देंगे।' सेवक प्रार्थना ही कर सकते थे, किन्तु वे भी जानते थे कि आराध्य एवं गुरुकी अर्चाके उपकरण श्रेष्ठ पुरुष स्वयं प्रस्तुत करते हैं। राजकुमारोंका आग्रह उचित था। उन्हें राजभवनके अन्तःपुरसे लगा पुष्पोद्यान सेवकोंने सायंकाल दिखला दिया।

रात्रि-विश्रामसे पूर्व दोनों भाई महर्षिका पादसंवाहन करने पहुँच गये। महर्षि प्रायः अब शीघ्र शयनके आसनपर चले जाते हैं, क्योंकि इन राजकुमारोंको विश्राम मिलना चाहिए और ये तो बार बार आग्रह करने-पर भी उठते नहीं। महर्षि बार बार कहते हैं—'वत्स रामभद्र ! अब विश्राम करो।'

श्रीराम जैसे सुनते ही न हों। जिनके श्रीचरण जन्म-जन्मकी साधना-के पश्चात भी कदाचित् किसीके अन्तरमें क्षणार्धको आते हैं, वे महर्षिका पादसंवाहन करनेमें तन्मय, नीरव, ऐसे लगते हैं जैसे सबसे महत्वपूर्ण संसार-का यही कार्य हो।

श्रीराम और लक्ष्मणके कर कञ्जका स्पर्श—महर्षिको बार बार रोमोद्गम होता है। कठिनाईसे कम्पको अवरुद्ध रखना पड़ता है। महर्षि कहते हैं—'वत्स ! तुम दोनों भाई उठोगे नहीं तो मुझे निद्रा कैसे आवेगी ? तुम अब उठो !'

महर्षिके चरणोंपर अत्यन्त सुकुमारताके साथ मस्तक रखकर दोनों भाई उठते हैं। श्रीरामके आसनपर विश्राम करते ही लक्ष्मण अग्रजका पाद संवाहन करने आ बैठते हैं। बहुत अनुरोध करके श्रीराम अनुजको विश्रामके लिए भेज पाते हैं।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें अरुणचूड़के प्रथम शब्दपर लक्ष्मणको उठ बैठना है। महर्षि जानबूझकर नेत्र बन्द किये लेटे रहते हैं, जिससे श्रीरामको त्वरा न करनी पड़े, क्योंकि श्रीराम महर्षिके उत्थानसे पूर्व नित्य शौचादिसे निवृत्त होजाना चाहते हैं।

यह गुरुसेवाका कर्म तो नित्यकर्म बन गया है। यह तो चल रहा है—चलते ही रहना है।

शुकीका शाप

आज पता नहीं क्या होगया है महाराज जनककी भूमिजा कन्याको। वे समझ नहीं पाती हैं कि उनके हृदयकी ऐसी दशा क्यों होगयी है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। अयोध्या नरेशके राजकुमार आये हैं नगरमें, यह जबसे सुना है, पता नहीं क्या होरहा है हृदयके भीतर। कहीं बैठा नहीं जाता। सखियोंके, छोटी बहिनके समीप जाते भी लज्जा आती है और अकेले भी नहीं रहा जाता। उन्हीं राजकुमारोंकी चर्चा सुनते रहनेको मन मचल रहा है, किन्तु उनकी चर्चा कोई करता है तो वहाँ बैठा नहीं जा पाता। ऐसे छिपकर किसीकी चर्चा श्रवणका तो स्वभाव नहीं था?

आज कोई नवीन राजकुमार आये हैं मिथिलामें? पिताने जबसे पिनाक भङ्ग करनेवालेसे पुत्रीके विवाहकी घोषणा की, प्रतिदिन ही तो राजकुमार, राजा यहाँ आते रहे हैं। अयोध्याके राजकुमार अतिशय सुन्दर हैं, असंख्य राक्षस मार दिये इन्होंने, किन्तु सखियाँ तो बहुत बार

आगत राजकुमारोंके सौन्दर्य, गुण, पराक्रमका वर्णन करती रही हैं। किसीका सुनकर तो ऐसी लज्जा, ऐसी श्रवणोत्कण्ठा, ऐसी विकलता नहीं हुई और ये धनुष भङ्ग करने आये हैं, ऐसा भी कुछ नहीं सुना।

अब जो आते थे उनका वर्णन सुनकर दया आती थी उनपर। किसी राजपुत्र, राजाका नाम आनेपर स्नेह भी उमड़ता था—वैसा स्नेह जैसा छोटी बहिन उर्मिलापर उमड़ता है। लगता था कि बेचारा व्यर्थ पराजित होकर, विफल होकर खिन्नमुख लौटेगा। राजकुलकी मर्यादा न होती तो वात्सल्यपूर्वक उसे पुचकार देनेको दौड़ जाया जा सकता था। किसीकी भी चर्चा सुनकर संकोच तो नहीं हुआ था। सखियोंके मध्य, बहिनके साथ चर्चा आनेपर केवल सस्मित, सदय मुखसे निकला था—. 'बेचारा!'

आज क्या होगया है हृदयको? उन राजकुमारोंमें छोटे लक्ष्मण हैं—कितना सुन्दर नाम है। इस नामको सुनकर अपार स्नेह उमड़ता है, किन्तु बड़े प्रयत्न करनेपर भी उनका नाम लिया नहीं जा पाता और जबसे वह नाम सुना, हृदय तो जैसे उसी नामका जप करने लगा है। कोई मन्त्र सिद्ध हैं वे? अपने कुलपुरोहित महर्षि शतानन्दकी पाषाणीभूता माताको चरण-रज देकर जीवन दे दिया उन्होंने, कितने सदय, किन्तु··· —······उनके नाममें ऐसा क्या है कि सुनते ही जैसे हृदय उसीका हो बैठा है।

वे यहाँ महर्षि विश्वामित्रजीके साथ धनुष देखने आये हैं—मात्र देखने? उन्होंने ऋषि-पत्नीका पाषाणत्व पदरजसे भङ्ग कर दिया, इस धनुषकी जड़ता भङ्ग नहीं करेंगे? यदि कर ही दें?

मनकी दशा, मनकी गति अत्यन्त विचित्र है। कब किस तनिकसे सम्बन्धको लेकर मन कहाँ जा पहुँचेगा, कुछ ठिकाना नहीं। कब किस नन्हें-से निमित्तको लेकर कौनसी स्मृति जाग उठेगी, कोई कह नहीं सकता। श्रीधरानन्दिनीके हृदयमें एक सम्भावना उठी कि अयोध्यासे आये राजकुमारोंमें बड़े पिनाक भङ्ग भी कर दे सकते हैं और हृदयमें सहसा शुकीका शाप स्मरण हो आया। शुकी ऐसी प्रकट हुई जैसे आजकी ही घटना हो वह।

अत्यल्पवय बालिका थीं श्रीधरानन्दिनी। अकस्मात् राजप्राङ्गणमें एक शुकी आ बैठी। बड़ी सुन्दर, बहुत मृदुभाषिणी। वह निर्भय राज-

नन्दिनीके समीप आगयी। उसीने कहा—'राजनन्दिनी! मैं भूखी हूँ। मुझे आप कुछ खिलाओगी नहीं?'

'तू दाडिम खायेगी या द्राक्षा?' राजनन्दिनी प्रसन्न होगयीं।

'दोनों।' शुकीने भी प्रसन्न होकर कहा।

'बड़ी अच्छी है यह।' राजनन्दिनी सुकुमार पदोंसे दौड़ गयीं। एक सुपक्व दाडिम और नन्हीं मुट्ठीभर द्राक्षा शुकीके सम्मुख रखकर फिर लाने दौड़नेवाली थीं, किन्तु शुकीने मना किया—'धन्यवाद राजनन्दिनी! मैं इतना भी नहीं खा सकूँगी।'

'कितना सुन्दर बोलती है। मैं इसे पाल लूँ तो?' राजनन्दिनीके मनमें आया। उन्होंने देखा कि शुकी दाडिम फोड़नेमें लग गयी है। दबे पैर पीछेसे जाकर उसे पकड़ लिया और स्वर्ण-पिंजरेमें डाल दिया।

'राजनन्दिनी! मुझे बन्दी मत बनाओ!' शुकीने अनुनयपूर्वक कहा—'मैं प्रतिदिन तुम्हारे समीप आऊँगी। मुझे छोड़ दो।'

'नहीं। तुझे छोडूँगी नहीं। तुझे अपने समीप ही रखूँगी।' राजनन्दिनी बालिका थीं। अपनी सफलतापर अत्यन्त प्रसन्न थीं—'तुझे द्राक्षा और दाडिम बहुत-सा दूँगी।'

'राजनन्दिनी! मुझे छोड़ दो।' शुकी चिल्लाने लगी—'मुझे द्राक्षा या दाडिम नहीं चाहिए। मैं बन्दी नहीं रहूँगी। मुझे छोड़ दो।'

'तुझे नहीं छोडूँगी। अपने समीप रखूँगी।' राजनन्दिनी अपने बाल हठपर थीं—'तू छोटी-सी तो है। कितना बड़ा पिंजरा मिला है तुझे।'

पक्षियोंका रूप और स्वर ही उनके लिए बन्धनका कारण बनता है। सृष्टिकर्ता सौन्दर्य एवं स्वर देकर उन्हें दुःखका हेतु बना देता है। बेचारी शुकी पुकारती रही—'राजनन्दिनी! मेरा शुक मेरी प्रतीक्षा करेगा। मुझे छोड़ दो। मैं यहाँ मर जाऊँगी।'

'तुझे नहीं छोडूँगी।' राजनन्दिनी हठपर अड़ी रहीं। वे पिंजरेमें द्राक्षा, दाडिमके दाने डाल रही थीं, किन्तु शुकीने उनकी ओर देखा तक नहीं। वह फड़फड़ाती रही, छटपटाती रही, पुकारती रही।

'राजनन्दिनी! मैं अण्डे देनेवाली हूँ, मुझे छोड़ दो।' शुकीने अनुनय की। 'अपने शुकके समीप मैं अण्डे दूँगी। यहाँ मैं जीवित नहीं रहूँगी।'

'मैं तेरे अण्डे देखूंगी।' राजनन्दिनीको नवीन कौतुक मिला। वे पिंजरेमें रुई डालने लगीं--'इनपर अपने अण्डे रख।'

'राजनन्दिनी! तुमने मुझे मेरे शुकसे वियुक्त किया है।' निराश शुकीने शाप दिया—'तुम्हें भी पतिसे तब वियुक्त होना पड़ेगा जब तुम अन्तर्वत्नी होगी और वियुक्त स्थितिमें ही इस धराका त्याग करोगी।'

शुकी पिंजरोंकी स्वर्ण शलाकाओंपर सिर पटकने लगी। राजनन्दिनी भागी माताके समीप—'माँ! शुकीको तुम रोक दो!'

राजमहिषी सुनयना वहाँ पहुँचीं तो शुकी पिंजरेमें गिरी पड़ी थी। उसकी ग्रीवा ढुलक गयी थी। राजनन्दिनीने पूछा—'माँ! इसे क्या हो गया?'

'यह मर गयी वत्से!' माता सुनयनाने पिंजरा खोला।

'हाय!' राजनन्दिनीने मृत शुकीका शरीर उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनके बड़े बड़े लोचनोंसे अश्रुधारा फूट निकली। बड़ी कठिनाई-से शुकीका मृत देह उनके करोंसे लिया जा सका। उस दिन राजनन्दिनीने जल भी ग्रहण नहीं किया। रुदनका वेग तनिक घटते ही वे उठीं और राज-सदनमें पाले सभी पक्षियोंके पिंजरोंका द्वार उन्होंने उन्मुक्त कर दिया।

यह दूसरी बात है कि राजसदनमें पले पक्षियोंमें एक भी उड़कर कहीं गया नहीं। पिंजरेसे निकलकर वे राजनन्दिनीके समीप ही घूमते रहते थे और स्वयं पिंजरेमें जा बैठते थे। लेकिन राजनन्दिनीने उस दिनसे किसी पक्षीको बन्दी नहीं बनाया। वे सेविकाओं द्वारा रात्रिमें बन्द किये गये पिंजरोंका द्वार भी प्रातः खोल दिया करती थीं। पिंजरोंके खुले द्वारोंको पाकर अनेक सुन्दर पक्षी स्वयं उनमें बस गये थे।

आज अकस्मात् मनने कोई सूत्र पकड़कर वह स्मृति जागृत करदी थी। लगता था कि शुकी अब भी पुकार रही है—'राजनन्दिनी! मुझे छोड़ दो!'

शुकीके शापका वह स्वर गूँज रहा है श्रवणोंमें--'तुमने मुझे मेरे शुकसे वियुक्ता किया है राजनन्दिनी! तुम भी पति वियुक्ता होगी।'

राजनन्दिनीके विशाल दृगोंसे अश्रु आज भी झरने लगे हैं। वे शय्या-पर गिरकर हिचकियाँ लेने लगी हैं। शुकीके स्वर—'मेरे शुक'—किन्तु राजनन्दिनीका हृदय पूछता है--'मेरे शुक कहाँ? कौन? क्या ये अयोध्यासे जो आये?'

प्रथम दर्शन

अनेक चिन्ताओंमें महारानी सुनयनाकी रात्रि व्यतीत हुई थी। उनकी प्राणाधिका पुत्रीने कल आहार ही ग्रहण नहीं किया। वह रुदन करते हुए ही सो गयी। कितनी पुरानी घटना—किन्तु इतनी भोली है सीता कि स्मरण आते ही 'हाय शुकी !' कहकर हिचकियाँ ले रही थी माताका कण्ठ पकड़कर। अब उसे दूसरी ओर मन लगे, ऐसा कुछ करना चाहिए।

महारानी जानती हैं कि उनकी कन्याको सबसे अधिक क्या प्रिय है। वह तो शैशवसे आराधनामयी है। अतः महारानीने सबेरे उठते ही सीताकी सखियोंको समझा दिया। पुत्रीको प्रातःकाल आदेश दिया—'आज तुम पुष्पोद्यानमें भगवतीका पूजन कर आओ अपनी सखियोंको साथ लेकर।'

गिरिजा-पूजन कुमारी कन्याको सौभाग्य प्रदान करता है। भगवती गिरिराज-नन्दिनीका पूजन बालिकाएँ भली प्रकार श्रृंगार करके करती हैं। अतः सखियोंने अपना श्रृंगार किया और राजकुमारियोंका भी भरपूर श्रृंगार किया। षोडश श्रृंगार, बत्तीस आभरण सचमुच सार्थक हुए। करोंमें नाना प्रकारके पूजन द्रव्य स्वर्ण पात्रोंमें लेकर दोनों राजकुमारियोंको मध्यमें करके सखियाँ कलकण्ठसे देवीका यशोगान करती अन्तःपुरके उद्यानमें गिरिजा-पूजन करने सूर्योदयके किञ्चित् पश्चात् ही पहुँचीं।

बड़ी श्रद्धासे भवानीका पूजन हुआ। गन्ध, धूप, दीप, कुंकुम, पुष्प, माल्य, सिन्दूर, कण्ठ सूत्रादि और मधुर, लवणादि युक्त नाना प्रकारके नैवेद्य। पूजनके क्रममें ही देवीको सिन्दूर अर्पित करते समय हृदयने कहा—'माँ ! मुझे अनुरूप ही सिन्दूर देनेवाला वर देना।'

पूजन समाप्त हुआ। नीराजन, प्रार्थना करके मन्दिरसे निकलते ही सखियोंका कलकण्ठ गूंजने लगा। इतनेमें पुष्पोद्यानकी ओरसे एक सखी लगभग भागती आयी। उर्मिलाने ही पूछा—'तू कहाँ चली गयी थी ?'

'चली गयी थी उद्यानमें कि कोई सुरंग सुमन मिल जाय तो अपने करोंसे आप दोनों राजकुमारियोंके केशोंमें लगाऊँगी।' बड़ी कठिनाईसे उसने कहा। उसके नेत्रोंसे हर्षाश्रुके विन्दु टपक रहे थे। शरीरमें रोमाञ्च होरहा था। शब्द स्पष्ट नहीं होरहे थे।

'तुझे शीत लग रहा है? क्यों बार बार काँपती है?' हँसकर एक सखीने पूछा—'पुष्प तो ले नहीं आयी, अश्रु क्यों ढुलका रही है?'

'नगरमें कल सायं जिनकी चर्चा थी वे अयोध्याके श्याम गौर राजकुमार आये हैं वाटिकामें।' उसने सीतासे लगभग सटकर कहा—'सुमन-चयन करने आये हैं। इतना सौन्दर्य तो सुना भी नहीं कभी राजनन्दिनी! आप उन्हें देखोगी?'

'हमारी वाटिकामें आये हैं तो दूरसे देखलेनेमें दोष नहीं है। तू आगे चल।' राजनन्दिनी चलीं तो सखियोंको साथ चलना था।

प्रातःकाल स्नान-सन्ध्या करके, सूर्यको अर्घ्य देनेके पश्चात् सानुज श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके पूजनके लिए पुष्प चयन करने राजकीय उद्यानमें आगये थे। दोनों भाई उद्यानमें क्या आये, मानो साक्षात् वसन्त आगया। शरदोत्फुल्ल मल्लिका, झूमते प्रफुल्ल पाटल, गन्धराज, यूथिका, स्वर्ण यूथिका—सुन्दर, सुकुमार, सुरंग सुमनोंकी सुरभि उमड़ी पड़ती थी। अनेक प्रकारके रंगोंके पक्षी कूज रहे थे। भ्रमरावली गुञ्जार कर रही थी।

उद्यानके समीपका सर नाना रंगके पद्मोंसे सुशोभित था। मानो वही पद्माका निवास हो। दोनों भाइयोंने इधर उधर देखा। उद्यान-पालक मालीके समीप जाकर श्रीरामने नम्रतापूर्वक कहा—'भद्र! अनुमति दो तो हम दोनों महर्षि विश्वामित्रकी अर्चनाके लिए थोड़ेसे सुमन तथा तुलसीदल, दूर्वांकुर चुन लें। हम किसी वीरुधको श्रीहीन नहीं करेंगे। एक गुल्मसे एक दो पुष्प ही लेंगे। वैसे भी यूथिका, मल्लिका सुमन बहुत अधिक हैं और वे दिनमें झर जानेवाले हैं।'

'राजकुमार! प्रातःकाल है। ओससे तृण आर्द्र हैं।' मालीने कहा—'आप दोनोंके चरण पाटलदल सुकुमार हैं। मैं यथेष्ट पुष्प ला देता हूँ।'

'भद्र! गुरुदेवकी अर्चाके लिए हमें स्वयं सुमन-चयन करना चाहिए।' श्रीरामने माली का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

'तब आप यथेच्छ पुष्प चयन कर लो !' मालीने कहा—'किन्तु कुमार ! सरोवरमें मत उतरना। तटसे पद्मपुष्प न मिलें तो यह सेवा मैं करूँगा। कमल नाल कण्टकयुक्त होते हैं और पाटल-पादपोंमें भी कण्टक हैं।'

मालीने दो बड़े पत्र तोड़कर दोने बना दिये इतनी देरमें और दोनों कुमारोंको दे दिये। प्रारम्भमें ही मयूरपिच्छ दीख गये वृक्षके नीचे पड़े। लक्ष्मणने तीन पिच्छ उठाकर उनके डण्ठल तोड़ दिये और पिच्छ अग्रजकी अलकोंमें लगा दिये। बड़े भाईने भी छोटे भाईका इसी प्रकार श्रृंगार कर दिया।

मस्तकपर, भाल एवं आननपर भी बिखरी किञ्चित् आर्द्र अलकें, उनमें लगे मयूर पिच्छ, कर्णोंमें रत्न कुण्डल, विशाल भालपर तिलक, पद्मदल विशाल अरुणाभ लोचन, विद्रुमनिन्दक अधर, कम्बुकण्ठमें मौक्तिक माला, पीतपट, कटिमें नील-पीत कौशेय धोती लाल मुक्ता खचित कछनीसे कसी, वे वृषभ स्कन्ध, विशाल वक्ष, भुज, क्षीणकटि गौरश्याम कुमार सिंह शावकोंके समान पुष्पोद्यानमें वाम करोंमें पत्र-पुटक लिये लता कुञ्जोंसे कुसुम चयन कर रहे थे।

अचानक कङ्कण, किंकिणी, नूपुरोंकी मधुर गुञ्जार समीपसे सुनायी पड़ी तो नेत्र उठ गये। नेत्र उठे और उठे रह गये। ऐसी रूप राशि ? सौन्दर्यकी साक्षात् अधिदेवता भी इतनी सुन्दर कदाचित् ही हो। मानो अंगकान्तिसे दिशाएँ आलोकित होरही हैं।

'लक्ष्मण !' श्रीरामने अपनेको सम्हालकर अनुजकी ओर देखा—'अवश्य ये वह महाराज विदेहकी भूमिजा तनया हैं, जिनके विषयमें महर्षिने सुनाया था कि महाराजने पिनाक तोड़नेवालेसे इनके विवाहकी घोषणा की है।'

'लगता है कि माताने इन्हें देवी-पूजनार्थ भेजा होगा।' अब श्रीरामने अनुजकी ओर देखा और पाया कि लक्ष्मण तो कहीं भूमिकी ओर देख रहे है।

'आर्य ! कितने मृदुल श्रीचरण हैं इनके।' लक्ष्मणने कहा—'कोई सुयोग नहीं है कि एक अञ्जलि पुष्प उन चरणोंपर अर्पित करदूँ।'

'लक्ष्मण ! इनके साथ लगता है वाम पार्श्वमें इनकी अनुजा है।' श्रीरामने फिर संकेत किया—'महाराज जनकके एक और सपुत्री भी महर्षिने बतलायी है। भोली बालिका—इसे तो सहज सबका वात्सल्य प्राप्त हो जायगा।'

लक्ष्मणने अब दृष्टि उठायी और कई क्षणों तक देखते रहे। मनमें कहा उन्होंने—'आर्यका साधुशील—इतनी अबोध तो नहीं लगती यह छोटी राजनन्दिनी।'

सम्पूर्णश्रृङ्गारयुक्ता सखियोंके समूहमें वे दोनों राजकुमारियाँ ऐसी जैसे प्रदीपोंके महोत्सवमें शशि दो रूप धारण करके उतर आया हो, किन्तु उधर भी सब थकित स्तम्भित स्थिर खड़ी थीं। सबकी दृष्टि दोनों राजकुमारोंके श्रीमुखपर मानो आबद्ध होगयी थी। पलक थे कि गिरनेका नाम नहीं लेते थे। शरीरके वस्त्र स्वेदसे भीगे जारहे थे।

राजकुमार सम्भवत: संकोचके कारण, कौन जाने पुष्प चयनके क्रममें लताओंकी ओटमें होगये, तब बड़ी राजकुमारी चौंकीं। वे व्याकुलके समान इधर उधर देखने लगीं।

'वे रहे दोनों भाई !' एक सखीने अंगुलीसे संकेत किया तो राजकुमारीका मुख लज्जारुण हो उठा। जैसे मुखपर कुंकुमका उप-लेपन हो गया हो। उन्होंने दोनों नेत्र बन्द कर लिये।

'जीजी ! आप आज्ञा करें तो उनको बुलाऊँ।' उर्मिलाने बड़ी बहिनका कर पकड़ा।

'किसे बुलावेगी तू ?' श्रीसीताने चौंककर अनुजाकी ओर देखा।

'उन इन्दीवर सुन्दर बड़े राजकुमार को !' उर्मिला हँसकर बोली—'कहूँगी, आपको जीजी बुलाती हैं।'

'यदि छोटे राजकुमारने तेरी चोटी पकड़ली तो ?' बड़ी बहिनने हँसकर कहा। उनका पूर्णचन्द्र ज्योत्स्नाके समान धवल हास्य, जैसे वनश्री दुग्धोज्ज्वल हो उठी।

'जाओ जीजी ! आप अच्छी नहीं हैं।' उर्मिलाने बड़ी बहिनके ही वस्त्रमें मुख छिपाया—'बड़े कुमार मुझे तो बहुत अच्छे लगते हैं। कितने शीलसिन्धु ! उनकी तो दृष्टिसे वात्सल्य स्नेह झरता है।'

'छोटे कुमारकी दृष्टि भी कुछ कहती है राजनन्दिनी ?' एक सखीने परिहास किया तो उर्मिलाने उसकी ओर कठोर भृकुटि करके देखा।

'अब हमें चलना चाहिए।' एक सखीने प्रस्ताव किया।

'अभी भगवतीको पुनः वन्दना भी करनी है।' राजनन्दिनी मुड़ गयीं। बार बार वे अनेक कारणोंसे पीछे मुड़नेको बाध्य हुईं यह दूसरी बात। उपवनमें मृग, मयूर, सुरंग पक्षी बहुत थे। वे बलात् दृष्टि आकर्षित कर लेते थे।

अब यह भी कोई पूछनेकी बात है कि भगवतीके मन्दिरमें पुनः क्या प्रार्थना करनी है। हृदय किसी हृदयहारीने हरण कर लिया है। आशुतोष-की ममतामयी अर्धाङ्गिनी कृपा करें तो उस नवजलधर सुन्दरके श्रीचरणों-का स्पर्श प्राप्त हो।

हृदयकी सच्ची प्रार्थना जगदम्बाने कब अनसुनी की। राजनन्दिनीने प्रार्थना करके मस्तक झुकाया तो भगवतीकी कण्ठमाला उनके मस्तकपर आगयी।

नारदका निर्देश

आज श्रीजनक-नन्दिनीको अपनेको ही सम्हालना कठिन होरहा है। बार-बार आनन्द-विह्वल होती हैं और बार-बार अत्यन्त खिन्न हो उठती हैं। गुरुजनोंकी लज्जा, सखियोंका संकोच है वह पृथक। इसलिए प्रयत्न-में हैं कि यथासम्भव एकान्तमें ही रहा जाय।

वह जो नीलसुन्दर प्रातःकाल पुष्प वाटिकामें एक झांकी दे गये—वह छबि जैसे युग-युगकी परिचित है। सदा-सदाके अपने हैं और वे तो हृदयमें आकर वहीं बैठ गये हैं। उनका वह स्मित शोभित, अलकोंसे घिरा आनन, वे रतनारे विशाल लोचन, वह देखनेकी अद्‌भुत भंगी—एक एक अङ्ग अब भी नेत्रोंके सम्मुख ही लगते हैं।

पिताने कैसा अटपटा प्रण कर लिया है। पता नहीं कैसा अशुभ मुहूर्त था जब माताने पिनाक पूजनका आदेश दिया और वह धनुष उठा लिया गया। धनुष उठा लेना एक बात है और उसे तोड़ देना भिन्न बात। उठानेको तो व्यक्ति ताम्र एवं स्वर्ण शलाकाएँ उठाता ही रहता है, किन्तु उन्हें तोड़ना पड़े तो?

सुनते हैं कि भगवान् शङ्करका यह धनुष चेतन है—अवश्य होगा। तभी तो अपने तोड़े जानेकी बात सुनकर क्रुद्ध होकर भारी होगया है। कितने कितने राजा और राजकुमार आये, कितने विख्यात बलवान कहती थीं सखियाँ उन्हें, किन्तु धनुष जो जमकर बैठ गया है तो किसी से हिलनेका नामतक नहीं लिया इसने।

पिताजी इन इन्दीवर सुन्दरको धनुष उठानेको कहेंगे? मैंने उठाया था तो कितने रुष्ट हुए थे। कहते थे—धनुष हाथसे छूटकर गिर सकता है। अब ये इतने सुकुमार, इन्हें पिताजी धनुष-स्पर्श भी करने देंगे?

पिताजी कितने हठी हैं। अपनी प्रतिज्ञा कभी तोड़ी नहीं उन्होंने और प्रतिज्ञा न टूटे—यह धनुष ये तोड़ सकेंगे? हाय! क्या होगा मेरा? सुना महर्षि विश्वामित्र कहते थे कि ये केवल धनुष देखने आये हैं। धनुष देखकर यदि ये चले गये—मेरे शरीरमें प्राण रह जायँ तो धिक्कार है मुझे!

लगता था कि प्रचण्ड दावाग्निसे दिशाएँ प्रज्वलित होउठी हैं। बढ़ती आरही हैं अग्निकी लपटें और उनके मध्य घिरी एकाकिनी बाल-मृगी—क्षण क्षणमें मुखश्री म्लान होजाती है। भयसे गात्र कम्पित होने लगता है। भागकर कक्षमें छिपती हैं।

'उस दिन देवर्षि अन्तःपुरमें आगये थे।' एक स्मृति उठती है और वह प्राणोंको अमृत सिञ्चित कर जाती है। दावाग्निकी लपलपाती लोलुप जिह्वा लपटोंको बुझा जाती हैं। हृदय आनन्दमें उभचुभ होने लगता है।

देवर्षिको कहाँ कहीं आने-जानेपर प्रतिबन्ध है। वे दयाधाम—वे समीप पधारे थे तो वहाँसे अन्तःपुरमें आगये। पीछे मातासे सेविका कह रही थी, पिताजीने अर्घ्य, पाद्यादिसे सविधि देवार्चन करके देवर्षिसे पूछा था—'भगवन्! मेरी अयोनिजा कन्याका क्या होगा? मैंने प्रतिज्ञा करके बहुत बड़ी भूल करली, किन्तु अब·········।'

देवर्षि कहाँ किसीका संकोच करते हैं। वे जगत्स्रष्टाके साक्षात् पुत्र, परम वीतराग, तेजोमय किसीका क्यों संकोच करें। सेविका कहती थीं कि वे खुलकर हँस पड़े थे। उन्होंने केवल इतना कहा—'राजन्! तुम भूल करते यदि प्रतिज्ञा न करते। तुम तत्वज्ञ शिरोमणि भूलते क्यों हो कि मनुष्य किसी सर्वसञ्चालकके करोंका क्रीड़ा-यन्त्र है। वह तुमसे कुछ कराना चाहता है तो तुम अस्वीकार कर सकोगे? अपनेको उसका यन्त्र रहने दो! वह तुम्हें धन्य करने स्वयं आना चाहता है। उसकी प्रतीक्षा करो।'

ऋषि-महर्षि कभी स्पष्ट नहीं बोलते। अपने महर्षि याज्ञवल्क्य तक तो परोक्षवादी हैं। त्रिभुवन गुरु देवर्षि ही क्यों स्पष्ट कहने लगे थे, किन्तु दयामय हैं वे। उस दिन दया करके पिताजीके समीपसे दो क्षणको अन्तःपुरमें आगये थे। मैं दौड़कर माताजीको बुलाने ही जारही थी।

'वत्से! मेरी बात सुनले।' कितना स्नेह, कितना वात्सल्य था उनकी वाणीमें। मुझ अबोध बालिकासे वे भला परोक्ष भाषा क्यों बोलते। स्पष्ट न कहकर भी बहुत स्पष्ट कह गये—'बेटी! जब अपने पुष्पोद्यानमें किसीको देखकर तेरा हृदय उसे प्राप्त करनेको मचल उठे, समझ लेना कि वही तेरा जन्म-जन्मका आराध्य है। वह तुझे प्राप्त होकर रहेगा।'

मैं तो लज्जावश भाग जाना चाहती थी, किन्तु उन अहैतुक कृपालुने मुझे जपमन्त्र बतला दिया। हाय! मैं कल तक कहाँ जानती थी कि वही इन इन्दीवर सुन्दरका नाम है। कल सखियोंसे सुना और यह नाम—मेरे हृदयका यह धन, मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेवके द्वारा प्रदत्त यह नाम—सहस्र-सहस्र सुधा-सिन्धुकी सारभूत मधुरिमासे उत्पन्न यह अक्षरद्वयी।

'वह तुझे प्राप्त होकर रहेगा!' मेरे गुरुदेवकी वह आशीर्वाणी। उनकी वाणीको अन्यथा करनेकी शक्ति तो सृष्टिमें नहीं है। वह सत्य होकर रहेगी।

शरीर स्वेद स्नात हो उठता है। अंग कम्पित होने लगते हैं। रोम रोम उत्थित हो उठता है। नेत्रोंका आनन्दाश्रु प्रवाह रोके रुकता नहीं है। राजनन्दिनीको लज्जावश भागकर कक्षमें छिपना पड़ता है।

महारानी सुनयना प्रसन्न हैं कि आज उनकी पुत्री पुष्पोद्यानसे प्रसन्न-वदना लौटी है। वह एकान्तप्रिय तो जन्मसे है। गिरिजा-पूजन

करके आयी है तो उसमें श्रद्धाका, भक्तिका उद्रेक स्वाभाविक है और संकोचशीला बालिका उसे छिपाना चाहती है। महारानीका हृदय खिल उठता है जब उनकी यह नन्दिनी प्रसन्न रहती है।

सखियाँ चकित नहीं हैं। वे परस्पर एक दूसरीको देखकर मुस्करा लेती हैं। पुष्पोद्यानमें जो अयोध्याके राजकुमार दीख गये थे, वे तो सभीके मन-प्राणोंमें बस गये हैं। उनको देखकर किसे तनकी सुधि रहती है, किन्तु उनकी सखी ये राजनन्दिनी बहुत भावुक हैं। बहुत संकोच करनेवाली हैं। अरे, सखियोंसे भी संकोच करके कहीं ऐसे कक्षमें छिपा जाता है। क्या हुआ जो अवध राजकुमारको कुछ क्षण ये अपलक देखती रह गयीं। हममें-से ही कौन ऐसी है जो उस सौन्दर्यके उच्छलित महासिन्धुके सम्मुख बहजानेसे बची रही हो।

सखियाँ मानती नहीं हैं। उनके मध्य बैठना पड़ता है। आज राजनन्दिनी उनके साथ हँसने-बोलने, क्रीड़ा करनेमें योग नहीं दे पाती हैं। वे अत्यन्त गम्भीर हैं आज। बार-बार अकस्मात् भाग जाती हैं कक्षमें। कभी म्लान मुख, अत्यन्त खिन्न वदन भागती हैं और कभी भागती हैं तो जैसे रोम रोम हर्षसे खिला पड़ता हो।

'बहुत भारी होगया है पिनाक। भगवान् पुरारिका यह पुण्य धनुष उनपर सकरुण होगा?' राजनन्दिनीका हृदय हाहाकार कर उठता है पिताकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके। पिनाक चेतन है तो क्या अपने अधीश्वरके समान आशुतोष, करुणामय नहीं होगा?

'वत्से! वह तुझे प्राप्त होकर रहेगा।' देवर्षिने वरदान दिया है। उनकी वाणी अवश्य सफल होगी। राजनन्दिनीके प्राणोंका परमाधार वह देवर्षि नारदका निर्देश ही आज होरहा है।

सरल स्वभाव

अत्यन्त गम्भीर श्रीराम पुष्पोद्यानसे लौटे। मार्गमें ही अनुजसे बोले—'लक्ष्मण ! मुझे विश्वास था कि कोई रघुवंशी कुमार किसी परस्त्री-की ओर दृष्टि नहीं उठावेगा। अपने अन्तःकरणपर तो मुझे बहुत भरोसा था, किन्तु आज मेरा भरोसा शिथिल होरहा है। तुमने महाराज विदेहकी अयोनिजा नन्दिनीको देखा है।'

'आर्य ! वे अतुलनीय महिमामयी हैं !' लक्ष्मणने अतिशय श्रद्धा भरित स्वरमें कहा—'मैंने उनके चरणोंके दर्शन किये। अपनी अम्बाके ही चरण लगे मुझे वे।'

अत्यन्त सरल स्वभाव श्रीराम। अनुजसे मार्गमें वे श्रीजनक-नन्दिनीके सौन्दर्यका, आकर्षणका, अपने मनोमन्थनका वर्णन करते रहे और लक्ष्मण नीरव श्रोता बने रहे। उन्हें इसमें कुछ नहीं कहना था।

महर्षि विश्वामित्रने अपना आह्निक जप समाप्त कर लिया था। दोनों भाइयोंने महर्षिके सम्मुख पुष्पोंसे भरे दोने रख दिये। भूमिमें मस्तक रख-कर प्रणाम किया महर्षिको।

श्रीराम अवनत वदन बैठ गये और बोलने लगे—'भगवन् ! मैं नहीं जानता कि मुझसे कैसे आज यह अपराध हुआ है। मैं श्रीचरणोंके साथ हूँ। मुझे व्रतस्थ रहना चाहिए, यह मेरा विवेक कहता है, किन्तु······।'

महर्षि तो पुष्प मिलते ही आराध्यके पूजनमें लग गये थे। श्रीराम मस्तक न झुकाये होते तो उन्हें सन्देह होता कि महर्षि उनकी बात सुन भी रहे हैं अथवा नहीं। महर्षिकी अर्चामें व्याघात बननेके लिए तब वे कदाचित इस समय बोल नहीं पाते।

'पुष्पोद्यानमें सखियोंके साथ पार्वती-पूजन करने महाराज जनककी राजनन्दिनी पधारी थीं। अपनी पुष्प वाटिका वे पूजनोपरान्त देखने बढ़

आई होंगी।' श्रीराम अवनत वदन कहते जारहे थे—'कभी जीवनमें जो नहीं हुआ, वह आज हुआ। मेरे नेत्र उनके मुखपर गये और फिर नेत्र हटा लेना मेरे वशमें नहीं रहा। मुझे सत्य कहना चाहिए श्रीचरणोंके सम्मुख। मैं साभिलाष देखता रहा उनके मुखको पर्याप्त समय तक।'

'मेरा विवेक उस समय मेरा साथ नहीं दे सका और अब भी मेरा साथ नहीं दे रहा है।' श्रीरामके स्वरमें कातरता थी, व्यग्रता थी, सरलता थी। 'अब भी मेरा मन शान्त नहीं है। अब भी उन राजनन्दिनी-की मूर्तिके ही चिन्तनमें मन लगा है और मैं उसे रोक नहीं पा रहा हूँ।'

महर्षि नीरव अपनी अर्चामें लगे रहे। वे अर्चा, जप आदिके समय मौन रहते हैं, यह बात आज श्रीरामके ध्यानमें ही नहीं रह गयी थी। अपने मनोमन्थनमें वे इस बातसे विस्मृत ही होगये थे। अब यह बात स्मरण हुई तो सहसा चुप होगये, किन्तु वहाँसे उठे नहीं। अपराधीके समान मस्तक झुकाये वहीं बैठे रहे।

लक्ष्मणकी समझमें नहीं आरहा था कि अग्रज इतने आकुल क्यों हो रहे हैं। उनके मनमें तो कहीं सन्देह नहीं है कि उन्होंने पुष्पोद्यानमें आज पूजनीया आर्याके ही चरण-दर्शन किये हैं। इसमें कोई समस्या है पिनाक-को उठाना या तोड़ना, यह बात ही मनमें नहीं आती।

महर्षि विश्वामित्रने अपनी अर्चा सामान्य क्रमसे पूर्ण की और तब बड़े स्नेहसे बोले—'वत्स रामभद्र! तुम्हारे स्मरणसे मुनियोंके मानस निष्कलुष होजाते हैं। कलुष तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता।'

इसी समय महाराज जनकके कुलपुरोहित शतानन्दजी आगये। उन्होंने महर्षिका चरण-वन्दन किया। श्रीरामने सानुज प्रणाम किया उन्हें तो उन्होंने दोनों कुमारोंको आशीर्वाद देकर हृदयसे लगा लिया।

'भगवन्! महाराज विदेह यज्ञस्थानमें मुनि मण्डल एवं राजकुमारों-के साथ आपके चरण-दर्शनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' शतानन्दजी राजकीय रथमें ही आये थे। उनके साथ और भी रथ आये थे पूरे मुनि-मण्डलको ले जानेके लिए।

महर्षिके आदेशसे मुनिगण शीघ्र प्रस्तुत होगये। अयोध्याके राज-कुमारोंने भी अब अपना मुकुट धारण किया और धनुष कन्धोंपर लिये। अब तक तो वे पुष्पोद्यानसे जैसे आये थे, वैसे ही बैठे थे, किन्तु महर्षि उन्हें इसी प्रकार अनाभरण राजा विदेहके समीप तो नहीं ले जा सकते थे।

यज्ञ-मण्डपमें महर्षि विश्वामित्रने जब आसन ग्रहण कर लिया और महाराजने राजकुमारोंके साथ पूरे मुनि-मण्डलका विधिवत् पूजन पूर्ण कर लिया, महाराजने पुनः प्रार्थना की—'श्रीचरण यदि ग्यारह दिन और इस पुरीको धन्य करें। ग्यारहवें दिन अभिषवके समय सब देवता प्रकट होंगे।'

'राजन्! ये अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के कुमार मेरे साथ आपके नगरमें शिव-धनुषको देखने आये हैं।' महर्षिने कलके ही समान महाराज-की प्रार्थनाका कोई उत्तर न देकर कहा—'ये धनुषको देखकर अयोध्या चले जायँगे।'

सीधी बात कि देवताओंके प्रकट होनेपर उनके दर्शनकी मुझे अपेक्षा नहीं है और अयोध्याके सम्राट् सुरपतिके मित्र हैं। अवधके राजकुमारोंके लिए देवता अपरिचित नहीं हैं। ये केवल धनुषका दर्शन करने आये हैं।

महाराज जनकने मन्त्रीको धनुष उपस्थित करनेका आदेश दिया। इसकी व्यवस्था तो वे कर ही चुके थे कल सायं।

लक्ष्मणका आवेश

अष्टचक्र-युक्त लौह मञ्जूषामें स्थित गन्ध-माल्यादि पूजित शिव-धनुषको पाँच सहस्र बलवान पुरुष खींचकर और ढकेलकर वहाँ ले आये। वह मञ्जूषा अपने भीतरी भागमें स्वर्ण-रत्न जटित थी और उसमें वह विशाल धनुष ऐसे ही शोभित था जैसे साक्षात् भगवान् शेष ही मञ्जूषामें आकर शयन कर रहे हों। दृढ़ तान्तव पाशोंसे बद्ध मञ्जूषाको बहुत-से लोग खींच रहे थे और बहुत-से पीछे तथा पार्श्वोंमें-से उसे ठेल रहे थे।

धनुष मञ्जूषा सहित जब मध्यस्थानमें स्थित होगया, उसे खींच लानेवाले वहाँसे दूर हट गये। वे सब अत्यधिक श्रमके कारण स्वेदसे लथ-पथ होचुके थे।

महाराज जनकने धनुषके निमिकुलमें आनेका वृत्त सुनाया। उन्होंने सीताकी आविर्भाव कथा सुनाकर यह भी सुनाया कि क्यों इस धनुष-भङ्ग करनेवालेको पुत्री देनेकी प्रतिज्ञा उन्होंने की। नरेशों द्वारा जनकपुरके घेरे जाने, प्रजाके संकट तथा अपनी तपस्याका वर्णन करके महाराजने कहा—'भगवन्! सुरोंकी कृपासे प्राप्त सेनाके द्वारा मैं उन राजाओंको पराजित कर सका।'

अकस्मात् महाराज विदेहके नेत्रोंमें चमक आयी। उन्हें स्मरण आया, जिन सुरोंके द्वारा प्रदत्त सेनाको पाकर वे राजाओंकी सम्मिलित सेनाको पराजित कर सके, वे सुर स्वयं जब संकटमें हुए, जब असुर सेनाको पराभव नहीं दे सके तब अयोध्याके चक्रवर्ती नरेशकी उन्होंने शरण ली थी। महाराज दशरथके बाहुबल और अस्त्र कौशलने अमरोंको आक्रान्ता असुरोंके अत्याचारसे परित्राण दिया था और उन्हीं चक्रवर्ती नरेशके राजकुमार यहाँ सम्मुख हैं।

महाराज जनकने जबसे श्रीरामको देखा था, उन्हें अपनी प्रतिज्ञा बहुत सन्तप्त कर रही थी। जबसे राजा एवं राजकुमारोंने धनुषकी ओरसे निराश होकर मिथिला आना त्याग दिया था, महाराजको अपनी प्रतिज्ञाके लिए पश्चात्ताप होने लगा था। उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा करली जिसके पूरी होनेकी ही सम्भावना नहीं है। उनकी शीलमयी कन्या कुमारी रहेगी? अब अपनी प्रतिज्ञाको वे क्या करें?

पिनाक कुलमें पूजित रहा था। महाराज अब भी प्रतिदिन नियम-पूर्वक उसकी श्रद्धा सहित पूजा करते थे, किन्तु धनुषको देखकर उनका हृदय क्षुब्ध हो उठता था—'यह धनुष उनके लिए—उनकी प्राणाधिका पुत्रीके लिए अभिशाप बन गया!'

पृथ्वीके वीराभिमानियोंपर, धनुषपर और अपनेपर भी महाराजके चित्तमें आक्रोश था और समयके साथ वह आक्रोश बढ़ता ही जारहा था। कल श्रीरामको देखते ही लगा कि समस्त दोष स्वयं उनका है। ऐसी विकट प्रतिज्ञा कोई करता है। ये भुवन सुन्दर, परम सुकुमार—इनसे योग्य वर

उनकी पुत्रीके लिए त्रिभुवनमें सम्भव नहीं। धन्य होजाय जीवन, कृत-कृत्य होजायँ नेत्र यदि पुत्रीका करपल्लव वे इन इन्दीवर सुन्दरके पद्मपाणि-में दे सकें।

किन्तु प्रतिज्ञा—प्रतिज्ञाका यह महानाग महाराजके करोंको जो बाँधे है! भाड़में गयी ऐसी प्रतिज्ञा। अपनी प्राणाधिका पुत्रीके योग्य ऐसे वरको लौटने नहीं दिया जा सकता। महाराजका विवेक ही उनकी प्रतारणा कर रहा था—धनुष भङ्ग करनेको कहा जा सकता है इन नवनीत सुकुमारसे? व्यक्ति जिस अपने धनुषका व्यवहार करता है, उसे भी तोड़ देना क्या सरल होता है उसके लिए?

महाराजने कुछ निश्चय कर लिया उसी क्षण। यद्यपि अपनी प्रतिज्ञाके मोहपाशसे वे सर्वथा मुक्त नहीं हुए—उनका विवेक ही कह रहा था कि श्रीरामको देखकर भी प्रतिज्ञाकी चिन्ता केवल मोहपाश है, किन्तु संसारमें घोषित करके प्रतिज्ञाको आमूल-चूल त्याग देना भी सरल नहीं था।

महाराजने अञ्जलि बाँधकर अवनत मस्तक महर्षि विश्वामित्रसे किसी प्रकार—अपनेको बहुत विवश मानकर कहा—'राजकुमार धनुष देखें। श्रीराम यदि धनुषको ज्यासज्ज करदें तो मैं अपनी पुत्री इन्हें प्रदान कर दूंगा।'

क्षोभ, ग्लानि—प्रतिज्ञा शिथिल करनेकी ग्लानिके कारण महाराजके मुखसे निकल गया—'धनुषको तोड़ देनेका आग्रह मैं नहीं करूँगा। मैं समझ गया हूँ कि धरित्री बल-वीर्यशाली पुरुषसे रहित होगयी है।'

'क्या? क्या कहा मिथिलाधिपने?' जैसे वृश्चिक दंशके साथ कोई चीत्कार करता उछल पड़े, ऐसे उछलकर कुमार लक्ष्मण खड़े होगये। उनके नेत्रोंसे मानो अङ्गार झड़ रहे हों। मुख उदयोन्मुख सूर्यके समान अरुण, फड़कते अधर और कठोर वाणी—'श्रीरघुकुल मुकुटमणिकी उप-स्थितिमें, उनके सम्मुख ऐसे शब्द मुखसे निकालनेका साहस जनकने कैसे किया है?'

'आर्य आप अनुमति दें!' क्रोधावेशमें लक्ष्मणने अपना धनुष कन्धेसे उतारकर नीचे पटका और श्रीरामकी ओर देखा—'आपका यह सेवक इस

सड़े पुराने पिनाकको इसकी मञ्जूषाके साथ अभी उठाकर पटक देता है। इसके टुकड़े टुकड़े कर देता हूँ मैं।'

महर्षि विश्वामित्रने दृष्टि उठाकर लक्ष्मणके मुखकी ओर देखा और उनके अधरोंपर स्मित आगया। महर्षिके साथके तपस्वी ऋषि-मुनियोंमें अनेक उठ खड़े हुए। सबने पुकारा—'साधु ! साधु !'

महाराज जनक स्तब्ध देखते रह गये छोटे कुमारके क्रोधसे अरुण हुए मुखको। महाराजके सभी मन्त्री, सभासद स्तब्ध रह गये। केवल महर्षि याज्ञवल्क्य विश्वामित्रजीके समान सुप्रसन्न शान्त बैठे रहे। महाराज जनकके पुरोहित शतानन्दजी तो विश्वामित्रजीके साथके तापसोंके साथ 'साधु ! साधु !' पुकारमें लगे थे।

श्रीरामने नेत्रोंके संकेतसे लक्ष्मणको रोका। अग्रजका भ्रू-संकेत देखते ही वे तेजोनिधि संकुचित होकर अग्रजके पीछे ऐसे बैठ गये जैसे अपने औद्धत्यपर लज्जासे सिमटे जारहे हों।

धनुर्भङ्ग

'वत्स रामभद्र ! तुम धनुषको उठकर देखो तो !' महर्षि विश्वामित्रने श्रीरामकी ओर अत्यन्त स्नेहपूर्वक देखा।

'भगवन् ! आप अनुमति दें तो मैं धनुषका स्पर्श करूँ।' उठकर श्रीरामने महर्षिको मस्तक झुकाकर पूछा—'उसे ज्यासज्ज करनेका प्रयत्न करूँ ?'

'अवश्य ! अवश्य !' महाराज जनकने हर्ष-विह्वल स्वरमें कहा। बिना यह देखे कहा कि बात उनसे नहीं—महर्षि विश्वामित्रजीसे पूछी गयी है।

महर्षिने केवल भ्रू-संकेतसे अनुमति दे दी। भ्रूका वह संकेत था—'धनुषको तोड़ फेंको।'

महाराज जनकने, उनके कुलपुरोहितने तथा सभासदोंने अबतक धनुष-तोड़नेके लिए आनेवाले सहस्रशः नरेशोंको देखा था। उनमें बहुतसे अपने बल-विक्रमके लिए प्रसिद्ध थे, किन्तु जो आते थे। उतावलीमें आते थे। अपने पौरुषका गर्व लिये आते थे और डींग मारते आते थे। आज जो शत-शत मनोभव मनोहारी पुण्डरीकाक्ष रघुकुल कुमार उठ खड़े हुए हैं धनुषकी ओर चलनेको उनकी गरिमा, उनकी गम्भीरता, उनका ओज अपूर्व है। यह शोभा और शील दुर्लभ है विश्वमें।

कोई त्वरा नहीं, कोई शंका-रेखा तक नहीं। श्रीराम उठे, उन्होंने पटुकातक कटिमें कस लेना आवश्यक नहीं माना। महर्षिने भी उन्हें ऐसा करनेको नहीं कहा। केवल अपना धनुष स्कन्धसे उतारकर अनुजको दे दिया उन्होंने और मञ्चसे उतर गये।

महाराज जनकका वात्सल्य मचल उठा। उनकी इच्छा हुई और इच्छा हुई शतानन्दजीकी भी कि कहदें—'वत्स ! पटुका कटिमें लगालो और अलकें समेट लो, किन्तु मुखसे कहा नहीं गया। इसलिए भी कहनेमें संकोच हुआ, क्योंकि अभी अभी कुमार लक्ष्मणने आवेशमें आकर डाँट दिया था। वे इस चेतावनीको भी कहीं अनावश्यक, अपमानजनक अथवा व्यंग न मानलें।

मञ्चसे उतरकर श्रीरामने घूमकर पुनः महर्षिको, मुनि-मण्डलको, मस्तक झुकाया और अपनी सहज केहरीकी समान गतिसे धनुषकी ओर चल पड़े।

अयोध्याके राजकुमार धनुष देखेंगे, यह सूचना तो राजभवनमें और पूरे नगरमें अपने आप होगयी जब इतना विशाल धनुष पाँच सहस्र व्यक्ति खींचकर ले आये। इधर बहुत दिनोंसे धनुष अपने अर्चा-स्थानपर था। उसे देखने, उठाने आनेवालोंकी चर्चा समाप्त होगयी थी मिथिलामें। आज धनुष जब पुनः रंगस्थलपर ले जाये जानेका समाचार मिला, नगरके नर-नारी कुतूहलवश एकत्र होने लगे। महाराजके अन्तःपुरको भी वहाँ आना था। इसकी सम्भावना पहिलेसे थी, अतः सबके बैठनेकी व्यवस्था भी पहिलेसे की गयी थी। वस्तुतः तो रंगशालाका निर्माण और वहाँ सबके बैठनेकी व्यवस्था तभी हुई जब महाराज जनकने धनुर्भङ्ग करनेवालेको कन्यादान करनेकी प्रतिज्ञा घोषित की। इस समय तो उस उपेक्षित रङ्गशालाकी नवीन सज्जामात्र कल सायंकाल करनी पड़ी थी।

धनुषके रङ्गशालामें पहुँचनेसे पूर्व ही लोग वहाँ आगये थे। राज-सेवकोंने सबको यथायोग्य स्थानोंपर बैठाया। व्यवस्थामें कठिनाई इसलिए भी नहीं हुई, क्योंकि लोगोंको अपने वर्गके रङ्गशालामें बैठनेके निश्चित स्थानका पता था। इसके वे अभ्यस्त थे।

'अवधके सुकुमार अल्पवय कुमार और इतना भारी धनुष ?' लोगोंके हृदय आशङ्कासे पूर्ण थे, किन्तु निश्चित कोई नहीं था। जिन कुमारोंने सहस्र-सहस्र राक्षस खेलमें मार दिये, जिनकी पदरज पाकर पाषाणीभूता ऋषि-पत्नी परित्राण पागयी, वे साधारण राजकुमार तो नहीं हैं। वे धनुष नहीं उठा सकते, यह कोई कैसे निश्चित मानले।

मनुष्यका स्वभाव प्रायः अपने अनुकूल परिस्थिति बनेगी, यही सोचनेका है। कठिनसे कठिन, अशक्यतम स्थितियोंमें भी मनुष्य अनु-कूलताकी सम्भावना कल्पित करलेता है। सदा प्रतिकूलकी सम्भावना करने-वाले तो पूर्वजन्म के पापकर्मा, अतः नित्य दुःखी रहनेवाले अशान्त व्यक्ति होते हैं। ऐसे दुर्बल मानस मिथिलामें नहीं थे।

'ये कमल लोचन इन्दीवर सुन्दर हमारी राजनन्दिनीका पाणि-ग्रहण कर तो हमारा जीवन भी धन्य होजाय! हम भी इस सम्बन्धसे इनको अपना कह सकें।' जन-जनके हृदयकी उत्कट कामना थी। इस अभिलाषा-ने आशा एवं सम्भावना उत्पन्न कर दी।

श्रीराम जब धनुषकी ओर चल पड़े, सभी मिथिलाके नर-नारी आतुर हृदयसे अपने इष्टदेवोंके स्मरणमें लग गये। कोई जप कर रहा था, कोई स्तोत्रपाठ और कोई प्रार्थना—'ये कुमार पिनाक भङ्ग करनेमें सफल हों—हमारे सम्पूर्ण पुण्योंके प्रभावको लेकर सफल हों!'

महारानी सुनयनाने आज अभी देखा श्रीरामको। उनका हृदय वात्सल्यसे व्याकुल होउठा—'महाराज विवेकनिधि कहे जाते हैं, किन्तु इस समय कहाँ सोगया उनका विवेक? वे यह क्या कर रहे हैं। उन्हें कोई रोकता क्यों नहीं? ये तो बालक हैं, अपने बाल स्वभाववश धनुष उठाने जारहे हैं। मेरी कन्याने जब धनुष उठा लिया था, महाराज कितने असन्तुष्ट हुए थे। धनुष भारी है, कहीं उठानेपर इनके हाथसे छूटकर गिर पड़े......................!'

महारानी अन्तःपुरकी सखी-सेविकाओंके साथ हैं। पर्दा है नारियों-के बैठनेके स्थानपर। इस समय महाराजको कोई सन्देश भी भेजनेकी स्थिति नहीं है। वे महर्षि विश्वामित्रके समीपसे इधर आते तो उनको समीप बुलवाया जा सकता। महारानीका हृदय छटपटा रहा है। सखी—अन्तःपुरकी सबसे वृद्धा, चतुरा सखी महारानीको समझानेमें लगी है। उसका दृढ़ विश्वास है कि श्रीराम धनुर्भङ्ग कर देंगे, किन्तु महारानीका हृदय—वह वात्सल्यपूर्ण हृदय कहाँ शान्त होरहा है।

श्रीजनकनन्दिनीकी दृष्टि लगी है—अपलक लगी है उनपर जो स्वतः हृदयधन होचुके; किन्तु भय, चिन्ता—क्या होनेवाला है? कहीं—प्रेम सदा आशङ्की होता है। अत्यन्त आकुल है उनका हृदय।

सबकी दृष्टिके एकमात्र केन्द्र श्रीराम कहीं किसी ओर नहीं देखते हैं। वे मत्तगयन्द गतिसे जारहे हैं। जाकर उन्होंने अञ्जलि बाँधकर शिव-धनुषको मस्तक झुकाया और फिर मञ्जूषाकी परिक्रमा करके पूर्वस्थानपर आ खड़े हुए। पीछे घूमकर श्रीरामने पुनः वहींसे महर्षि विश्वामित्रको तथा मुनि-मण्डलको मस्तक झुकाया।

'सफल काम हो वत्स!' महर्षि याज्ञवल्क्यने श्रीरामको अपनी ओर मस्तक झुकाते देखकर स्पष्ट स्वरमें आशीर्वाद दिया।

श्रीराम धनुषकी ओर मुड़े। उन्होंने सरलतापूर्वक धनुषको उठाया और उसकी निम्नकोटि (नोक) पृथ्वीपर टिकाकर धनुषमें लगी प्रत्यञ्चा अपनी दाहिनी कलाईपर लपेटी। बस इतना ही कुछ स्पष्ट सबने देखा। इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, इतना शीघ्र, इतना त्वरित हुआ कि पूरा-पूरा उसे लक्षित कर पाना किसीके लिए शक्य नहीं था।

धनुष बलपूर्वक झुकाकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ादी गयी और श्रीराम-ने उसे वामहस्तमें उठाकर सम्भवतः ज्याघोष करनेके लिए प्रत्यञ्चा खींची। वे एक झटकेमें यह सब कर गये। उनके दक्षिण करने प्रत्यञ्चा झटकेसे खींची—खींचता चला गया।

एक तीव्र प्रकाश—कहीं एक साथ सहस्रशः वज्रपात हों उससे भी तीव्रतम प्रकाश और भयङ्कर कड़कड़ाहटकी ध्वनि। उस रंगशालामें सैकड़ों वज्रपात एक साथ होते तो भी इतना प्रचण्ड शब्द नहीं होता।

महर्षि विश्वामित्र, महर्षि याज्ञवल्क्य, शतानन्दजी, मुनि-मण्डल-के तपस्वियोंके अतिरिक्त केवल महाराज जनक और कुमार लक्ष्मण बैठे रह गये अपने आसनोंपर। शेष सब उपस्थित लोग आसनोंसे गिर गये। पूरी मिथिलामें मानो भूकम्प आगया। पक्षी चिल्लाते उड़ते रहे और अश्व, गज, वृषभ अपने बन्धन तोड़कर दिशाओंमें व्याकुल दौड़ने लगे।

जयमाल

'श्री अवधेशकुमारकी जय !' 'श्री कौशल्यानन्दनकी जय !' 'श्रीचक्रवर्ती कुमारकी जय !' 'श्रीरामकी जय !' 'जय ! जय ! जय ! जय !' धनुर्भङ्गकी घोरतर ध्वनिने दो क्षणको मनुष्योंको स्तब्ध-चकित कर दिया ; किन्तु गगन जयनादसे गूँजने लगा। सुरोंके करोंकी सुमन वृष्टि उनका जयघोष और उनके वाद्योंकी प्रतिध्वनिके समान प्रतिक्रिया हुई मिथिलामें। नगर वाद्य-ध्वनिसे गूँजा—गूँजता रहा। भेरी, शंख, दुन्दुभी, शृङ्ग और करतल-ध्वनि देरतक गूँजती रही। रङ्गशाला सुमन-वर्षासे भर उठी। दूसरोंकी बात नहीं, अनेक मुनि एवं तापस तक अपने आसनोंपर खड़े होकर मृगचर्म अथवा उत्तरीय फहराते जयघोष करने लगे थे।

सबसे पहले मुनि शतानन्द सावधान हुए। वे उठे और लगभग दौड़ते पहुँचे श्रीरामके समीप। उन्हें हृदयसे लगाकर कहा—'वत्स रामभद्र ! तुमने महाराज जनकको, मुझे, मिथिलाको कृतार्थ कर दिया। अब कृपा करके कुछ क्षण यहीं प्रतीक्षा करो।'

श्रीरामने धनुषके दोनों खण्ड मञ्जूषासे बाहर पृथ्वीपर फेंक दिये थे। अब उन खण्डोंमें परस्पर इतना ही सम्बन्ध रहा था कि उनके सिरे एक ही ज्यामें आबद्ध थे जैसे वे दो अभिन्न हृदयोंके—अभिन्न तत्त्वोंके ग्रन्थि-बन्धनके प्रतीक बन गये हों।

श्रीरामने शतानन्दजीकी ओर देखा। अब उन्हें क्यों यहाँ खड़ा रहना चाहिए ? किन्तु मिथिलाके राजपुरोहित तो दौड़े जारहे थे उस ओर

जहाँ महिलाओंके बैठनेकी व्यवस्था थी। अतः श्रीराम मस्तक झुकाये खड़े रहे। आदेश-पालनके अतिरिक्त उपाय नहीं था। अभी वाद्यध्वनि तथा जयनादके मध्य किसी थोड़ी दूरके व्यक्तिकी बात भी सुनायी नहीं पड़ सकती थी। अभी पुष्पवृष्टि विरमित नहीं हुई थी।

शतानन्दजीने करोंके संकेतसे सभीको रोक दिया था कि सब अपने स्थानोंपर ही रहें। कोई श्रीरामके समीप पहुँचनेकी त्वरा न करें। सचमुच शतानन्दजीने यह संकेत करनेकी त्वरा न की होती तो अनेक लोग श्रीरामको अङ्कमाल देने आ चुके होते। स्वयं श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम करने पहुँचनेको उत्सुक थे।

'महारानी! राजनन्दिनीको जयमाल लेकर शीघ्र भेजें!' शतानन्दजीने सावधान न किया होता तो अपार आह्लादके आवेगमें यह आवश्यक कर्तव्य महारानीको निश्चय विलम्बसे ही स्मरण आता।

जयमाल—ज्योतिर्मय रत्नोंसे निर्मित वह जयमाल प्रस्तुत तो नहीं करना था। वह तो तभी बनवाया गया जब महाराजने धनुर्भङ्गके साथ पुत्रीके परिणयका सम्बन्ध प्रतिज्ञाके द्वारा जोड़ दिया। महारानीने उसे बहुत बार साथ रखा है। कोई धनुष उठाने आवे तो वह पेटिका महारानीके साथ सखियाँ लाती रही हैं। यह जैसे आवश्यक सामग्री थी। बहुत समयके पश्चात् वह पेटिका रङ्गस्थलमें लायी गयी थी।

महारानीने तो सखीको रङ्गशाला आते समय सखीको पेटिका उठाते देखकर कहा था—'इसे क्यों लिया है? अवधके राजकुमार तो केवल धनुष देखने आरहे हैं!'

सखीने हँसकर कह दिया था—'महारानी! आपने उन्हें नहीं देखा, किन्तु कल जब नगर-दर्शनको वे आये तो मैंने गवाक्षसे देख लिया है। यह नन्हीं पेटिका कोई धनुष है कि इसे उठानेकी बात सोचनी पड़ेगी? सोचनी भी पड़ती तो हमारी राजनन्दिनी उस धनुषको भी उठा चुकी हैं।'

'उसने धनुष उठाकर ही तो महाराजके लिए समस्या खड़ी करदी है।' महारानी खिन्न होगयी थीं।

'कौन जाने आज जयमाल उठाकर उस समस्याका समाधान करदें।' सखी उल्लासमें थी—'वे राजकुमार धनुष देखेंगे, किन्तु जिनकी पद-रज मुनि-पत्नीका पाषाणत्व भङ्ग कर सकती है, उनकी दृष्टि धनुषकी जड़ता भी तो भङ्ग कर सकती है।'

इस समय महारानीने उस सखीकी ओर देखा, किन्तु वह तो वह नन्हीं स्वर्ण-पेटिका लेकर राजनन्दिनीके समीप पहुँच चुकी थी। उसने पेटिका खोलकर जयमाला श्रीसीताके करोंमें दे दी और सखियोंको संकेत कर दिया। राजनन्दिनीको हृदयसे लगाकर उसने केवल इतना कहा— 'वत्से ! आवश्यक कर्तव्य है यह।'

सखियोंसे घिरी अवगुण्ठनवती भू-तनया जब राजमहिलाओंके बैठनेके स्थानसे बाहर आयी, तब कहीं लोगोंका कोलाहल विरमित हुआ। तब जयघोष रुका और तब श्रीराम समझ सके कि उन्हें मिथिलाके कुलपुरोहितने क्यों यहाँ तनिक प्रतीक्षा करनेको कहा था।

सौन्दर्यकी मूर्तियोके मध्य उनकी साक्षात् अधीश्वरी। पाटलवर्णी साड़ी, अरुण उत्तरीय मस्तकको ढककर अवगुण्ठन बना। वस्त्रोंमें-से झलमलाते रत्नाभरण, अवनत वदना, मृणाल सुकुमार करोंमें जयमाला सम्हालें, सखियोंसे घिरी श्रीजनकराजतनया बालमराल-गति, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगीं। सखियोंके मनोहर गानका साथ देने लगे महाराजके वाद्य और सुर-वाद्य भी। दिशाएँ झूम उठीं। वायुके पद भी विरमित होने लगे।

सखियोंसे घिरी राजकुमारी जब श्रीरामके सम्मुख आकर खड़ी हुई 'भुज लताओंमें जयमाल उठाये—उस शोभाका वर्णन सम्भव नहीं हुआ कभी किसीके लिए भी। श्रीरामका श्रीविग्रह ऊँचा है। यद्यपि श्रीजनकराजतनया भी लम्बी, पतली हैं, किन्तु उनके कर पल्लव कहाँ इतना उठ पाते हैं और संकोचवश भुजाएँ कैसे पूरी उठायी जा सकती हैं। श्रीरामने मस्तक झुकाकर अवसर दिया। जयमाल उनकी ग्रीवामें पड़ी, उनके श्रीवत्साङ्कित वक्षपर लहराई और गगन जयनादसे पुनः गूँजने लगा।

राजनन्दिनी उस क्षण लौट पड़ीं। श्रीराम भी मुड़े और आकर महर्षिके पदोंमें मस्तक झुकाया तो विश्वामित्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। लक्ष्मणने उठकर अग्रजके पदोंमें प्रणाम किया। श्रीरामने उन्हें भुजाओंमें भर लिया।

राजनन्दिनी जब जाकर सखियोंके मध्य बैठ गयीं, सबसे पहिले उनको उनकी अनुजाने हो छेड़ा—'जीजी ! तुम तो सदा अपनी धुनमें रहती हो। कोई कुछ कहे, सुनती ही नहीं हो।'

'क्यों, मैंने कब तुम्हारी नहीं सुनी ?' श्रीजानकीने चौंककर देखा।

'सखियाँ कितना तो कह रही थीं जीजाजीके चरणस्पर्शको !' उर्मिलाने उलाहना दिया—'वहाँ कोई उच्चस्वरसे पुकार सकता था, किन्तु तुम लौट ही पड़ीं।'

'अब तुम उनके चरणस्पर्श कर आओ !' मन्दस्मितके साथ भू-नन्दिनीने अनुजाकी पीठपर कर रखा।

'सचमुच कर आऊं ?' उर्मिलाने बिना संकोच पूछा—'वे कितने अच्छे हैं। मेरे पूज्य तो हैं ही।'

'हाँ कर आ ! लेकिन छोटे कुमारके।' सखियां भी हँस पड़ीं यह सुनकर।

'जीजी ! तुम अब अच्छी नहीं रहीं !' उर्मिलाने लज्जावश अग्रजाके अङ्कमें ही मुख छिपा लिया।

× ×

चर अयोध्या गये

'अकल्पित, अचिन्त्य शौर्य एवं पराक्रमशाली हैं श्रीराम।' महाराज जनक अञ्जलि बाँधे गद्गद कण्ठ महर्षि विश्वामित्रके सम्मुख आ खड़े हुए—'जिस धनुषको देवता और असुर भी उठा-हिला तक नहीं सके, उसे भङ्ग करके मुझे और सम्पूर्ण निमिकुलको इन्होंने धन्य-धन्य कर दिया। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगयी। मैं कृतार्थ होगया। अब श्रीचरण यदि आदेश दें तो श्रीचक्रवर्ती महाराजके समीप उनके पदार्पणकी प्रार्थना लेकर चर भेज दिये जायँ।'

'राजन् ! वत्स रामभद्रने धनुर्भङ्ग करके राजनन्दिनीको प्राप्त कर लिया है।' महर्षि विश्वामित्रने अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा—'जब इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके कन्या प्राप्त की जाती है, कन्याके पिताको वर पक्षको अपने यहाँ आनेको विवश करनेका कोई स्वत्व नहीं रह जाता। यह ब्राह्म विवाह नहीं है। आपने अपनी पुत्रीको वीर्य-शुल्का बनाया था और वह शुल्क वत्स रामभद्रने दे दिया है।'

महाराज जनक मौन खड़े रहे। सचमुच उन्हें आपत्ति करनेका स्वत्व नहीं है। महर्षि आदेश करें तो श्रीरामके साथ अभी कन्याको विदा करना पड़ेगा। यह तो अब श्रीराम और महाराज दशरथपर निर्भर है कि वे विवाह-विधि कहाँ सम्पन्न करना स्वीकार करते हैं।

'लेकिन महाराज ! मैं चाहता हूँ कि आपका उत्साह भंग न हो। निमिकुल और रघुवंश प्रेमके दृढ़ सूत्रमें आबद्ध हो।' महर्षिने महाराज जनकके अनुकूल आदेश दिया—'आप अयोध्या चर भेजकर चक्रवर्ती महाराजको बारात सज्जित करके अपने शेष दोनों कुमारोंके साथ मिथिला पधारनेकी प्रार्थना करें और सूचित कर दें कि इसमें मेरी सम्मति है। महाराज दशरथ धर्मज्ञ हैं, विनयी हैं। आप उनके स्वागतकी प्रस्तुतिमें लगें।'

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रंगस्थलसे उठ गये। उनको सादर आवास स्थान तक महाराज जनकने स्वयं साथ जाकर पहुँचाया। वहाँसे लौटते ही मन्त्रियोंको लेकर व्यस्त होगये।

बहुत अधिक कार्य था। पत्र लेकर शीघ्रगामी अश्वोंपर दो निपुण, विद्वान, नीतिज्ञ चर अयोध्या भेज दिये गये। छोटे भाई कुशध्वजको सांकाश्यसे अविलम्ब सपरिवार आनेका सन्देश भेजा गया। सभी सम्बन्धियोंको आमन्त्रण गया।

अयोध्या भेजे गये चरोंके लगभग साथ ही सेतु-शिविर-निर्माण शिल्पियों तथा उनके सेवकोंकी लगभग पूरी सेना ही भेजी गयी आवश्यक सामग्रीके सहस्त्रशः शकटोंके साथ। मार्गमें पड़नेवाली सरिताओंपर अल्पकालीन उपयोगके लिए सेतु निर्मित करने थे। ऐसे सेतु जो सुदृढ़ हों। रथोंके आवागमन योग्य हों।

मार्गमें दूसरे नरेशोंके भी राज्य थे। उन्हें आमन्त्रणके साथ यह प्रार्थना भी भेजी गयी कि वे अपने राज्यमें पथ तथा सेतु-निर्माणमें यहाँसे जानेवाले शिल्पियोंकी यथासम्भव सहायता करें। उन्हें समीपसे उपयोगी काष्ठादि ले लेनेकी अनुमति दें।

शिल्पियोंको, साथके राजकर्मचारियोंको प्रत्येक वस्तुके लिए उचित मूल्य दे देनेका निर्देश दे दिया गया। जहाँ भी वृषभ, अश्व, गज या श्रमिक उपलब्ध हों, उनका पूरा पारिश्रमिक देनेका निर्देश किया गया।

वह त्रेता युगका काल था। कन्या पक्षका विवाहमें सम्मिलित होने-का निमन्त्रण जिसे प्राप्त होता था, वह धर्मतः अपनेको वर पक्षके स्वागत-का अधिकारी मान लेता था। कन्याके विवाहमें वाधा देने, कठिनाई उप-स्थित करनेकी तो बात सोचना भी अधर्म था। मार्गके राजाओंसे सम्पूर्ण सहयोग मिलनेकी आशा थी और वह मिला। उन्हें भी तो चक्रवर्ती सम्राट-के स्वागतका सौभाग्य प्राप्त होरहा था। इसमें उनका अपना गौरव था।

चर तीव्रगामी अश्वोंपर अयोध्या गये। बारात तो इस तीव्रगतिसे यात्रा नहीं कर सकती। मार्गमें उचित स्थलोंपर बारातके विश्रामके लिए जलकी सुविधा देखकर विश्रामगृह बनाने थे और वे शीघ्रतापूर्वक बनने लगे मार्गमें पड़नेवाली सरिताओंपर सेतु-निर्माणके साथ। स्थानीय नरेशों तथा जनपदोंके नागरिकोंके सहयोगने इस कार्यको बहुत सुगम बना दिया।

चरोंको मार्गमें तीन रात्रि-विश्राम करना पड़ा। चौथे दिन वे अयोध्या पहुँचे। उस समय महाराज दशरथ अपनी राजसभामें ही थे जब द्वारपालने आकर अभिवादनके अनन्तर सूचना दी—'मिथिला नरेशके दो चर राजद्वारपर आदेशकी प्रतीक्षामें हैं। वे अपने नरेशका पत्र लाये हैं और महाराजाधिराजका चरण-दर्शन करना चाहते हैं।'

'उन्हें आदरपूर्वक ले आओ!' महाराजने आदेश दिया।

चर तीव्रगामी अश्वोंपर आये थे। कोई भारी उपहार ला नहीं सकते थे। उन्होंने भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनमें-से एकने पत्र और दूसरेने उज्ज्वल रत्न दोनों हाथोंपर रखकर आगे बढ़ाया। महा-राजने दक्षिण कर बढ़ाकर रत्नोंका स्पर्श कर दिया। चरने उसे पादपीठके समीप घर दिया।

पीत कौशेयसूत्रके द्वारा पञ्चावेष्टित, केशरके छींटोंसे अलंकृत पाटल वर्णी पत्रपर लिखित पत्र सूचित कर रहा था कि वह मैत्रीपूर्ण शुभ निमन्त्रण है।[१] महाराजाधिराजने एक दृष्टि पत्रके ऊपर लिपटे सूत्रके

[१] पत्रके कागजका रंग तथा उसपर लिपटे सूतके घेरे विभिन्न होते थे। जैसे तीन घेरा सूचक था कि पत्र शत्रुका है। यह पाटल वर्ण विवा-हादि आमन्त्रणमें काम आता था और पाँच सूत्र-घेरा प्रेम तथा विनयका सूचक था।

घेरोंपर डाली और स्वयं पत्र उठा लिया। पत्र खोलते ही बोले—'मिथिलाधिपने मेरे लिए पाँच श्रीका उपयोग करके लज्जित किया है मुझे। उन्हें तो तीन श्रीका उपयोग करना था।' [1]

'हमारे नरेशने कुशल पूछा है !' पत्र आगे बढ़ाते समय ही चरने कहा था—'महर्षि विश्वामित्रजीकी सम्मतिसे पत्र भेजकर प्रार्थना की है कि कृपा करके इस सम्बन्धको अस्वीकार न करके हमें कृतार्थ करें।'

'महर्षि विश्वामित्र मिथिला हैं तो अपने राजकुमार भी वहीं होंगे। अब मिथिलाधिपका यह पत्र।' मन्त्रियों तथा सभासदोंमें उत्कण्ठा बढ़ी—'यह सम्बन्धकी प्रार्थना !'

महाराज पत्र पहिले मनमें पढ़कर उल्लसित होउठे। उन्होंने फिर स्वयं उच्च स्वरमें पत्र सुनाया। सम्पूर्ण राजसभा आनन्दविभोर होउठी।

'भद्र ! तुम लोगोंने हमारे राजकुमारोंको देखा है ?' महाराजने चरोंसे पूछा—'पहिचानते हो उन्हें ? उनका शील-स्वभाव तुम्हें कैसा लगा ? जबसे महर्षि विश्वामित्र उनको ले गये, तबसे उनका ठीक ठीक समाचार आज मिला है। दोनों बालकोंसे महर्षि तथा मिथिलाधिप प्रसन्न हैं ?'

'महाराजाधिराज हैं, जिनके ऐसे त्रिभुवनको आलोकित करनेवाले कुमार हैं।' चरोंने उल्लसित कंठसे कहा—'कहीं दिवाकरको अपना परिचय देना पड़ता है ! उसे पहिचानना पड़ता है ! आपके ज्येष्ठ कुमारके शौर्य, पराक्रमकी भुवनोंमें तुलना नहीं है और छोटे कुमार वैसे ही अमित तेजोनिधि हैं।'

महाराजने आनन्दातिरेकसे कण्ठका हार उतारकर दूतोंकी ओर बढ़ाया तो उन्होंने हाथ जोड़ लिया—'क्षमा करें महाराजाधिराज ! हमारे लिए अधर्म होगा यह। हम तो अयोध्यामें जल भी नहीं ले सकते। हमें अनुमति तथा पत्रकी स्वीकृति मिले तो हम प्रस्थान करें।'

---

१. गुरुको ६, स्वामीको ५, शत्रुको ४, मित्रको ३, सेवकको २, स्त्री एवं पुत्र और शिष्य को १ तथा अपने गुरुको, प्रसिद्ध महापुरुषको १०८ श्री लिखनेकी प्राचीन प्रथा थी।

'दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ हैं।' महाराजने कहा—'महर्षिको ही उनके सम्बन्धमें स्वीकृति देनेका अधिकार था। मैं तो उनका आदेश पालन करूँगा। कुलगुरुका आदेश लेकर उनके साथ शीघ्र मिथिला-की यात्रा करूँगा।'

दूतोंको जब अयोध्यामें आहार नहीं करना, उन्हें विदा दी ही जानी चाहिए थी।

बिना वरकी बारात

'आप धन्य हैं राजन्, जिनके पुत्र श्रीराम-लक्ष्मण हैं।' महाराजने जाकर जब कुलगुरुको जनकपुरसे आया पत्र सुनाया, महर्षि वशिष्ठने कहा—'श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य तो श्रीरामके चरणोंमें निवास करते हैं। अब आप बारात सजानेकी व्यवस्था करें।'

भरत-शत्रुघ्नने तो समाचार पाकर राजसभामें ही पितासे पूछा था—'तात! सुना है कहींसे पत्र आया है। हमारे अग्रजका कोई समाचार है?'

महाराज जब कुलगुरुको समाचार देकर लौटे और अन्तःपुरमें पहुँचे, वहाँ मङ्गलगान प्रारम्भ होगया था। दोनों कुमारोंने माताओंको पत्र सुननेके पश्चात् सम्वाद दे दिया था।

महाराजके भवनमें पहुँचते ही सब महारानियाँ वहीं पट्टमहिषी देवी कौसल्याके सदनमें आगयीं। महाराजने पत्र पढ़कर सुनाया। महर्षि विश्वामित्रकी अनुकम्पाका वर्णन किया। कहा—'मिथिलाधिपके दूत कहते थे कि दोनों कुमारोंने सिद्धाश्रममें उत्पात करनेवाले समस्त राक्षसोंको दो वाणोंसे ही नष्ट कर दिया। ब्रह्मर्षिका अनुग्रह—उनके दिव्यास्त्रोंका प्रभाव अकल्पनीय है और सुना—अपने सब दिव्यास्त्र उन्होंने दोनों कुमारोंको प्रदान कर दिये हैं।'

'वे तपोमूर्ति , आप्तकाम , अयोध्यापर अनुग्रह वृष्टि करने पधारे थे ।' महाराज श्रद्धा-विभोर होरहे थे—'अपने सकल्पसे चाण्डालता प्राप्त त्रिशंकुको सशरीर स्वर्ग भेजनेमें समर्थ वे—ऋषि-पत्नी अहल्याका उद्धार किया उनके पावन सङ्कल्पने और अपने असीम वात्सल्यके कारण वत्स राम-भद्रको उन्होंने इसका सुयश प्रदान कर दिया ।'

महाराजका तो कहना था—'सुकुमार श्रीराम सामान्य धनुष धारण कर लेते हैं , इतना ही बहुत है । उनके लिए मैंने विशेष कवच बनवाया अल्प भारका और उन्होंने पिनाक उठाया , तोड़ डाला ? महर्षि विश्वा-मित्रका अनुग्रह— वे दृष्टि उठा दें तो मराल शिशु भी सुमेरु लेकर सहज उड़ सकता है ।'

अब राजसदनमें माङ्गलिक कृत्य प्रारम्भ होगये । पिताकी आज्ञा लेकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई बारातकी प्रस्तुतिमें लगे । स्वयं नगरमें सभी सखाओंको बारातमें चलनेको सूचित कर आये ।

'महाराज ! आपने मेरे लिए विश्वकर्मासे कनक भवन बनवाया है ।' उसी रात महारानी कैकेयीने महाराजसे एकान्तमें कहा—'उसे मैं अपनी पुत्रवधूको उसका मुख देखनेके उपलक्षमें दे दूँ ? उस भवनमें अब गृह प्रवेश श्रीराम नववधूके साथ करें ?'

'महारानी इसमें मुझसे क्यों पूछती हैं ?' महाराजने कहा—'भवन महारानीका है । चाहे जिसे दे दें ।'

'इसलिए पूछती हूँ कि मुझे उसकी विशेष सज्जा करनी है ।' महारानीने सहास्य कहा—'इसलिए भी कि महाराजको बारात ले जानेसे पूर्व प्रधान गृह शिल्पीको तीन भवनोंकी और व्यवस्था करनेका आदेश दे जाना है । अपने यहाँ तीन पुत्रवधुएँ और अब शीघ्र आवेंगी । चक्रवर्ती महाराजको मिथिलामें ही अपने पुत्रोंके विवाहका प्रस्ताव न मिला तो मार्गमें अवश्य मिल जायगा । अब तक महाराजने ज्येष्ठ कुमारका विवाह किया नहीं था । अब समाचार पाते ही नरपतिगण दौड़ेंगे । अयोध्याके सम्राट्की पुत्रवधू बननेका सौभाग्य—कन्याओंके पिताओंको आतुरता नहीं होगी ?'

महारानीके अनुमानको अस्वीकार नहीं किया जा सकता था । महा-राजको यह व्यवस्था करनेमें प्रसन्नता ही होनी थी ।

अयोध्यामें प्रत्येक घरमें मङ्गल कृत्य प्रारम्भ होगये थे, जैसे अपने ही पुत्रका विवाहोत्सव हो। महामन्त्री व्यस्त होगये थे। बारातके प्रस्थानका समारम्भ चलने लगा था। दौड़धूप, सामग्रियोंका लाया जाना और असीम उत्साह। महामन्त्रीने नगरकी सुरक्षाके प्रति महासेनापतिको सावधान किया। शिल्पियोंको आवश्यक कर्तव्यके निर्देश दिये। नित्य सुसज्जिता अयोध्याको बारातके लौटने तक अत्यन्त सुसज्जित कर देना था।

व्यस्त थे महामन्त्री और उनके कर्मचारी। व्यस्त थे भरत-शत्रुघ्न और व्यस्त तो थे महर्षि वशिष्ठ विप्रवर्गके साथ। इस व्यस्ततामें कितना हर्षोल्लास, कितना आनन्दोद्वेग !

बारात सुसज्जित हुई और नगरके बाहर आकर व्यवस्थित हुई। अद्भुत बारात—ऐसी बारात जिसमें वर नहीं था। नारियोंने मङ्गल गान किया। शङ्खध्वनि, वाद्यध्वनि, वेदपाठ और सूत, मागध, वन्दीगणोंका यशोगान गूँजता रहा।

अपने अग्निकुण्डोंके साथ आहिताग्नि महर्षि वशिष्ठ तथा उनके साथके ऋषि-मुनि एवं विप्रगण आकर रथोंपर बैठ गये। महर्षिने युवक ब्रह्मचारियोंको आश्रम-परिचर्यामें नियुक्त कर दिया था। विप्रवर्गको ही अपने यजमानोंकी अग्नियाँ भी साथ रखनी थीं।

महाराज दशरथके साथ अन्य सुसज्जित रथोंपर अयोध्याके वयस्क-गण विराजमान हुए। युवकोंको भरत-शत्रुघ्नके साथ अश्वारोही होकर चलना था। प्रत्येक रथके साथ आठ चक्र-रक्षक एवं अश्वोंके साथ दो दो पदाति पार्श्व रक्षक सैनिक सुसज्ज खड़े होगये।

मङ्गलध्वनि, शङ्खनाद, स्वस्तिपाठके साथ जब महर्षि एवं महा-राजने अधरोंसे शङ्ख लगाकर प्रस्थानकी सूचना दी, बारात आगे बढ़ी। भगवान् गणेश एवं आराध्यका स्मरण करके महाराजने सारथीको रथ बढ़ानेका संकेत किया। अश्वोंने जैसे ही पद बढ़ाये महर्षि वशिष्ठकी काम-धेनु रक्त-श्वेत-कर्बुरा (लाल-सफेद-चितकबरी) नन्दिनी अपने बछड़ेको पिलाती सामने हो मिली। महाराजने अञ्जलि बाँधकर उसे प्रणाम किया और सारथिको आदेश दिया कि गौ को दाहिने करके रथ ले चले।

श्वेत वस्त्र, पुस्तक हस्त दो विप्र, जलपूरित घट उठाये पुत्रको अङ्कमें लिये सौभाग्यवती नारी, दधि पूरित पात्र—मङ्गलोंका तो जैसे क्रम प्रारम्भ होगया। नगरका जनपद छूटते ही नीलकण्ठने दर्शन दिया, क्षेमकरी (श्वेत चील) नीचे मडराने लगी। दाहिनी ओर मृगयूथ साथ ही चलने लगा। शकुन—पद-पदपर शकुन होने लगे।

अश्वारोही अश्वोंको नचाते चल रहे थे। गजोंका सुसज्जित समूह स्वर्ण-घण्टोंका शब्द करते घनघटाके समान बढ़ रहा था और बढ़ रहे थे रथ। सुस्वर वाद्य मङ्गल-संगीत ध्वनित कर रहे थे।

महाराज जनकने मध्यमें विश्राम स्थान बनवा दिये थे। बम्त्र-शिविरोंके पूरे नगर। लगता था कि सरयू-पारसे—अयोध्याकी सीमासे जनकपुर तक इन शिविर नगरोंका अबाध क्रम चला गया है। शिविरोंमें विनम्र राजसेवक अञ्जलि बाँधें स्वागतको प्रस्तुत थे।

जल, पुष्प, तुलसी, दूर्वांकुर, काठ, पशुओंके लिए तृण, अन्न तककी व्यवस्था थी उन शिविरोंमें। आसन, शयन, नाना प्रकारके व्यञ्जन तो थे ही, सम्भावित रात्रि-विश्राम स्थलोंमें मनोरञ्जनके लिए पाले हुए मयूर, शुक, मृग आदि भी पर्याप्त थे।

भारतीय परम्परा—प्राचीन परम्परामें निष्ठ पुरुष स्नान-सन्ध्या तर्पण तो सरिता अथवा सरोवरमें ही करते। शुष्क, कृमि रहित तृणोंकी राशि थी, जिसे ले जाकर उसपर मल त्याग परम्परानुसार होता था। नागरिकोंके हटते ही ग्राम शूकर वहाँ छोड़े जाते थे जो उसे स्वच्छ कर देते थे और तृणोंको एकत्र करके जला दिया जाता था। पशुओंके गोबर, राख आदि तत्काल बारातके आगे बढ़ते ही स्वच्छ कर दी जाती थी।

मार्गमें बारातने सात रात्रि विश्राम किया। आठवें दिन जनकपुरके समीप पहुँचे। मध्याह्नमें भी अल्प विश्राम करते ही यह यात्रा हुई।

पितृ मिलन

अयोध्या-नरेश बारात लेकर नगरके समीप पहुँच गये, यह सूचना चरने न भी दी होती तो तुमुल वाद्यध्वनि दे ही देती। वैसे महाराज जनकने व्यवस्था कर रखी थी। चक्रवर्ती महाराज जब रात्रि-विश्राम करके किसी शिविरसे जैसे ही प्रातः चलते थे, वहाँसे अश्वारोही चर उससे पूर्व चल देता था और मिथिला पहुँचकर समाचार देता था कि बारातने कहाँ प्रातराश ग्रहण किया। कहाँ मध्याह्न विश्राम, स्नान-सन्ध्या तथा भोजन हुआ, तृतीय प्रहरका अल्पाहार कहाँ लोगोंने स्वीकार किया और कहाँ रात्रि-विश्राम हुआ।

इस व्यवस्थाके दो लाभ थे। वह चर आगेवाले शिविरोंके सेवकों-को बारातके प्रयाणकी सूचना देकर सतर्क करता जाता था। महाराज जनकको तथा उनके मन्त्रियोंको बारातके मध्य विश्रामके सात दिनोंमें बारातमें आनेवाले लोगोंकी रुचि, शील-स्वभाव एवं आवश्यकताका अच्छा अनुमान होगया था। अतः जनकपुरमें सबके मनोनुकूल स्वागतकी बहुत उत्तम व्यवस्था कर रखना सम्भव होगया था।

'श्रीचक्रवर्ती महाराज अतिशय उदार हैं और अत्यन्त सतर्क हैं।' चरोंने समाचार दिया था—'वे अपने वस्त्र, आभरण, उपकरण भी किसी याचकको देखते ही दे देते हैं। सेवकों तकको माल्य, चन्दन मिल गया या नहीं, यह देखे बिना उसका उपयोग नहीं करते।'

'अयोध्याके लोग जन्मजात आप्तकाम हैं।' चरोंका सम्वाद विचित्र था—'किसीकी कोई विशेष रुचि भी है, यह किसी प्रकार पता नहीं लगता। वे स्वागतमें प्रस्तुत प्रत्येक वस्तुकी खुलकर प्रशंसा करते हैं, किन्तु अत्यल्पका उपयोग करते हैं। उन्हें अपने महाराजाधिराज और अपने राजकुमारोंकी चर्चासे, चिन्तासे अवकाश ही नहीं अपनी ओर—अपनी सुविधाकी ओर ध्यान देनेका।'

ऐसे सम्वादोंको पाकर कोई क्या पूर्व-प्रस्तुति करे? महाराज जनकने जितना भी सम्भव था, पूरी शक्ति लगाकर सत्कारकी व्यवस्था की थी। बारातका आगमन ज्ञात होते ही गज, अश्व, रथ लेकर अग्रिम

स्वागत करनेवाला दल वाद्य-घोषके साथ बढ़ा। पुरीके बाहर ही मिलन हुआ। मानो आनन्दके उमड़ते दो महासमुद्र परस्पर मिले हों। मिथिलाधिपने अपरिमित उपहार भेजे थे, इस प्रथम मिलनके अवसरपर और अयोध्याधीशने एक दृष्टि डालकर सबको लुटा देनेका आदेश दे दिया था।

त्रिभुवन-धन्या अयोध्या। इन्द्रकी अमरावती भी जिसे देखकर वन्य मानवोंका आवास प्रतीत हो, उस अयोध्याके नागरिकोंने मिथिला देखा और देखते रह गये। जनकपुरीकी वह शोभा—विश्वकर्माकी कलाकृति भी व्यर्थ थी उसके सम्मुख। स्थान स्थानपर बने रत्न-तोरणद्वार, चतुरष्कोंके वितान मण्डप, भवनद्वारोंकी सज्जा—सर्वत्र रत्न स्तम्भ, रत्नोंके बने लता वितान, पुष्पगुच्छ, फलोंकी घारें और पशु, पक्षी। सब ऐसे जैसे नैसर्गिक बने हों, इतने नैसर्गिक कि मयूर, शुक, मृग आकर उनके समीप बैठने, उन्हें सूँघने, वहाँ नृत्य करनेमें लग गये थे।

सम्पूर्ण मिथिला एक भवनके समान नहीं, एक रूपसी नारीके समान सर्वाभरण-भूषिता, आपाद मस्तक अलंकृता स्वागतमें प्रस्तुत थी। नगरका कोई गृह नहीं था जिसे देखकर समझा जा सके कि वहाँ आज ही कन्याका विवाह नहीं है। बारात आयी और नागरिकोंने अपने हृदय, अपने पलक-पाँवड़े, अपना सर्वस्व स्वागतमें प्रस्तुत कर दिया। हरिद्रा, दधि, केशरकी वर्षाने महाराज एवं महर्षिगणों तकको पीला बना दिया। सुमनकी, सुमनसार (इत्र)की, लाजा, दूर्वांकुरकी वर्षा होती रही। वाद्यघोष चल ही रहा था, नारियोंका मङ्गलगान और विप्रोंके मन्त्रपाठमें मानो स्पर्धा चल रही हो।

बारात जनवासे पहुँची। जहाँ सब सिद्धियाँ साकार विनम्रा नारी बनी स्वागत में सविनय उपस्थित हों, वहाँकी सज्जा, सम्भार और तत्परताका वर्णन क्या! किसीके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा हुई और सेवक उसे लिये सम्मुख उपस्थित। बारातके लोगोंमें चर्चा चल पड़ी—'सुना था कि महाराज जनकके आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्य योगेश्वर हैं, किन्तु लगता है कि उन्होंने राज्यके सेवकों तकको अन्तर्यामी बना दिया है।'

बारात आगयी। बिना वर-की बारात जब आगयी, तब वरको भी आना चाहिए, किन्तु बारात आयी यात्रा-श्रान्त। स्वागतके उत्साहने

सबको आपाद-मस्तक रंगीन बना दिया। अब सबको स्नान करके पुनः वस्त्राभरण धारणका अवसर मिलना चाहिए था। महर्षि विश्वामित्र यह अवसर देना चाहते थे।

श्रीराम-लक्ष्मणने पिताका आगमन सुना। पितृ दर्शनकी अत्यन्त उत्सुकता, किन्तु शील-संकोचके परमाश्रय महर्षिसे कैसे कहें महर्षिने यह देखा, समझा और अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने स्वयं कहा—'वत्स ! अब हम श्रीचक्रवर्ती महाराजके समीप चलें।'

जनवासा सही, किन्तु इस समय वह चक्रवर्ती सम्राटका आवास है। महाराजके अपने द्वारपालने देखा महर्षिको दूरसे आते और दौड़कर महाराजको सूचना दी—'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र राजकुमारोंके साथ आरहे हैं।'

ऋषि-मुनियोंका स्वभाव विचित्र होता है। विश्वामित्रजीने अयोध्यासे राजकुमारोंको लेकर चलते समय रथ स्वीकार नहीं किया था। अब राजकुमारोंको उनके पिताके समीप पहुँचानेके समय भी उन्होंने महाराज जनकका रथ स्वीकार नहीं किया था। वे नगरमें अपने निवाससे जनवासे तक राजकुमारोंको पैदल ही लेकर आये थे।

महाराजने सुना और जैसे थे, वैसे ही उठकर दौड़े। राजपथपर ही अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटने भूमिमें पड़कर दण्डवत् प्रणिपात किया महर्षिके चरणोंमें, महर्षिने उठाकर हृदयसे लगा लिया।

अनुजके साथ श्रीराम पिताके पदोंमें झुके तो महाराजने दोनों पुत्रोंको एक साथ उठाकर हृदयसे लगाया। महाराजको पुत्रोंसे मिलनका अवसर देनेके लिए महर्षि यह कहकर आगे बढ़ गये—'मैं आपके कुलगुरुसे मिल लूँ। उन्हें सूचित भी तो करना है कि मैं उनके यजमान-कुमारोंको सकुशल लौटा रहा हूँ।'

'तात !' श्रीरामने पिताके मुखकी ओर देखा। वे संकोचवश ही नहीं कह सके कि उन्हें भी भाईके साथ सर्वप्रथम गुरुदेवके पदोंमें प्रणाम करना है।

'हम वहीं चलते हैं वत्स !' उमंगके साथ महाराजने कहा। इतनेमें भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई दौड़े आगये और दोनोंने अग्रजकी चरण-वन्दना की। दोनोंको अङ्कमाल प्राप्त हुई। चारों कुमारोंके साथ महाराज पदल ही महर्षि वशिष्ठके समीप चले।

नगर सीमाके समीप, जलाशयके तटपर महर्षि वशिष्ठको मुनि-गणोंके साथ महाराज विदेहने ठहराया था। श्रीचक्रवर्ती महाराजका जनवासा समीप था, किन्तु ऋषि-मण्डलकी सुविधा तनिक पृथक रहनेमें ही थी।

कुलगुरुने अपने पदोंमें प्रणत श्रीराम-लक्ष्मणको उठाकर हृदयसे लगाया। महर्षि विश्वामित्र वशिष्ठजीके दाहिने विराजमान थे। सबके बैठ जानेपर कुलगुरुने कहा—'महाराज! आप और हम सब तो बाराती हैं। विवाह ब्रह्मर्षिके कृपाभाजन कुमारोंका है, इन्होंने ही विवाहकी व्यवस्था की है और इन्होंने ही हम वर-रहित बारातियोंको वर-प्रदान किया है।'

'परमर्षि! आप सानुकूल बने रहें तो?' महर्षि विश्वामित्रजीने एक क्षणमें कुछ निश्चय करके स्मित पूर्वक कहा—'विश्वामित्र आपके यजमानको इसी प्रकार वधुएँ भी प्रदान कर देगा।'

महर्षि वशिष्ठको संकेत समझना नहीं था। उन्होंने केवल हंसती दृष्टिसे स्वीकृति प्रदान करदी।

विवाह

'आप पूछते क्यों हैं महाराज?' जब महाराज जनकने चक्रवर्ती महाराजसे विवाहका समय निश्चित करनेकी प्रार्थना की तो महाराज दशरथने उत्तर दिया—'आप दाता हैं। हम तो गृहीता हैं। आप जब देना चाहेंगे, हम स्वीकार कर लेंगे। आप धर्मज्ञ हैं, अतः आप जो आज्ञा देंगे, हम उसका पालन करेंगे।'

महाराज जनक तो इस उत्तरसे विभोर होगये। महाराजने जो यज्ञ प्रारम्भ किया था, उसकी पूर्णाहुति भी होचुकी थी और पूर्णाहुतिसे पूर्व ही सांकाश्य नगरीसे उनके भाई कुशध्वज सपरिवार आगये थे। मिथिलाका महोत्सव, आनन्द अपने पूरे उत्कर्षपर था।

प्रातःकाल मिथिलाधिपने अपने मन्त्रीको भेजकर चक्रवर्ती महाराज-को बुलाया। जब सज्जित मण्डपमें दोनों नरेश सपरिकर बैठ गये, महाराज दशरथने कहा—'हमारे रघुवंशके ईश्वर तो महर्षि वशिष्ठ हैं। ये कुलगुरु ही हमारे कर्म-निर्देशक हैं। अतः वे जो आज्ञा देंगे, हम उसके अनुसार कार्य करेंगे।'

'महाराज! मैं और मिथिलाधिप भी महर्षिके आज्ञानुचर ही हैं।' शतानन्दजी हाथ जोड़कर खड़े होगये।

महर्षि वशिष्ठने विधिपूर्वक भगवान् नारायणसे लेकर गोत्रोच्चार प्रारम्भ किया। नारायणसे ब्रह्मा, ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप और महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिसे सूर्य। सूर्यके वैवस्वत्मनु, मनुके इक्ष्वाकुके क्रमसे महर्षिने महाराज दशरथ तक वंशावली सुनाकर कहा—'मैं अपने यजमान चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथके तृतीय पुत्र लक्ष्मणके लिए महाराज सीरध्वज जनककी औरस कन्याका वरण करता हूँ। मिथिलाधिपको कोई आपत्ति है?'

महाराज जनक कुछ कहते, इससे पूर्व ब्रह्मर्षि विश्वामित्र आसनसे उठ खड़े हुए—'रघुवंश और निमिवंश–दोनों समान कुल हैं। अतः महाराज सीरध्वजके छोटे भाई कुशध्वजकी दोनों कन्याएँ मैं महाराज दशरथके कुमार भरत एवं शत्रुघ्नके लिए वरण करता हूँ। दोनों मैथिल भूप बन्धुओंको यह सम्बन्ध स्वीकार है?'

महाराज दशरथसे पूछना अनावश्यक था, क्योंकि महर्षि विश्वा-मित्रको कल ही वशिष्ठजीकी संकेत-स्वीकृति प्राप्त होगयी थी। महाराज जनकने तो विश्वामित्रजीके चरण ही पकड़ लिये। वे कुछ क्षण आनन्दाश्रु गिराते नीरव रह गये।

'आपका अहैतुक अनुग्रह असीम है।' महाराज जनकने गद्गद कंठ कहा—'भाईने मुझसे आते ही कहा था कि मैं श्रीचक्रवर्ती महाराजसे उनकी कमसे कम एक कन्या द्वितीय कुमारके लिए स्वीकार करनेकी प्रार्थना करूँ। मैं साहस नहीं कर पारहा था। मुझे भय था कि मैं बहुत लोभी माना जाऊँगा, किन्तु अकारण कृपालु ब्रह्मर्षिकी कृपाने निमिकुलको सदासे कृतार्थ किया है। आज हम दोनों भाई कृतकृत्य होगये।'

अब दो दिन तक प्रारम्भिक वैवाहिक कृत्य होने थे। कुमारोंके कृत्य वहीं जनवासेमें होने थे और कन्याओंके राजसदनमें। महर्षि वशिष्ठने ही आदेश दिया—'आज मघा नक्षत्र है, तीसरे दिन भग दैवत उत्तरा फाल्गुनीमें मिथिलाधिप कन्या दान करेंगे। बीचके इन दिनोंके दोनों पक्ष गोदान करके नान्दीकर्म (पितृ पूजनादि) सम्पन्न करलें। मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको चारों कुमार चारों कन्याओंका पाणि-ग्रहण करेंगे।'

महाराज दशरथ सहस्र सहस्र सवत्सा, कपिला, हेमश्रृंगी, रजत मण्डित पदा, बहुमूल्य वस्त्राच्छादिता गौएँ ब्राह्मणोंको अन्न, वस्त्र, अलङ्कारसे सज्जित करके स्वर्ण, रत्नादिके साथ दान करके निवृत्त ही हुए थे कि सूचना मिली—'कैकय नरेशके कुमार, भरतके मातुल युधाजित पधारे हैं।'

चक्रवर्ती महाराजने उनका स्वागत किया। युधाजितने आसन ग्रहण करनेके पश्चात् बतलाया—'पिताके आदेशसे मैं अयोध्या पहुँचा था। वहाँ मेरी बहिनका दर्शन हुआ। मुझे वहीं यह शुभ सम्वाद मिला कि आप ज्येष्ठ कुमारके विवाहके लिए बारात सज्जित करके मिथिला पधारे हैं।'

'कुलगुरु तथा ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका अनुग्रह।' चक्रवर्ती महाराजने श्रद्धाभरित स्वरमें कहा—'इस असीम अनुग्रहके कारण वह बारात अब चारों कुमारोंकी बारात बन गयी है। आपके पिताश्री और बन्धु परिवार, प्रजाजन सब सकुशल हैं?'

'आप जिनका कुशल चाहते हैं, सब सकुशल हैं।' युधाजितने कहा—'मुझे पता लग गया है कि आपको किस प्रकार शीघ्रतामें प्रस्थान करना पड़ा। यहाँ और भी कोई सम्बन्धी आये नहीं देखता हूँ।'

'आपके आगमनसे यह तो होगया कि कुमारोंके मातुलका दायित्व आप पूरा कर देंगे।' चक्रवर्ती महाराज अत्यन्त प्रसन्न थे। युधाजितने भी अब विवाहमें सम्मिलित रहकर अयोध्या साथ लौटनेका निर्णय तो कर लिया ही था।

महाराज जनकका यज्ञ-मण्डप ही अब विवाह मण्डप बन गया था। चक्रवर्ती महाराजके चारों कुमार जब वर-वेशमें सजे अश्वारूढ़ निकले, मन्मथ इस योग्य भी नहीं लगता कि इनका अश्व-रक्षक बनकर पदाति भी

साथ रह सके। वह शोभा—वह छवि तो मिथिलाके मानसमें बसी और उसकी निधि होगयी।

महर्षि वशिष्ठ पहिले पहुँचे विवाह मण्डपमें। उन्होंने महाराज जनकसे कहा—'महाराज दशरथने पुत्रोंका विवाह-पूर्व-कर्म सम्यक् सम्पन्न कर लिया है। अब वे दाताकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतः कन्यादान करके आप स्वधर्म प्रतिपन्न करें।'

'श्रीचक्रवर्ती महाराज किसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं भगवन् ?' मिथिलाधिपने भाईके साथ महर्षिकी पद-वन्दना करके कहा—'यहाँ कोई द्वारपाल है जो उन्हें रोकेगा? यहाँ तो उन्हींके सेवक हैं। वे पधारकर हमें आज्ञा क्यों नहीं देते? कन्याओंका भी सब पूर्व-कर्म सम्पन्न होचुका है। वे वेदीपर आचुकी हैं। मैं श्रीराजाधिराजकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, वे शीघ्र पधारें!'

'भगवन्! आपने इस जनपर इतना अनुग्रह किया है, अतः एक और प्रार्थनाका साहस होता है।' महाराज जनकने हाथ-जोड़कर मस्तक झुकाया—'वैवाहिक कर्मका सञ्चालन श्रीचरण ही करें।'

'जानता हूँ कि महर्षि याज्ञवल्क्य वीतराग हैं। वे नहीं पधारेंगे।' महर्षि वशिष्ठने कहा—'शतानन्दजी तथा ब्रह्मर्षि विश्वामित्रको मेरी सहायता करनी है।'

'महर्षि याज्ञवल्क्य पधारेंगे।' महाराज जनकने कहा—'उन्होंने श्रीचरणोंमें प्रार्थना की है कि वे कर्मकाण्डमें निष्णात नहीं हैं। अतः श्रीचरण उनकी उपस्थितिको ही पर्याप्त माननेकी कृपा करें।'

'उनके समान तत्वज्ञ योगीकी उपस्थिति ही पर्याप्त है।' महर्षिने सानन्द कहा—'बच्चोंको आशीर्वाद देंगे।'

वाद्यध्वनिने सूचित कर दिया कि श्रीचक्रवर्ती महाराज बारात लेकर द्वारपर उपस्थित होनेवाले हैं। महाराज जनक और उनके भाई सपत्नीक सविधि अर्घ्य अर्पित करने द्वारपर पहुँचे कुलपुरोहितके साथ।

पाँवड़े तो पड़े थे जनवासे-से विवाह-मण्डप तक। अश्वोंको भी पाँवड़ोंपर-से ही आना था, किन्तु द्वारसे मण्डप तक जो रत्नखचित, मृदुलतर पाँवड़े पड़े, अतुलनीय शोभा उनकी और जब रत्नासनोंपर आसीन राजकुमारोंके पाद-प्रक्षालनके लिए सपत्नी मिथिलाधिप स्वर्ण

पात्र सम्मुख रखकर आबैठे—कितना भी संकोच हो कुमारोंको, किन्तु विधि और महाराजका प्रेम। महारानी सुनयनाने अपने अञ्चलसे ही पोंछा उन चारु चरणोंको।

एक ही मण्डप, एक ही वेदी, एक ही अग्निकुण्ड, एक ही मुहूर्तमें महाराज जनकने अनुजके साथ चारों कन्याओंका कर चारों राजकुमारोंके करोंमें दिया। वेदीकी, अग्निकी और ऋषियोंकी भी परिक्रमा की वर-वधुओंने सप्तपदीके समय। अपने अपने भागके मन्त्रोंका उच्चारण राजकुमारोंने स्वयं सस्वर किया और वधुओंने संकोचपूर्वक मन्दस्वरमें किया।

परस्पर दर्शन, सिन्दूर-दान आदि संस्कार सविधि होने ही थे। यहाँ उस विधि तथा अपार दहेजके वर्णनका विस्तार अनावश्यक है। चक्रवर्ती सम्राट्के कुमारोंका विवाह, श्रुतिपारदर्शी महर्षियोंके आचार्यत्वमें हुआ; अतः विधिकी सूक्ष्मतम साङ्गता भी पूर्ण हुई। महाराज जनक और उनके अनुज राजा कुशध्वजकी कन्याओंका विवाह था—अब उनके और कन्याएं तो थीं नहीं। देते हुए दोनों नरपतियोंका हृदय तृप्त नहीं होता था।

महाराज दशरथ उदारचक्रचूड़ामणि। उन्हें देते, लुटाते कहाँ सन्तोष होना था। उन्हें गृहीता नहीं मिल रहा था। जनकपुरके सूत, मागध, वन्दी तक अयोध्यानरेशसे कुछ स्वीकार नहीं कर रहे थे, जबकि उन्हें लेना चाहिए था, याचक कितना लेते? बहुत दान करने, लुटानेपर भी बहुत अधिक महाराजाधिराजको जनवासे ले आना पड़ा।

नववधुओंके साथ महाराज दशरथ जनवासे पधारे। नियम ही तो पालन होता है यह। सम्भवतः इसलिए यह नियम मधुरतम है कि वधुओंको लेकर कुमारोंको भी ससुराल अन्तःपुरमें जाना पड़ता है और वहाँ वधुओंकी सखियाँ, भावजें, सम्बन्धकी बहिनें होती हैं। वहाँ सबको—जनकपुरमें तो सबको ही वहाँ रघुवंशी कुमारोंके समीप बैठनेका, उनसे हास-परिहासका सुअवसर प्राप्त होगया। मिथिलाका मानस कोहवरके उस रस-परिहासको सदा सदाके लिए अपनी साधना, अपना धेय बना चुका था उसी दिन।

महर्षि विश्वामित्रने वहींसे विदा ली। विवाहके दूसरे ही दिन उन्होंने महर्षि वशिष्ठको अङ्कमाल दी। महाराज दशरथको, उनके सभी

कुमारोंको आशीर्वाद दिया। तपस्वीको कौन रोक पाता है! चक्रवर्ती महाराज बहुत चाहते थे कि ब्रह्मर्षि अयोध्या तक साथ चलें, किन्तु विश्वामित्रजीको तो अब सिद्धाश्रम भी नहीं जाना था। वे हिमालयमें अपने कौशिकी तटके तपोवन चले गये।

महर्षि विश्वामित्रके साथ जो ऋषि-मुनियोंकी मण्डली सिद्धाश्रमसे आयी थी, वह भी अब रुके रहनेको प्रस्तुत नहीं थी। उसे भी अत्यन्त आदरपूर्वक मिथिलाधिपने दूर तक पहुँचाकर विदा किया।

श्रीचक्रवर्ती महाराज भी चाहते थे कि उन्हें अयोध्या जानेकी अनुमति प्राप्त हो, किन्तु महाराज जनक चरण पकड़ लेते थे—'आप दो दिन तो मुझे आतिथ्यका सौभाग्य प्रदान करें।'

नित्य नवीन सत्कार, नित्य नवीन आयोजन, नित्य नवीन आनन्द! अयोध्याके अधीश्वरको प्रयाणके प्रस्तावका भी अवसर प्राप्त नहीं होता था।

बारात विदा

'आपकी प्रीति अपार है, किन्तु महाराज!' महर्षि वशिष्ठ और शतानन्दजी दोनोंने मिथिलाधिपके समीप जाकर कहा—'अब आप अयोध्यानाथको अनुमति दें। धनुर्मास समीप है। कैकय नरेशके युवराज राजकुमारोंको लेने ही आये हैं। अयोध्यासे उन्हें खरमासमें विदा करना उचित नहीं होगा और अयोध्या पहुँचते ही किसी राजकुमारको ननिहाल भेजनेकी अनुमति कैसे श्रीचक्रवर्ती महाराज दे सकेंगे।'

'मैं आपका आज्ञानुवर्ती हूँ!' महाराज जनकको ऋषियोंका अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने अन्तःपुरमें संन्देश भेज दिया कि पुत्रियोंको आज विदा करना है।

माता-पिताके लिए अतिशय व्यथापूर्ण दिवस है बेटीकी विदाका, किन्तु उपाय नहीं है। कन्याको अपने पति-गृह रहना चाहिए। कितनी व्यवस्था, कितनी चिन्ता करनी पड़ती है कन्याके विवाहके लिए। कितनी उमङ्गसे पुत्रीका विवाह करता है पिता और यह सब है बेटीको विदा करदेनेके लिए। पुत्री यदि सुशीला है, सद्गुणी है तो उसकी विदा हृदयको जैसे विदीर्ण करदेती है।

महाराज जनक तत्वज्ञोंके भी उपदेष्टा, जन्मजात विदेह, किन्तु जिस दिव्य प्रेमका उदय उनके अन्तरमें भूमिजाने आकर कर दिया था, जो प्रेम श्रीरामको जामाता पाकर परम प्रवृद्ध हुआ, वह कोई मर्यादा मानता है? उसमें स्थिर रहना या घटना तो है ही नहीं। वह अनुक्षण वर्धमान प्रेम और अब उसमें विप्रयोगका अवसर उपस्थित होगया।

महाराज विदेह जैसे विवेकनिधि जिस प्रेमवारिधिमें निमज्जित होने लगे, उसमें माताओं, स्वजनोंकी, सेविकाओंकी अवस्था कैसी होगी, अनुमानसे भी परे स्थिति है।

अत्यन्त व्यथा और उसमें भी पूरी तत्परताके साथ लगे रहना है। एक पुत्रीको ही विदा करना होता है तो स्वजनोंके अश्रु नहीं रुकते और यहाँ तो अन्तःपुर ही सूना हुआ जारहा था। चारों राजकुमारियोंको विदा करना था। महारानी सुनयनाको यही नहीं सूझता था कि अन्तः-पुरमें कुछ भी क्यों रहना चाहिए। पुत्रियोंके लिए, उनके ही उपयोगार्थ तो सब कुछ था। तब वे जहाँ जारही हैं, वहाँ सब उपकरण क्यों नहीं भेजे जाने चाहिए।

पाले हुए पशु-पक्षी तक व्याकुल थे और उनमें सबको साथ ही तो नहीं भेजा जासकता। महाराजाधिराज अयोध्या पहुँच जायँ तो पुत्रियों-को तो जीवनभर भेजना है। उनको जब भी सुअवसर हो, सुविधा हो, कुछ भी भेजनेपर कोई प्रतिबन्ध कहाँ है, किन्तु जनवासेसे ठीक ही तो सन्देश आया है—'आप सब हमारे ढोनेकी क्षमताका भी कृपापूर्वक ध्यान रखें।'

महाराज जनकनें लदे शकटोंकी पंक्तियाँ भेजदी हैं पहिले ही। यह कौन नहीं जानता समझता कि कन्याएँ चक्रवर्ती सम्राटकी पुत्रवधुएँ होकर जारही हैं। ऐसे सम्राटके यहाँ जिनको मित्र कहनेमें, जिनकी सेवा

करनेमें सुरपति भी अपनेको गौरवान्वित मानते हैं, किन्तु हृदयमें जो अकूल प्रेम पारावार है, वह कोई तर्क कभी सुनता है ?

आते समय मार्गमें बारात जहाँ जहाँ रात्रिमें रुकी थी, जहाँ मध्याह्नमें विश्राम हुआ था, जहाँ थोड़ा देर भी बारातके लोग रुके थे, वहाँ मिथिला नरेशने समस्त सुविधाओंकी व्यवस्था की। इस बार दुहरे चरोंकी व्यवस्था की। एक अश्वारोही प्रातःकाल अयोध्याके मार्गपर आगेके विश्राम स्थानके सेवकोंको सावधान करने चल देता था और दूसरा पिछले दिनका समाचार देने मिथिलाकी ओर चलेगा, यह आदेश था।

अश्वोंपर आरुढ़, भली प्रकार सुसज्जित चारों रघुवंशी कुमार वधुओंको लेने राजभवन पधारे। महारानी सुनयनाने ऐसे अङ्कमें ले लिया जैसे वे उनके गर्भजात ही हों। उन्होंने चारोंके वस्त्राभरण उतरवाये, अपने करोंसे उन्हें उबटन लगाकर उष्णोदकसे स्नान कराया। अङ्ग पोंछे। नवीन वस्त्र, आभरण और स्वयं उनके अङ्गोंपर अङ्गराग लगाती रहीं। उनको तिलक करती और उनकी केश सज्जा करती रहीं। अबोध शिशुओंके समान चारों कुमार महारानीके वात्सल्यमें विभोर थे। महा-रानीने चारोंको सुमन-सार लगाया। पुष्पमाल्योंसे अलंकृत किया और तब आसनोंपर बैठकर भोजन कराया।

जब महारानी ताम्बूल दे चुकीं, श्रीरामने मस्तक झुकाकर प्रार्थना की—'मातः! हमारे पिताश्री प्रस्थानको प्रस्तुत हैं। हमें आपसे विदा लेने भेजा है। आप आज्ञा दें!'

महारानी सुनयनाके नेत्र झरने लगे! कुशध्वजकी रानीकी दशा भी ऐसी ही थी। मिथिलाकी सब नारियाँ राजसदनमें एकत्र थीं। सबमें रुदन फूट पड़ा। राजनन्दिनी सभीकी तो अपनी थीं। वे चारों राजकन्याएँ एक एकसे गले मिल रही थीं।

चारों अवधेश कुमारोंको नारियोंने स्नेह-सत्कार दिया। नेत्रोंमें अश्रु भरे राजकुमारियोंकी भाभियाँ-बहिनें, सहेलियाँ, आज परिहास नहीं कातर स्वर—'लालजी! हम अबलाओंको भी कभी स्मरण कर लेना!'

महारानी सुनयनाने पुत्रियोंको अङ्कमें बैठाकर शिक्षा दी—'वत्से ! स्मरण रखना कि पति ही नारीका परम देवता है। संसारके सब नाते पतिसे हैं। पतिकी सेवा, अनुकूलता, सुखमें अपनेको उत्सर्ग करना। पतिके स्वजनों-का सम्मान करना। उनकी सेवा करना। उस कुलके, पतिके विरोधियों, निन्दकोंकी बात ही सुनना पाप मानना। शील और लज्जा ही नारीका सर्वस्व है।'

महारानीने एक एक जामाताके चरण पकड़े—'ये अभी अबोध बालिकाएँ हैं। इनसे त्रुटि होगी। इनके अपराध क्षमा करते रहना। ये मेरी हृदय निधियाँ, इन्हें अपनी चरण सेविकाएँ समझकर स्नेह देना।'

श्रीरामने महारानीको समझाया। आश्वासन दिया। विलम्ब बहुत होरहा था। भाईके साथ महाराज जनक आगये अन्तःपुरमें। सीताको देखते ही व्याकुल होगये। पुत्रीको अङ्कमें लेकर अश्रुधारा चलने लगी। बड़ी कठिनाईसे पुत्रियोंको उनके पतियोंके साथ द्वारसे निकलनेका समय आया। बार बार माताएँ अङ्कमें लगा लेती थीं कन्याओंको।

अन्तमें नववधुएँ शिविकाओंमें बैठायी गयीं। राजकुमार अश्वोंपर बैठे। जनवासेमें रथ, गज, अश्व प्रस्तुत थे। शिविकाएँ पहुँची और प्रयाणके वाद्य बज उठे।

महाराज जनक भाई एवं परिकरोंके साथ पहुँचाने चले। बार बार श्रीचक्रवर्ती महाराजने मिथिलाधिपको लौटनेको कहा। अन्तमें रथ रोककर उतर पड़े। दोनों समधी गले मिले। महाराज दशरथने कुशध्वजको भी अङ्कमाल दी।

सानुज मिथिलाधिप जामाताओंसे मिले। एक एकसे प्रार्थना की—'इन अबोध बालिकाओंपर अनुग्रह रखना।'

'रामभद्र ! मैं तुम्हारे स्वरूपको तुम्हारी कृपासे समझ गया।' अन्तमें महाराज जनकने कहा—'स्तुति करूँगा तो तुम्हें संकोच होगा। तुम्हारी यही छवि सदा हृदयमें बनी रहे, ऐसी अनुकम्पा करो !'

अत्यन्त विह्वलता, किन्तु विदा तो करना ही था। महाराज जनक बारात विदा करके लौटे—जैसे सूनी मिथिलामें लौटना हो। मिथिला नीरव होगयी। किसीको किसीसे कुछ कहनेके लिए जैसे कण्ठमें शब्द ही नहीं था।

●

परशुराम

'अस्त्र त्याग न करनेपर भी आपने शान्ति अपनायी और अजनाभ वर्ष (भारतका प्राचीन नाम) के क्षत्रिय उद्धत होगये।' दशग्रीवने मन्दराचलपर पहुँचकर उग्रतेजा भार्गव श्रेष्ठ परशुरामजीके सम्मुख दण्डवत प्रणाम किया—'आप मुझे असुर मानकर तिरस्कृत कर सकते हैं, किन्तु मैं अन्ततः ब्राह्मण हूँ। मैंने मान्धाताको वरदान न दिया होता अयोध्यापर आक्रमण न करनेका तो अपने आराध्य भगवान् पुरारिकी अवमानना चुपचाप विषके घूँटके समान पीजानेको आज विवश न होता।'

रावणने सुना कि अयोध्याके राजकुमारने सिद्धाश्रमके समीप रहनेवाले उसके अनुचरोंकी समूची सेना समाप्त करदी तो वह सशङ्क होगया। अनरण्यने उसे शाप दिया है कि अयोध्याके उनके कुलमें ही उसे मारनेवाला उत्पन्न होगा। अब एक नया उपद्रव और उठ खड़ा हुआ। परशुराम दक्षिणमें ही रहते हैं। लङ्कासे बहुत समीप हैं और विश्वामित्र इनके पिताके मामा हैं। वशिष्ठ-विश्वामित्रकी शत्रुता थी, तबतक तो परशुरामसे कोई आशङ्का नहीं थी, किन्तु अब? विश्वामित्रकी यज्ञ रक्षा करके अयोध्या नरेशके कुमारने उन्हें सानुकूल कर लिया है। वे स्वयं मिथिला ले गये उन दोनों कुमारोंको। अब कभी अयोध्याका वह कुमार लङ्कापर चढ़ाई करदे, विश्वामित्र परशुरामको उसके पक्षमें उभाड़ दे सकते हैं। परशुराम जैसे अजेय, अमर, उत्कट भटकी शत्रुता बहुत भारी पड़ेगी। अतः परशुरामको उस कुमारके विरुद्ध उभाड़ा जासके तो परिणाम कुछ भी हो, दोनोंमें कोई हारे या मरे, लङ्काका लाभ ही है।

रावण नीतिज्ञ था। बहुत चतुर था और दुष्टके समीप बुद्धि होगी तो वह उसे बहुत सशङ्क रखेगी। मलिन हृदय अकारण भी आशङ्का करता है। लङ्काका अधिपति अपने चित्तके कलुषसे ही भयभीत हो उठा था और मनमें बहुत दुरभिसन्धि लेकर महेन्द्राचल पहुँचा था।

'भगवान् पुरारिकी अवमानना?' परशुरामजीने हुंकार की—'कौन क्षत्रियाधम ऐसा दुस्साहस करता है?'

'अयोध्या नरेश दशरथके ज्येष्ठ कुमारने मिथिला जाकर पिनाक तोड़ फेंका और सीरध्वजकी कन्याका पाणिग्रहण किया। अभी बारात विदा भी कदाचित ही हुई हो।' दशग्रीवने ऐसे स्वरमें कहा जैसे उसे बहुत व्यथा होरही हो—'आप इसे आराध्यका अपमान न मानें तो आपकी इच्छा, किन्तु मेरा तो हृदय भस्म हुआ जारहा है, इसपर दशरथकी स्पर्धा तो अद्भुत है। उन्होंने अपने उस ज्येष्ठ कुमारका नाम आपका नाम रखा है—राम।'

'हुँ!' एक भयङ्कर हुंकार करके परशुराम उठ खड़े हुए। दशग्रीवका उद्देश्य सफल होचुका था। वह लङ्का लौट गया। परशुरामजी शूर थे, किन्तु छल-कपट न करना जानते थे, न समझ सकते थे। उन्होंने कृष्णमृग चर्मके उत्तरीयपर अपने दोनों अक्षय तूणीर पीठपर बांधे। उनके अमर देहको कभी कवचकी आवश्यकता नहीं हुई। दोनों कन्धोंपर दो धनुष धारण किया। एक अपना धनुष, दूसरा भगवान् विष्णु प्रदत्त धनुष, जिसे वे अपनेसे पृथक नहीं करते थे। अपना प्रसिद्ध विद्युदाभ परशु उन्होंने दक्षिण करमें सम्हाला।

क्रोधसे अरुणमुख अङ्गार नेत्र साक्षात् प्रलयंकरके स्वरूप परशुराम आकाश मार्गसे मिथिलाकी ओर चल पड़े। उन्हें भला कितना विलम्ब लगना था। गगनसे ही उन्होंने अयोध्याकी ओर लौटती बारात देखली। महाराज दशरथका कोविदार ध्वज उनका परिचित था।

चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथजीको मिथिलासे विदा होते-होते भी बहुत विलम्ब होगया था। मध्याह्न स्नान, सन्ध्या तथा भोजन जनकपुरीसे बहुत समीप ही करना पड़ा। उस दिन अत्यल्प विश्राम करके सब चल पड़े। दूसरे दिन प्रातःकृत्य सम्पन्न करके चले। अभी दिनका प्रथम प्रहर ही था। जनकपुरी पीछे केवल तीन योजन (२१ मील) दूर छूटी थी। सहसा वायु खर स्पर्श बहने लगा। पक्षी भयानक शब्द करने लगे। अपशकुनोंको देखकर महाराज दशरथ कुलगुरुके रथके समीप अपना रथ ले आये।

'राजन्! मैं भी अपशकुनोंको देख रहा हूँ।' महर्षिने श्रीचक्रवर्ती महाराजको रथसे उतरनेसे संकेतके द्वारा रोक दिया—'किन्तु भयभीत होनेका कारण नहीं है। मृगयूथ आपकी दाहिनी ओर चल रहा है। यह शकुन कहता है कि विपत्ति आवेगी, परन्तु बिना कुछ हानि किये टल जायेगी।'

विपत्तिकी आशङ्का होनेपर आस्तिक पुरुषका एक ही अवलम्ब है श्रीहरिका स्मरण। श्रीचक्रवर्ती महाराज इसमें लग गये। इतनेमें से गगन जटाधारी, वल्कल वसन, ऐणेयजिनोत्तरीय, प्रचण्ड दीर्घकाय परशु लिये सूर्य ही पृथ्वीपर उतर आये हों—ऐसे तेजोमय परशुरामजी गगनसे उतरे।

महर्षि वशिष्ठ रथसे उतरकर सम्मुख आये तो परशुरामने उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया। दूसरे ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणोंने परशुरामको प्रणाम करके अर्घ्य-पाद्य दिया। खड़े खड़े विप्रों द्वारा किया गया यह सत्कार परशुरामने स्वीकार कर लिया। लेकिन उन्होंने किसीके द्वारा पृथ्वी-पर डाले गये आसनकी ओर दृष्टि नहीं उठायी।

विप्रवर्गसे, महर्षि वशिष्ठसे भी एक शब्द बिना कहे, उनका सत्कार स्वीकार करके, उनको बोलनेका अवसर दिये बिना परशुराम सबकी उपेक्षा करके उधर बढ़े जिधर अश्वारोही राजकुमार थे। अङ्गार झड़ते नेत्र, फड़कते अधर, अरुण मुख परशुराम अत्यन्त क्रोधमें हैं, यह स्पष्ट था। वे केवल महर्षि वशिष्ठ तथा ऋषियोंका सम्मान करनेके लिए दो क्षण रुके थे।

परशुरामजीको अपनी ओर आते देखकर श्रीराम भाइयोंके साथ अश्वोंपरसे उतर पड़े थे। सभी लोगोंने वाहनोंका त्याग कर दिया था। रथ, अश्व, गज सेवकोंने सम्हाल लिये थे। महर्षि वशिष्ठ तथा सभी विप्रगण शान्तिकर्ममें—पाठ, जपमें लग गये थे। दूसरे लोग भी आराध्यकी प्रार्थना कर रहे थे अत्यन्त कातर भावसे।

'तुमने शिव-धनुष तोड़ा है? मैं यह समाचार पाकर आया हूँ।' परशुराम सीधे श्रीरामके सम्मुख पहुँचे। उन्होंने राजकुमारोंके या किसीके भी प्रणामको, दण्डवत प्रणिपातको भी ध्यान देने योग्य नहीं माना।

'भगवन्! आपने इन्द्रके सामने शान्त रहनेकी प्रतिज्ञा की है। आपने प्रजापति महर्षि कश्यपको सम्पूर्ण पृथ्वी दानमें दे दी है।' महाराज दशरथ परशुरामजीको श्रीरामकी ओर आते देखकर मुकुट त्यागकर दौड़े आये थे। भयके कारण महाराजका शरीर कम्पित होरहा था। हाथ जोड़े वे गिड़गिड़ा रहे थे—'आप हम सबका वध करदें, किन्तु श्रीरामभद्रको छोड़ दें। हमारे कुलको एकमात्र आशाएँ..........।'

महाराज क्या कह रहे हैं—इसकी उपेक्षा करदी परशुरामने। ऐसी उपेक्षाके वे अभ्यस्त हैं। ऐसी क़ातर प्रार्थनाएँ वे सुनते होते तो इक्कीस

बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर पाते ? उनके सम्मुख गर्जना तो की थी एकमात्र कार्तवीर्य सहस्रभुज अर्जुनने और उसका दर्प परशुरामने मस्तक काटकर दलित कर दिया था। क्षत्रियोंमें बहुत शूर थे, बहुतोंने धनुष चढ़ाया था, जैसे इस समय भी लक्ष्मणने धनुष कन्धेसे उतार लिया है, किन्तु परशुरामके लिए कातर गिड़गिड़ाहट और तमककर शस्त्र उठाना समान था। सब उपेक्षणीय थे। सब उन्हें मशक, मक्षिकाओंके समान लगते थे।

'विश्वमें धनुष ही दो बने। शेष सब धनुहियाँ हैं।' परशुराम क्रोधपूर्ण स्वरमें कह रहे थे—'विश्वकर्माने दो धनुष बनाये। एक भगवान् शङ्करको और एक नारायणको दिया। त्रिपुरका विनाश करके त्रिपुरारिने अपना पिनाक देवरातको दे दिया। तबसे वह निमिवंशमें पूजित था। सुना है तुमने उसे तोड़देनकी धृष्टता की है।'

'परशुराम कोई हौआ हैं ?' लक्ष्मणको पिताके कातर स्वरपर आश्चर्य होरहा था। परशुरामजो जिस स्वरमें बोल रहे थे श्रीरामसे, वह भो असह्य था लक्ष्मणके लिए। परशुरामके मुखसे पिनाककी चर्चा सुनकर मनमें उन्होंने कहा—'जीर्ण सड़े पिनाककी इतनी प्रशंसा ?'

'दूसरा धनुष जो विश्वकर्माने विष्णुको दिया था, उसे उन रमाकान्तने महर्षि ऋचीकको प्रसन्न होकर दिया। ऋचीक मेरे पितामह परमशान्त थे। उन्होंने धनुष अपने स्वसुर महाराज गाधिको दे दिया। महाराज गाधिसे यह मुझे प्राप्त हुआ है। तुम इसे लो और ज्यासज्ज करके इसपर वाण चढ़ा सको तो मैं तुमसे युद्ध न करूंगा ?'

श्रीराम मस्तक झुकाये परशुरामजीकी बात सुन रहे थे। परशुरामने दाहिने हाथमें अपना परशु ले रखा था। वाम हस्तसे दक्षिण स्कन्धसे लटकता वैष्णव धनुष उतारकर आगे बढ़ाते अत्यन्त कठोर स्वरमें बोले—'मेरा यह परशु देखते हो ? मैंने इससे इक्कीस बार पृथ्वीके क्षत्रियोंका संहार किया है। तुम यदि इस धनुषको नहो चढ़ा सके तो मैं परशुसे तुम्हारी हत्या कर दूँगा। तुम्हारी इतनी धृष्टता कि तुमने मेरा नाम अपना लिया। अपनेको राम कहते हो।'

लक्ष्मण क्रोधसे काँपने लगे। फड़कने लगे उनके अरुणाधर। उनका मुख सुपक्व बिम्बफलके समान अरुण होउठा। अपना धनुष उन्होंने एक

झटकेमें ज्यासज्ज कर लिया और उनके करने त्रोणसे वाण खींच लिया। लेकिन लक्ष्मणको अपना वाण धनुषपर चढ़ानेका समय नहीं मिला। श्रीरामके लिए पिताकी अवस्था, उनका कातर कण्ठ, उनका कम्पित गात्र, उनका भयपीत मुख देखपाना असह्य था और अनुजकी अवस्थासे भी वे अनजान तो नहीं थे।

'आपने जो महत्तम कार्य किये हैं, उन्हें सुना है मैंने।' सदा गुरुजनोंके सम्मुख नेत्र झुकाये अवनत वदन रहने वाले रघुवंश विभूषणने सिर उठाया और सीधे परशुरामकी ओर देखा। न आवेश, न रोष, किन्तु वज्र गम्भीर, अत्यन्त सुस्थिर वाणी गूँजी—'आपने अपने पिताका क्षत्रियोंसे प्रतिशोध लिया, इसके कारण आपको दोष नहीं दिया जा सकता, किन्तु आप इस समय मेरे तेजका अपमान कर रहे हैं।'

पलक झपकतेमें श्रीरामने दक्षिण कर बढ़ाकर परशुरामके उस वाम करसे जिसे बढ़ाये परशुराम धनुष दिखा रहे थे, वह वैष्णव धनुष झपट लिया।

'यह क्या हुआ ?' परशुराम चौंके। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चौंके। चौंककर देखने तो लगे महर्षि वशिष्ठ तथा उनके साथके शान्तिपाठमें लगे विप्रगण। प्रचण्ड मार्तण्डके समान प्रज्वलित तेजोदीप्त परशुरामका वह महातेज सहसा लुप्त होगया। जैसे वह धनुषके साथ चला गया हो। परशुराम एक सामान्य मुनिके समान रह गये और इस समय तो सामान्यसे भी हतप्रभ हो चुके थे।

'आप मेरे गुल्तुल्य महर्षि विश्वामित्रके भागिनेय पुत्र हैं, अतः मेरे सम्मान्य हैं। किन्तु मैं विवश हूँ। मेरा वाण अमोघ है। इसका लक्ष्य बतलाइये !' श्रीरामने झटकेसे उस धनुषको झुकाकर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी थी और उसपर वाण चढ़ाये गम्भीर स्वरमें पूछ रहे थे—'मैं आपके चरणोंमें इसे मारकर आपकी गगन-विचरणकी शक्ति नष्ट करदूं अथवा आपके पुण्योपार्जित लोकोंको भस्म करदूं।'

'राम ! तुम त्रैलोक्यनाथ हो। वैष्णवशक्तिके बिना कोई इस धनुषका स्पर्श नहीं कर सकता था।' परशुराम कुछ क्षण स्तब्ध देखते रह गये श्रीरामकी ओर। फिर धीरे-धीरे बोले—'तुम नारायणने ही नैमिषारण्यमें दर्शन देकर मुझे अपने तेजसे आप्यायित किया था, इस भूमिका भार हरण

करनेके लिए। अब तुमने अपना तेज मुझसे ले लिया। तुम सर्वेश्वरेश्वरसे पराजित होकर मैं लज्जित नहीं हूँ।'

'मैंने महर्षि कश्यपको पृथ्वी दान करदी तो उन्होंने आदेश किया कि मैं पृथ्वीपर रात्रि व्यतीत न करूँ। मैं समुद्रसे भूमि लेकर महेन्द्राचलपर रहता हूँ। तुम मेरी गति नष्ट करोगे तो मैं सूर्यास्तसे पूर्व वहाँ पहुँच नहीं सकूँगा। मेरा व्रत नष्ट हो जायगा।' परशुरामने प्रार्थनाके स्वरमें कहा— 'अपने इस वाणसे तुम मेरे पुण्योपार्जित लोकोंको नष्ट कर दो, मैं तपस्या करके पुनः उन्हें निर्मित कर सकता हूँ।'

श्रीरामने आकाशकी ओर उस वाणको छोड़ दिया। परशुरामने श्रीरामकी प्रदक्षिणा की। अधिक शिष्टाचार उनके स्वभावमें ही नहीं था। वे आकाशमें उठे और शीघ्र दृष्टि सीमासे बाहर चले गये।

अयोध्याका आनन्द

'आप प्रसन्न हों पिताजी! परशुराम चले गये।' परशुरामके जाते ही श्रीराम पिताके समीप आकर बैठ गये और अपने उत्तरीयसे पिताके नेत्र तथा मुख पोंछने लगे।

'परशुराम राम चले गये?' महाराज दशरथने धीरेसे नेत्र खोला। अबतक वे मूर्च्छित प्राय थे। घुटनोंके बल बैठे, अञ्जलि बाँधे, नेत्र बन्द किये, अजस्र अश्रुधारा ढुलकाते अतिशय कातर हृदय आराध्यसे प्रार्थनामें तन्मय थे। उनका पूरा शरीर भयसे काँप रहा था। मुख ऐसा श्वेत हो गया था जैसे रक्तका नाम न हो देहमें।

'परशुराम चले गये?' श्रीरामका अमृत स्वर श्रवणमें पड़ा तो महाराजने नेत्र खोला और श्रीरामको खींचकर अङ्कमें ले लिया। उनके शरीरपर कर फेरने लगे। उन्हें इस प्रकार देखने लगे जैसे विश्वास ही न होता हो कि उनके श्रीराम ही उनके अङ्कमें हैं। वे इधर-उधर चकित देखते जाते थे।

'परशुराम चले गये ?' श्रीचक्रवर्ती महाराजको विश्वास नहीं होता था कि बिना कोई अनर्थ किये परशुराम चले जा सकते हैं।

'आप रथपर विराजें पिताजी।' अब भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी पिताके समीप आगये थे। भरत कह रहे थे—'परशुरामजी आर्यको अपना वैष्णव धनुष देकर सुप्रसन्न चले गये। अब सब लोग यात्राके लिए आपके रथमें विराजमान होनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'वत्स भरत!' महाराज धीरेसे उठे। उन्होंने श्रीरामको हृदयसे लगाकर उनका सिर सूँघा। श्रीराम उन्हें लेकर उनके रथतक गये और सहारा देकर महाराजको रथमें बैठाया।

परशुरामके जाते ही दिशाएँ स्वच्छ होगयी थीं। वायु शीतल चलने लगा था। सुरोंने गगनसे पुष्प वर्षा की थी। अब श्रीचक्रवर्ती महाराजके रथारूढ़ होजानेपर जब चारों राजकुमार अश्वोंपर बैठ गये, तब उनके मित्रोंने भी अपने अश्व सम्हाले। वाद्य मधुर ध्वनिसे बजने लगे। महर्षि वशिष्ठने शङ्खध्वनि की। यह ध्वनि आगे प्रयाणकी सूचक थी।

वाद्योंकी ध्वनि सुनकर अयोध्यामें लोग उत्साहपूर्वक नगरसे बाहर दौड़े। बारात मार्गमें विश्राम करती अयोध्या उत्तम मुहूर्तमें पहुँची थी। नगरके बाहर ही अर्घ्य मिला आगतोंको और राजद्वारपर महारानियोंने वधुओंकी आरती उतारी। उन्हें लेकर वे भीतर गयीं।

महारानियाँ, अयोध्याकी सब नारियाँ नववधुओंको देखकर आनन्दसिन्धुमें मानो निमज्जित होने लगीं। इन त्रिभुवन मोहिनी वधुओंका मुख देखकर अपना सर्वस्व भी इनपर अर्पित करना अत्यन्त अल्प लगता था सबको। मङ्गलगान, वेदध्वनि, नृत्य, संगीत और महामहोत्सव चल रहा था राजभवनमें और श्रीचक्रवर्ती महाराज सूत, मागध, वन्दी, विप्रवर्ग तथा याचकोंसे भी मनुहार करके रत्न, स्वर्ण, गज, अश्व, रथ, गायें, अन्न, वस्त्रादि देनेमें लगे थे।

'ये कुसुम कलिकाओंसी सुकुमार नन्हीं बालिकाएँ।' महारानियोंको लगता था कि उनकी पुत्र-वधुएँ मार्ग-श्रमसे अत्यन्त श्रान्त हो गयी हैं। अपनी उदरजाताओंके समान वात्सल्य स्नेहसे अङ्कमें बैठाकर, बहुत बहुत मनुहार करके अपने करोंसे उन्होंने ग्रास देकर खिलाया। अत्यन्त संकोचा हैं बालिकाएँ। महारानियोंका लगा कि ठीक मुख भो उन्होंने जूठा नहीं किया। अपने अञ्चलोंसे ही मुख पोंछा।

'तुम्हारी लली इतना संकोच करेंगी हमसे ?' माताओंने साथ आयी वृद्धा दासियोंसे अनुरोध किया कि वे इन लज्जाशीलाओंको कुछ खिलादें ।

अञ्चल हाथमें लेकर मुनि-पत्नियोंकी, सासुओंकी, नगरकी कुल-वृद्धाओं तथा सम्बन्धमें ज्येष्ठा होनेवाली तरुणियोंकी भी वधुओंने पद वन्दना की । महारानियाँ स्वयं आगताओंका परिचय वधुओंको दे रही थीं और जो वधू प्रणाम करती थी, उसके पतिका नाम लेकर उसका परिचय देती थीं ।

'जनकपुरमें सब रमारूप विनिन्दिका ही उत्पन्न होती हैं ?' तरुणियोंने नववधुओंसे शीघ्र परिचय कर लिया । अपना सम्बन्ध स्वयं बतला दिया । महारानियोंको यह बहुत प्रिय लगा । वधुएँ बालिकाएँ हैं, अपरिचित नगरमें, अपरिचितोंके मध्य आगयी हैं । किन्हींसे भी इनका परिचय होजाय तो कुछ जी बहल सकेगा इनका ।

बहुओंकी सेवामें उनकी वयस्का सेविकाएँ नियुक्त की गयीं । नगरकी बालिकाओंने भी शीघ्र परिचय कर लिया । जिन बालिकाओंको भी 'भाभी' कहने का स्वत्व था, वे विप्र-कुमारियाँ हों अथवा क्षत्रिय या वैश्य कन्याएँ, उनके साथ नववधुओंका संकोच कैसे चल सकता था । वे तो एकान्त मिलते ही घेरकर बैठ गयीं और उन्हें अपनी इन भाभियोंके मुखसे ही धनुर्भङ्ग तथा विवाहका पूरा विवरण सुनना था ।

नित्यका आनन्दधाम अयोध्या । उसमें आनन्दाब्धि उमड़ उठा था । श्रीचक्रवर्ती महाराजको ऋषि-मुनियों तथा आगतोंके सत्कारसे अवकाश नहीं था । बारातमें ले चलनेका आमन्त्रण सब सम्बन्धियोंका नहीं दिया जा सका था । अब सबको सादर आमन्त्रित करके सत्कृत करना था । राज-कुमारोंके ननिहालसे उनके तथा नववधुओंके लिए वस्त्राभरण आने लगे । सभी सामन्त नरपतियोंको आमन्त्रित किया गया ।

राजकुमारोंसे माताएँ कुलाचार सम्पन्न करा रही थीं । सभी देव मन्दिरोंमें पत्नीके साथ ग्रन्थि बन्धन पूर्वक जाकर अर्चन करना था—इस समय तो देव-विग्रहोंका महार्चन होना था । इन पूजन-कुलाचारसे बहुत कम समय मिलता था और उसमें आगत गुरुजनोंको सत्कृत करना था । वयस्क वर्गका स्नेह, मैत्री । उनको भी उचित सत्कार, स्नेह देना था ।

महारानियोंको, अन्त:पुरकी महिलाओंको और नववधुओंको भी देवपूजन, कुलाचारमें व्यस्त रहना था। रात्रिमें भी नववधुओंको ही विश्राम मिलता था। शेष सब तो मङ्गलगानका अवसर ही तब पाती थीं।

सेवकोंको, मन्त्रियोंको, नागरिकोंको भी अवकाश नहीं था। लोगोंके दूर दूरके सम्बन्धी आ रहे थे। विवाहसे लौटे राजकुमारोंका दर्शन करके आ रहे थे। जिन्होंने रावणके दुर्दान्त अनुचरोंको खेल खेलमें मार दिया, जिनकी पद-रजने पाषाणी मुनि-पत्नीका उद्धार कर दिया, पुरारिके महाधनु पिनाकको जिन्होंने मूलीके समान तोड़ फेंका, परशुराम जैसा क्षत्रिय-कुल दावानल जिनके सम्मुख शान्त होगया, उन श्रीरामका दर्शन करने तो दिव्य लोकोंके भी ऋषिगण आरहे थे। श्रीरामकी सुयश-कथा त्रिभुवन विख्यात होचुकी थी।

अयोध्यामें नित्य नये अतिथि आरहे थे। अयोध्याके सब नर-नारी अत्यन्त व्यस्त, अत्यन्त आनन्दोल्लासित होरहे थे। इसी आनन्दोत्सवके मध्य श्रीराम एक दिन सरयू-तट पहुँचे तो जलाधिप वरुणने प्रत्यक्ष होकर याचना की—'देव ! वह वैष्णव धनुष।'

देवता सबको तो नहीं दीखा करते। अनुजोंने, साथके सखाओंने, सेवकोंने भी देखा कि परशुरामजीसे प्राप्त वह वैष्णव धनुष श्रीरामने कन्धेसे उतारा और दोनों हाथोंमें लेकर धीरेसे सरयूके जलमें विसर्जित कर दिया।

'आर्यने अच्छा किया।' लक्ष्मणने मित्रोंसे कहा—'यह भी पिनाकके समान जीर्ण था। आर्यका अपना धनुष इससे बहुत सशक्त है।'

उपसंहार

आप अब अनुकम्पा करें !' कैकय नरेशके कुमार युधाजितने श्रीचक्रवर्ती नरेशसे प्रार्थना की—'धनुर्मासिसे पूर्व ही राजकुमारोंको कैकय पहुँच जाना चाहिए !'

युधाजित मिथिलासे अयोध्या साथ आये थे। वैवाहिक मङ्गल कृत्य सम्पन्न होने तक बोलनेका अवकाश ही नहीं था उन्हें, किन्तु धनुर्मास-में तो वे अपने भागिनेयको लेकर यात्रा नहीं करना चाहेंगे। अतः उन्होंने श्रीचक्रवर्ती महाराजसे अवसर मिलते ही अपनी बात कही।

'श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके साथ चले गये थे। वे बहुत दिन बाहर रहकर आये हैं।' महाराजने कहा—'वैसे भी अब मुझ वृद्धको प्रजापालनमें राजकुमारोंकी सहायता अपेक्षित है। चारों राज-कुमारोंको एक साथ अयोध्यासे बाहर भेजना सम्भव नहीं है। भरत और शत्रुघ्न तुम्हारे साथ जा सकते हैं।'

कैकय नरेश महाराज अश्वपतिने चारों कुमारोंको आमन्त्रित किया था। महाराज अश्वपति राजनीति-शास्त्रके लोक प्रसिद्ध विद्वान हैं। वे चाहते हैं कि उनके भागिनेय राजनीतिमें दक्ष होजायँ उनके समीप रहकर। दूसरे कैकय अत्यन्त मनोरम प्रदेश है। राजकुमारोंको यहाँ आकर दुर्गम पर्वतीय स्थान देखनेको मिलेगा। शीतकालमें वे हिमपात देख सकेंगे। लेकिन श्रीचक्रवर्ती महाराज चारों कुमारोंको भेज दें तो अयोध्या ही सूनी होजाय। महारानियोंमें कोई इसपर सहमत नहीं होंगी।

केवल कैकयकी बात भी नहीं है। दक्षिण कौशल और सौमित्र देश भी हैं। वहाँके नरेश कैकेय जैसे बड़े राज्यके स्वामी भले न हों, अपने दौहित्रोंका अपने यहाँ सत्कार करनेकी उमङ्ग तो उनमें भी कम नहीं है। यदि अभी कैकय चारों राजकुमार चले जायें तो यह परम्परा बन जायगी। किसका आग्रह अस्वीकार किया जा सकेगा ? सबका आग्रह

स्वीकार किया जाने लगे तो राजकुमारोंको अयोध्यामें रहनेका ही समय नहीं आवेगा। तब तो वे अपनी राजधानीमें अतिथि बनकर रह जायँगे।

कुमार युधाजित राजनीतिज्ञ पिताके सुयोग्य पुत्र हैं। वे व्यवहार-शास्त्रके कुशल विद्वान हैं। अपने बहनोई चक्रवर्ती महाराजकी कठिनाई न समझते हों, ऐसी बात नहीं है। अतः उन्होंने अधिक आग्रह करना उचित नहीं माना। उनके साथ श्रीभरत-शत्रुघ्न चले चलें, यह उन्होंने स्वीकार कर लिया।

महाराज दशरथने भरतको बुलवाया। भरतके साथ शत्रुघ्न स्वभावसे आनेवाले थे। महाराजने कहा—'वत्स! तुम्हारे मामा कुमार युधाजित तुम दोनों भाइयोंको लिवा जाने ही आये हैं। इन्हें मिथिला जाना पड़ा और वहाँसे लौटकर भी बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी है। इन्होंने स्वयं अपने कुलगुरुसे यात्रा-मुहूर्त पूछ लिया है। अतः तुम लोग माताओंसे अनुमति ले लो और कल प्रातः इनके साथ प्रस्थान करो।'

महारानी कौसल्याको यह समाचार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा भी—'अभी ही तो राजकुमार विवाह करके आये हैं। अभी इन्हें ननिहाल भेजना अच्छा तो नहीं लगता।'

लेकिन महारानी कौसल्याका स्वभाव महाराजके आदेशका विरोध करना नहीं था। महारानी कैकेयीने कह दिया—'जीजी! अपने दो कुमार तो हैं ही। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल जाते हैं तो इस ऋतुमें हिमपात देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।'

महारानी कैकेयी अपने भाईको हतोत्साह नहीं देखना चाहती थीं। महारानी सुमित्राका स्वभाव ही नहीं था ऐसे विषयोंमें बोलना। दोनों कुमारोंने प्रणाम करके अनुमति माँगी तो उन्होंने आशीर्वाद दे दिया।

भरत-शत्रुघ्नने भाइयोंसे विदा माँगी। सरयू-तट तक महाराज दशरथ, श्रीराम-लक्ष्मण पहुँचाने गये। अनेक रथ साथ भेजे महाराज दशरथने मार्गकी व्यवस्थाके लिए तथा आहार, वस्त्रादि उपकरणोंके साथ। इन रथोंको कैकय जाकर लौट आना था।

दोनों कुमारोंके साथ निजी सेवक ले जाने कुमार युधाजितको अनावश्यक लगे। उनका कहना था—'निजी सेवक साथ रहने पर राज-

कुमारोंको नवीन वातावरणमें, नवीन लोगोंके साथ रहनेका अभ्यास नहीं होगा।'

यह तर्क इसलिए भी स्वीकार कर लिया गया, क्योंकि कुमार ननिहाल जा रहे थे। वहाँ सभी सहानुभूतिपूर्ण, वात्सल्य रखनेवाले थे। अतः अपरिचय कष्टदायी नहीं हो सकता था। इससे आनन्द ही बढ़नेकी अधिक आशा थी।

कुमार युधाजितके साथ कोई उपहार भेजनेका प्रश्न ही नहीं था। कैकय अयोध्याको उपहार दे सकता था, अयोध्याका उपहार स्वीकार तो नहीं कर सकता था।

विप्रोंने स्वस्तिवाचन किया। महर्षिने मङ्गलाशासन किया। महाराजने हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया। श्रीराम-लक्ष्मणने अङ्कमाल दी। सबसे यथाविधि मिलकर भरत-शत्रुघ्न अपने मामा युधाजितके साथ उन्हींके रथमें बैठकर अयोध्यासे कैकयकी ओर चल पड़े।

'श्रीकृष्ण-सन्देश'

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

—इसका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ ।

—'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्रतिमास ८० पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है ।

—'श्रीकृष्ण-सन्देश' में श्री 'चक्र' द्वारा लिखित श्रीकृष्णचरित प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जारहा है ।

—आप श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' की सशक्त लेखनशैलीसे इस ग्रन्थके द्वारा परिचित हो गए हैं ।

—वार्षिक शुल्क १०)

—आजीवन शुल्क १५१)

—सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें और हमारे यहाँ से प्रकाशित साहित्यको २० प्रतिशत कम मूल्यपर प्राप्त करें ।

व्यवस्थापक, श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ

मथुरा - २८१००१

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र' की अन्य पुस्तकें

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १०)५०

श्रीद्वारिकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)५०

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति–डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ६)००

श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ ६६, मूल्य १)२५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

सांस्कृतिक कहानियाँ प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

अन्य प्रकाशन—

दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक प्रसंग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १८८, मूल्य २)५०

प्रेसमें—

१. सांस्कृतिक कहानियाँ—भाग४

प्राप्ति-स्थान—
**प्रकाशन विभाग, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ,
मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)**